Printed by Vinayak Balkrishna Paranjpe at the Native Opinion Press, Angria's Wadi, Girgaum, Bombay and published by Ramchandra Ragho for the Proprietor at the Laxmi Vyankateshwar Press, Kalyan.

भूमिका ।



समस्त सज्जनोंको विदित हो कि यह साम्वत्सरीपद्धति इस कारण
काशित करी है कि हमारे पुस्तकालयमें प्रायः पंडितलोग साम्वत्सरी
तककी खोज करते थे, तब हमने विचार किया कि साम्वत्सरी पुस्तक
ाजतक किसी यंत्रालयमें नहीं छपी है, यह विचार कर प्राचीन साम्वत्सरी
द्धतिको हमने खोजना प्रारंभ किया तो तीन पुस्तकें हस्तलिखित हमको
ाप्त हुई परंतु लेखकदोषसे तीनों प्रति अशुद्ध थीं, उनको देखकर यह
ाम्वत्सरीपद्धति यथामति शुद्ध करते हुये हमने लिखकर प्रकाशित करी
, संवत्सरोंका फल जो गद्यरूपसे इसमें लिखा है वह तीनों प्रतियोंमें
ऐसा था, यह फल निरे ज्योतिषीका बनाया हुआ जान पडता है, कि
नसको व्याकरणमें बोध कमती था, हमने उस गद्यात्मक फलमें हस्ताक्षेप
रना उचित नहीं समझा जैसा था वैसाही लिखकर भाषानुवाद कर
द्या है, और जो उपयोगी बातें इसमें नहीं थीं उनको सम्मिलित करके
सको पूर्ण करनेमें परिश्रम किया है। इस ग्रन्थमें पांच अध्याय हैं.

१ प्रथम अध्यायमें चतुर्युगीवर्णन है।

२ द्वितीय अध्यायमें ६० संवत्सरोंका फल कथन किया है।

३ तृतीय अध्यायमें राजा मंत्री. सस्याधिप आदिका फल कहा है।

४ चतुर्थ अध्यायमें रोहिणी व संवत्सरवास फलसहित तथा आर्द्राप्र-
ाशफल और अधिकमास, गुरुराशि, शनिराशि. लाभव्ययफल तथा शनि-
ाहनादिफल वर्णित है।

५ पंचमअध्यायमें अन्न आदि वस्तुओंका समर्घ महर्घ तथा वृष्टिका विचार भली भांति वर्णन किया है ।

इस प्रकार पांच अध्यायोंसे विभूषित यह ग्रन्थ वर्णन किया गया है ॥

रामऋत्वङ्कचन्द्रेऽब्दे पौषे मास्यसिते दले ॥
द्वादश्यां गुरुवारे च भाषारम्भः कृतो मया ॥ १ ॥

सत्कृपाभाजन—
ज्योतिर्वित्पण्डित नारायणप्रसादमिश्र पुस्तकालय,
लखीमपुर (खीरीअवध.)



अथ सांवत्सरीपद्धतिकी अनुक्रमणिका.

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

अथ

सांवत्सरीपद्धतिः ।

भाषाटीकासहिता ।

मङ्गलाचरणम् ।

नत्वा ब्रह्म सनातनं सुविमलं धाम श्रुतीनां परं ।
यस्याऽनुस्मरणाचतुर्मुखमुखाः सृष्टेर्विताने क्षमाः ॥
ज्योतिःशास्त्रविचारणे शुभमतिः श्रीमिश्रनारायण-
स्तेनेयं च समादरेण सहिता सांवत्सरी लिख्यते ॥ १ ॥

ग्रन्थारम्भः । तत्रादौ चतुर्युगी ।

अचिन्त्याऽव्यक्तरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥
समस्तजगदाधारमूर्तये ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥

भाषार्थ—अचिन्त्य (चिन्तवन योग्य नहीं), अव्यक्त (अ
रूप, निर्गुण, और गुणोंकी आत्मा, समस्तजगदाधार ऐसे मूर्तिमान
र्थ नमस्कार है ॥ १ ॥

लक्ष्मीः स्यादचला तिथिश्रवणतो वारात्तथायुः
नक्षत्रं कृतपापतापशमनं योगो वियोगापहः ॥
सर्वाभीष्टकरं तथैव करणं पंचांगमेवं स्फुटं ।
श्रोतव्यं गणकाननात्प्रतिदिनं श्रेयस्करं सिद्धिद

भार्थ—तिथिको श्रवण कियेते अचला लक्ष्मी प्राप्त होवे है,
श्रवण कियेते बहुत आयु होवे है, नक्षत्रको सुननेसे मनुष्य

हुये पापोंके तापसे छूट जावे है, योगको श्रवण कियेते वियोगका दुःख दूर होजावे है, तथा करणको श्रवण कियेते मनकी कामना पूर्ण होवे है, इस प्रकार पंचांगको प्रतिदिन पंडितके मुखते श्रवण कियेते कल्याण करे, और सिद्धिको देवे है ॥ २ ॥

तिथिर्वारं च नक्षत्रं योगः करणमेव च ॥
पंचाङ्गस्य फलं श्रुत्वा गंगास्नानफलं लभेत् ॥ ३ ॥

भावार्थ—तिथि, वार, नक्षत्र, योग, एवं करण इस पंचांगके फल श्रवण कियेते गंगास्नानका फल प्राप्त होवे है ॥ ३ ॥

ब्रह्मादीनां दिनादिमानानि ॥

भावार्थ—अब ब्रह्मा आदिकोंके दिन आदिका प्रमाण कहते हैं ॥

चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्मणो दिनमुच्यते ॥
निजेनैव तु मानेन आयुर्वर्षशतं स्मृतम् ॥४॥

भावार्थ—सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग ये चारों युग सहस्र (हजार) वार व्यतीत होनेपर ब्रह्माका एक दिन कहा है, इसी अपने वर्षप्रमाणसे सौ वर्षकी आयु ब्रह्माकी कही है ॥ ४ ॥

तत्परारूयं तदर्द्धं तु परार्धमभिधीयते ॥
पितामहसहस्रेण विष्णोश्च घटिका स्मृता ॥ ५ ॥

भावार्थ—ब्रह्माजीकी आधी (५० वर्षकी) आयु व्यतीत होजाने उपरान्त आधी [illegible] (५० वर्षकी) आयुकी [illegible] कही है, पितामह (ब्रह्माजी) के हजार दिन व्यतीत होनेपर विष्णु (हरिभगवान्) की एक घडी [illegible] है ॥ ५ ॥

मन्वन्तरे अष्टाविंशतितमः कलियुगः प्रथमचरणः।
युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तरमिहोच्यते ॥ ८ ॥

भापार्थ—तहां व्यासजीके कहे अनुसार ब्रह्माजीके एक दिनमें चौदह मनु, तिन मनुओंके नाम इस प्रकार हैं। १ स्वायंभुव, २ स्वारोचिष, ३ उत्तम, ४ तामस, ५ रैवत, ६ चाक्षुष, ७ वैवस्वत, ८ सावर्णि, ९ दक्षसावर्णि १० ब्रह्मसावर्णि, ११ धर्मसावर्णि, १२ रुद्रसावर्णि, १३ देवसावर्णि, १४ इन्द्रसावर्णि। वर्तमान सातवें वैवस्वतमन्वन्तरमें अट्ठाईसवें कलियुगका पहला चरण है। इकहत्तर चतुर्युगियोंका एक मन्वन्तर कहा है ॥ ८ ॥

कृतयुगादीनामादौ कृतयुगव्यवस्था।

भावार्थ—अब सतयुग आदि चारों युगोंमें पहले सतयुगकी व्यवस्था कहते हैं ॥

कार्तिके शुक्लपक्षे च नवम्यां ज्ञे च विष्णुभे ॥
धृतियोगे च मध्याह्ने कृताङ्घ्रेः स्यात्प्रवर्तनम् ॥ ९ ॥

भावार्थ—कार्तिकमास, शुक्लपक्ष, नवमीतिथि, बुधवार, श्रवणनक्षत्र, और धृतियोगमें मध्याह्नसमय सतयुगके चरणकी प्रवृत्ति भई अर्थात् सतयुगका प्रारंभ भया ॥ ९ ॥

कृतयुगप्रमाणम् १७२८००० । तत्र मत्स्यकूर्म-वराहनृसिंहा इति विष्णोरवतारचतुष्टयम् ॥ १० ॥

भावार्थ—सतयुगका प्रमाण सत्रह लाख अट्ठाईस हजार वर्षोंका। यहां (सतयुगमें) १ मत्स्य, २ कूर्म (कच्छप), ३ वाराह, ४ नारसिंह ये चार अवतार विष्णु (हरिभगवान) के भये ॥ १० ॥

मत्स्यावतारसमयः ।

प्रभवाऽब्दे चैत्रकृष्णे पंचम्यां ज्ञे च मूलभे ॥
सिद्धियोगे च सन्ध्यायां भगवान्मत्स्यरूपधृक् ॥
शंखासुरवधार्थाय वेदस्योद्धारणाय च ॥ ११ ॥

भावार्थ—प्रभवनामसंवत्सर, चैत्रमास, कृष्णपक्ष, पंचमीतिथि, बुधवार, मूलनक्षत्र और सिद्धियोगमें सन्ध्यासमय भगवान्ने शंखासुरके वधके अर्थ और वेदोंके उद्धार निमित्त मत्स्यअवतार धारण करा ॥ ११ ॥

कूर्मावतारसमयः ।

विभवे वत्सरे ज्येष्ठे कृष्णेऽर्के द्वादशीतिथौ ॥
धातृभे धृतियोगे च सायं कूर्मोऽभवद्धरिः ॥ १२ ॥
भूभारहरणार्थाय शेषसौख्याय नाटकी ॥ १३ ॥

भावार्थ—विभवनाम संवत्सर, ज्येष्ठमास, कृष्णपक्ष, रविवार, द्वादशी तिथि, रोहिणीनक्षत्र, धृतियोगमें सायंकाल (सन्ध्यासमय) हरिभगवान्का भूमिका भार उतारिवे और शेषके सुखके अर्थ कूर्म (कच्छप) अवतार .या ॥ १२ ॥ १३ ॥

वराहावतारसमयः ।

शुक्लाऽब्दे चैत्रकृष्णे च त्रिदश्यां वसुभे रवौ ॥
ब्रह्मयोगे पराह्णे च हरिर्वाराहरूपधृक् ॥
जलमध्ये गतां पृथ्वीं दंष्ट्रयोद्धृतकाम्यया ॥ १४ ॥

भावार्थ—शुक्लनामसंवत्सर, चैत्रमास, कृष्णपक्ष, त्रयोदशीतिथि, धनिष्ठा नक्षत्र, रविवार, ब्रह्मयोगमें दिनके पिछले पहर हरिभगवान्ने जलके

मध्य गई पृथिवीको अपनी डाढसे उठायके लायवेके अर्थ वाराहरूप धारण किया ॥ १४ ॥

नृसिंहावतारसमयः ।

अंगिराऽब्दे च वैशाखे शुक्के शंभुतिथौ रवौ ॥
द्वीशर्क्षे वरियाने च सायं स्यान्नृहरिर्हरिः ॥ १५ ॥
हिरण्यकशिपुं हन्तुं भक्तानां च सुखाय वै ॥१६॥

भावार्थ—अंगिरासम्वत्सर, वैशाखमास, शुक्लपक्ष, चतुर्दशीतिथि, रविवार, विशाखानक्षत्र वरियानयोगमें सायंकाल अर्थात् संध्यासमय हरिभगवान्ने हिरण्यकशिपु (दैत्य) के वध करिवेको और भक्तजनोंके सुखके अर्थ नरसिंह रूप धारण किया ॥ १५ ॥ १६ ॥

तत्र पापं नास्ति पुण्यं विंशविश्वात्मकम्, मनुष्यायुर्वर्षसंख्या १००००० शरीरहस्तप्रमाणम् २१ पात्रं सौवर्णमयम्, रत्नमयं द्रव्यम्, ब्रह्माण्डगतप्राणाः, तीर्थं पुष्करम्, स्त्रियः पद्मिन्यः पतिधर्मपरायणाः, सूर्यपर्व ३२००० चन्द्रपर्व ५००० सर्वे वर्णा धर्मनिरताः ॥ १७ ॥

भावार्थ—तहां (सतयुगमें) पाप नहीं, पुण्य वीस विश्वा, मनुष्यकी आयु एक लाख वर्षकी, शरीरकी ऊंचाई इकीस हाथ प्रमाण, सुवर्णमय पात्र और रत्नमय द्रव्यका व्यवहार, मनुष्योंके प्राण ब्रह्माण्डगत, तीर्थ पुष्करजी, स्त्रियां पद्मिनी पतिव्रतधर्मपरायण, सूर्यग्रहणसंख्या बत्तीस हजार, चन्द्रग्रहणसंख्या पांच हजार, सब वर्ण अपने धर्ममें निरत ॥ १७ ॥

भापार्थ—भाद्रमास, कृष्णपक्ष, अष्टमी तिथि, बुधवार, रोहिणीनक्षत्र, वृद्धियोगमें आधी रातके समय कंस आदि राक्षसोंके हननके निमित्त और गोपियोंके सुखके अर्थ कृष्णभगवान्‌ने जन्म धारण करा ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

बौद्धाऽवतारसमयः ।

आश्विने शुक्लपक्षे च दशम्यां गुरुवासरे ॥
अभूद्धरिर्बौद्धरूपो दैत्यानां मोहनाय च ॥ ३४ ॥

भावार्थ—आश्विनमास. शुक्लपक्ष, दशमीतिथि, गुरुवारमें हरिभगवान्‌ने दैत्योंके संमोहन निमित्त बौद्धरूप धारण किया ॥ ३४ ॥

तत्र पापं १०, पुण्यं १०, मनुष्यायुर्वर्षसंख्या १०००, शरीरहस्तप्रमाणम् ७ । पात्रं ताम्रमयम, राप्यमयं द्रव्यम, तीर्थं कुरुक्षेत्रम्, त्वचागतप्राणाः, स्त्रियः शंखिन्यः, सूर्यपर्व ३२०, चन्द्रपर्व ५०, सर्वे वर्णाः स्वस्वधर्मकर्मनिरताः ॥ ३५ ॥

भावार्थ—द्वापरयुगमें पाप १० विश्वा, पुण्य १० विश्वा, मनुष्योंकी आयु एक हजार वर्षकी, शरीरकी ऊंचाई मान हाथकी, तांबेके पात्र और रौप्यमय धनसे व्यवहार, तीर्थ कुरुक्षेत्र, मनुष्योंके प्राण त्वचागत, स्त्रियां शंखिनी, सूर्यग्रहणसंख्या ३२०, चन्द्रग्रहणसंख्या ५०, सब वर्ण अपने अपने धर्मकर्ममें तत्पर ॥ ३५ ॥

तत्र चन्द्रवंशीयराजानः । सोमः, बुधः, पुरूरवाः, नन्दः, अनन्दः, नहुषः, शन्तनुः, चित्रवीर्यः, विचित्रवीर्यः, पाण्डुः, युधिष्ठिरः, अभिमन्युः, परीक्षितः, जन्मेजयः । एतेषां भूमण्डलपर्यन्तगमनम्,

दिव्यान्नभक्षणम्, दिव्यवस्त्रपरिधानम्, एकश्चे-
त्कुरुते पापं कुलं तस्य विनश्यति ॥ ३६ ॥

भावार्थ—द्वापरमें चन्द्रवंशी राजा भये १ सोम, २ बुध, ३ पुरूरवा, ४ नल, ५ अनल, ६ नहुष, ७ शान्तनु, ८ चित्रवीर्य, ९ विचित्रवीर्य, १० पांडु, ११ युधिष्ठिर, १२ अभिमन्यु, १३ परीक्षित्, १४ जनमेजय, इ-नकी गति सुमेरुपर्वत पर्यन्त, दिव्य (देवताओंके योग्य) अन्नभोजन करने हारे, और निर्मल वस्त्र धारण करिवेवारे। एक यदि पाप करै तो उ-सका कुल विनाश हो जावे है ॥ ३६ ॥

अत्र युगे ब्राह्मणा द्विवेदपाठिनः, सत्यासत्यर-
ताः, तपोमयाः, लोभालोभयुक्ताः, शापानुग्रहे-
समर्थाः, ईश्वराराधनेतत्पराः, गावः द्विकाले दु-
ग्धपूर्णाः, नद्यो मध्यजलाः सर्वसस्ययुता पृथ्वी
रौप्यद्रव्यसमन्विता ॥ वापनं चेकवारेण संग्राह्यं
तत्र पंचधा ॥ ३७ ॥

भावार्थ—द्वापरयुगमें ब्राह्मण दो वेद पढे भये, सत्य और असत्य संभाषण करिवेवारे, तपस्वी, लोभ और निर्लोभसे युक्त, शापके देवे और अनुग्रह करिवेमें समर्थ, ईश्वरकी आराधना करिवेमें तत्पर, गौवें प्रातः सायंकालसमय दुग्धसे परिपूर्ण, नदियोंमें मध्यम जल, सब प्रकारके धा-न्योंसे युक्त पृथिवी, रौप्यमय धनसे भरपूर, एक बार बोय देनेसे पांच बार काट लेवे ॥ ३७ ॥

कलियुगव्यवस्था।

अब कलियुगकीव्यवस्था करते हैं।

भाद्रकृष्णत्रयोदश्यां रविवारे च सार्पभे ॥
व्यतीपातेऽर्धरात्रौ च कलेः पादप्रवर्तनम् ॥ ३८ ॥

भापार्थ—भाद्रमास, कृष्णपक्ष, त्रयोदशीतिथि, रविवार, आश्लेषानक्षत्र व्यतीपातयोगमें आधी रातसमय कलियुगका प्रारंभ भया ॥ ३८ ॥

कलियुगप्रमाणम् ४३२०००, तत्राऽवतार एकः, सम्मलदेशे गौडब्राह्मणविष्णुगृहे कल्क्यवतारो भविष्यति ॥ ३९ ॥

भापार्थ—कलियुगका प्रमाण चार लाख बत्तीस हजार वर्ष, तहं (कलियुगमें) अवतार एक, सम्मल देशमें गौडब्राह्मण विष्णुनामके घरमें हरिभगवान्का कल्कि अवतार होवेगा ॥ ३९ ॥

तत्र पापं १५ पुण्यं ५ मनुष्यायुर्वर्षसंख्या १००, शरीरहस्तप्रमाणं सार्द्धत्रयम्, पात्रं मृण्मयम्, ताम्रमयं द्रव्यम्, तीर्थं गंगा, अन्नमयाः प्राणाः ॥ ४० ॥

भापार्थ—कलियुगमें पाप पन्द्रह विश्वा, पुण्य पांच विश्वा, मनुष्यकी आयु सौ वर्षकी, शरीरकी ऊंचाई साडे तीन हाथकी, पात्र प्रायः मृत्तिकाके, ताम्रमय द्रव्यका व्यवहार, तीर्थ गंगाजी, मनुष्योंके प्राण अन्नमें ॥४०॥

गंगायुः उक्तं च सनत्कुमारसंहितायाम् ।

**पृथिवी गंगया हीना भविष्यत्यन्तिमे कलौ ॥
तदा त्यक्ष्यति विष्णुश्च मेदिनीं नरपुंगव ॥ ४१ ॥**

भापार्थ—अब गंगाजीकी आयु सनत्कुमारसंहितामें कहे अनुसार वर्णन करते हैं । पृथिवी गंगाकरके हीन वर्तमान वैवस्वतमनुके अन्तवाले कलियुगमें होवेगी । हे नरोत्तम, उसी समय विष्णुभगवानभी पृथिवीको परित्याग करेंगे ॥ ४१ ॥

अत्र युगे ब्राह्मणाः स्ववेदहीनाः, तपोहीनाः, असत्यवादिनो नराः, सर्वे वर्णाः स्वस्वधर्मकर्मरहिताः, गावो दुग्धहीनाः, नद्यो जलहीनाः, स्त्रियो हस्तिन्यः, सूर्यचन्द्रपर्वसंख्या नास्ति ॥ ४२ ॥

भापार्थ—इस युगमें ब्राह्मण अपने वेदसे हीन, तपसे रहित, मनुष्य असत्यवादी, सब वर्ण अपने अपने धर्मकर्मसे रहित, गौवें दुग्धसे हीन, नदियां जलसे हीन, स्त्रियां हस्तिनी, सूर्य और चन्द्रग्रहणकी संख्या नहीं अर्थात् कलियुगमें असंख्य ग्रहण होवे. ॥ ४२ ॥

कस्यचिद्वचनम् ।

निर्वीर्या पृथिवी निरौपधिरसा नीचा महत्वं गताः । भूपाला निजकर्मधर्मरहिता विप्राः कुमार्गे रताः ॥ भार्या भर्तृविरोधिनी पररता पुत्रः पितुर्दूपिता । हा कष्टं खलु वर्तते कलियुगे धन्या मृता ये नराः ॥ ४३ ॥

भापार्थ—किसी पंडितका वचन है, कि—पृथिवी बीजसे हीन भई, औषधियोंमें रस नहीं रहा, नीचजन महत्व पदवीको प्राप्त भये, राजालोग अपने कर्मधर्मसे रहित भये, ब्राह्मण कुमार्गगामी भये, स्त्री अपने पतिसे विरोध करके पर पुरुषसे प्रीति करिवेवारी भई, पुत्र पिताको दुःख देने लगे, हा बडे खेदकी बात है कि, कलियुगमें सब और कष्टही कष्ट है, जे मनुष्य मर गये वे धन्य हैं ॥ ४३ ॥

तथान्र ।

गीतापुस्तक हाथ साथ विधवा माला विशाला गले । गोपीचन्दनचर्चितं सुललितं भाले च वक्षः

स्थले ॥ वैरागी पटवा कुह्मार नटवा कोरी धुना धीमरो। हा संन्यास कुतो गतः कलियुगे वार्ताऽपि न श्रूयते ॥ ४४ ॥

भावार्थ—आधुनिक साधुओंकी यह गति है, कि—गीताकी पुस्तक हाथ और एक चिमटा साथ, बडीसी माला गलेमें पडी है, मस्तक और छाती पर बहुतसा गोपीचन्दन चर्चित है, वैरागी, पटवा, कुह्मार, नटवा, कोरी, धुना, धीमर, ये प्रसन्नतापूर्वक उत्तर देना कहां रहा. हे संन्यास तुम कहां गये तेरी बातभी नहीं सुनते ॥ ४४ ॥

चतुरशीतिलक्षयोनिप्रमाणम् ।

जलजा नवलक्षाणि स्थावरा लक्षविंशतिः ॥ कृमयो रुद्रलक्षाणि पक्षिणां दशलक्षकाः । त्रिंशल्लक्षाणि पशवश्चतुर्लक्षाणि मानवाः ॥ ४५ ॥

भावार्थ—अब चौरासी लाख योनियोंका प्रमाण कहते हैं. । जलचर जीव नौ लाख, वृक्षादि स्थावर जीव बीस लाख, कीडामकोडा जीव ग्यारह लाख, पक्षी दश लाख प्रमाण, तीस लाख प्रकारके पशु और चार लाख प्रकारके मनुष्य होते हैं ॥ ४५ ॥

मनुष्यादीनामायुः ।

शतमायुर्मनुष्याणां वृक्षाणां च सहस्रकम् ॥ द्वात्रिंशद्भुजंगमानां गजानां विंशतिः शतम् ॥ ४६ ॥

भावार्थ—अब मनुष्य आदिकोंकी आयु कहते हैं. । मनुष्योंकी आयु [illegible], वृक्षोंकी आयु [illegible] वर्षकी, [illegible] आयु बत्तीस [illegible] और हाथियोंकी आयु [illegible] वर्षकी है ॥ ४६ ॥

व्याघ्रोष्ट्राणां चतुःषष्टिः काकव्यालसहस्रकम् ॥
भल्लूनां वानराणां च मंडूनां सप्तविंशतिः ॥ ४७ ॥

भाषार्थ—व्याघ्र और ऊंटोंकी आयु चौंसठि वर्षकी, कौवों व सर्पोंकी आयु एक हजार वर्षकी, रीछ, वानर और मेडुकोंकी सताईस वर्षकी आयु जाने ॥ ४७ ॥

सहस्रं गृध्रसिंहानां शूकराणां शतार्द्धकम् ॥ सार्ध-
शतं च कूर्माणां मकराणां तथा स्मृतम् ॥ ४८॥

भाषार्थ—गीधपक्षी और सिंहकी आयु एक हजार वर्षकी, शूकरोंकी आयु पचास वर्षकी, कछुवों, और मकरोंकी डेढ सौ वर्षकी आयु कही है॥४८

वर्षविंश विहंगानां वर्षमेकं पिपीलिका ॥ चतुर्विं-
शत् खराणां च मृगाणां पंचविंशतिः ॥ ४९ ॥

भाषार्थ—वीस वर्षकी आयु अन्य पक्षियोंकी, एक वर्षकी आयु चीटियोंकी, चौवीस वर्षकी आयु गर्दभोंकी, और पचीस वर्षकी आयु हिरणोंकी कही है ॥ ४९ ॥

मूषकः पंचवर्षाणि वसुवर्षाणि कुक्कुटः ॥ श्वान-
शृगालमार्जारी वर्षद्वादशकं स्मृतम् ॥ ५० ॥

भाषार्थ—पांच वर्षकी आयु मूषकोंकी, आठ वर्षकी मुरगोंकी, और श्वान, (कुत्ता), शृगाल (जंबुक), मार्जार (बिल्ली,) इनकी आयु बारहवर्षकी कही है ॥ ५० ॥
कोई बिल्ली, सियारी और कुत्तीकी वासठि वर्षकी आयु कहते हैं, ॥ ॥

चतुःसप्त चकोराणां पिंगलानां शतत्रयम् ॥ प्रा-
सादकूपवापीषु सरसीपत्तनेषु च ॥ ५१ ॥

सहस्रैकं च वर्पाणि तदर्द्धं गृहग्रामयोः ॥ एकत्रिं शद्दिनं प्रोक्तं मक्षिकास्वेदजादिषु ॥ ५२ ॥

भापार्थ——चकोरोंकी आयु चौहत्तर वर्षकी, पिंगलापक्षीकी आयु ती सौ वर्षकी, मन्दिर, कुवां, वावली, तडाग, नगर इनकी आयु एक हज वर्षकी, तथा पांचसौ वर्षकी आयु घर और छोटे गांवोंकी । और मक्षि व स्वेदज (जुवां) इनकी आयु इक्तीस दिनकी कही है ॥ ५२ ॥

कलिमध्ये पट्शककर्तारो नृपाः

युधिष्ठिरो विक्रमशालिवाहनौ तथा च राजा विजयाभिनन्दनः । ततश्च नागार्जुनकल्किभूपतिः कलौ पडेते शकवन्धिनो नृपाः ॥ ५३ ॥

भापार्थ——अब कलियुगमें जो छः शकवंधी राजा भये सो कहें १ युधिष्ठिर, २ विक्रमादित्य, ३ शालिवाहन, ४ विजयाभिनन्दन, ५ ना गार्जुन, ६ कल्कि, कलियुगमें ये छः शकवन्धी राजा कहे गये हैं ॥ ५

कलेरारम्य युधिष्ठिरशक ३०४४ तदन्तर्गतास्तावत्सोमवंशीयराजानः,१ अर्जुनः२ अभिमन्युः,३ परीक्षितः, ४ जन्मेजयः, ५ वत्सराजः, ६ युवनाश्वः, । ततस्सूर्यवंशिनो राजानः १ अश्वपतिः, २ गजपतिः, ३ नरपतिः, ४ महीपतिः,५ महीपालः, ६ महेन्द्रपालः, ७ गन्धर्वसेनिः ॥ ५४ ॥

भापार्थ——कलियुगके आरंभमें महाराजा युधिष्ठिरजीके शाके ती हजार चवालीस, उसीके अन्तर्गत प्रथम चन्द्रवंशी राजाओंने राज्य कि जिनके नाम इस प्रकार हैं कि १ अर्जुन, २ अभिमन्यु, ३ परीक्षित,

जन्मेजय, ५ वत्सराज, ६ युवनाश्व । फिर सूर्यवंशी राजा भये, १ अश्वपति, २ गजपति, ३ नरपति, ४ महीपति, ५ महीपाल, ६ महेन्द्रपाल, ७ गन्धर्वसेनि, ॥ ५४ ॥

तदग्रे उज्जयिन्यां विक्रमादित्यशकः १३५ तन्मध्ये नृपाः १ विक्रमादित्यः, २ भर्तृहरिः, ३ सेनिः, ४ मुंजः ५ भोजः, ६ रामदेवः ॥ ५५ ॥

भाषार्थ—महाराजा युधिष्ठिरजीके ३०४४ वर्षके उपरांत उज्जयिनी नगरीमें शकबन्धी महाराजा विक्रमादित्यजी भये, तिनके शाके एकसौ पैंतीस, उसीके मध्य १ विक्रमादित्य २ भर्तृहरि, ३ सेनि, ४ मुंज, ५ भोज, रामदेव ये राजा भये ॥ ५५ ॥

ततःनर्मदादक्षिणे तीरे शालिवाहनशकः१८००० तन्मध्ये नृपाः १ शालिवाहनः, २ शालिकुमारः, ३ क्षत्रकः, ४ इन्द्रकिरीटी, ५ ब्रह्मादिवाकरः, ६ मलीमदत्तः, ७ गांडवकः, ८ जयदेवः, ८ श्रीमद्देवः, १० नरेन्द्रशाहः । ततः यवनवंशिनो नृपाः, तेषां नामानि कृतराज्यवर्षाणि च, तिमिर्लिंगशाह राज्यवर्ष ६०, बाबरशाहः ५५, हिमायूः ४८, अकबरशाहः ५१, जहांगीरः २२, शाहजहां ३२, औरंगजेबः ५१, बहादुरशाहः ५, फरुरशाहः ७, मुहम्मदशाहः ३०, अहमदशाहः ६, आलमगीरशाहः६, शाहआलम राज्यवर्ष३६, अनन्तरमहाराणीक्विनविक्टोरियाराज्य ६३, राजराजेश्वर सप्तअयडवर्ड वर्ष १०, वर्तमान राजराजेश्वर,पंचमजार्ज इति ॥ ५५ ॥

भाषार्थ—महाराजा विक्रमादित्यजीके एक सौ पैंतीस वर्ष उपरान्त नर्मदानदीके दक्षिणतीर शालिवाहननाम राजा प्रगट भया, शाके अठारह हजार, उसके मध्य १ शालिवाहन, २ शक्तिकुमार, ३ क्षत्रक, ४ इन्द्रकिरीटी, ५ ब्रह्मदिवाकर, ६ मल्लीमदच, ७ गौडवंक, ८ जयदेव, ९ श्रीनंदव, १० नरेन्द्रशाह, ये दश राजा भये। फिर यवनोंने आकर दिल्लीका सिंहासन (तखत) छीनकर अपने आधीन करके राज्य किया, तिन बादशाहोंके नाम और राज्यवर्षसंख्या वर्णन करते हैं. तिमिर्लिंगशाहने साठवर्ष बाबरशाहने पचपनवर्ष, हिमायूंशाहने अड़तालीस वर्ष, अक्बरशाहने इक्यावन वर्ष, जहांगीरशाहने बाईस वर्ष, शाहजहांबादशाहने बत्तीस वर्ष, औरंगजेबने इक्यावन वर्ष, बहादुरशाहने पांच वर्ष, फर्रुखशाहने सात वर्ष, मुहमदशाहने तीस वर्ष, अहमदशाहने तीस वर्ष, आलमगीरशाहने छः वर्ष, शाहआलमने छत्तीस वर्ष। फिर अंगरेजी राज्य भया, तहां महाराणी क्वीनविक्टोरियाने त्रेसठ वर्ष राज्य किया, सातवें यडवर्ड दश वर्ष राज किया, वर्तमान राजराजेश्वर पंचमजार्ज इंग्लैंडके सिंहासनपर विराजमान होके निष्कण्टक राज्य इस भारतवर्षमें कर रहे हैं ॥ ५५ ॥

ततः सिन्धुसमीपे विजयाभिनन्दनो भविष्यति तस्य शकः १००००, ततः धारातीर्थे नागार्जुनस्तस्य शकः ४००००० तदेव शेपकलिः ८२१ तस्मिन्नेव समये कल्क्यवतारो भविष्यति तस्यशकः ८२१ ॥ ५६ ॥

भाषार्थ—महाराजा शालिवाहनजीके सिंहासनाधिरूढसमयसे अठारह हजार वर्ष (शाके) व्यतीत होजाने उपरान्त सिन्धुके समीप विजयाभिनन्दन नाम राजा होवेगा, उसके दश हजार अर्थात् विजयाभिनन्दनजीके दश हजार वर्ष व्यतीत हुये उपरान्त धारतीर्थमें नागार्जुननाम राजा प्रगट होवे

शाके चार लाख अर्थात् नागार्जुनके चार लाख वर्ष व्यतीत हुये उप-
भगवानका कल्कि अवतार होवेगा, उस समय कलियुगके आठ सौ
त वर्ष शेष रहेंगे ॥ ५६ ॥

इति श्रीमदयोध्यामण्डलान्तर्वर्ति लखीमपुरखीरीनिवासि
ज्योतिर्वित्पण्डितनारायणप्रसादमिश्रविलिखितसांवत्सरीभा-
षाऽनुवादे चतुर्युगवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ संवत्सराध्यायः ॥ २ ॥

तत्रादौ शकानयनम् ।

विक्रमादित्यराज्यस्य पंचत्रिंशोत्तरं शतम् ॥
पातयित्त्वा भवेच्छाकं चैत्राद्यास्तिथयः स्मृताः ॥१॥

भाषार्थ—अब संम्वत्सराध्याय लिखेते हैं, तहां पहले शालिवाहनशा-
लानेका प्रकार कहते हैं, श्रीमन्महाराजा विक्रमादित्यजीके एक सौ
स वर्षपर शालिवाहनजीका शाका प्रवृत्त भया, इससे विक्रमीय संवत्
ामें एक सो पैंतीस घटाय देनेसे शालिवाहन शाके निकल आते हैं,
चैत्रसे अर्थात् चैत्रशुक्लपक्षसे शाकेकी प्रवृत्ति जानना ॥ १ ॥

प्रभवादिसंवत्सरानयनम् ।

शकेन्द्रकालः पृथगाकृतिघ्नः शशाङ्कनन्दाश्वियु-
गैः ४२९१ समेतः ॥शराद्रिवस्विन्दु १८७५ हतः
सलब्धः षष्ट्याप्तशेषे प्रभवादयोऽब्दाः ॥ २ ॥

भाषार्थ—अब प्रभव आदि संवत्सरोंके लानेकी रीति कहते हैं,
लिवाहन शाकेके अंकोंको दो स्थानमें धरे, एक स्थानके अंकोंको बाईस-
गुणा करे, उन अंकोंमें बयालिस सो इक्यानवे ४२९१ जोड देवे, और

अठारह सो पचहत्तरका भाग देवे, लब्धांकको परिवर्ति कहते हैं, उ दुसरे स्थानवाले शाकांकसंख्यामें मिलाय देवे और एक अंक और मि से प्रभव आदि संवत्सरसंख्या जाने, शेष अंक जो पहले रहे थे उन कोंको वारहसे गुणकर अठारह सौ पचहत्तरका भाग देनेसे लब्ध मासजानना, शेपांकको तीससे गुणकर पूर्वोक्तांकानुसार भाग देनेसे ककी दिन जानना, फिर शेपांकोंको साठसे गुणाकर पूर्वोक्त भा लब्धांकको घटी जानना, शेपांकोंको साठीसे गुणाकर पूर्वोक्त भाग लब्धांकको पल, फिर शेपांकोंको साठसे गुणाकर पूर्वोक्त भाग दे ब्धांकको विपल जानना ॥ २ ॥

उदाहरण ।

शालिवाहनशाके १८२८ को २२ से गुणा किया तो ४०२१६ इसमें ४२९१ मिलाये तो ४४५०७ भये, इसमें १८७५ का भाग तो लब्धांक २३ को शाके १८२८ में मिलानेसे १८५१ भये, उस जोड दिया तो १८५२ भये, साठोका भाग दिया तो शेप ५२ भये प्र आदिसे गणना करनेसे कालयुक्त नाम संवत्सर भया । पूर्वकथना १८७५ के भागसे शेपांक १३८२ को वारहसे गुणा किया तो १५ भये १८७५ का भागदेनेसे लब्धांक ८ मास हुये, शेप १५८४ को गुणा तो ४६५२० भये और १८७५ के भाग देनेसे लब्धांक २४ भये, शेप १५२० को ६० से गुणा तो ९१२०० भये १८७५ का दिया तो लब्धांक ४८ घटी जानना, शेप १२०० को ६० से गु ७२००० इसमें १८७५ का भाग दिया तो लब्धांक ३८ पल भये ७५० को ६० से गुणा तो ४५००० भये इसमें १८७५ का भाग तो लब्ध २४ विपल भये, शेप कुछ नहीं रहा । इस प्रकार संवत् शके १८२८ में कालयुक्तसंवत्सर मासादि ८।२४।४८।३८।२४ में जानना ॥ २ ॥

तथात्र ।

शाके वेदाक्षि २४ संयोज्य षष्टिभागेन हर्यते ॥
शेषं संवत्सरं ज्ञेयं लब्धं तत्परिवर्तकम् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—शाकेमें २४ मिलाय साठका भाग देनेपर शेषांकको प्रभव दि संवत्सर जानना, उदाहरण शाके १८२८ में २४ मिलाये तो १८५२ ये इसमें ६० का भाग दिया तो शेष ५२ प्रभवादिगणनासे कालयुक्त वत्सर भया ॥ ३ ॥

षष्टिसंवत्सरनामानि ।

प्रभवो विभवः शुक्लः प्रमोदोऽथ प्रजापतिः ॥
अङ्गिरा श्रीमुखो भावो युवा धाता तथैव च ॥ ४ ॥
ईश्वरो बहुधान्यश्च प्रमाथी विक्रमो वृषः ॥ चि-
त्रभानुः सुभानुश्च तारणः पार्थिवो व्ययः ॥५॥
सर्वजित् सर्वधारी च विरोधी विकृतः खरः ॥
नन्दनो विजयश्चैव जयो मन्मथदुर्मुखौ ॥ ६ ॥
हेमलंबो विलंबश्च विकारी शार्वरी प्लवः ॥ शु-
भकृच्छोभनः क्रोधो विश्वावसुपराभवौ ॥ ७ ॥
प्लवंगः कीलकः सौम्यः साधारणो विरोधकृत् ॥
परिधावी प्रमादी च आनन्दो राक्षसो नलः ॥८॥
पिंगलः कालयुक्तश्च सिद्धार्थो रौद्रदुर्मती ॥
दुन्दुभी रुधिरोद्गारी रक्ताक्षः क्रोधनः क्षयः ॥९॥

भाषार्थ—अब साठ संवत्सरोंके नाम वर्णन करते हैं । १ प्रभव, २ विभव, ३ शुक्ल, ४ प्रमोद, ५ प्रजापति, ६ अंगिरा, ७ श्रीमुख, ८ भाव, ९ युवा, १० धाता, ११ ईश्वर, १२ बहुधान्य, १३ प्रमाथी, १४ विक्रम १५ वृष, १६ चित्रभानु, १७ सुभानु, १८ तारण, १९ पार्थिव, २० व्यय,

२१ सर्वजित्, २२ सर्वधारी, २३ विरोधी, २४ विकृति, २५ खर, २६ नन्दन, २७ विजय, २८ जय, २९ मन्मथ, ३० दुर्मुख, ३१ हेमलम्ब, ३२ विलंब, ३३ विकारी, ३४ शार्वरी, ३५ प्लव, ३६ शुभकृत, ३७ शोभन, ३८ क्रोध, ३९ विश्वावसु, ४० पराभव, ४१ प्लवंग, ४२ कीलक, ४३ सौम्य, ४४ साधारण, ४५ विरोधकृत्, ४६ परिधावी, ४७ प्रमादी, ४८ आनन्द, ४९ राक्षस, ५० नल, ५१ पिंगल, ५२ कालयुक्त, ५३ सिद्धार्थ, ५४ रौद्र, ५५ दुर्मति, ५६ दुन्दुभी, ५७ रुधिरोद्गारी, ५८ रक्ताक्ष, ५९ क्रोधन, ६० क्षय, ये संवत्सर बीस बीस क्रमसे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रजीके नामसे कहे हैं ॥४॥५॥६॥७॥८॥९॥

अथ संवत्सराणां फलान्युच्यन्ते

भापार्थ—अब विस्तारपूर्वक साठ संवत्सरोंका फल पूर्वाचार्योंके वच-नुसार यथरीतिसे ठीक ठीक प्रकाशित किया जावे है, ॥ ११ ॥

प्रभवः १, ब्रह्मा स्वमी चैत्रवैशाखौ श्रेष्ठौ, समस्त वस्तुसमर्घता, ज्येष्ठादौ मासत्रये सर्वधान्यं महर्घं, गोधूममुद्गादीनां युगन्धराणां च विशेपतो महर्घता, भाद्रपदोपि शुभः, आश्विने च कचिन्महर्घता, पश्चाद्रोगपीडा महती, शेपमासाः मध्यमाः ॥ १२ ॥

भापार्थ—प्रभवनाम संवत्सरका स्वामी ब्रह्मा, इस संवत्सरमें चैत्र, वैशाख श्रेष्ठ, सब वस्तु सस्ती, ज्येष्ठ आषढ श्रावण ये तीन मास महंगे, अर्थात् इन तीनें महीनोंमें सब अन्न महंगा बिकै. गेहूं, मूंग आदि (उड़द, मटर, चना, रौंसा) और विशेष करके जुन्हरी महंगी हो जावे, भाद्रमास शुभ और आश्विन (कुंवार) मासमें कुछ महंगा अन्न बिके, पश्चात् रोगपीडा बहुत होवे, शेष (कार्तिक, मार्ग, पौष,.माघ, फाल्गुण) मास सामन्य हैं ॥ १२ ॥

विभव २ संवत्सरफलम् ।

सुभिक्षं क्षेममारोग्यं प्रशांताश्च नरेश्वराः ॥
हृष्टपुष्टा जनाः सर्वे विभवे परिकीर्तिताः॥ १३ ॥

भापार्थ—विभवनाम संवत्सरमें सुभिक्ष, क्षेम, आरोग्यता, राजाओंमें शान्ति हो, तथा सम्पूर्ण मनुष्य हृष्टपुष्ट रहें ऐसा कहा है. ॥ १३ ॥

तथाच ।

विभवः २, विष्णुः स्वामी, रोगव्याप्तिः, पृथिव्यां नागपुरादिषु भंगः, तैलंगमगधचीनदेशे महर्घता,

उच्चमुलतानस्थले महाविग्रहः, अन्यत्र समता, चैत्रादिमासत्रये महर्घता, आषाढादित्रये मेघवृष्टिः, आश्विने सर्वरसमहर्घता, ततो बाहुल्यं, कार्तिकादिमासेषु सर्ववस्तुसमर्घता, गोधूमाः समाः ॥ १४ ॥

भावार्थ—विभवनाम संवत्सरका विष्णु स्वामी, इस संवत्सरमें ... फैले, पृथिवीपर नागपुर आदिकोंमें भंग होवे, तैलंग, बहार और ... भाव महँगा होवो, ऊंचे मुलतान स्थलमें बहुत विग्रह (झगडा ... मनुष्योंको पीडा) होवे. और देशमें सम होवे, चैत्र आदि तीन मह... सब रस महँगे होवे, अनन्तर आषाढादि तीन महिनोंमें मेघ अधिक ... करें. आश्वीनमें सब रस महंगे होवे पिछे सस्ते, कार्तिक आदि तीन म... नोंमें अन्नकी सस्ताई होवे, गेहूंका भाव सम जानना ॥ १४ ॥

शुक्ल ३ संवत्सरफलम् ।

रोगा बहुविधाः प्रोक्ता मानवाश्चापि कुंजराः ॥
सर्वे चैव प्रणश्यन्ति शुक्लाऽब्दे च वरानने ॥ १५

भावार्थ—अब शुक्ल संवत्सरका फल कहते है, शिवजी पार्वती... वर्णन करें हैं कि, हे पार्वती । शुक्लनाम संवत्सरमें अनेक प्रकारके... हो, मनुष्य और हाथी सम्पूर्ण नाशको प्राप्त होवें. ॥ १५ ॥

तथाच ।

शुक्लः, ३ रुद्रः स्वामी, छत्रभंगो म्लेच्छदेशेषु मंत्रिणो राज्यं, चैत्रादिमासत्रये समता। आषाढादिमासत्रये महामेघाः, आश्विने जनरोगः, घृतानां समर्घत्वम्, अन्यत्सर्वं महर्घं, कार्तिकादिच

तुष्टये सर्वं धान्यं समर्घं. फाल्गुणमासे सर्वत्र विग्रहः, लोकग्रामपीडा. देशेषु आकुलता शून्यत्वं ग्रामेषु ॥ १६ ॥

भावार्थ—शुक्रनाम संवत्सरके स्वामी रुद्रजी, म्लेच्छदेशमें छत्रभंग हो, ...का राज्य हो, चैत्र आदि तीन महीने सम रहें, आषाढ आदि तीन ...नोंमें मेघ बहुत वर्षे, आश्विन (कुँवार) में मनुष्योंको रोग हो, घी ...ता होवे, अन्य सब वस्तुओंका भाव महँगा होवे, कार्तिक आदि चार ...पर्यन्त सब धान्य सस्ते भावसे विकें, फाल्गुन मासमें सर्वत्र (सब ...ह) विग्रह (युद्धादिपीडा) होवे, गांवोंमें मनुष्योंको पीडा, देशोंमें ...कुलता, गांवोंमें शून्यता होवे ॥ १६ ॥

प्रमोद ४ संवत्सरफलम् ।

उन्मत्तं च जगत्सर्वं धनधान्यसमाकुलम् ॥
नित्योत्सवप्रवृद्धिं च प्रमोदे जायते प्रिये ॥ १७ ॥

भावार्थ—अब प्रमोदनाम संवत्सरका फल कहते हैं. । शिवजी पार्वतीसे कहते हैं कि हे प्रिये ! प्रमोदनाम संवत्सरमें सब जगत् मत्त हो, पृथिवी धन और धान्यसे पूर्ण होवे. और नित्य उत्सवोंकी ...द्धि होवे ॥ १७ ॥

तथाच ।

प्रमोदः ४, रविः स्वामी, मध्यमं वर्षं, अल्पवृष्टिः, मंडले मेदपाटपीडा, देशोद्वासः, म्लेच्छवर्णक्षयः छत्रभंगः, पर्वततटे स्वल्पा प्रजा, तैलंगे राजविड्वरं, चैत्रे वैशाखे च महर्घता, ज्येष्ठे रोगपीडा, आषाढादिमासत्रये अल्पमेघः, आ-

श्विने किंचिद्वर्षा, धान्यस्य त्रयोदशफदिया, कलशिका १, कार्तिकादिमासचतुष्टये सर्वरसम- हर्घता, फाल्गुनो मध्यमः ॥ १८ ॥

भाषार्थ—प्रमोदनाम संवत्सरके स्वामी सूर्यनारायणजी हैं, इस सं त्सरमें मध्यमता होवे, वर्षा थोडी होवे, मंडलमें मेदपाट पीडा हो, देश उदास हो अर्थात् मनुष्योंका चित्त उचाट हो जावे, म्लेच्छवर्णका हो, किसी राजाका छत्रभंग हो, पर्वतके तटमें थोडी प्रजा रहे, तैलंगे शमें राजा और वैश्योंका वैर हो, चैत्रवैशाखमें महंगा भावहो, ज्येष्ठमास रोगपीडा हो, आषाढ, श्रावण, भाद्रमासमें थोडी वर्षा हो, कुँवारके महीने कुछ वर्षा होवे, अन्नकी तेरह फदिया को कलशिका एक, कार्तिक आ चार मास (कार्तिक, मार्गशिर, पौष, माघ) में सब रस महंगे वि फाल्गुणमास मध्यम जानना ॥ १८ ॥

प्रजापति ५ संवत्सरफल ।

नीरोगाश्च जनाः सर्वे निराबाधा गतद्विषः ॥ बहु क्षीरास्तथा गावो प्रजापत्यौ वरानने ॥ १९ ॥

भाषार्थ—अब प्रजापति संवत्सरका फल कहते हैं। शिवजी पार्व कहते हैं कि हे वरानने. प्रजापतिनाम संवत्सरमें सम्पूर्ण मनुष्य नि होवें. शत्रुगणबाधारहित होवें. तथा गौवें दूध बहुत देवें ॥ १९ ॥

तथाच ।

प्रजापतिः ५, चन्द्रः स्वामी; द्वादशैव मासाः शुभाः, अल्पमेघः, आश्विने रोगबाहुल्यम्, धा- न्यस्य कलशिका त्रिंशत् फदिया नाणकः, का-

र्तिकादिमासद्वयं मन्दं, पौषादिमासत्रयेऽरिष्टम्;
कचिदुत्पातदर्शनेऽपि पीडा ॥ २० ॥

भावार्थ—प्रजापतिनाम संवत्सरका स्वामी चन्द्रमा, बारहों मास इ
संवत्सरमें शुभ जानना, थोडी वर्षा हो, आश्विनमासमें रोग घटे. अन्न
कलशिका तीस फदिया नाणा, कार्तिक आदि दो महीनेमन्द और पौ
आदि तीन महीने अरिष्ट, कुछ उत्पातभी दीख पडे और पीडाभी होवे ॥२०

अंगिरा ६ संवत्सरफलम् ।

निरातंकं जगत्सर्वं धनधान्यसमन्वितम् ॥ अं-
गिराऽब्दे जनः सर्वो नित्योत्साहः सदा सुखी॥ २१

भावार्थ—अब अंगिरानाम संवत्सरका फल कहते हैं । अंगिरान
संवत्सरमें सम्पूर्ण जगत् आतंक (रोग) रहित होवे, पृथि
धन धान्यसे युक्त हो और सम्पूर्ण मनुष्य नित्य उत्साहयुक्त सदा सुख
रहें ॥ २१ ॥

तथाच ।

अंगिरा ६, मंगलः स्वामी, चैत्रो वैशाखश्च मन्दः,
ज्येष्ठे वायुः प्रबलः, आषाढे मेघबाहुल्यं, श्राव-
णादिमासत्रये रोगपीडा, कार्तिके सर्वान्ननिष्प-
त्तिः, पौषादिमासत्रये समता ॥ २२ ॥

भावार्थ—अंगिरा संवत्सरका स्वामी मंगल, इस संवत्सरमें चैत्र, वै
शाखमासमें भाव मंदा, ज्येष्ठमासमें पवनकी प्रबलता, आषाढमासमें मे
बहुत बर्षे, श्रावण, भाद्र, आश्विन इन तीन महीनोंमें रोग पीडा, कार्ति
मासमें सब अन्नोंकी उपज होवे. पौष, माघ, फाल्गुन इन तीन महीनों
समभाव होवे ॥ २२ ॥

श्विने किंचिद्वर्षा, धान्यस्य त्रयोदशफदिया, कलशिका १, कार्तिकादिमासचतुष्टये सर्वरसमहर्घता, फाल्गुनो मध्यमः ॥ १८ ॥

भाषार्थ—प्रमोदनाम संवत्सरके स्वामी सूर्यनारायणजी हैं, इस संवत्सरमें मध्यमता होवे, वर्षा थोडी होवे, मंडलमें मेदपाट पीडा हो, देश उद्वास हो अर्थात् मनुष्योंका चित्त उचाट हो जावे, म्लेच्छवर्णका ... हो, किसी राजाका छत्रभंग हो, पर्वतके तटमें थोडी प्रजा रहे, तैलंग देशमें राजा और वैश्योंका वैर हो, चैत्रवैशाखमें महंगा भावहो, ज्येष्ठमासमें रोगपीडा हो, आषाढ, श्रावण, भाद्रमासमें थोडी वर्षा हो, कुँवारके महीने कुछ वर्षा होवे, अन्नकी तेरह फदिया को कलशिका एक, कार्तिक आदि चार मास (कार्तिक, मार्गशिर, पौष, माघ) में सब रस महंगे रहैं फाल्गुणमास मध्यम जानना ॥ १८ ॥

प्रजापति ५ संवत्सरफल ।

नीरोगाश्च जनाः सर्वे निराबाधा गतद्विपः ॥ बहुक्षीरास्तथा गावो प्रजापत्यां वरानने ॥ १९ ॥

भाषार्थ—अब प्रजापति संवत्सरका फल कहते हैं । शिवजी पार्वती से कहते हैं कि हे वरानने. प्रजापतिनाम संवत्सरमें सम्पूर्ण मनुष्य निरोग होवें. शत्रुगणबाधारहित होवें, तथा गौयें दूध बहुत देवें ॥ १९ ॥

तथाच ।

प्रजापतिः ५, चन्द्रः स्वामी; द्वादशैव मासाः शुभाः, अल्पमेघः, आश्विने रोगबाहुल्यम्, धान्यस्य कलशिका त्रिंशत् फदिया नाणकः, का

तिकादिमासद्वयं मन्दं, पौषादिमासत्रयेऽरिष्टम्; क्वचिदुत्पातदर्शनेऽपि पीडा ॥ २० ॥

भावार्थ—प्रजापतिनाम संवत्सरका स्वामी चन्द्रमा, बारहों मास इस वत्सरमें शुभ जानना, थोडी वर्षा हो, आश्विनमासमें रोग चढे. अन्नकी ऊशिका तीस फदिया नाणा, कार्तिक आदि दो महीनेमन्द और पौष आदि तीन महीने अरिष्ट, कुछ उत्पातभी दीख पडे और पीडाभी होवे ॥२०॥

अंगिरा ६ संवत्सरफलम् ।

निरातंकं जगत्सर्वं धनधान्यसमन्वितम् ॥ अंगिराऽब्दे जनः सर्वो नित्योत्साहः सदा सुखी॥ २१ ॥

भावार्थ—अब अंगिरानाम संवत्सरका फल कहते हैं । अंगिरानाम वत्सरमें सम्पूर्ण जगत् आतंक (रोग) रहित होवे, पृथिवी न धान्यसे युक्त हो और सम्पूर्ण मनुष्य नित्य उत्साहयुक्त सदा सुखी ॥ २१ ॥

तथाच ।

अंगिरा ६, मंगलः स्वामी, चैत्रो वैशाखश्च मन्दः, ज्येष्ठे वायुः प्रबलः, आषाढे मेघबाहुल्यं, श्रावणादिमासत्रये रोगपीडा, कार्तिके सर्वान्ननिष्पत्तिः, पौषादिमासत्रये समता ॥ २२ ॥

भावार्थ—अंगिरा संवत्सरका स्वामी मंगल, इस संवत्सरमें चैत्र, वैशाखमासमें भाव मंदा, ज्येष्ठमासमें पवनकी प्रबलता, आषाढमासमें मेघ हुत वर्षे, श्रावण, भाद्र, आश्विन इन तीन महीनोंमें रोग पीडा, कार्तिक ासमें सब अन्नोकी उपज होवे. पौ[illegible] समभाव होवे ॥ २२ ॥

श्रीमुख ७ संवत्सरफलम् ।

सुभिक्षं क्षेममारोग्यं वर्षा काले सुशोभनम् ॥
सस्यवृद्धिः प्रजायेत श्रीमुखे सुरवन्दिते ॥ २३ ॥

भावार्थ—अब श्रीमुखनाम संवत्सरका फल कहते हैं । श्रीमुखसंवत्सरमें सुभिक्ष, क्षेम, आरोग्यता, वर्षामें उत्तम वृष्टि, धान्यकी वृद्धि. हे सुरवन्दिते पार्वती ! यह फल होवे ॥ २३ ॥

श्रीमुख ७, बुधः स्वामी, चैत्रे सर्वधान्यं महर्घम्, आषाढकृष्णे अत्यन्तमेघवर्षा, श्रावणे गोधूमा महर्घाः, घृते धान्ये च द्विगुणो लाभः, वणिक्लोकपीडा, पश्चिमायां रौरवम्, पूर्वस्यां परचक्रम्, उच्चमुलतानस्थले प्रजापीडा, भाद्रपदे वर्षा, आश्विनादिषु प्रजाप्रमादः ॥ २४ ॥

भावार्थ—श्रीमुखनाम संवत्सरका स्वामी बुध, इस संवत्सरके चैत्रमासमें सब धान्य महँगे, आषाढमास कृष्णपक्षमें बहुत वर्षा होवे, श्रावणमासमें गेहूं महँगे होवें, घी और धान्यमें दुगुना लाभ होवे, बनिये लोगोंको पीड़ा होवे, पश्चिमदिशामें रौरव (अकाल) होवे, पूर्वदिशामें परचक्र आगमन [illegible] हो । ऊंचे मुलतान स्थलमें प्रजाको पीड़ा होवे, भाद्रपदमासमें वर्षा होवे, आश्विन, कार्तिक, मार्ग, पौष, माघ, फाल्गुन इन महीनोंमें प्रजा प्रमाद करे ॥ २४ ॥

भाव ८ संवत्सरफलम् ।

बहुधान्यश्च गावो मेघा बहुजलप्रदाः ॥
[illegible] सर्वसस्यानि [illegible] न [illegible] ॥२५

भाषार्थ—अब भावनाम संवत्सरका फल कहें हैं। शिवजी पार्वतीजीके प्रति वर्णन करें हैं कि, हे वरानने! भावनाम संवत्सरमें गौवोंमें दुग्ध बहुत होवे. मेघ बहुत जल वर्षे और सब धान्य उत्पन्न होवें ॥ २५

तथाच ।

भावः ८, गुरुः स्वामी, बहुक्षीरा गावः, वर्षा बहुला विंशोपकाः सर्ववस्तुमहर्घता, उच्चमुलतान अयोध्यासु राजविड्वैरं, लोकपीडा, घृतगुडअहिफेन पूगीफलमंजिष्टमरिचचन्दनवस्तुमहर्घता, चैत्रे समता, वैशाखे महर्घं, धान्ये द्विगुणो लाभः, आषाढे श्रावणे किंचिद्वर्षा, भाद्रे मेघवर्षा, आश्विने रोगवाहुल्यं, कार्तिको उत्तमः, मार्गशीर्षादिमासचतुष्टयं मन्दम् ॥ २६ ॥

भाषार्थ—भावनाम संवत्सरका स्वामी बृहस्पति, गौवें बहुत दूध देवें, वर्षा बहुत होवे, सब वस्तु महंगी विकै, ऊंचे मुलतान और अयोध्याके विषे राजा और वैश्योंमें वैर हो, लोकपीडा हो, घी, गुड, अफीम, सुपारी, मजीठ, मिर्च, चन्दन, ये वस्तुयें महंगी हो, चैत्रमासमें भाव सम हो, वैशाखमास महंगा हो, धान्यमें दूना लाभ हो, आषाढ और श्रावणमासमें कुछ वर्षा होवे, भाद्रपदमासमें मेघ वर्षे, आश्विनमासमें रोग बहुत होवे, कार्तिकमास अच्छा होवे, मार्गशिर, पौष, माघ, फाल्गुण, ये चार मास मन्द होवे. ॥ २६ ॥

युवा ९ संवत्सरफलम् ।

हाहाभूतं जगत्सर्वं सर्वधान्यमहर्घता ॥
तैलं घृतं समं याति युवासंवत्सरे प्रिये ॥ २७ ॥

श्रीमुख ७ संवत्सरफलम् ।

सुभिक्षं क्षेममारोग्यं वर्षा काले सुशोभनम् ॥
सस्यवृद्धिः प्रजायेत श्रीमुखे सुरवन्दिते ॥ २३ ॥

भाषार्थ—अब श्रीमुखनाम संवत्सरका फल कहते हैं । श्रीमुखसंवत्सरमें सुभिक्ष, क्षेम, आरोग्यता, वर्षामें उत्तम वृष्टि, धान्यकी वृद्धि. हे सुरवन्दिते पार्वती ! यह फल होवे ॥ २३ ॥

श्रीमुख ७, बुधः स्वामी, चैत्रे सर्वधान्यं महर्घम्, आषाढकृष्णे अत्यन्तमेघवर्षा, श्रावणे गोधूमा महर्घाः, घृते धान्ये च द्विगुणो लाभः, वणिक्लोकपीडा, पश्चिमायां रौरवम्, पूर्वस्यां परचक्रम्, उच्चमुलतानस्थले प्रजापीडा, भाद्रपदे वर्षा, आश्विनादिषु प्रजाप्रसादः ॥ २४ ॥

भाषार्थ—श्रीमुखनाम संवत्सरका स्वामी बुध, इस संवत्सरके चैत्रमासमें सब धान्य महँगे, आषाढमास कृष्णपक्षमें बहुत वर्षा होवे, श्रावणमासमें गेहूँ महँगे होवे, घी और धान्यमें दुगुना लाभ होवे, बनिये लोगोंको पीडा होवे, पश्चिमदिशामें रौरव (अकाल) होवे, पूर्वदिशामें परचक्र अर्थात् शत्रुसेनाका चढाव हो । ऊँचे मुलतान स्थलमें प्रजाको पीडा होवे, भाद्रपदमासमें वर्षा होवे, आश्विन, कार्तिक, मार्ग, पौष, माघ, फाल्गुण इन महीनोंमें प्रजा प्रसन्न रहे ॥ २४ ॥

भाव ८ संवत्सरफलम् ।

बहुक्षीरास्तथा गावो मेघा बहुजलप्रदाः ॥
जायन्ते सर्वसस्यानि भावाऽब्दे च वरानने ॥२५॥

भावार्थ—अब भावनाम संवत्सरका फल कहें हैं। शिवजी पार्वतीजीके प्रति वर्णन करें हैं कि, हे वरानने ! भावनाम संवत्सरमें गौवोंमें दुग्ध बहुत होवे. मेघ बहुत जल वर्षे और सब धान्य उत्पन्न होवें ॥ २५

तथाच ।

भावः ८, गुरुः स्वामी, बहुक्षीरा गावः, वर्षा बहुला विंशोपकाः सर्ववस्तुमहर्घता, उच्चमुलतान अयोध्यासु राजविड्वैरं, लोकपीडा, घृतगुडअहिफेन पूगीफलमंजिष्टमरिचचन्दनवस्तुमहर्घता, चैत्रे समता, वैशाखे महर्घं, धान्ये द्विगुणो लाभः, आपाढे श्रावणे किंचिद्वर्षा, भाद्रे मेघवर्षा, आश्विने रोगबाहुल्यं, कार्तिको उत्तमः, मार्गशीर्षादिमासचतुष्टयं मन्दम् ॥ २६ ॥

भावार्थ—भावनाम संवत्सरका स्वामी बृहस्पति, गौवें बहुत दूध देवें, वर्षा बहुत होवे, सब वस्तु महंगी विकै, ऊंचे मुलतान और अयोध्याके विषे राजा और वैश्योंमें वैर हो, लोकपीडा हो, घी, गुड, अफीम, सुपारी, मजीठ, मिर्च, चन्दन, ये वस्तुयें महंगी हो, चैत्रमासमें भाव सम हो, वैशाखमास महंगा हो, धान्यमें दूना लाभ हो, आपाढ और श्रावणमासमें कुछ वर्षा होवे, भाद्रपदमासमें मेघ वर्षे, आश्विनमासमें रोग बहुत होवे, कार्तिकमास अच्छा होवे, मार्गशिर, पौष, माघ, फाल्गुण, ये चार मास मन्द होवे. ॥ २६ ॥

युवा ९ संवत्सरफलम् ।

हाहाभूतं जगत्सर्वं सर्वधान्यमहर्घता ॥
तैलं घृतं समं याति युवासंवत्सरे प्रिये ॥ २७ ॥

श्रीमुख ७ संवत्सरफलम् ।

सुभिक्षं क्षेममारोग्यं वर्षा काले सुशोभनम् ॥
सस्यवृद्धिः प्रजायेत श्रीमुखे सुरवन्दिते ॥ २३ ॥

भावार्थ—अब श्रीमुखनाम संवत्सरका फल कहते हैं। श्रीमुखसंवत्सरमें सुभिक्ष, क्षेम, आरोग्यता, वर्षामें उत्तम वृष्टि, धान्यकी वृद्धि. हे सुरवन्दिते पार्वती ! यह फल होवे ॥ २३ ॥

श्रीमुख ७, बुधः स्वामी, चैत्रे सर्वधान्यं महर्घम, आषाढकृष्णे अत्यन्तमेघवर्षा, श्रावणे गोधूमा महर्घाः, घृते धान्ये च द्विगुणो लाभः, वणिक्लोकपीडा, पश्चिमायां रौरवम, पूर्वस्यां पराक्रम, उच्चमुलतानस्थले प्रजापीडा, भाद्रपदे वर्षा, आश्विनादिषु प्रजाप्रसादः ॥ २४ ॥

भावार्थ—श्रीमुखनाम संवत्सरका स्वामी बुध, इस संवत्सरके चैत्रमासमें सब धान्य महँगे, आषाढमास कृष्णपक्षमें बहुत वर्षा होवे, श्रावणमासमें गेहूं महँगे होवे, घी और धान्यमें दुगुना लाभ होवे, वणिक लोगोंको पीडा होवे, पश्चिमदिशामें रौरव (अकाल) होवे, पूर्वदिशामें पराक्रम अर्थात् शत्रुविजय बहुत हो। उच्च मुलतान स्थलमें प्रजाको पीडा होवे, भाद्रपदमासमें वर्षा होवे, आश्विन, कार्तिक, मार्ग, पौष, माघ, फाल्गुन इन महीनोंमें प्रजा प्रसन्न रहे ॥ २४ ॥

भाव ८ संवत्सरफलम् ।

बहुक्षीरास्तथा गावो मेघा बहुजलप्रदाः ॥
जायन्ते सर्वसस्यानि भावाब्दे च वरानने ॥२५

भाषार्थ—अब भावनाम संवत्सरका फल कहते हैं । शिवजी पार्वतीजीके प्रति वर्णन करते हैं कि, हे वरानने ! भावनाम संवत्सरमें गौओंमें दुग्ध बहुत होवे. मेघ बहुत जल वर्षे और सब धान्य उत्पन्न होवें ॥ २५

तथाच ।

भावः ८, गुरुः स्वामी, बहुक्षीरा गावः, वर्षा बहुला विंशोपकाः सर्ववस्तुमहर्घता, उच्चमुल्तान अयोध्यासु राजाविद्वैरं, लोकपीडा, घृतगुडअहिफेन पूगीफलमंजिष्टमरिचचन्दनवस्तुमहर्घता, चैत्रे समता, वैशाखे महर्घं, धान्ये द्विगुणो लाभः. आषाढे श्रावणे किंचिद्वर्षा, भाद्रे मेघवर्षा, आश्विने रोगवाहुल्यं, कार्तिको उत्तमः, मार्गशीर्षादिमासचतुष्टयं मन्दम् ॥ २६ ॥

भाषार्थ—भावनाम संवत्सरका स्वामी बृहस्पति, गौवें बहुत दूध देवें, वर्षा बहुत होवे, सब वस्तु महंगी बिकें, ऊंचे मुल्तान और अयोध्याके विषे राजा और वैश्योंमें वैर हो, लोकपीडा हो, घी, गुड, अफीम, सुपारी, मजीठ, मिर्च, चन्दन, ये वस्तुयें महंगी हो, चैत्रमासमें भाव सम हो, वैशाखमास महंगा हो, धान्यमें दूना लाभ हो, आषाढ और श्रावणमासमें कुछ वर्षा होवे, भाद्रपदमासमें मेघ वर्षे, आश्विनमासमें रोग बहुत होवे. कार्तिकमास अच्छा होवे, मार्गशिर, पौष, माघ, फाल्गुन ये चार मास मन्द होवे. ॥ २६ ॥

युवा ९ संवत्सरफलम् ।

हाहाभूतं जगत्सर्वं सर्वधान्यमहर्घता ॥
तैलं घृतं समं याति युवासंवत्सरे प्रिये ॥ २७ ॥

भावार्थ—अब युवानाम संवत्सरका फल कहें हैं। शिवजी पार्वती कहें हैं, हे प्रिये ! युवासंवत्सरमें सब जगत्में हाहाकार हो, सब धा महंगे हो, तेल और घीका भाव एक हो जावे ॥ २७ ॥

तथाच ।

युवा ९, शुक्रः स्वामी, भूकंपः, उल्काभयं बहुलं, चैत्रादिमासद्वये उत्पातः ज्येष्ठे रोगः, आपाढ शुक्लपक्षे महामेघः, श्रावणे वायुर्वाति, अन्नं महर्घम्, भाद्रपदे चतुर्दशदिनेषु, महावृष्टिः, व्याकुलता. राजविग्रहः, उत्तरदेशे रौरवं दुर्भिक्षं, पूर्वस्यां निष्फला कृषिर्दक्षिणस्यां वैरं विरोधः, मार्गे विषमता, पश्चिमायां लोकपीडा, पश्चात् दुर्भिक्षं, सर्वरसेषु समता, कार्तिकादिमासद्वयं उत्तमं, पौषमाघौ मध्यमौ, फाल्गुणमासे किंचित् क्लेशः ॥ २८ ॥

भावार्थ—युवानाम संवत्सरका स्वामी शुक्र, इस संवत्सरमें भूकंप उल्कापातका भय बहुत हो, चैत्र, वैशाखमासमें उत्पात हो, ज्येष्ठमा रोग हो, आषाढशुक्लपक्षमें मेघ बहुत हो, श्रावणमासमें वायु बहुत च अन्न महंगा हो, भाद्रमासमें चौदह दिन बहुत वर्षा हो, व्याकुलता अ राजविग्रह हो, उत्तरदेशमें अकाल पडे, पूर्वदिशामें खेती निष्फल दक्षिणदिशामें परस्पर वैर और विरोध होवे, मार्गमें विषमता हो, पश्चि देशमें मनुष्योंको पीडा हो, पीछेसे अकाल पडे, सब रसोंका भाव सम कार्तिक मार्ग ये दो मास उत्तम, पौष माघ मध्यम, फाल्गुणमासमें कु क्लेश होवे ॥ २८ ॥

धाता १० संवत्सरफलम् ।

निष्पत्तिः सर्वसस्यानां मध्यं वारि प्रकीर्तितम्
वृक्षं क्षीरगुडादीनां धाताऽब्दे च वरानने ॥ २८ ॥

भावार्थ—अब धातानाम संवत्सरका फल कहते हैं । शिवजी पार्वतीसे कहे हैं, हे वरानने ! धातानामसंवत्सरमें सब धान्योंकी उपज हो, वर्षा मध्यम होवे, वृक्षोंमें फल, दूध, गुड, आदि सामान्य उपजे, २८ ॥

तथाच ।

धाता १०, शनिः स्वामी, चैत्रवैशाखयोः सर्वधान्यमहर्घता, ज्येष्ठे मासे समता, आषाढे अल्पमेघः, घृततैलयुगन्धरीकर्पासमंजिष्टमरिचपूगफलमहर्घता, श्रावणे सर्वधान्यमहर्घता, भाद्रपदे पुरुषा नपुंसकाः, पश्चिमायां महती मेघवर्षा, सर्वधान्यंमहर्घं, उत्तरदक्षिणयोर्मध्ये महामेघः, परलोकपीडा, आश्विने रसकधातुमहर्घता, कार्तिके सर्वमन्नं समर्घम् ॥ ३० ॥

भावार्थ—धातानाम संवत्सरका स्वामी शनि, इस संवत्सरके चैत्र वैशाखमासमें सब अन्न महंगे विके. ज्येष्ठमासमें सम भाव होवे, आषाढमासमें थोडा जल वर्षे. घी, तेल, जुन्हरी, कपास, मजीठ, मिर्च, सुपारी ये वस्तुयें महंगी होवें. श्रावणमासमें सब अन्न महंगे विके. भाद्रमासमें पुरुष नपुंसकभावको प्राप्त होवें, पश्चिमदेशमें बहुत मेघ वर्षे, सब अन्न महंगे हों. उत्तर और दक्षिणमें मेघ बहुत वृष्टि करें. परलोकपीडा हो, आश्विनमासमें रसकस धातु महंगे होवें. कार्तिकमासमें सब अन्न सस्ते होवें ॥ ३० ॥

ईश्वर ११ संवत्सरफलम् ।

सुभिक्षं क्षेममारोग्यं कार्पासस्य महर्घता ॥
लवणं मधु गव्यं च त्वीश्वरे दुर्लभं प्रिये ॥ ३१

भापार्थ—अब ईश्वरसंवत्सरका फल कहें हैं. शिवजी पार्वतीसे कहे हैं कि, हे प्रिये ! ईश्वरनाम संवत्सरमें सुभिक्ष (सस्ता) हो, क्षेम और आरोग्यता हो, कपासका भाव महंगा हो जावे. लवण, शहत, गव्यादि दुर्लभ होवें ॥ ३१ ॥

तथाच ।

ईश्वरः ११, राहुः स्वामी, उत्तरस्यां दुर्भिक्षं पूर्वस्यां सुभिक्षं, पश्चिमायां परस्परविरोधः, चैत्रवैशाखे अन्नमहर्घता, ज्येष्ठाषाढयोः अल्पमेघः, परं सर्वत्र मेघः, परं सर्वधान्यमहर्घता, धान्ये द्विगुणो लाभः, भाद्रपदे महान् मेघः, परं सर्ववस्त्रधान्यमहर्घता, आश्विने घृतमहर्घता, कार्तिके रौरवं दुर्भिक्षं, मंजिष्ठमरिचलवणएलापूगीफले तद्वस्तुमहर्घता, मार्गशीर्षादिमासचतुष्टये अतिदुर्भिक्षम्, धान्यं महर्घं मनुष्याणां रुंडामुंडादि भूमौ पतति ॥ ३२ ॥

भापार्थ—ईश्वरनाम संवत्सरका स्वामी राहु, उत्तरदिशामें दुर्भिक्ष पूर्वदिशामें सुभिक्ष हो, पश्चिमदिशामें परस्पर विरोध हो, चैत्र वैशाखमासमें अन्नका भाव महंगा होवे, ज्येष्ठ और आषाढमासमें थोडी वर्षा पीछे सर्वत्र मेघ वर्षे पीछेको सब अन्न महंगे होवे, अन्नमें दुगुना लाभ

भाद्रमासमें बहुत वर्षा होवे, आश्विनमासमें भी महंगा होवे, कार्तिकमासमें दुष्काल पडै और मजीठ, मिर्च, लवंग, इलायची, सुपारी ये वस्तुयें महंगी होवे, मार्ग, पौष, माघ, फाल्गुन ये चारमास बहुत अन्न महंगा होवे, मनुष्योंके रुंड मुंड आदि पृथिवीपर गिरें ॥ ६२ ॥

बहुधान्य १२ संवत्सरफल ।

अनीतिरतुला वृष्टिर्बहुधान्ये तु वत्सरे ॥
समृद्धिर्धान्यविविधैः सुपुराणंऽखिलाधरे ॥ ६३ ॥

भाषार्थ—अब बहुधान्यसंवत्सरका फल कहे हैं । बहुधान्य नाम संवत्सरमें पृथिवीपर अनीति हो, वर्षा बहुत हो, विविध प्रकारके धान्यकी वृद्धि हो तथा सम्पूर्ण पृथिवीपर सुख होवे ॥ ६३ ॥

तथाच ।

बहुधान्यः १२, केतुः स्वामी, पुरुषा निर्वीर्याः, पश्चिमायां सुभिक्षं, परं सौख्यं सर्वदेशमध्ये दक्षिणस्यां विग्रहः, परं महाभयं, उत्तरपथे, सर्वदेशेषु पीडा, पूर्वस्यां दुर्भिक्षं, अन्नसंग्रहः कार्यः, चैत्रवैशाखयोः अन्ने किंचिन्महर्घता, ज्येष्ठमासे चतुर्गुणो लाभः, श्रावणाषाढयोर्मेघः अन्नं सर्वं महर्घं, षड्गुणो लाभः, भाद्रपदे अत्यन्तमेघाः, सर्वधान्यसमर्घता, आश्विने मेघः कनकधाराभिः, कार्तिकादिमासचतुष्टये समता ॥ ६४ ॥

भाषार्थ—बहुधान्य संवत्सरका स्वामी केतु, इस संवत्सरमें पुरुषनिर्वीर्य (हीनवीर्य) होवें, पश्चिमदिशामें भाव सस्ता होवे, और सब देशोंमें सुख होवे, दक्षिणदिशामें विग्रह होवे, उत्तरदेशोंमें महाभय होवे, सब

देशोंमें पीडा, पूर्वमें दुर्भिक्ष (अकाल), अन्न संग्रह करै, चैत्र वैशाखमें अन्न कुछ महंगा होवे, ज्येष्ठमासमें चौगुना लाभ होवे, श्रावण और आषाढमासमें मेघ वर्षा करै, अन्नका भाव महंगा होवे, छ गुना लाभ होवे, भाद्रपदमासमें बहुत वर्षा होवे, सब धान्य सस्ते होवें, आश्विनमासमें कनकधाराओंसे मेघ वृष्टि करैं अर्थात् उत्तम वर्षा होवे, कार्तिक, मार्ग, पौष, माघ, इन चार महीनोंमें भाव सम होवे ॥ ६४ ॥

प्रमाथी १३ संवत्सरफलम् ।

राज्यनाशोथ दुर्भिक्षं तथा तस्करतो भयम् ॥
क्वचित्सौख्यं क्वचिद्दुःखं प्रवृत्तेऽब्दे प्रमाथिनि ॥६५॥

भाषार्थ—अब प्रमाथीसंवत्सरका फल कहते हैं । प्रमाथीनाम संवत्सर प्रवृत्त होनेमें राज्यनाश, दुर्भिक्ष, तथा चोरोंसे भय होवे, कहीं सुख, और कहीं दुःख होवे ॥ ६५ ॥

तथाच ।

प्रमाथी १३, रविः स्वामी, आषाढे श्रावणे च अल्पमेघः, भाद्रपदे पंचम्यां किंचिन्मेघः, चैत्रे गोधूमयुगन्धरीमहर्घता, वैशाखे ज्येष्ठे वा सर्वत्र धान्यमहर्घता, परं कृष्णसप्तम्याममायां च महामेघः, परं अतीवारिष्टं, कार्तिके दिन २१ मास ९ सर्वान्नमहर्घता, सर्वरसमहर्घता, मंजिष्ठपूगीफलहिंगुलकाश्मीरजन्मअगरुपट्टसूत्रनारिकेल एतद्वस्तुमहर्घता, ॥ ६६ ॥

भावार्थ—प्रमाथीसंवत्सरका स्वामी रवि, आषाढ और श्रावणमासमें वर्षा थोडी होवे, भाद्रपदमासमें पंचमीके दिन कुछ वर्षा होवे, चैत्रमासमें

गेहूं जुन्हरीका भाव महंगा होवे, वैशाख अथवा ज्येष्ठमासमें सर्वत्र अन्न महंगा हो जावे, कृष्णपक्षकी सप्तमी और अमावसमें बहुत वर्षा होवे, उपरान्त बहुतही अरिष्ट जानना, कार्तिकमासमें इक्कीस दिन मास पांच पर्यन्त सब धान्योंका भाव महंगा होवे, और सब प्रकारके रस महंगे होवे, मजीठ, सुपारी, हिंगुल, केशर, अगर, कपडा, सूत, नारियल, ये वस्तुयें महंगी होवे ॥ ६६ ॥

विक्रम १४ संवत्सरफलम् ।

सुभिक्षं क्षेममारोग्यं सर्वव्याधिविवर्जितम् ॥
हृष्टपुष्टा जनाः सर्वे विक्रमाऽब्दे वरानने ॥ ६७ ॥

भावार्थ—अब विक्रमनाम संवत्सरका फल कहते हैं । शिवजी पार्वतीजीसे वर्णन करे हैं कि, हे वरानने ! विक्रमसंवत्सरमें सुभिक्ष, क्षेम, आरोग्यता, समस्त व्याधियोंसे रहित सब मनुष्य हृष्टपुष्टशरीर होवें. ॥६७॥

विक्रमः १४, चन्द्रः स्वामी, राजाप्रजासौख्यं, अतिमेघः, चैत्रवैशाखे महर्घम्, अन्ने द्विगुणलाभः, परं वैशाखे म्लेच्छभयात् नगरं उद्वस्तम्, अरण्ये वासः, वैशाखे दिन १० महान् वायुः, भूमिकंपः, प्रजापीडा, ज्येष्ठमासे दुर्भिक्षं, आषाढे प्रलयः, श्रावणभाद्रपदे महामेघः, प्रजासुखं, सर्वं धान्यं समर्घम्, सर्ववस्तुसमता, आश्विने रोगः, सर्वरससमता, कार्तिकादि ५ मासेषु सर्वत्रान्न समता ॥ ६८ ॥

भावार्थ—विक्रमनाम संवत्सरका स्वामी चन्द्रमा, इस संवत्सरमें राजा प्रजा सुखी होवें, वर्षा बहुत होवें, चैत्र वैशाखमासमें अन्नका भाव

महंगा होवे, जिससे दूना लाभ होवे, परन्तु पीछेसे वैशाखमासमें म्लेच्छोंके भयसे नगर उजाड होवे, वनमें जाकर मनुष्य बसें, वैशाखमें दश दि बहुत वायु चले, भूकम्प होवे, प्रजाको पीडा होवे, ज्येष्ठमा दुर्भिक्ष होवे अर्थात् अन्न महंगा विके, आषाढमासमें प्रलयसमान मे होवे, श्रावण और भाद्रपदमासमें बहुत वर्षा होवे, प्रजाको सुख हो, त धान्योंका भाव सस्ता होवे, सब वस्तुयें समान भावसे प्राप्त होवें, आश्वि नमासमें रोग होवे, सब रस समभावसे विकें, कार्तिक, मार्ग, पौष, मा फाल्गुन ये पांच मास अन्न समभावसे विके ॥ ६८ ॥

वृष १५ संवत्सरफलम् ।

कोद्रवाः शालिमुद्गाश्च यवाश्च द्विदलं तथा ॥
सुभिक्षं वरधान्यं च वृषाब्दे शुभलोचने ॥ ६९ ॥

भावार्थ—अब वृषनाम संवत्सरका फल कहते हैं। शिवजी पार्वतीसे वर्णन करते हैं कि, हे शुभलोचने! (सुनयने) वृषनाम संवत्सरमें कोदों, धान, मूंग, जौ, तथा दाल और उत्तम अन्न (गेहूं चावल आदि) ये सब सस्ते होवें ॥ ६९ ॥

तथाच ।

वृषः १५, भौमः स्वामी, वर्षा बहुला, परं नृपाणां पीडा, छत्रभंगः, ज्येष्ठे अन्नसमर्घता, धान्ये त्रिगुणो लाभः, आषाढे अन्नमहर्घता, श्रावणे महान् मेघः, आश्विने सर्वधान्यसमता, घृतमहर्घता, पश्चिमेऽन्नं महर्घं, देशा उद्दामाः, पश्चिमायां किञ्चित् दुर्भिक्षं, आश्विने मेघः, सर्ववस्तुसमर्घता, कार्तिके किञ्चिद्दुर्भिक्षं, मार्गशीर्षे दौःस्थ्यं, पौषादिमासत्रये महर्घं, परं मध्यमः सुभगः ॥७०॥

भापार्थ—वृषनाम संवत्सरका स्वामी मंगल, इस संवत्सरमें वर्षा बहुत होवे, परंतु राजाओंको पीडा हो, किसी राजाका छत्रभंग हो, ज्येष्ठमासमें अन्न सस्ता विके, धान्यमें तिगुना लाभ होवे, आषाढमासमें अन्न महंगा विके, श्रावणमासमें वर्षा बहुत होवे, आश्विनमासमें सब अन्न समभाव रहे, घी महंगा हो जावे, पीछेका अन्न (रब्बी) महंगे भावसे विकै, देशमें मनुष्य उजाड जावें, पश्चिमदिशामें कुछ दुर्भिक्ष होवे आश्विनमासमें मेघ वर्षा करें, सब वस्तु सस्ते भावसे विके, कार्तिकमासमें कुछ अरिष्ट फल होवे, मार्गशिरमासमें मनुष्योंमें असावधानता होवे, पौष, माघ, फाल्गुन इन तीन महिनोंमें अन्न महंगा होवे, पीछेसे समय मध्यम होवे ॥ ७० ॥

चित्रभानु १६ संवत्सरफलम् ॥

चणका मुद्गमापाश्च कंगुन्यश्च तथैव च ॥
विचित्रा जायते दृष्टिश्चित्रभानौ न संशयः ॥७१॥

भापार्थ—अब चित्रभानु संवत्सरका फल कहे हैं। चित्रभानुनाम संवत्सरमें चणा, मुंग, उडद, कंगुनी, ये बहुत उपजें, और निस्सन्देह वर्षाभी बहुत होवे ॥ ७१ ॥

तथाच ।

चित्रभानुः१६, बुधः स्वामी, लोकः सुखी, पूर्वे अल्पमेघः, पश्चात् महती वर्षा, धान्यघृतसमता, वैशाखे अन्नं समभावेन, ज्येष्ठादित्रये महान् मघः, सर्वधान्यमहर्घता, भाद्रादिमासद्वये रोगार्तिः, कार्तिके महामारीभयम्, मार्गशीर्षद्वयेऽरिष्टं, माघद्वये सरोगप्रजा, परं सर्वान्नरससमर्घता, वैशाखज्येष्ठयोः रोगपीडा, अन्नं महर्घं, क्रयाणक सर्ववस्तुमहर्घता ॥ ७२ ॥

भाषार्थ—चित्रभानुनाम संवत्सरका स्वामी बुध, । लोक सुखी हो
पहले थोडी वर्षा हो, पीछेसे बहुत वर्षा होवे, अन्न और घीका भाव
होवे, वैशाखमासमें अन्न समभावसे विके, ज्येष्ठ, आषाढ, श्रावणमा
बहुत वर्षा होवे, सब धान्य महंगे होवे, भाद्र और आश्विनमासमें गर्भ
डा हो, कार्तिकमासमें महामारीसे भय होवे, मार्गशिर, पौषमासमें अ
रिष्ट जानना, माघ फाल्गुणमासमें प्रजारोगसे पीडित होवे, परंतु
अन्न और रसभावमें सस्ते होवें, वैशाख और ज्येष्ठ इन दोनों महीनों
रोगपीडा हो, अन्न महंगा विकें, खरीद करनेवाली सब वस्तुओं
(किराणाका) भाव महंगा होवे ॥ ७२ ॥

सुभानु १७ संवत्सरफलम्

सुभिक्षं क्षेममारोग्यं स्वस्थं च निरुपद्रवम् ॥
व्यवहारे भवेच्छ्रेष्ठः सुभानौ च वरानने ॥ ७३ ॥

भाषार्थ—अब सुभानुसंवत्सरका फल कहें हैं । शिवजी पार्वतीजी
प्रति वर्णन करें हैं, कि हे वरानने ! सुभानुनाम संवत्सरमें सुभिक्ष (मह
क्षेम, आरोग्यता, स्वास्थ्यता, निरूपद्रव होवे, अर्थात् समग्र सुकाल, म
प्योंको सुख और किसी प्रकारका उपद्रव नहीं होवे, तथा पृथिवीपर
वहार उत्तम होवे, ॥ ७३ ॥

सुभानुः १७, गुरुः स्वामी, पूर्वस्यां दुर्भिक्षं, लोकः
सुखी, चैत्रे महर्घता, वैशाखज्येष्ठयोः रोगपी-
डा, गोधूमसमता, युगन्धरी च, सर्ववस्तुम-
हर्घं घृतसमता, कार्तिकादिमासद्वयं मध्यमम्,
राजपीडिता लोकाः पौषादिमासत्रये रोगपीडा
भयंकरी, परस्परं विरोधः ॥ ७४ ॥

भाषार्थ—सुभानुनाम संवत्सरका स्वामी गुरु, इस संवत्सरमें पूर्व और मेघ होवे. लोक सुखी हो, चैत्रमासमें महंगा भाव हो, वैशाख र ज्येष्ठमासमें रोगपीडा हो, गेहूँका भाव सम हो, जुन्हरीका भावभी न हो, सब वस्तु महंगी हो, घीका भाव सम हो, कार्तिक मार्ग दो महीना सम हो, राजपीडासे लोक युक्त हो, पौष, माघ, फाल्गु-में रोगपीडा भयंकर हो और परस्पर विरोध होवे ॥ ७४ ॥

तारण १८ संवत्सरफलम् ।

दुर्भिक्षं जायते घोरं चौरोपद्रवसंकुलम् ॥
अनावृष्टिः समाख्याता तारणे वरवर्णिनि ॥ ७५ ॥

भाषार्थ—अब तारणसंवत्सरका फल कहें हैं । शिवजी पार्वतीसे कहें , कि हे वरवर्णिनि ! तारणनाम संवत्सरमें घोर दुर्भिक्ष हो अर्थात् बडा काल पडे, चोरोंसे बहुत भय हो और उपद्रव हो, तथा वर्षा नहीं वे ॥ ७५ ॥

तथाच ।

तारणः १८, शुक्रः स्वामी, अतिवायुः परस्परं युद्धं बहुलं, चैत्रे रोगः, वैशाखे सर्ववस्तुसमर्घं, ज्येष्ठे महान् वायुः, आषाढे अल्पवृष्टिः, श्रावणे सप्तमीतो नवमीतो वा वर्षा, भाद्रपदे एकादश्यां अत्यन्तमेघः, आश्विने अन्नं महर्घं, सर्वरससंग्रहः कार्यः, कार्तिके महर्घता, मार्गे विग्रहः, धान्यं महर्घं, योगिनीपुरे महाभयं, राज्ञां विरोधः, म्लेच्छभयम्, पौषे युद्धं, पश्चिमायां धान्यं महर्घं, उत्तरपथे महादुर्भिक्षं, फाल्गुणमासो मध्यमः,

तस्करभयं, अन्नं महर्घं, विग्रहः, राजविरोधात्
महत्पातकं, पूर्वस्यां दक्षिणस्यां वा वने वासः, प
श्चिमायां महायुद्धं, परं चान्यवस्तुसमर्घम् ॥७६॥

भावार्थ—तारणसंवत्सरका शुक्र स्वामी, इस संवत्सरमें वायु
चलै, परस्पर बहुत युद्ध होवे, चैत्र मासमें रोग हो, वैशाखमें सब
सस्ती हो, ज्येष्ठमासमें वायु बहुत वहे, आषाढमासमें थोडी वर्षा है
श्रावणमासमें सप्तमीसे वा नवमीसे वर्षा होवे, भाद्रपदमासमें
दिन बहुत वर्षा होवे, आश्विनमासमें अन्न महंगा हो, सब रसोंका
करै, कार्तिकमासमें अन्न महंगा होवे, मार्गमासमें विग्रह (युद्ध)
अन्न महंगा होवे, योगिनीपुरमें महाभय हो, राजाओंसे विरोध हो,
भय हो, पौषमास में युद्ध हो, पश्चिमदिशामें अन्न महंगा हो,
महादुर्भिक्षहो अर्थात् अकाल पडे, फाल्गुणमासमें मध्यम भाव हो,
भय हो, अन्न महंगा हो, राजाओंके विरोधसे विग्रह हो, मह
हो, पूर्व और दक्षिणदिशामें मनुष्य बनवासी हो, पश्चिममें बड़ा युद्ध
उपरान्त सब वस्तु सस्ती होवे, ॥ ७६ ॥

पार्थिव १९ संवत्सरफलम् ।

बहुसस्यानि जायन्ते सर्वदेशेषु सुन्दरि ! ॥
सौराष्ट्रे लाटदेशेषु पार्थिवे वत्सरे तथा ॥ ७७

भावार्थ—अब पार्थिवनाम संवत्सरका फल कहे हैं । शिवजी प
जीसे कहे-हैं कि हे सुन्दरि ! पार्थिवसंवत्सरमें सम्पूर्णान्य सब प्रका
त्पन्न होवे, और सौराष्ट्र व लाटदेशमेंभी धान्यकी उपज अच्छी हो॥

तथाच ।

पार्थिवः १९, शनिः स्वामी, उत्पाता बहुला
चैत्रे वैशाखे च महर्घता, मर्वता विग्रहः, ज्येष्ठ

रोगपीडा, यद्वा नृपयुद्धं, आषाढे अल्पमेघः धान्यं महर्घं, महावायुः, श्रावणे खंडवृष्टिः, भाद्रपदे नैर्ऋतवायुः, अन्नमहर्घता, आश्विने वृष्टिः, गोधूमयुगन्धरीमुद्गादिमहर्घता, कार्तिकादिद्वये रोगपीडा, पौषमाघयोर्महर्घता, फाल्गुणे समता।७८।

भावार्थ—पार्थिवनाम संवत्सरका स्वामी शनि है, इस संवत्सरमें बहुत वात होवें, चैत्र और वैशाखमासमे अन्नका भाव महंगा होवे, सब ओर विग्रह (लडाई झगडा) होवे, ज्येष्ठमासमें रोगपीडा हो, अथवा राजाओंमें युद्ध हो, आषाढमासमें वर्षा थोडी हो, अन्नका भाव महंगा हो, वायु बहुत वहे, श्रावणमासमें वर्षा खंडित होवे, भाद्रपदमासमें नैर्ऋतदिशाकी वायु वहे, अन्नका भाव महंगा होवे, आश्विनमासमें वर्षा होवे और गेहूँ, जुन्हरी, मूंग आदिका भाव महंगा हो, कार्तिक मार्ग इन दो महिनोंमें रोगसे पीडा होवे, पौष और माघमें भाव महंगा होवे, फाल्गुणमासमें भाव सम रहे ॥ ७८ ॥

व्यय २० संवत्सरफलम् ।

अल्पा च जायते वृष्टिर्धान्यमौपाधिपीडितम् ॥
सस्यं भवति सामान्यं व्यये संवत्सरे प्रिये ॥ ७८ ॥

भावार्थ—अव व्ययसंवत्सरका फल कहे हैं । शिवजी पार्वतीजीसे कहे है कि हे प्रिये ! व्ययनाम संवत्सरमें वर्षा थोडी होवे, धान्य जलरूप औपाधिसे पीडित हो, और सस्य (तृणधान्य) की उपज सामान्य होवे॥७९॥

तथाच ।

व्ययः २०, राहुः स्वामी, अनावृष्टिः, दुर्भिक्षं रौरवम्, चैत्रो मध्यमः, वैशाखद्वये महर्घता, देश-

विग्रहः, आषाढे अल्पमेघः, परं महर्घता, श्रावणे दुर्भिक्षं, मध्यदेशे विग्रहः, दक्षिणस्यां प्रजापीडा, भाद्रपदे खंडवृष्टिः, अन्नमहर्घता, आश्विने रोगपीडा, पूर्वस्यां विग्रहः, गोधूममहर्घता, मध्यमः समयः, कार्तिके रोगपीडा, मार्गमासे अन्नमहर्घता, परं युद्धं किंचित, पौषादिमासद्वये अतिमहर्घता, फाल्गुणे समता ॥ ८० ॥

भावार्थ—व्ययनाम संवत्सरमें राहु स्वामी, अनावृष्टि और घोर [illegible] हो अर्थात् महा अकाल पड़े, चैत्रमास मध्यम होवे, वैशाख, ज्येष्ठमें [illegible] भाव महंगा हो, देशमें विग्रह फैले, आषाढमासमें वर्षा थोड़ी [illegible] पीछे अन्न महंगा हो, श्रावणमासमें दुर्भिक्ष हो, मध्य देशमें विग्रह ([illegible] इत्यादि) होवे, दक्षिणमें प्रजाको पीडा होवे, भाद्रमासमें वर्षा [illegible] होवे, अन्न महंगा होवे, आश्विनमासमें रोगपीडा हो, पूर्वदिशामें विग्रह [illegible] गेहूंका भाव महंगा होवे, समय मध्यम होवे, कार्तिकमासमें रोगसे [illegible] हो, मार्गमासमें अन्नका भाव महंगा होवे, पीछेसे कुछ युद्ध होवे, [illegible] इन दो महिनोंमें बहुत महंगा भाव हो जावे, और फाल्गुनमें [illegible] सम भाव होवे ॥ ८० ॥

यह ब्रह्माजीकी उत्तम बीसी समाप्त हुई । अब विष्णुकी बीसी लिखते [illegible]

सर्वजित् २१ संवत्सरफलम् ।

तोयपूर्णा भवेद्धात्री सर्वधान्यैः प्रपूरिता ॥
दुर्भिक्षं मुच्यते सर्वं सर्वजिद्वत्सरे प्रिये ॥ ८१ ॥

भावार्थ—अब सर्वजित्संवत्सरका फल कहते हैं । [illegible]
[illegible]
[illegible]

तथाच ।

सर्वजित् २१, ब्रह्मास्वामी, चैत्रादिमासत्रयं समर्घम्, आषाढे अल्पमेघः, श्रावणे महामेघः सर्वधान्यरसवस्तुसमर्घता, नवीनमुद्रोदयः, राजविग्रहः परस्परं, अन्नमहर्घता, भाद्रपदे दिन ५ पश्चान्महती वृष्टिः, आश्विने रोगार्तिः, सर्वधान्यसमर्घता, कार्तिके प्रजासुखं, अन्नसमर्घता, मार्गशीर्षपौषौ उत्तमौ, सर्वलोकसुखम्, माघमासे मेघः दिन ३, मंजिष्ठामुहरामरिचशुंठीपिप्पलीपूगीफलादिमहर्घता, फाल्गुणे सर्ववस्तुरससमता, उत्तमः समयः ॥ ८२ ॥

भावार्थ—सर्वजित्संवत्सरका स्वामी ब्रह्मा. चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, इन हीनोंमें अन्नका भाव सस्ता हो, आषाढमासमें वर्षा थोडी होवे, श्रावणमा- में बहुत वृष्टि होवे, सब प्रकारके अन्न और रसवस्तुओंका भाव सस्ता ।, नवीन मुद्रा प्रचलित होवे, राजाओंमें परस्पर विग्रह होवे, अन्न महं- ा हो, भाद्रपदमासमें पांच दिन पीछे बहुत वर्षा होवे, आश्विनमासमें गपीडा, हो, सब अन्न सस्ते हो, कार्तिकमासमें प्रजाको सुख हो, ल सस्ता होवे, मार्गशीर्ष और पौषमास उत्तम हो, सब लोकको सुख ।, माघमासमें मेघ दिन तीन वर्षे, और मजीठ, मुहरा, मिर्चे, सोंठ, पिपरि, सुपारी आदिका भाव महंगा होवे, फाल्गुणमासमें सब वस्तु और सोंका भाव सम हो, समय उत्तम होवे ॥ ८२ ॥

सर्वधारी २२ संवत्सरकाफलम् ।

ज्वरोग्निः प्रबलः प्रोक्तो धान्यमौषधिपीडितम् ॥
सर्वधारीवत्सरे च कष्टं लोके प्रजायते ॥ ८३ ॥

भावार्थ—अब विकृतसंवत्सरका फल कहे हैं, श्रीशिवजी कहें हैं, कि हे सुशोभने ! विकृतनाम संवत्सरमें सम्पूर्ण जगत् पीडित हो, सर्वदा टीढी आदिसे हानि होवे, वर्षासमयमें वर्षा थोडी होवे॥

तथाच ।

विकृतः २४, रविः स्वामी, अकाले वर्षा, राजविग्रहः, देशोद्वासः, मरुधरायांदुर्भिक्षं, चैत्रादिमास ४ महर्घता, श्रावणे मासद्वये मेघवृष्टिर्नास्ति, रौरवं दुर्भिक्षं, आश्विने उत्पाता भूमिकंपः, कार्तिके छत्रभंगः, सुवर्णरूप्यताम्रकांस्यसर्वधातुसमर्घता ॥ ८८ ॥

भावार्थ—विकृतनाम संवत्सरका स्वामी रवि, इस संवत्सरमें कु[illegible] वर्षा होवे, राजाओंसे विग्रह हो, देशान्यजनोंका उद्वसन हो, मारवाड़में दुर्भिक्ष (अकाल) होवे, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ इन चार महीनोंमें अन्न महंगा होवे, श्रावण भाद्र इन दो महीनोंमें मेघ नहीं वर्षे और दे[illegible] दुर्भिक्ष होवे, आश्विनमासमें उत्पात और भूमिकम्प होवे, कार्तिकमें छत्रभंग होवे, सुवर्ण, चांदी, तांबा, कांसा सब प्रकारके धातुओंका स[illegible] सस्ता होवे, ॥ ८८ ॥

खर २५ संवत्सरफलम् ।

अल्पोदकास्तथा मेघा वर्षन्ति खंडमंडले ॥
निष्पत्तिः सर्वसस्यानां खरे संवत्सरे प्रिये ॥ ८९ ॥

भावार्थ—अब खरनाम संवत्सरका फल कहे हैं, । शिवजी कहें हैं कि हे प्रिये ! खरनाम संवत्सरमें वर्षा थोडी होवे, मेघ कहीं [illegible] कहीं नहीं [illegible], और सब प्रकारके धान्योंकी उत्पत्ति होवे, ॥ ८९ ॥

तथाच ।

खरः २५, चन्द्रः स्वामी चैत्रादिमासपंचके महती वर्षा, सुभिक्षं, प्रजासुखं, सर्वलोके गुरूणांमहत्वं, पश्चिमायां सुभिक्षं, आश्विने अन्नसमता, रसमहर्घता, मंजिष्ठासुहागादिवस्तुतो मरुधरायां त्रिगुणो लाभः, म्लेच्छक्षयः, परं रोगपीडा, सर्वधान्यनिष्पत्तिः प्रजासुखम्, कार्तिकादिमास पंचकं मध्यं, सर्वधान्यमर्घता ॥ ९० ॥

भापार्थ—खरनाम संवत्सरका स्वामी चन्द्रमा । इस संवत्सरमें चैत्र वैशाख, ज्येष्ठ, आशाढ, श्रावण इन महीनोंमें बहुत वर्षा होवे, अन्नका भाव सस्ता होवे, प्रजाको सुख होवे, सब लोकमें गुरुओंका महत्त्व हो, पश्चिम दिशामें अन्नका भाव सस्ता होवे, आश्विनमासमें अन्नका भाव सम होवे, रसका भाव महंगा होवे, मजीठ, सुहागा इन वस्तुओंसे मरुभूमिमें तिगुना लाभ होवे, म्लेच्छोंका क्षय होवे, उपरान्त रोगपीडा होवे, सर्व धान्योंकी उत्पत्ति होवे, प्रजाको सुखहो, कार्तिक, मार्ग, पौष, माघ, फाल्गुण इस पांच महीनोंमें भाव मध्यम होवे, सर्व धान्य सस्त भावसे विके ॥९०॥

नन्दन २६ संवत्सरफलम् ।

सुभिक्षं क्षेममारोग्यं सौख्यं भवति शोभनम् ॥
बहुक्षीरघृता गावो नन्दने नन्दिताः प्रजाः ॥ ९१ ॥

भापार्थ—अब नन्दन नामसंवत्सरका फल कहें हैं । नन्दन संवत्सरमें सुभिक्ष, क्षेम, आरोग्यता, और सुन्दर सुख होताहै, तथा गौओंमें बहुत दूध और घी होवे, तथा प्रजा आनन्दित रहे, ॥ ९१ ॥

तथाच ।

नन्दनः २६, भौमः स्वामी, प्रजासुखं, सर्वधा-न्यसमता, चैत्रे वैशाखे च धान्यं महर्घं, प्रचंड-वायुः ज्येष्ठेऽपि तथैव महर्घं, आषाढे महामेघः, श्रावणे अल्पवर्षा, भाद्रपदे महावृष्टिः, आश्विने सुभिक्षं, राजा प्रजा च सुखी, कार्तिके सुभिक्षं, अन्नसमता, मार्गशीर्षादिमास ४ महर्घता, मंजि-ष्ठलवणमहर्घता ॥ ९२ ॥

भावार्थ—नन्दननाम संवत्सरका स्वामी मंगल, इस संवत्सरमें प्रजा सुखी रहे, सब धान्योंका भाव सम होवे, चैत्र वैशाखमें अन्नका भाव महंगा, प्रबलतासे वायु वहे, ज्येष्ठमेंभी उसी प्रकार अन्न महंगा रहे, आ-षाढमें वर्षा बहुत होवे, श्रावणमें थोडी वर्षा होवे, भाद्रमासमें वर्षा बहुत होवे, आश्विनमासमें अन्नका भाव सस्ता होवे, राजा प्रजा सुखी रहे, कार्तिकमासमें अन्न सस्ता होकर मध्यम भाव हो जावे. मार्ग, पौष, माघ, फाल्गुण इन महीनोंमें अन्न महगा होवे, मंजीठ लवणभी महंगा विके ॥ ९२ ॥

विजय २७ संवत्सरफलम् ।

क्षत्रियाश्च तथा वैश्याः शूद्राश्च नटनर्तकाः ॥
पीड्यन्ते प्रचुरं रोगैर्विजयाब्दे तु सुन्दरि ! ॥ ९३ ॥

भावार्थ—अब विजयनाम संवत्सरका फल कहे हैं, । शिवजी पार्वती-जीसे कहे हैं कि हे सुन्दरि ! विजयनाम संवत्सरमें क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, नट, नर्तक ये सब बहुत रोगोंसे पीडित होवे ॥ ९३ ॥

तथाच ।

विजयः २७, स्वामी बुधः, सर्वदेशेषु महापीडा, राज्ञां परस्परविरोधः, अन्नं महर्घं, तुच्छजलम्,

मही लोहितपायिनी, विप्रपीडा, गोमहिषाश्व-हस्तिपीडा, चैत्रमध्ये महती वर्षा, वैशाखे ज्येष्ठे च अन्नमहर्घता, आषाढे श्रावणे अल्पमेघः, भाद्रपदे वर्षा वर्षति, आश्विनमध्ये वणिग्जन-पीडा, अन्नमहर्घता, फाल्गुणे समता ॥ ९४ ॥

भाषार्थ—विजयनाम संवत्सरमें स्वामी बुध, इस संवत्सरमें सब देशों-में महापीडा, राजाओंमें परस्पर विरोध, अन्नका भाव महंगा, बहुत थोडी वृष्टि हो, पृथिवी पर लडाईमे लोहीगिर जावे, ब्राह्मणोंको पीडा, गौ, भैंसे, घोडा, हाथी इनको पीडा हो, चैत्रमासमें बहुतही वर्षा होवे, वैशाख और ज्येष्ठमासमें अन्नका भाव महंगा होवे, आषाढ श्रावणमें थोडा जल वर्षे, भाद्रमासमें वर्षा होवे, आश्विनमासमें वणिकजनोंको पीडा होवे, अन्नका भाव महंगा होवे और फाल्गुणमासमें सम रहे ॥ ९४ ॥

जय २८ संवत्सरफलम् ।

मानुषा दुःखसंकष्टे जगद्वन्द्वसमाकुलम् ॥
सुभिक्षं स्वस्थता राष्ट्रे जये चैव वरानने ॥ ९६ ॥

भाषार्थ—अब जयनाम संवत्सरका फल कहे हैं । शिवजी पार्वतीजीसे कहे हैं, कि हे वरानने ! जयनाम संवत्सरमें मनुष्य कष्टसे दुःखी होवें, जगतमें लडाईका उपद्रव हो, सुभिक्ष हो, राष्ट्रमें स्वास्थ्यता होवे ॥ ९५ ॥

तथाच ।

जयः २८, गुरु स्वामी, महासुभिक्षं. चैत्रे महर्घता, वैशाखज्येष्ठयोः समर्घता, आषाढे मेघवर्षा, अन्नं महर्घं. श्रावणे दिन २४ महामेघः, भाद्रपदे दिन ७ मेघवृष्टिः, आश्विने अन्नं म-

मर्घम्, स्वर्णादिधातुसमता, कार्तिकादिमासपं-
चकमुत्तमम्, अन्नसमता, अन्यवस्तुमहर्घता,
परं मौक्तिकादिप्रवालकमहर्घता, मार्गशीर्षे
रोगबहुलता, वणिक्पीडा, उच्चमुलतानदेशे
रोगपीडा, छत्रभंगः, लोका दुःखिताः ॥ ९६ ॥

भावार्थ—जयनाम संवत्सरका स्वामी गुरु, इस संवत्सरमें अन्नका भाव बहुत सस्ता होवे, चैत्रमें महंगा भाव हो, वैशाख ज्येष्ठमें सस्ता भाव है, आषाढमासमें वृष्टि होवे, अन्न महंगा होवे, श्रावणमासमें २४ दिन वर्षा होवे, भाद्रपदमासमें सात दिन मेघवृष्टि होवे, आश्विनमासमें अन्न सस्ता होवे, सुवर्ण आदि धातुका भाव सम हो, कार्तिक, मार्ग, पौष, माघ, फाल्गुन ये पांच महीने उत्तम होवे, अन्नका भाव सम हो, अन्य वस्तु महंगी हो, मोती, मूंगा आदिकोंका भाव महंगा हो, मार्गमासमें रोग बहुलता होवे, वणिकजनोंको पीडा होवे, उच्च मुल्तानदेशमें रोगपीडा है, किसी राजाका छत्रभंग होवे, लोक दुःखित होवें ॥ ९६ ॥

मन्मथ २९ संवत्सरफलम् ।

तृणधान्यं क्षयं याति कोद्रवाणां महर्घता ॥
व्यवहारे तु जायन्ते मन्मथे दुःखिताः प्रजाः ॥१०॥

भावार्थ—अब मन्मथनाम संवत्सरका फल कहते हैं, मन्मथसंवत्सरमें तृणधान्य (घास अन्न आदि) क्षय होवे, कोदोंका भाव महंगा होवे, व्यवहारमें प्रजाजन दुःखसे युक्त होवें ॥ १० ॥

तथाच ।

मन्मथः २९, शुक्रः स्वामी, राजविरोधः, पूर्वदेशे
[illegible], परं अतिवृष्टिः, रोगबाहुल्यम, धान्य-

संग्रहः कार्यः, चैत्रे वर्षा, भूमिकंपः, वैशाखे समर्घता, ज्येष्ठाषाढयोर्महर्घता, धान्ये षड्गुणो लाभः, श्रावणे अल्पमेघाः, भाद्रे महामेघाः दिन २४, आश्विने रोगपीडा, अन्नं महर्घं, कार्तिके सुभिक्षं, अन्नसमता, मार्गशीर्षादिमासत्रये अन्नं समर्घं, लोके सुखम्, राज्ञां सुखम्, सर्वधातुसमर्घता, वस्त्रमहर्घता ॥ ९८ ॥

भाषार्थ—मन्मथनाम संवत्सरका स्वामी शुक्र, इस संवत्सरमें राजविरोध होवे, पूर्वदेशमें लोकोंको पीडा हो, पीछेसे बहुत वर्षा होवे, रोग बढ जावे, अन्नका संग्रह करे, चैत्रमें वर्षा हो, भूकंप होवे, वैशाखमें अन्नका भाव सस्ता हो, ज्येष्ठ और आषाढमासमें सब वस्तुओंका भाव महंगा हो, अन्नमें छःगुना लाभ होवे, श्रावणमें थोडी वर्षा होवे, भाद्रपदमासमें चौबीस दिन बहुत वर्षा होवे , आश्विनमासमें रोगपीडा हो, अन्न महंगा हो- कार्तिकमासमें भाव मन्दा होवे, मार्ग, पौष, माघ इन तीन महीनोंमें अन्नका भाव सस्ता होवे, लोक सुखी हो, राजाको सुख हो, सब प्रकारकी धातुओंका भाव सस्ता, और वस्त्र महंगे हो जावे ॥ ९८ ॥

दुर्मुख ३० संवत्सरफलम् ।

पीड्यंते सर्वधान्यानि वृष्टिर्नैव प्रजायते ॥
दुर्भिक्षं दुर्मुखे नित्यं मयाऽऽख्यातं सुलोचने ॥९९॥

भाषार्थ—अब दुर्मुखनाम संवत्सरका फल कहे हैं। शिवजी पार्वतीजीसे कहे हैं कि हे सुलोचने ! दुर्मुखनाम संवत्सरमें प्रजागण सम्पूर्ण धान्योंके तथा वृष्टिके न होनेसे पीडाको प्राप्त होवे और सदा दुर्भिक्ष (अन्न महंगा) रहे ॥ ९९ ॥

तथाच ।

दुर्मुखः ३०, शनिः स्वामी, अल्पमेघाः, महती लोकानां पीडा, सरोगाकुलं, उत्तरापथे दुष्कालः, पश्चिमायां महापीडा, पूर्वदेशे सुभिक्षं, अन्यत्र महर्घम्, क्षत्रियेषु नकुलसर्पवद्रूपो गृह्यते, चैत्रादिमासत्रये महर्घता, आषाढे अल्पमेघः, श्रावणे प्रचंडवायुः, सर्वधान्यमहर्घता, भाद्रपदे खंडवृष्टिः, आश्विने रोगपीडा, सर्वे धातवः समर्घाः, कार्तिकादिमासेषु ४ रौरवं दुर्भिक्षम्, फाल्गुणे रोगपीडा, राज्ञां परस्परं विरोधः, लोकपीडा ॥ १०० ॥

भावार्थ—दुर्मुखनाम संवत्सरका स्वामी शनि, इस संवत्सरमें थोड़ी वर्षा होवे, लोकोंको बहुत पीडा हो, रोगसे प्रजा पीडित होवे, उत्तर और अकाल पड जावे, पश्चिममें बहुत पीडा होवे, पूर्वदेशमें भाव सस्ता होवे, अन्यथा भाव महंगा होवे, क्षत्रियोंमें न्यौले और सांपके समान द्वेषभाव पड जावे, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ इन तीन महीनोंमें भाव महंगा होवे, आषाढमें वर्षा थोडी होवे, श्रावणमें वायु बहुत बहे, सब धान्य महंगे होवें, भाद्रमासमें वर्षा खंडित होवे, आश्विनमासमें रोगपीडा होवे, सब प्रकारके धातुओंका भाव सस्ता होवे, कार्तिक, मार्ग, पौष, माघ इन चार महीनोंमें घोर दुर्भिक्ष होवे, फाल्गुणमें रोगपीडा होवे, राजाओंका विरोध परस्पर होवे, लोकमें पीडा होवे ॥ १० ॥

हेमलंब ३१ संवत्सरफलम् ।

तस्करैः पार्थिवैर्देवि ह्यभिभूतमिदं जगत् ॥
अर्घं भवति सामान्यं हेमलंबे महोदये ॥ १०१ ॥

भापार्थ—अब हेमलम्बनाम संवत्सरका फल कहे हैं। श्रीशिवजी पार्वतीजीके प्रति वर्णन करें हैं कि हे देवि! हेमलम्बसंवत्सरमें चोरोंसे राजाओंसे जगतको भय हो, अन्नादिका भाव सम होवे ॥ १०१ ॥

तथाच ।

हेमलंबः ३१, राहुः स्वामी, अतिरौरवम्, सरोगा लोकाः, भूकम्पादयः उत्पाताः, वणिक्पीडा, चैत्रवैशाखमासयोः पीडा, धान्यादिमंजिष्ठादीनांमन्दभावः, परचक्रागमः, ज्येष्ठादिमासत्रयेषु धान्यं महर्घं, चतुर्गुणो लाभः, भाद्रपदे महामेघः, अन्नसमता, मंजिष्ठामरिचलवंगदंतमहावस्तुमहर्घता, कार्तिके छत्रभंगः, लोकपीडा, सर्वधातुसमघंता, चतुष्पदानां पीडा, मार्गशीर्षादिमास ४ ये राज्ञां स्वस्थता, लोकाः सुखिनः ॥ १०२॥

भापार्थ—हेमलम्बनाम संवत्सरका स्वामी राहु, इस संवत्सरमें घोर काल पडे, लोक रोगसे पीडित होवें, भूकम्प आदि उत्पात होवे, वणिक्जनोंको पीडा हो, चैत्र वैशाखमासमें पीडा हो, धान्य आदि मंजीठका भाव मन्द हो, शत्रुसेनाकी चढाई हो, ज्येष्ठ, आपाढ, श्रावण इन तीन महीनोंमें अन्न महंगा हो, चौगुना लाभ होवे, भाद्रपदमासमें वर्षा बहुत होवे, अन्नका भाव सम हो, मंजीठ, मिर्च, लौंग, हथी दंत और बडी वस्तुयें महंगी होवे, कार्तिकमासमें किसी राजाका छत्रभंग हो, लोकमें पीडा हो, सब धातुओंका भाव सस्ता होवे, चौपायोंको पीडा हो, मार्ग, पौष, माघ, फाल्गुण इन चार महीनोंमें राजाओंको स्वास्थ्यता हो, मनुष्य सुखी रहें ॥ १०२ ॥

विलंब ३२ संवत्सरफलम् ।

विपमस्थं जगत्सर्वं विविधोपद्रवैर्युतम् ॥
मूपकैश्च प्रपीड्यन्ते विलम्बे च सुरेश्वरि ॥१०३॥

भापार्थ—अब विलम्बनाम संवत्सरका फल कहें हैं । श्रीशिवजी पार्वतीसे वर्णन करें हैं कि हे सुरेश्वरि ! विलम्बनाम संवत्सरमें सब जगत् अनेक प्रकारका उपद्रव होवे, और मूपक आदि जीवोंसे दुःख होवे ॥ १०३ ॥

तथाच ।

विलंवः ३२, रविः स्वामी, चैत्रवैशाखयोर्धान्य-समर्घता, आपाढे मेघ अल्पः, श्रावणे महामे-घः, सुभिक्षम्, भाद्रपदे दिन २१ वर्षा बहुला, गोधूमानां महर्घता, पश्चिमायां सुभिक्षम्, राज-विग्रहः, पूर्वदेशे अन्नं महर्घं दुष्प्राप्यंच, दक्षिण-देशे राज्ञामन्योन्यविरोधः, आश्विने अन्नमहर्घता रोगपीडा, सर्वक्रयाणवस्तु महर्घम्, कार्तिकादि-मासपंचके धान्यं महर्घम् ॥ १०४ ॥

भापार्थ—विलम्बनाम संवत्सरका स्वामी रवि, चैत्र, वैशाखमें धान्य सस्ता, आपाढमें वर्षा थोडी, श्रावणमासमें वर्षा बहुत, भाव सस्ता, भाद्रपदमासमें इक्कीस दिन बहुत वर्षा होवे, गेहूंका भाव महंगा होवे, पश्चिम दिशामें अन्नका भाव सस्ता होवे, राजओंमें विग्रह होवे, पूर्वदेशमें अन्न महंगा होवे, अन्न कठिनतासे मिले, दक्षिणदेशमें राजाओंमें परस्पर विरोध होवे, आश्विनमासमें अन्नका भाव महंगा होवे, रोगसे प्रजा पीडित होवे, सब खरीदकी वस्तुयें महंगे भावसे विकें, कार्तिक, मार्ग, पौप, माघ, फाल्गुणमासमें अन्नका भाव महंगा होवे ॥ १०४ ॥

विकारी ३३ संवत्सरफलम् ।

अल्पोदको भवेन्मेघो धान्यमौषधिपीडितम् ॥
दुर्भिक्षं जायते सर्वं विकारीवत्सरे भुवि ॥ १०५ ॥

भावार्थ—अब विकारीनाम संवत्सरका फल कहे हैं । विकारीसंवत्सरमें वर्षा थोड़ी होवे, धान्य जलरूप औषधिसे पीडित होवे, तथा सम्पूर्ण पृथिवी में दुर्भिक्ष होवे, ॥ १०५ ॥

तथाच ।

विकारी ३३, चन्द्रः स्वामी, अन्नं सर्वं महर्घं, सर्ववस्तुमहर्घता, द्विजाः सुखिनः, चैत्रादिमासत्रये धान्यमहर्घता, आषाढे श्रावणे महान्मेघः, सुभिक्षम्, भाद्रपदे स्वल्पमेघः, आश्विने रोगभयं, केतूदयः, सर्ववस्तुमहर्घता, कार्तिकादिमासद्वये धान्यं समर्घम्, पौषे रोगपीडा, लोकाः सुखी, फाल्गुणे धान्यमहर्घता ॥ १०६ ॥

भावार्थ—विकारीनाम संवत्सरका स्वामी चन्द्रमा, इस संवत्सरमें अन्न सब महँगे भावसे विकें, सब वस्तुओंका भाव महंगा होवे, ब्राह्मणोंको सुख होवे, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठमासमें अन्नका भाव महंगा होवे, आषाढ श्रावणमासमें वर्षा बहुत होवे, अन्नका भाव सस्ता होवे, भाद्रपदमासमें वर्षा थोडी होवे, आश्विनमासमें रोगसे भय हो, केतुका उदय हो, सब वस्तु महंगी हो जावे, कार्तिक मार्गमासमें अन्नका भाव सस्ता होवे, पौषमासमें रोगपीडा हो, लोक सुखी रहे, फाल्गुणमें धान्यका भाव महंगा होवे॥१०६॥

शार्वरी ३४ संवत्सरफलम् ।

मेदिनी शुष्यते सर्वा धनधान्यप्रपीडनम् ॥
शार्वर्य्यां वर्षते कापि पीड्यन्ते मानवा भुवि ॥१०७॥

भावार्थ—अब शार्वरीनाम संवत्सरका फल कहे हैं। शार्वरीसंव- त्सरमें सम्पूर्ण पृथिवी सूख जावे, धनधान्यसे पीडा हो, कहीं वर्षा होवे और पृथिवीपर अकाल और रोगसे मनुष्य पीडित होवे ॥ १०७ ॥

तथाच।

शार्वरी ३४, भौमः स्वामी, वर्षा अल्पा, प्रजाप्रलयः, राज्ञां विरोधः, चैत्रादिमासत्रये अन्नसमता, आषाढद्वये महामेघः, परं खंडवृष्टिः, अन्नसमर्घता, भाद्रपदे वर्षा नास्ति, राजपीडा लोकेषु, आश्विने रोगपीडा, पश्चिमायां दुर्भिक्षं, पूर्वस्यां सुभिक्षम्, कार्तिकादिमासद्वये अन्नं महर्घम्, पौषादिमासत्रये अन्नं समर्घम् ॥ १०८ ॥

भावार्थ—शार्वरी संवत्सरका स्वामी मंगल। इस संवत्सरमें वर्षा [illegible] होवे, प्रजाका विनाश होवे, राजाओंमें विरोध होवे, चैत्र, वैशाख, [illegible] इन तीन महीनोंमें अन्नका भाव सम रहे, आषाढ श्रावणमें वर्षा बहुत [illegible] वर्षा खंडित हो जावे, अन्नका भाव मन्दा हो, भाद्रपदमासमें वर्षा [illegible] होवे, लोकोंमें राजपीडा होवे, आश्विनमासमें रोग फैले, पश्चिममें [illegible] रहे, पूर्वदिशामें भाव मन्दा रहे, कार्तिक मार्गशिरमें अन्न म[illegible] होवे, पौष, माघ, फाल्गुण इन तीन महीनोंमें अन्न मन्दा होवे ॥ १०८ ॥

अथ ३५ नामसंवत्सरफलम्।

धनधान्यसमापूर्णं जगत्सर्वं चराचरम् ॥
[illegible] प्रबला लोकाः शुभसंवत्सरे प्रिये ॥ १०९ ॥

भावार्थ—अब शुभकृत नाम संवत्सरका फल कहे हैं, जिसके [illegible] [illegible] शुभकृत संवत्सरमें सम्पूर्ण [illegible] [illegible] होवें और बहुत वर्षा हो ऐसा जानना ॥ १०९ ॥

तथाच ।

ध्रुवः ३९, बुधः स्वामी, वर्षाकाले वर्षा बहुला, उत्तमः समयः, चैत्रे धान्यमन्दता, वैशाखे भूमिः भयंकरी, ज्येष्ठे अन्नसमर्घता, तैलंगे पूर्वदेशे पीडा, आषाढे महावायुः, उत्पाताः, लोकाः सरोगाः, श्रावणे महान्मेघो दिन २७ वर्षति, भाद्रपदे घनो घनागमः, धान्यं समर्घं, आश्विने सर्ववस्तुसर्वधातुसमर्घता, गोधूमानां महर्घता, कार्तिके अन्नं समर्घम्, लोकः सुखी, पौषादिमासत्रये अतिसुभिक्षम् ॥ ११० ॥

भाषार्थ—ध्रुवनाम संवत्सरका स्वामी बुध । इस संवत्सरमें वर्षाकालमें बहुत वर्षा होवे, समय अच्छा होवे, चैत्रमासमें धान्यका भाव मन्द, वैशाखमासमें भूमि भयंकारी हो जावे, ज्येष्ठमासमें अन्नका भाव सस्ता, तैलंग और पूर्वदेशमें पीडा होवे. आषाढमासमें वायु बहुत बहे, ...में उत्पात हो, रोग फैले, श्रावणमासमें सत्ताईस २७ दिन बहुत ... होवे, भाद्रपदमासमें मेघ बहुत बरसें, धान्यका भाव सस्ता होवे, ...ओंका भाव महंगा होवे, कार्तिकमासमें अन्नका भाव सस्ता होवे, लोक सुखी होवे, पौष, माघ, फाल्गुण ये तीन महीने भाव बहुत सस्ता ॥ ११० ॥

शुभकृत् ३६ संवत्सरफलम् ।

सुभिक्षं सर्वदेशेषु क्षत्रगोब्राह्मणेषु च ॥
लभन्ते च प्रजाः सौख्यं शुभकृद्वत्सरे प्रिये ॥१११॥

भाषार्थ—अब शुभकृत्नाम संवत्सरका फल कहे हैं, शिवजी कहे हैं कि हे प्रिये ! शुभकृत् संवत्सरमें सब देशमें क्षत्री आदि प्रजामें सुख होवे और अन्नका भाव सस्ता रहे ॥ १११ ॥

तथाच ।

शुभकृत् ३६, गुरुः स्वामी, अतिवर्षा राजा प्रजाश्च सुखेन वर्तन्ते, उत्तरापथे वह्निभयम्, चैत्रे वैशाखे समर्घता, श्रावणे नवमीतिथितो वर्षा, अन्नसमर्घता, भाद्रपदे महान्मेघः, घृततैलं समर्घम्, राज्ञां परस्परविरोधः, कार्तिकादिमासत्रये युगन्धरीगोधूमचणकतिलमुद्गतंदुलेत्यादि अन्नं समर्घम्, फाल्गुणे किंचिदुत्पातः, मरुदेशे रोगः परं सुभिक्षम् ॥ ११२ ॥

भाषार्थ—शुभकृत्नाम संवत्सरका स्वामी गुरु, इस संवत्सरमें बहुत होवे, राजा प्रजा सुखसे रहे, उत्तर और अग्निभय होवे, चैत्र वैखमासमें भाव सस्ता होवे, श्रावणमासमें नवमीतिथिसे वर्षा होवे, भाव सस्ता होवे, भाद्रमासमें बहुत वर्षा होवे, घी और तेलका सस्ता होवे, राजाओंमें परस्पर विरोध होवे, कार्तिक आदि तीन मास (कार्तिक, मार्ग, पौष) जुन्हरी, गेहूं, चना, तिल, मूंग, चावल इत्यादि अन्न सस्ते भावसे विके, फाल्गुणमासमें कुछ उत्पात होवे, मरुदेशमें रोग परन्तु अन्न सस्ता रहे ॥ ११२ ॥

शोभन ३७ संवत्सरफलम् ।

सुभिक्षं क्षेममारोग्यं सौख्यवृन्दसमाकुलम् ॥
नन्दन्ते ब्राह्मणा गावो शोभने च वरानने ॥११३

भापार्थ—अब शोभननाम संवत्सरका फल कहते हैं शिवजी पार्वतीसे कहे हैं हे वरानने ! शोभननाम संवत्सरमें सुभिक्ष (महा) क्षेम, आरोग्यता हो और जगत्में सुखसमूहकी वृद्धि हो, तथा ब्राह्मण और गौ आनन्दयुक्त होवे ॥ ११३ ॥

तथाच ।

शोभनः ३७, शुक्रः स्वामी, राज्ञां प्रजानां च सुखम्, अतिवर्षा, चैत्रादिमासत्रये धान्यं समर्घम्, राजविग्रहः, किंचिदुत्पातः, आषाढे अल्पमेघः, श्रावणे अतिवर्षा, लोकपीडा च, भाद्रपदे महान्मेघः, आश्विने सुभिक्षम्, ततोपि किंचिद्विग्रहः ॥ ११४ ॥

भावार्थ—शोभनसंवत्सरका स्वामी शुक्र, इस संवत्सरमें राजा प्रजा सुखी, वर्षा बहुत होवे, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठमें धान्य भाव सस्ता, राजाओंमें विग्रह, कुछ उत्पात होवे, आषाढमें वर्षा थोडी हो, श्रावणमें वर्षा बहुत होवे, लोकमें पीडा हो, भाद्रमासमें वर्षा बहुत होवे, आश्विनमासमें अन्नका भाव सस्ता होवे, तदनंतर कुछ विग्रह होवे ॥ ११४ ॥

क्रोध २८ संवत्सरफलम्

विषमस्थं जगत्सर्वं व्याधिवृन्दसमाकुलम् ॥
अल्पा वृष्टिश्च विज्ञेया क्रोधे क्रोधः प्रजायते॥११५॥

भावार्थ—अब क्रोधसंवत्सरका फल कहते हैं, क्रोधनाम संवत्सरमें सम्पूर्ण जगत् संकटमे पडे, रोगपीडासे युक्त होवे, वर्षा थोडी होवे और क्रोधकी उत्पत्ति होवे ॥ ११५ ॥

तथाच ।

क्रोधः ३८, शनिः स्वामी, द्वादशमासात् अन्नं महर्घम्, मध्यमः समयः, राज्ञां परस्परविरोधः प्रजायाःपरलोको, निर्धना व्यापारीणः, चैत्रवैशाखयोः करकापातः. रोगमारीभयं, ज्येष्ठे धान्यं महर्घम्, आषाढे समता, अल्पो मेघः, श्रावणे रौरवम्, भाद्रपदे खंडवृष्टिः अन्नं महर्घम्, आश्विने मेघवर्षा, सर्वत्र रसकसवस्तुसमता, अन्नवस्तुसर्वं समर्घम्, कार्तिके समता, ॥ ११६ ॥

भावार्थ—क्रोधनाम संवत्सरका स्वामी शनि, इस संवत्सरमें बारह मास अन्न महंगा रहे, समय मध्यम होवे, राजाओंमें परस्पर विरोध होवे, प्रजाका विनाश होवे, व्यापारीलोग धनहीन होजावे. चैत्र और वैशाखमासमें ओलोंकी वर्षासे तेजी हो जावे, मारीरोगका भय होवे, ज्येष्ठमासमें अनाज महंगा हो जावे, आषाढमें भाव सम होवे, वर्षा थोडी, श्रावणमासमें घोर अकाल पडे, भाद्रपदमासमे वर्षा खंडित होवे, अन्न महंगा होवे, आश्विनमासमें वर्षा होवे और रस आदि वस्तुओंका भाव सर्वत्र सम और अन्नवस्तु सब सस्ते भाव बिके, कार्तिकमासमें भाव सम होवे ॥ ११६ ॥

विश्वावसु ३९, संवत्सरफलम् ।

सर्वत्र जायते सौख्यं वृष्टिरेव सुरेश्वरि ! ॥
विश्वावसौ महादेवि ! कार्पासस्य महर्घता ॥ ११७

भावार्थ—अब विश्वावसुनाम संवत्सरका फल कहे हैं शिवजी पार्वतीसे कहते हैं कि हे सुरेश्वरि ! हे महादेवि ! विश्वावसुनाम संवत्सरमें सर्वत्र सुख होवे और वर्षा बहुत होवे सम, कपास महंगी होजावे ॥ ११७ ॥

तथाच ।

विश्वावसुः ३९, राहुः स्वामी, वर्षा समता, अन्नमहर्घता, चैत्रे राज्ञां विरोधः, धान्यं महर्घं, वैशाखे विग्रहः, मरुदेशे दुर्भिक्षम्, पश्चिमायां अन्नं महर्घम्, ज्येष्ठे विग्रहः, आषाढे अल्पमेघः, श्रावणे भाद्रपदे दुर्भिक्षम्, अन्यत्र सुभिक्षम्, आश्विने रोगपीडा, गोमहिषीघोटकआजामहर्घता, सुवर्णादिधातुसमर्घता, कार्तिकादिमासत्रये समर्घता, ११८ ॥

भावार्थ—विश्वावसुनाम संवत्सरका स्वामी राहु, इस संवत्सरमें वर्षा मध्यम होवे, अन्नका भाव महंगा होवे, चैत्रमासमें राजाओंका विरोध हो, अन्नका भाव महंगा हो जावे, वैशाखमासमें विग्रह होवे, मरुदेशमें दुर्भिक्ष होवे, पश्चिमदेशमें अन्न महंगा हो, ज्येष्ठमासमें विग्रह हो, आषाढमासमें वर्षा थोडी होवे, श्रावण और भाद्रमासमें अकाल पडे, अन्यत्र सुभिक्ष होवे, आश्विनमासमें रोगपीडा हो, गौ, भैंस, घोडा, बकरी ये महंगे भाव बिके, सुवर्ण आदि धातुओंका भाव सस्ता होवे, कार्तिक, मार्ग, पौषमें भाव सस्ता होवे ॥ ११८ ॥

पराभव ४० संवत्सरफलम् ।

पार्थिवैर्माण्डलीकैश्च सामन्तैर्दण्डनायकैः ॥
पीड्यन्ते वै प्रजाः सर्वा क्षुधार्ताश्च पराभवे॥११९॥

भावार्थ—अब पराभवनाम संवत्सरका फल कहते हैं । पराभवनाम संवत्सरमें मांडलीक राजा, सामन्त (सेनापति) और दंडनायक (न्याय-

कारी) इनकी सम्पूर्ण प्रजागणको पीडा होवे और क्षुधासे पीडित होवे. भावार्थ यह कि घोर अकाल पडे ॥ ११९ ॥

यथाच ।

पराभवः ४०, केतुः स्वामी, द्वादशमासा वर्षा, मध्यमावृष्टिः, चैत्रवैशाखे चान्नं महर्घं, मेघगर्जिते विद्युतो वायवः, ज्येष्ठे धान्यसंग्रहः, उद्दंडवायुः, आषाढे अल्पमेघः अन्ने द्विगुणलाभः, श्रावणे महती वर्षा, अन्नसमता, भाद्रपदे खंडवृष्टिः, परं दुर्भिक्षम् आश्विने किंचिल्लोकसुखम् धान्यरसवस्तुमहर्घता, धातुसमर्घता, कार्तिकादिमासपंचके समता, पश्चिमायां अन्नसमता, सिन्धुदेशाद्धान्यागमः,

इति विष्णों [मध्यम] विंशति फलम् ॥ १२०॥

भावार्थ—पराभवसंवत्सरका स्वामी केतु, इस संवत्सरमें बारहो महिने वर्षा मध्यम होवे, चैत्र वैशाखमें अन्न महंगा, मेघ गर्जे, बिजली चमके, वायु प्रबल वहे, ज्येष्ठमासमें अन्नका संग्रह करे, वायु बहुत प्रबल वहै, आषाढमें वर्षा थोडी होवे, अन्नमें दुगुना लाभ होवे, श्रावणमासमें बहुत वर्षा होवे, अन्नका भाव मध्यम होवे, भाद्रमासमें वर्षा खंडित होवे और दुर्भिक्ष होवे, आश्विनमासमें कुछ लोकको सुख होवे. धान्य रस ये वस्तु महंगे भाव विकें, धातु सस्ते भाव होवे, कार्तिक, मार्ग, पौष, माघ, फाल्गुनमें भाव मध्यम होवे, पश्चिमदिशामें अन्नका भाव सम हो, सिन्धुदेशसे अन्न आवे। यह विष्णुजीकी बीसी मध्यम फल देनेवाली कही गई॥१२०॥

प्लवंग ४१ संवत्सरफलम् ।

तुषधान्यानि पीड्यन्ते ग्रीष्मे वर्षति माधवे ॥
प्लवंगे पीडिताः सर्वे सर्वद्वीपं सुमंडलम् ॥ १२१ ॥

भाषार्थ—अब प्लवंगनाम संवत्सरका फल कहे हैं, प्लवंगनामसंवत्सरमें सम्पूर्ण द्वीप पृथिवीमंडलके पीडित होवे, और तुषधान्यको पीडा हो, और ग्रीष्मऋतुमें मेघ वर्षा करे, ॥ १२१ ॥

तथाच ।

प्लवंगः ४१, ब्रह्मा स्वामी. चैत्रवैशाखे च महर्घता, ज्येष्ठमध्ये राजपीडा, आषाढे अल्पमेघः भूमिकंपः, हस्तिपीडा, तुरंगमहर्घता, श्रावणे महामेघः भाद्रपदे अष्टमीतो महामेघः आश्विने रोगः रसमहर्घता, फाल्गुणे लोकपीडा ॥१२२॥

भाषार्थ—प्लवंगनाम संवत्सरका स्वामी ब्रह्मा, इस संवत्सरमें चैत्र वैशाखमासमें धान्यभाव महंगा, ज्येष्ठमासमें राजपीडा, आषाढमासमें थोडी वर्षा, भूकंपयोग, हाथियोंको पीडा हो, घोडोंका भाव महंगा होवे, श्रावणमासमें वर्षा बहुत होवे, भाद्रपदमासमें अष्टमीसे बहुत वर्षा होवे, आश्विनमासमें रोगसे पीडा हो, रस वस्तुये महंगी होवे, फाल्गुणमासमें लोक पीडित हो ॥ १२२ ॥

कीलक ४२ संवत्सरफलम् ।

तोयपूर्णा भवेन्मेघा वर्षते च धरातले ॥
उपद्रवस्तु राज्ञां वै कीलके सर्वदा प्रिये ॥ १२३ ॥

भाषार्थ—अब कीलकनाम संवत्सरका फल कहे हैं, श्रीशिवजी पार्वतीसे कहे हैं कि हे प्रिये ! कीलकसंवत्सरमें मेघ जलसे पूर्ण होवे और पृथिवीपर बहुत वर्षा करे और राजाओंमें उपद्रव होवे ॥ १२१ ॥

तथाच ।

कीलकः ४२, विष्णुः स्वामी, वर्षा मध्यमा, चैत्रे धान्यं महर्घम्, वैशाखे रोगः, मरुदेशे दुर्भिक्षम्, पश्चिमायां समर्घता, ज्येष्ठे धान्यसंग्रहः, आषाढे श्रावणे अल्पमेघः, अन्नं समर्घम्, धान्ये द्विगुणो लाभः, भाद्रपदे अष्टम्यां मेघः, आश्विने वर्षा, अन्नं महर्घम्, कार्तिकादिमासत्रये समरसाः, माघमासे अन्नमहर्घता, रोगपीडा महती, फाल्गुणे राजा प्रजा सुखी अन्नसमता ॥ १२४ ॥

भाषार्थ—कीलकसंवत्सरका स्वामी विष्णु, इस संवत्सरमें वर्षा मध्यम, चैत्रमासमें अन्नका भाव महंगा होवे, वैशाखमासमें रोग हो, मरुदेशमें दुर्भिक्ष हो, पश्चिमदिशामें अन्नादिका भाव सस्ता होवे, ज्येष्ठमासमें धान्यसंग्रह करे, आषाढश्रावणमें वर्षा थोडी होवे, अन्न सस्ता हो, धान्यमें दुना लाभ हो, भाद्रमासमें अष्टमीको मेघ वर्षे, आश्विनमासमें वर्षा होवे, अन्न महंगा हो, कार्तिक, मार्ग, पौषमें अन्नका भाव सस्ता होवे, माघमासमें अन्न महंगा हो, रोग बहुत फैले, फाल्गुणमें राजा प्रजा सुखी हो, अन्नका भाव सम रहे ॥ १२४ ॥

सौम्य ४३ संवत्सरफलम् ।

जायन्ते सर्वधान्यानि स्वस्थं च निरुपद्रवम् ॥
सौम्यवृष्टि वरारोहे सौम्ये सौम्यं प्रजायते ॥१२५॥

भाषार्थ—अब सौम्यसंवत्सरका फल कहते हैं. । शिवजी कहे हैं कि हे वरारोहे ! सौम्यनाम संवत्सरमें सम्पूर्ण धान्य उपजें, उपद्रव कुछ नहीं, जगतमें स्वस्थता होवे, उत्तम वर्षा व उत्तम समय होवे ॥ १२५ ॥

तथाच ।

सौम्यः ४३, रुद्रः स्वामी, अल्पमेघः, गावः अ-
ल्पक्षीराः, वृक्षे अल्पफलम्, चैत्रे महर्घता, वैशा-
खे उद्दंडवायुः, ज्येष्ठे विग्रहः, प्रजापीडा, आषाढे
अल्पमेघः, अन्नं महर्घम्, श्रावणे महामेघः, धा-
न्ये द्विगुणो लाभः, सर्वधान्यसमता, रसमहर्घ-
ता, भाद्रे खंडवृष्टिः, अन्नदुर्भिक्षम्, आश्विने
राजविरोधः, लोकपीडा, मार्गे विषमता, अन्नसं-
ग्रहः, धान्ये द्विगुणो लाभः, सर्वरसधातुसमर्घता,
कार्तिकादिमास ४ चतुष्टये समता, परं राजवि-
द्वैरं, फाल्गुणे उद्दंडवायुः, पश्चिमायां सुभिक्षम्,
सिन्धुदेशे राजविरोधः, अन्नसमर्घता ॥ १२६ ॥

भाषार्थ—सौम्यनाम संवत्सरका स्वामी रुद्र, इस संवत्सरमें थोडी वर्षा हो, गौवें थोडा दूध देवें, वृक्षोंमें फल थोडे होवे, चैत्रमासमें भाव महंगा हो, वैशाखमासमें वायु बहुत बहे, ज्येष्ठमासमें विग्रह हो, प्रजाको पीडा हो, आषाढमासमें जल थोडा वर्षे, अन्न महंगा होवे, श्रावणमें वर्षा बहुत होवे, धान्यमें दूना लाभ हो, सब धान्य समभावसे बिके, रस महंगे हो, भाद्रमासमें वर्षा खंडित हो, अन्न महंगा हो, आश्विनमासमें राजाओंमें विरोध हो' लोकमें पीडा हो, मार्गमें कठिनता हो, अन्न संग्रह करे, धान्यमें दूना लाभ हो, सर्वरस और धातु भावमें सस्ते हो, कार्तिक, मार्ग, पौष, माघ, इन महीनोंमें भाव सम हो, उपरांत राजा और वैद्योंमें वैर हो, फाल्गुणमें प्रचंड पवन चले, पश्चिममें भाव सस्ता हो, सिंधुदेशमें राजविरोध हो, अन्नका भाव सस्ता होवे ॥ १२६ ॥

साधारण ४४ संवत्सरफलम् ।

जलपूर्णो भवेन्मेघो वर्षते च दिने दिने ॥
साधारणे समर्घं स्याद्वेद्वे नाऽत्र संशयः ॥१२७॥

भावार्थ—अब साधारणनाम संवत्सरका फल कहते हैं । साधारण संवत्सरमें मेघ जलसे पूर्ण होवे, और दिन दिन जल वर्षे तथा अन्न सस्ता होवे इसमें संदेह नहीं ॥ १२७ ॥

तथाच ।

साधारणः ४४, रविः स्वामी, चैत्रे धान्यमंदता, वैशाखे ज्येष्ठे च उत्पातः, भूमिकंपः, रोगवृद्धिः, राजविरोधः, धान्यमहर्घता, आषाढे वायूदंडः, रौरवम्, क्वचिदल्पवृष्टिः, श्रावणेमहती वर्षा, अन्नसमता, भाद्रपदे अल्पमेघः, आश्विने अल्प धान्यनिष्पत्तिः, कार्तिकादिमासद्वयं मध्यमं, अकस्माद्राजविग्रहः, अन्नमहर्घता ॥ १२८ ॥

भावार्थ—साधारणनाम संवत्सरका स्वामी रवि, इस संवत्सरमें अन्न मन्दता, वैशाख ज्येष्ठमासमें उत्पात, भूकंप, रोगकी वृद्धि, राजविरोध होवे, अन्नका भाव महंगा, आषाढमासमें प्रचंड पवन चले, न रहे, कहीं, कहीं थोड़ा वर्षा होवे, श्रावणमासमें वर्षा बहुत होवे, अन्न सम रहे. भाद्रपदमासमें अल्प थोड़ा वर्षे, आश्विनमासमें धा[illegible] होवे हैं, कार्तिक मार्गशिर इन दो महीनोंमें भाव मध्यम कहीं राजाओंमें विग्रह हो, अन्न तेज होवे ॥ १२८ ॥

विरोधकृत ४५ संवत्सरफलम् ।

माघवा वर्षते देवि देशे वै खंडमंडले ॥
अहिक्षेत्रे कान्यकुब्जे विरोधी कृपिनाशकृत् ॥१२९॥

भाषार्थ—अब विरोधकृत्‌नाम संवत्सरका फल कहे हैं, श्रीशिवजी पार्व तीसे कहे हैं कि हे देवि ! विरोधकृत्‌नाम संवत्सरमें पृथ्वीमंडलके दे- में मेघोंसे खंडवृष्टि होवे, अहिक्षेत्र (नागपूर) तथा कान्यकुब्जदेशमें षिका विनाश होवे ॥ १२९ ॥

तथाच ।

विरोधकृत ४५, चन्द्रः स्वामी, कोंकणदेशे मेद- पाटमंडले मध्यदेशे महारौरवम्, परस्परगज- विग्रहः, चैत्रादिमासत्रये अन्नसमता, आषाढे अल्पमेघः, श्रावणे महावर्षा, अन्नसमर्घता, भा- द्रपदे मेघः, अन्नसमता. सर्वधातुमहर्घता, फा- ल्गुणे देशविरोधः, मार्गे वैषम्यम्, मंजिष्ठा पूगीफलपट्टसूत्रदंतमहद्वस्तुतुरंगमादिमहर्घता १३०

भाषार्थ—विरोधकृत्‌नाम संवत्सरमें चन्द्रमा स्वामी, कोंकणदेश, मेद- पाटमंडल और मध्यदेशमें घोर काल पडे, राजाओंमें परस्पर विगाड होवे चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ मासमें अन्नका भाव सम, आषाढमासमें वर्षा थोडी, श्रावणमासमें बहुत वर्षा, अन्न सस्ता, भाद्रमासमें मेघ वर्षे, अन्नका भाव सम, सब धातु महंगे हो, फाल्गुणमासमें देशविरोध हो, मार्गमें विषमता हो मंजीठ, सुपारी, वस्त्र, दंत, ये बडी वस्तुयें व घोडा आदि वस्तुओंका भाव महंगा हो ॥ १३० ॥

परिधावी ४६ संवत्सरफलम् ।

सुभिक्षं क्षेममारोग्यं धनधान्यसमाकुलम् ॥
इष्टमित्रोपकारी च परिधावी वरानने ॥ १३१ ॥

भावार्थ—अब परिधावीनाम संवत्सरका फल कहें हैं, श्रीशिवजी पार्वतीके प्रति वर्णन करें हैं कि हे वरानने ! परिधावीनाम संवत्सरमें सुभिक्ष, क्षेम, आरोग्यता, तथा धनधान्यसे पृथिवी पूर्ण हो और इष्ट मित्रोंमें उपकारकी वृद्धि होवे ॥ १३१ ॥

तथाच ।

परिधावी ४६, भौमः स्वामी, चैत्रादिमासचतुष्के अन्नसमता, तत्र संग्रहः कार्यः, लोके रोगभयं, मरुदेशे मारीभयं, चतुष्पदमहिषीतुरंगहस्तीनां पीडा, श्रावणे भाद्रपदे अल्पमेघः, खंडवृष्टिः, अन्नमहर्घता, सर्वरसमहर्घता, सर्वे धातवः समर्घाः, कार्तिकादिमासपंचके धान्यसमता, सिंधुदेशाद्धान्यागमः ॥ १३२ ॥

भावार्थ—परिधावीनाम संवत्सरमें मंगल स्वामी, चैत्र आदि ४ मास (चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ) में अन्नका भाव सम, अन्न संग्रह करे, लोकमें रोगभय हो, मरुदेशमें मारीभय हो, चौपाये भैंस, घोडा, हाथी इनको पीडा हो, श्रावण भाद्रपदमें थोडी वर्षा हो, वर्षा खंडित और अन्न महँगा हो, सब रस महँगे और सब धातु सस्ते हो, कार्तिक, मार्ग, पौष, माघ, फाल्गुनमासमें धान्यका भाव सम हो, सिन्धुदेशसे धान्यका आगमन होवे ॥ १३२ ॥

प्रमादी ४७ संवत्सरफलम् ।

निष्पत्तिः सर्वसस्यानां रसानां च महर्घता ॥
सुभिक्षं च तथा सौख्यं प्रमादिनि न संशयः॥१३३॥

भावार्थ—अब प्रमादीनाम संवत्सरका फल कहे हैं। प्रमादीनाम संव-र्में सर्व प्रकारके सस्य (धान्य) की उत्पत्ति होवे, सब रस महंगे , सुभिक्ष तथा सुख हो, इसमें संशय नहीं ॥ १३३ ॥

तथाच ।

प्रमादी ४७, बुधः स्वामी, चैत्रे धान्यसमता, वैशाखज्येष्ठयोर्धान्यसंग्रहः, आषाढे अल्पमेघः, श्रावणस्यार्द्धे मेघवर्षा, अन्नं महर्घम् धान्ये त्रिगुणलाभः, भाद्रपदे महामेघः, अन्नं समर्घं, आश्विनादिषण्मासेषु ६ सुभिक्षम्, सर्वरसमहर्घता, लोकः सुखी ॥ १३४ ॥

भावार्थ—प्रमादीनाम संवत्सरमें स्वामी बुध, इस संवत्सरमें चैत्रमासमें यभाव सम, वैशाखज्येष्ठमासमें धान्यका संग्रह करे, आषाढमासमें वर्षा ड़ी हो, आधे श्रावणमें मेघ वर्षा करें, अन्न महंगा होवे, धान्यमें तिगुना भ होवे, भाद्रमासमें वर्षा बहुत होवे, अन्नका भाव सस्ता हो, आश्विन, र्तिक, मार्ग, पौष, माघ, फाल्गुण इन महीनोंमें भाव सस्ता हो, सब रके रस महंगे हो, लोकमें सुख होवे ॥ १३४ ॥

आनन्द ४८ संवत्सरफलम् ।

नश्यन्ति सर्वसस्यानि सर्वधान्यमहर्घता ॥
घृतमर्घं च तैलं च ह्यानन्दे नन्दिताः प्रजाः ॥१३५

भावार्थ—अब आनन्दनाम संवत्सरका फल कहते हैं। आन[illegible]
संवत्सरमें सब सस्य (तृणधान्य) नाश होवे, और सब धान्य मह‍ंगे,
घी तेल आदि सस्ते हो, प्रजा आनन्दित होवे ॥ १३५ ॥

तथाच ।

आनन्दः ४८, गुरुः स्वामी, वर्षा वहुला, चैत्र-वैशाखे अन्नं समर्घम्, ज्येष्ठाषाढयोर्मध्यमवृष्टिः, श्रावणे महामेघः, भाद्रे खंडवृष्टिः, गोधूमा महर्घाः, आश्विने समर्घाः, धातुमहर्घता, कार्तिके अकस्माद्भयम्, मार्गशीर्षे लोकपीडा, पौषमाघयोर्मेघवर्षा, अन्नंसमर्घं, फाल्गुणे धान्यं महर्घम् ॥ १३६ ॥

भावार्थ—आनन्दनाम संवत्सरका स्वामी गुरु, इस संवत्सरमें वर्षा
बहुत हो, चैत्र वैशाखमें अन्नभाव सस्ता, ज्येष्ठ आषाढमें वर्षा
श्रावणमासमें वर्षा बहुत होवे. भाद्रमासमें खंडवृष्टि होवे, गेहूं
महंगा हो, आश्विनमासमें सस्ता भाव हो, धातुभाव महंगा हो,
मासमें अकस्मात् भय होवे, मार्गशिरमासमें लोक पीडित हो,
मासमें वर्षा होवे, अन्नका भाव सस्ता हो, फाल्गुणमें अन्न महंगा होवे

राक्षस ४९. संवत्सरफलम् ।

कोद्रवाः शालिमुद्गादि पीडितंच वरानने ॥
सर्वधान्यानि चार्घाणि राक्षसे पीडिताः प्रजाः

भावार्थ—अब राक्षसनाम संवत्सरका फल कहते हैं। शिवजी
कहते हैं कि हे पार्वति ! राक्षसनाम संवत्सरमें कोदो धान मूंग
पीडित हों अर्थात् वे प्रजाको प्राप्त न हो, हे पार्वती ! [illegible]
[illegible] अन्न हों, सस्ते होवें और प्रजा पीडित होवे ॥ १३७ ॥

तथाच ।

राक्षसः ४९, भृगुः स्वामी, धान्यसंग्रहः कार्यः, चैत्रे वैशाखे ज्येष्ठे तैलं महर्घम्, ज्येष्ठे आषाढे गुडशर्कराद्रव्यं महर्घं, श्रावणे अल्पमेघः, अन्नमहर्घता, भाद्रपदे महान्मेघः, अन्नसमर्घता, आश्विने समता, कार्तिके रोगार्तिः, मार्गादिमास ४ चतुष्टये धान्यसमर्घता, राजा प्रजा सुखी, फाल्गुणेसुभिक्षम् ॥ १३८ ॥

भाषार्थ—राक्षसनाम संवत्सरका स्वामी शुक्र, धान्यसंग्रह करे, चैत्र, [वै]शाख, ज्येष्ठमें तेल महंगा होवे, ज्येष्ठ आषाढमें गुड, शक्कर, द्रव्यका [भा]व महंगा होवे, श्रावणमें थोडी वर्षा, अन्न तेज, भाद्रमासमें बहुत वर्षा [अन्]न सस्ता, आसौजमें भाव सम, कार्तिकमें रोगपीडा, मार्ग, पौष, माघ, [फा]ल्गुणमें अन्नभाव सस्ता, राजा प्रजा सुखी, फाल्गुणमासमें अन्नादिभाव [स]स्ता होवे ॥ १३८ ॥

नल ५० संवत्सरफलम् ।

दुर्भिक्षं जायते घोरं धान्यमौषधिपीडितम् ॥
नले च धनधान्यानि समाख्यातं वरानने ॥१३९॥

भाषार्थ—अब नलनाम संवत्सरका फल कहे हैं । श्रीशिवजी पार्वती[जी]से कहे हैं कि हे वरानने ! नलसंवत्सरमें घोर अकाल पडे, धान्य जल[क]े औषधिसे पीडित होवे अर्थात् जल न मिलनेसे सूख जावे, धन धा[न्य] भाव महंगा होवे ॥ १३९ ॥

तथाच ।

नलः ५०, शनिः स्वामी, चैत्रे रोगपीडा, वायुः प्रबलः, वैशाखे अन्नसंग्रहः कार्यः, ज्येष्ठे राज्ञां परस्परं विरोधः, लोकः सुखी, आषाढे संग्रहः कार्यः, कार्तिके विक्रयः, मार्गादिमासत्रये अन्न समता, फाल्गुणे बालानां रोगः, तस्करभयम्, उत्तरदेशे दुष्कालः, पूर्वस्यां दुर्भिक्षम् ॥ १४० ॥

भाषार्थ—नलनाम संवत्सरका स्वामी शनि, चैत्रमासमें रोगपीडा, प्रबल वहे, वैशाखमें अन्न संग्रह करे, ज्येष्ठमासमें राजाओंका परस्पर विरोध होवे, लोक सुखी होवे, आषाढमें संग्रह करे, कार्तिकमें विक्रय, मार्ग, पौष, माघमासमें अन्नका भाव सम होवे, फाल्गुणमासमें बालकों रोग होवे, चोरोंसे भय हो, उत्तरदेशमें दुर्भिक्ष होवे, पूर्वदिशामें होवे ॥ १४० ॥

पिंगल ५१ संवत्सरफलम् ।

गावो हया विनश्यन्ति चान्ये च नटनर्तकाः ॥
मेघो न वर्षते तत्र पिंगले नाऽत्र संशयः ॥ १४१ ॥

भाषार्थ—अब पिंगलनाम संवत्सरका फल कहे हैं. पिंगलनाम संवत्सरमें गौवों और घोडोंका विनाश होवे, और अन्य नट व नाचनेवालोंका नाश होवे, मेघ वर्षा न करे, इसमें संशय नहीं ॥ १४१ ॥

तथाच ।

पिंगलः ५१, राहुः स्वामी, उच्चमुलताननागपुर मरुदिल्लीमंडलेषु मथुरायां पूर्वदेशेषु च दुर्भिक्षम्, सर्वधातुसमर्घम्, सर्वत्र विग्रहः, गुर्जरदेशे सम

घंता, सिंधुदेशाद्धान्यागमः, चैत्रे धान्यमहर्घता, प्रजापीडा, वैशाखादिमासत्रये अन्नसमर्घता, आषाढे श्रावणे अल्पमेघः, धान्ये चतुर्गुणो लाभः, भाद्रे खंडवृष्टिः, आश्विने समता, कार्तिकादिमास ५ पंचके अन्नमहर्घता ॥ १४२ ॥

भाषार्थ—पिंगलनाम संवत्सरका स्वामी राहु, उच्च मुल्तान, नागपुर, मरुदेश, दिल्लीमंडलमें, मथुराके पूर्वदेशोंमें दुर्भिक्ष होवे, मद्य धातु मन्दे भावसे विकें, सर्वत्र विग्रह होवे, गुजरातदेशमें सस्ता भाव होवे, सिन्धुदेशसे धान्यका आगम हो, चैत्रमासमें धान्यका भाव महंगा हो, प्रजाको पीडा हो, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढमासमें अन्नादिका भाव सस्ता होवे, आषाढ श्रावणमें मेघ थोडा जल देवें, धान्यमें चौगुना लाभ होवे, भाद्रमासमें वर्षा खंडित होवे, आश्विनमासमें भाव मध्यम हो, कार्तिक, मार्ग, पौष, माघ, फाल्गुणमासमें अन्नका भाव महंगा रहे ॥ १४२ ॥

कालयुक्त ५२ संवत्सरफलम् ।

प्रजानां जायते रोगः कालयुक्ते विशेषतः ॥
राजयुद्धं भवेद्घोरं प्रजानाशो वरानने ॥ १४३ ॥

भाषार्थ—अब कालयुक्तनाम संवत्सरका फल कहते हैं । शिवजी पार्वतीसे कहते हैं कि हे वरानने ! कालयुक्तनाम संवत्सरमें विशेष करके प्रजामें रोग होवे, राजाओंमें घोर युद्ध होवे और प्रजाका विनाश होवे ॥ १४३ ॥

तथाच ।

कालः ५२, केतुः स्वामी, अल्पमेघः, अल्पव्यापारः, चैत्रे वैशाखे ज्येष्ठे च धान्यसंग्रहः, धान्ये द्विगुणो लाभः, आषाढे अल्पमेघः, श्रावणे महा-

होवे, आषाढ श्रावणमें वर्षा थोडी हो वृष्टि खंडित हो जावे, [illegible] में वर्षा बहुत होवे, अन्नका भाव सस्ता होवे, मजीठ, सुपारी, [illegible] का भाव महंगा होवे, लोक सुखी हो, चौपाये सस्ते हो, [illegible] पीडा होवे ॥ १४८ ॥

दुर्मति ५५ संवत्सरफलम् ।

सुभिक्षं भुवि सामान्यं व्यवहारं प्रवर्तते ॥
भवेच मध्यमा वृष्टिर्दुर्मतीवत्सरे प्रिये ॥ १४९ ॥

भाषार्थ—अब दुर्मतिनाम संवत्सरका फल कहते हैं । [illegible] पार्वतीसे कहे हैं, कि हे प्रिये ! दुर्मतिनाम संवत्सरमें पृथिवीपर [illegible] रहे, अर्थात् अन्नादिका भाव सस्ता होवे, व्यवहार सामान्य होवे, वर्षा मध्यम होवे ॥ १४९ ॥

यथाच ।

दुर्मतिः ५५, भौमः स्वामी, चैत्रे वैशाखे च धान्यं समर्घम्, ज्येष्ठे अन्नसमता, आषाढे उद्दंडवायुः, श्रावणे अल्पमेघः, आश्विने सर्वरससमर्घता, धान्यसमता, कार्तिकादिमासद्वये यावत् सर्ववस्तुसमता, पौषादिमासद्वयं यावत् सर्वधातुसमर्घता ॥ १५० ॥

भाषार्थ—दुर्मतिनाम संवत्सरका स्वामी मंगल, चैत्र वैशाखमें ध[illegible] भाव सस्ता होवे, ज्येष्ठमें अन्नका भाव मध्यम होवे, आषाढमासमें प्रचं[illegible] [illegible]मासमें वर्षा थोडी हो, आसौजमें सब रस स[illegible] [illegible] कार्तिक मार्गमें सब वस्तुओंका भाव सम [illegible] होवे ॥ १५० ॥

दुन्दुभी ५६ संवत्सरफलम् ।

सुभिक्षं जायते स्वस्थं सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥
प्रजानां जायते सौख्यं दुन्दुभौ च न संशयः॥१५१॥

भापार्थ—अब दुन्दुभीनाम संवत्सरका फल कहें हैं । दुन्दुभी नाम त्सरमें सुभिक्ष हो. स्वास्थ्यता हो, सब प्रकारके उपद्रवोंसे युक्त पृथिवी , परंतु प्रजाजनोंको सुख होवे, इसमें संशय नहीं जानना ॥ १५१ ॥

तथात्र ।

दुन्दुभिः ५६, बुधः स्वामी, वर्षा बहुला, अन्नादिवस्तुसमर्घता, चैत्रादिमासत्रये अन्नसमर्घता, आषाढे द्विगुणो लाभः, अल्पमेघः, श्रावणे दिन ११ महावृष्टिः, भाद्रपदे दिन ८ मेघो वर्षति अन्नं समर्घम्, आश्विने अन्नं समर्घम्, रोगाः बहुलाः, मंजिष्ठामरिचानां समर्घता, कार्तिके अन्नं दुर्भिक्षम्, पश्चिमायां शुभम्, मार्गशीर्षे समर्घता, राज्ञां परस्परविरोधः, पौषादिमासत्रये समता ॥ १५२ ॥

भापार्थ—दुन्दुभिनाम संवत्सरका स्वामी बुध, इस संवत्सरमें वर्षा बहुत हो अन्न आदि वस्तुओंका भाव सस्ता हो, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठमें अन्न भाव सस्ता, आषाढमासमें दूना लाभ होवे, वर्षा थोडी होवे, श्रावणमासमें ग्यारह दिन बहुत वर्षा होवे, अन्न सस्ता हो, आश्विनमें अन्न सस्ता हो और रोग बहुत हो. मजीठ, मिर्च सस्ते भाव बिकें, कार्तिकमासमें अन्न महंगा हो, पश्चिम और अच्छा फल होवे, मार्गशिरमासमें भाव सस्ता होवे

राजाओंमें परस्पर विरोध हो, पौष. माघ फाल्गुणमासमें अन्न तिस
सम रहे अर्थात् बराबर होवे ॥ १५२ ॥

रुधिरोद्गारि ५७ संवत्सरफलम् ।

परस्परं नरेन्द्राणां संग्रामो दारुणो भवेत् ॥
सर्वक्षयोविशेपेण रुधिरोद्गारिवत्सरे ॥ १५३ ॥

भावार्थ—अब रुधिरोद्गारिनाम संवत्सरका फल कहें हैं. । रुधिरो
नाम संवत्सरमें राजाओंका परस्पर घोर संग्राम होवे, विशेषकरके इस
त्सरमें सर्व क्षय होवे, अर्थात् बहुत वस्तुओं और मनुष्योंका विनाश
जावे ॥ १५३ ॥

तथाच ।

रुधिरोद्गारी ५७, गुरुः स्मामी, राज्ञां परस्परवि·
रोधः, लोका देशान्तरं याति, परदेशाद्धान्यमा·
याति, चैत्रादिमासत्रये समर्घता, धातवः सम·
र्घाः, उत्तरे दुर्भिक्षम्, पश्चिमायां सुभिक्षम्, सि·
न्धुदेशे धान्यनिष्पत्तिः, आषाढशुक्लपक्षे महा·
मेघः, श्रावणे दिन १९ महावर्षा, भाद्रपदे खं·
डवृष्टिः, धान्ये त्रिगुणो लाभः, आश्विने समता,
रोगः स्वल्पः, कार्तिकादिमासपंचके अन्नं सम·
र्घम्, लोकपीडा, ॥ १५४ ॥

भावार्थ—रुधिरोद्गारिनाम संवत्सरका स्वामी गुरु, इस संवत्सरमें रा
जाओंका परस्पर विरोध होवे, प्रजालोग देशान्तर गमन करें, परदेशसे अ
आवे, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ इन तीन महीनोंमें सब वस्तु सस्ते भा
बिकें, धातुओंका भावभी सस्ता होवे, उत्तरदिशामें दुर्भिक्ष और पश्चि

...में सुभिक्ष होवे, सिन्धुदेशमें धान्यकी उत्पत्ति होवे, आषाढशुक्लपक्षमें
...र्षा बहुत होवे, श्रावणमासमें पन्द्रह दिन बहुत वर्षा होवे, भाद्रप-
...मासमें वर्षा खंडित हो जावे, धान्यमें तिगुना लाभ होवे, आश्विनमास
(कुंवार) में भाव सम हो, रोग थोडा होवे, कार्तिक, मार्ग, पौष, माघ,
फाल्गुणमासमें अन्नका भाव सस्ता हो, और लोक पीडासे युक्त होवे॥१५४

रक्ताक्ष ५८ संवत्सरफलम् ।

दुर्भिक्षं च महादेवि क्रूरचेष्टा नराधिपाः ॥
संग्रामं च करोत्युग्रं रक्ताक्षे नैव संशयः ॥ १५५ ॥

भावार्थ—अब रक्ताक्षनाम संवत्सरका फल कहे हैं. शिवजी पार्वतीसे कहे हैं हे महादेवि ! रक्ताक्षनाम संवत्सरमें दुर्भिक्ष हो, क्रूरचेष्टावाले राजा-लोग घोर संग्राम करें, इसमें संशय नहीं. ॥ १५५ ॥

तथाच ।

रक्ताक्षः ५८, शुक्रः स्वामी, चैत्रादिमासत्रये अन्नं समर्घम्, आषाढे महती जलवृष्टिः, अन्नं समर्घम्, श्रावणे अल्पमेघः, किंचिद्विग्रहः, भाद्रपदे अल्पवर्षा, रोगपीडा, आश्विने अन्नं समर्घम्, कार्तिकादिमासपंचके धान्यं महर्घम् ॥१५६॥

भावार्थ—राक्षसनाम संवत्सरका स्वामी शुक्र, । चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठमें अन्नका भाव सस्ता, आषाढमें बहुत वर्षा हो, अन्न सस्ता हो, श्रावणमासमें थोडी वर्षा हो, कुछ विग्रह होवे, भाद्रपदमें थोडी वर्षा हो, रोगसे पीडा होवे, आश्विनमासमें अन्नका भाव सस्ता हो, कार्तिक, मार्ग, पौष, माघ, फाल्गुणमें धान्यका भाव महंगा होवे, ॥ १५६ ॥

क्रोधन ५९ संवत्सरफलम् ।

रोगो मरणदुर्भिक्षं विविधोपद्रवैर्युतम् ॥
क्रोधने विषमं सर्वं मया ख्यातं सुलोचने ॥१५७॥

भाषार्थ—अब क्रोधननाम संवत्सरका फल कहे हैं, । शिवजी से कहते हैं कि हे सुलोचने ! क्रोधननाम संवत्सरमें रोग, मरण, विविध प्रकारके उपद्रवोंसे युक्त पृथिवी होवे, तथा सब वस्तुओंमें विषम हो, यह मैंने प्रगट किया है ॥ १५७ ॥

तथाच ।

क्रोधनः ५९, शनिः स्वामी, मन्दवृष्टिः, प्रजापीडा, चैत्रवैशाखे अल्पमेघः, अन्नसमर्घता, ज्येष्ठे मन्दरोगपीडा, अन्नसमता, आषाढश्रावणयोरल्पवर्षा, धान्ये द्विगुणो लाभः, भाद्रपदे मेघः, अन्नं समर्घम्, आश्विने रोगपीडा, कार्तिके विग्रहः, धान्यं समर्घम्, पौषे वणिक्पीडा, धान्ये द्विगुणो लाभः ॥ १५८ ॥

भाषार्थ—क्रोधननाम संवत्सरका स्वामी शनि, इस संवत्सरमें वर्षा मध्यम हो, प्रजाको पीडा हो, चैत्र वैशाखमें कुछ वर्षा हो, अन्न सस्ता हो, ज्येष्ठमासमें मन्दरोगसे पीडा होवे, आषाढ श्रावणमें थोडी वर्षा हो, धान्यमें दून. लाभ हो, भाद्रमासमें मेघ वर्षे, अन्न सस्ता हो, आश्विनमासमें रोगपीडा हो, कार्तिकमें विग्रह हो, अन्नका भाव सस्ता हो, पौषमासमें वणिक्जनोंको पीडा हो, धान्यमें दूना लाभ होवे ॥ १५८ ॥

क्षय ६० संवत्सरफलम् ।

मंडलं कुरुदेशं च कलिंजरसमान्वितम् ॥
क्षये क्षयन्ति सर्वत्र नान्यथा नगनन्दिनि ॥१५९॥

भापार्थ—अब क्षयनाम संवत्सरका फल कहते हैं । शिवजी पार्वतीसे वर्णन करते हैं. कि हे नगनन्दिनि ! क्षयनाम संवत्सरमें कुरुदेश. कलिंजदेशके मंडलमें सर्वत्र क्षय होवे इसमें अन्यथा बात नहीं जानना॥१५९॥

तथाच ।

क्षय ६०, राहुः स्वामी, चैत्रे करकापातः, वैशाखे उत्पातः, ज्येष्ठापाढयोः बालकरोगः, अल्पमेघः, अन्नसमर्घता, भाद्रपदे खंडवृष्टिः, आश्विने रोगोत्पत्तिः, सर्वधातुसमता, मध्यमः समयः, राजविरोधः, पश्चिमायां सुभिक्षम्, पूर्वस्यामन्नसमता ॥ १६० ॥

भापार्थ—क्षयनाम संवत्सर राहु स्वामी, चैत्रमें करकापात हो, वैशाखमें उत्पात हो, ज्येष्ठ आपाढमासमें बालकरोग हो, वर्षा थोडी हो, अन्नका भाव सस्ता हो, भाद्रमासमें वर्षा खंडित होवे, आसौजमें रोगकी उत्पत्ति हो, धातुयें सब समभावसे विकें, समय मध्यम हो, राजाओंमें विरोध हो, पश्चिममें सुभिक्ष (महा), पूर्वमें अन्न समभाव होवे, यह रुद्रजीकी बीसी लिखी, इस प्रकार यह साठि संवत्सरोंका फल लिखा ॥ १६० ॥

समयवाहनविचारः ।

चैत्रशुक्लप्रतिदाको जो वार हो वही संवत्सरका राजा होता है, वारानुसार वाहन होता है, संवत्सरका राजा यदि सूर्य हो तो अश्व वाहन समयका जानना, चन्द्र हो तो मृग, मंगल हो तो वृषभ, बुध हो तो सिंचानु, गुरु हो तो चातक, शुक्र हो तो दर्दुर, शनि हो तो महिढ वाहन जानना। परन्तु विशेष करके नीचे लिखे अनुसार संवत्सरका वाहन संवत्सरफल सुनाते समय एतद्देशवासीय ज्योतिषी (पंडित) लोग सुनाते हैं. सो वाहन प्रकार हम आगे लिखते हैं. ।

रविशुक्रे गजारूढे शनिसोमौ तुरंगमः ॥
भौमेज्यौ नावकश्चैव बुधे दोला प्रकीर्तिता ॥ १

भाषार्थ—रवि अथवा शुक्र संवत्सरका राजा हो तो संवत्सरका गज (हाथी) जानना, शनि वा चन्द्र हो तो घोडाका वाहन जानना, मंगल और गुरु यदि वर्षका राजा हो तो नौकाका वाहन ना, बुध हो तो संवत्सरका वाहन दोला (झूला अथवा डोला) कहा है।

वाहनफलम् ।

गजारूढो वत्सरश्च सुभिक्षं च प्रजासुखम् ॥
वर्षाकाले सुवृष्टिश्च सुखिनः सर्वजंतवः ॥ २ ॥

भाषार्थ—गज (हाथी) के वाहन जो संवत्सरका हो तो सुभिक्ष (दा] हो और प्रजाको सुखहो, वर्षाकालमें उत्तम वृष्टि हो, तथा सुखी रहें ॥ २ ॥

अश्वारूढो वत्सरश्च भूमिकंपो महाभयम् ॥
राजानो विग्रहं यांति वृष्टिनाशो महर्घता ॥ ३

भाषार्थ—घोडाके वाहन यदि संवत्सर हो तो भूमिकंप हो, विग्रह होवे, वर्षाका नाश हो, अन्नका भाव महंगा होवे ॥ ३ ॥

जनानां भ्रमिते सर्वे चतुष्पदाः प्रपीडिताः ॥
विफला सकला धात्री नौकावाहनवत्सरे ॥ ४

भाषार्थ—संवत्सर यदि नौकावाहन हो तो सम्पूर्ण मनुष्य और चौपायोंको पीडा हो, समस्त पृथिवी फलरहित होवे ॥ ४ ॥

यस्याऽब्दे वाहनं दोला हाहाभूता च मेदिनी ॥
दुर्भिक्षं सर्वदेशेषु संग्रामं खंडखंडयोः ॥ ५ ॥

भावार्थ—जिस वर्षमें संवत्सरका वाहन घोडा हो तो भूमिपर हाहा-
र हो और सब देशोंमें दुर्भिक्ष हो अर्थात् अकाल पडे, तथा खंडखंडमें
ग्राम (युद्ध) होवे ॥ ५ ॥

इति श्रीमदयोध्यामंडलान्तर्वर्तिलखीमपुरखीरीनिवासि-
ज्योतिर्वित्संहितनारायणप्रसादमिश्रविलिखितसांवत्सरी-
भाषाऽनुवादे संवत्सरफलवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ राजमंत्र्यादिफलवर्णनं नाम

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चैत्रादिमेषादिकुलीरतौलीमृगादिवाराधिपतिक्रमेण ॥ राजा च मंत्री ह्यथ सस्यनाथो रसाधिपो नीरसनायकश्च ॥ आर्द्रादिनाथो घननायकश्च धान्याधिपश्चापदिनादिवारः ॥ १ ॥

भावार्थ—अब राजा मंत्री आदियोंका फल वर्णन करनेके अर्थ प्रथमे
के जाननेके अर्थ कहते हैं। चैत्रशुक्लप्रतिपदाको जो वार हो वही
त्सरका राजा होता है, मेषसंक्रान्ति जिस दिन हो वही वार संवत्सरका
मंत्री होता है, कर्कसंक्रान्ति जिस दिन हो वह वार सस्याधिप कहिये, तुलाकी
संक्रान्ति जिस वारमें प्रवेश हो वही वार रसाधिप कहना, मकरसंक्रान्ति
जिस वारको प्रवेश हो वही वार नीरसाधिप कहा है, जिस वारको आर्द्रा-
प्रवेश हो वह वार मेघाधिप होता है, धनकी संक्रान्ति जिस वारमें हो वह
वार धान्याधिप कहिये, एवं सिंहसंक्रान्तिका वार दुर्गेश और कन्यासंक्रान्ति
का वार धनेश तथा मीनसंक्रान्तिका वार फलेश होता है ॥ १ ॥

राजफलम् ।

सूर्ये नृपे स्वल्पजलाश्च मेघाः स्वल्पं धान्यं फलाश्चमल्पवृक्षाः ॥ स्वल्पं पयो गोषु जनेषु पीडा चौराग्निबाधा निधनं नृपाणाम् ॥ १ ॥

भाषार्थ—संवत्सरका राजा सूर्य हो तो मेघ थोडा जल वर्षे, अन्न हो, वृक्षोंमें फल थोडे हो, गौवोंमें दूध थोडा हो, मनुष्योंमें पीडा, चोर अग्निसे बाधा (भय) और राजाओंका निधन हो ॥ १ ॥

चन्द्रे नृपे मंगलशोभनानि प्रभूतवृष्टिः प्रचुरं च धान्यम् ॥ सौख्यं जनानामुदयो नृपाणां प्रशाम्यंति व्याधिजरा नराणाम् ॥ २ ॥

भाषार्थ—संवत्सरका राजा चन्द्र हो तो सुंदर मंगल हो, वृष्टि बहुत तथा अन्न बहुत हो, मनुष्योंको सुख हो, राजाओंका उदय हो, व्याधी और जरा विनाश हो जावे ॥ २ ॥

भौमे वन्हिभयं नराणां चौराकुलं पार्थिवविग्रहश्च ॥ दुःखं प्रजाव्याधिवियोगपीडा स्वल्पं पयो मुञ्चति वारिवाहः ॥ ३ ॥

भाषार्थ—मंगल राजा हो तो मनुष्योंको अग्निसे भय हो, पीडा, राजाओंमें विग्रह, प्रजाको दुःख रोग और वियोगसे पीडा, मेघ थोडा जल वर्षे ॥ ३ ॥

बुधस्य राज्ये मंगलं महीतलं गृहे गृहे भूरि विवाहमंगलम् ॥ प्रकुर्वते देवद्विजार्चनं नराः स्वास्थ्यं सुभिक्षं धनधान्यसंकुलम् ॥ ४ ॥

भावार्थ—संवत्सरका राजा बुध हो तो पृथ्वीपर जल बहुत हो, घर बहुतायतसे विवाहमंगल हों, सम्पूर्ण मनुष्य देव ब्राह्मणोंका पूजन करें, म्यता हो और अन्नादिका भाव सस्ता हो, पृथ्वी धन धान्यसे पूर्ण ॥ ४ ॥

गुरौ नृपे वर्षति कामदं जलं महीतले कामदुघाश्च धेनवः ॥ यजन्ति विप्रा बहवोऽग्निहोत्रिणो महोत्सवं सर्वजनेषु वर्तते ॥ ५ ॥

भावार्थ—संवत्सरका राजा बृहस्पति हो तो समयपर उत्तम वर्षा हो, मिंडलमें गौवें बहुत दूध देवें, विप्रलोग अग्निहोत्रादिसे बहुत यजन सम्पूर्ण मनुष्योंमें महाउत्सव होवे ॥ ५ ॥

शुक्रस्य राज्ये बहुसस्यसंकुला प्रभूततोयाम्बुधरा धरित्री ॥ फलन्ति वृक्षा बहुगोप्रसूतिर्वसुन्धरा पार्थिवसौख्यसंयुता ॥ ६ ॥

भावार्थ—संवत्सरका राजा शुक्र हो तो पृथिवी बहुत सस्यसे पूर्ण हो, त जल धरामंडलमें वर्षे, वृक्षोंमें फल बहुत हो, गौवें बहुत व्यावें, राजसुखसे युक्त हो. ॥ ६ ॥

शनैश्चरे भूमिपतौ सकृज्जलं प्रभूतरोगैः परिपीडिता जनाः ॥ युद्धं नृपाणां बहु तस्कराद्भयं भवन्ति लोकाः क्षुधया प्रपीडिताः ॥ ७ ॥

भावार्थ—यदि शनैश्चर संवत्सरका राजा हो तो एक वार जलकी वर्षा , बहुत रोगोंसे मनुष्य पीडित होवें, राजाओंका युद्ध हो, चोरोंसे भय हुत हो, लोकजन क्षुधासे पीडित होवें ॥ ७ ॥

मंत्रिफलम् ।

नृपभयं गदतोऽपि हि ... ।त्प्रचुरधान्यः
महीतले ॥ रसचयं हि समर्घतमं तदा रविरमा
त्यपदं हि समागतः ॥ १ ॥

भाषार्थ—यदि सूर्य मंत्रिपदको प्राप्त हो तो राजभय, रोगभय,
भय होवे, बहुत धान्य व धन आदि पृथिवीपर होवे, सम्पूर्ण र
भावमें सस्ते होवें, ॥ १ ॥

शशिनि मंत्रिगते बहुसस्यवत्यपि धरा रमते
सुखमंडिता ॥ वियति वारिधरा बहुवर्षिणो ज-
नपदा सुखराशिशुशोभिताः ॥ २ ॥

भाषार्थ—यदि चन्द्रमा संवत्सरका मंत्री हो तो बहुत सस्य हो,
वीपर सुख हो, मेघ बहुत जल वर्षें, मनुष्य अनेक सुखोंसे सुशोभित होवें

अवनिजो ननु मंत्रिपदं गतो भवति दस्युगद
दिजवेदना ॥ जनपदेषु जयं सुखसंचयं न व
गोषु पयो द्विजकर्म च ॥ ३ ॥

भाषार्थ—मंगल यदि संवत्सरका मंत्री हो तो मनुष्योंको
रोग आदिसे पीडा उत्पन्न हो, तथा प्राणियोंमें जयपूर्वक अनेक
गौओंमें दूध बहुत न हो, ब्राह्मण अपना कर्म न करें ॥ ३ ॥

शशिसुते शुभमंत्रिसमागते स्वपतिना कु
मदनक्रियाम् ॥ बहुधनं बहुवारिसमन्वितं यथ
मरिचणान्नमहर्घता ॥ ४ ॥

भावार्थ—यदि बुध संवत्सरका मंत्री हो तो स्त्रियां अपने पतिसे पूर्वक भोगविलास करें, लोक बहुत धन और बहुत जलसे युक्त हो, मसूर चना ये अन्न महंगे हो ॥ ४ ॥

विविधधान्ययुता खलु मेदिनी प्रचुरतोयघना मुदिता भवेत् ॥ नृपतयो जनपालनतत्पराः सुरगुरौ ननु मंत्रिसमागते ॥ ५ ॥

भावार्थ—यदि बृहस्पति संवत्सरका मंत्री हो तो पृथिवी नाना प्रकार धान्यसे युक्त हो और मेघ बहुत जल वर्षे. राजालोग प्रजापालनमें र हो ॥ ५ ॥

भृगुसुते ननु मंत्रिपदं गते शलभमूषकशूकरमाहिषैः ॥ भवति धान्यसमर्घतया भयं जनपदेषु जलं सरितोऽधिकम् ॥ ६ ॥

भावार्थ—संवत्सरका मंत्री यदि शुक्र हो तो टीडी, मूषक, शूकर, भैंसे करके मनुष्योंके भय हो. धान्यभाव सस्ता हो, सरिताओंमें जल अ- होवे ॥ ६ ॥

रविसुते यदि मंत्रिणि पार्थिवा विनयसंरहिता बहुदुःखदाः ॥ न जलदा जलदा जनतापदा जनपदेषु सुखं धनजं क्वचित् ॥ ७ ॥

भावार्थ—यदि संवत्सरका राजमंत्री शनैश्चर हो तो विनयरहित राजा होवे, मनुष्य को बहुत दुःख प्राप्त हो. मेघ जल नहीं देवें, मनुष्योंको धनसे कुछ थोडा प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

धान्याधिपफलम् ।

सूर्ये धान्याधिपे जाते अल्पतोयप्रदा घनाः ॥
मापमुद्गतिलानां च महर्घं जायते ध्रुवम् ॥ १

भावार्थ—सूर्य यदि धान्याधिप हो तो मेघ थोडा जल दें मूंग, तिल निश्चय ये महंगे भाव विकें ॥ १ ॥

चन्द्रे धान्याधिपे जाते तोयपूर्णा वसुन्धरा ॥
वर्द्धन्ते सर्वसस्यानि राजते विविधोत्सवैः ॥ २

भावार्थ—यदि चन्द्रमा धान्याधिप हो तो पृथिवी जलसे पूर्ण सर्व सस्य वृद्धिको प्राप्त हों, विविध प्रकारके उत्सवसे शोभित होवे।

गोधूमसर्षपा मुद्गतिलमापप्रवालकाः ॥
महर्घं जायते घोरं भौमे धान्याधिपे सति ॥ ३

भावार्थ—यदि भौम धान्याधिप हो तो गेहूं, सरसों, मूंग, उड़द, मूंगा ये बहुत महंगे हों ॥ ३ ॥

बहुसस्ययुता पृथ्वी रसानां च महर्घता ॥
नीतियुक्ताः सदा भूपा बुधे धान्याधिपे सति ॥ ४

भावार्थ—यदि बुध धान्याधिप हो तो पृथिवी बहुत सस्यसे युक्त रसवस्तु सब महंगे भाव विकें, राजालोग सर्वदा नीतिसे युक्त रहें।

गोधूमाः शालिमुद्गाश्च कंगुमापाश्च कोद्रवाः ॥
सुभिक्षं जायते देवि गुरौ धान्याधिपे सति ॥ ५

भावार्थ—हे देवि! यदि बृहस्पति धान्याधिप हो तो गेहूं, धान, मूंग, कंगनी, उड़द, कोदों ये सस्ते भाव विकें ॥ ५ ॥

सुभिक्षं जायते स्वास्थ्यं सर्वोपद्रवनाशनम् ॥
शुक्रे धान्याधिपे जाते महर्घं जायते ध्रुवम् ॥ ६

ार्थ—यदि शुक्र धान्याधिप हो तो सुभिक्ष हो, स्वास्थ्य हो, स
ा नाश हो, पीछेसे धान्यादि वस्तुओंका भाव महंगा होवे ॥ ६।

दुर्भिक्षं जायते तत्र कलहं देशविग्रहम् ॥
सौराष्ट्रदेशो नष्टश्च यत्र धान्याधिपः शनिः ॥ ७ ॥

पार्थ—यदि शनि धान्याधिप हो तो दुर्भिक्ष हो, कलह हो,
ग्रह हो और सोराष्ट्रदेशमें मनुष्यादि नष्ट होवे ॥ ७ ॥

सस्याधिपफलम् ।

सस्याधिनाथे तरणौ हि पूर्वं धान्यं समर्घं वह-
ोऽपि चौराः ॥ युद्धं नृपाणां जलदा जलाढ्याः
ल्पं च सस्यं वहुभूरुहाश्च ॥ १ ॥

ार्थ—यादि सस्यका स्वामी सूर्य हो तो पूर्व धान्य सस्ता हो,
बहुत हो, राजाओंसे युद्ध हो, मेघ जल बहुत वर्षें, सस्यधान्य थोडा
, वृक्षादिकी उपज बहुत होवे ॥ १ ॥

सस्याधिपे शीतकरे प्रजासुखं मेघः पयो मुंचति
ोपगोधुक्? ॥ देवद्विजाराधनतत्परा नृपा धरा
वेद्धान्यधनौघपूर्णा ॥ २ ॥

र्थ—जो सस्याधिप चन्द्रमा हो तो प्रजाको सुख हो, मेघ बहुत
बर्षें, देवता ब्राह्मण इनकी आराधना राजालोग करें और पृथिवी
न्यसमूहसे पूर्ण होवे ॥ २ ॥

धान्यपतौ धरणीसुते गजतुरंगखरोष्ट्रगवा-
॥ ननु भवेद्बहुरोग घनो जलं न समसौख्य-
पधान्यहृत् ॥ ३ ॥

धान्याधिपफलम् ।

सूर्ये धान्याधिपे जाते अल्पतोयप्रदा घनाः ॥
मापमुद्गतिलानां च महर्घं जायते ध्रुवम् ॥ १

भापार्थ—सूर्य यदि धान्याधिप हो तो मेघ थोडा जल वर्षे
मूंग, तिल निश्चय ये महंगे भाव विकें ॥ १ ॥

चन्द्रे धान्याधिपे जाते तोयपूर्णा वसुन्धरा ॥
वर्द्धन्ते सर्वसस्यानि राजते विविधोत्सवैः ॥ २

भापार्थ—यदि चन्द्रमा धान्याधिप हो तो पृथिवी जलसे
सर्व सस्य वृद्धिको प्राप्त हों, विविध प्रकारके उत्सवसे शोभित होंवे॥

गोधूमसर्षपा मुद्गतिलमापप्रवालकाः ॥
महर्घं जायते घोरं भौमे धान्याधिपे सति ॥ ३

भापार्थ—यदि भौम धान्याधिप हो तो गेहूं, सरसों, मूंग,
उडद, मूंगा ये बहुत महंगे हों ॥ ३ ॥

बहुसस्ययुता पृथ्वी रसानां च महर्घता ॥
नीतियुक्ताः सदा भूपा बुधे धान्याधिपे सति ॥ ४

भापार्थ—यदि बुध धान्याधिप हो तो पृथिवी बहुत सस्यसे युक्त
रसवस्तु सब महंगे भाव विकें, राजालोग सर्वदा नीतिसे युक्त रहें॥

गोधूमाः शालिमुद्गाश्च कंगुमापाश्च कोद्रवाः॥
सुभिक्षं जायते देवि गुरौ धान्याधिपे सति ॥ ५

भापार्थ—हे देवि! यदि बृहस्पति धान्याधिप हो तो गेहूं, धान,
कागना, उडद, कोदों ये सस्ते भाव विकें ॥ ५ ॥

सुभिक्षं जायते स्वस्थं सर्वोपद्रवनाशनम् ॥
शुक्रे धान्याधिपे जाते महर्घं जायते ध्रुवम् ॥ ६

भावार्थ—यदि शुक्र धान्याधिप हो तो सुभिक्ष हो, स्वास्थ्य हो, ... रोंका नाश हो, पीछेसे धान्यादि वस्तुओंका भाव महंगा होवे ॥ ६ ॥

दुर्भिक्षं जायते तत्र कलहं देशविग्रहम् ॥ सौराष्ट्रदेशो नष्टश्च यत्र धान्याधिपः शनिः ॥ ७ ॥

भाषार्थ—यदि शनि धान्याधिप हो तो दुर्भिक्ष हो, कलह हो, विग्रह हो और सोराष्ट्रदेशमें मनुष्यादि नष्ट होवे ॥ ७ ॥

सस्याधिपफलम् ।

सस्याधिनाथे तरणौ हि पूर्वं धान्यं समर्घं बहवोऽपि चौराः ॥ युद्धं नृपाणां जलदा जलाढ्याः स्वल्पं च सस्यं बहुभूरुहाश्च ॥ १ ॥

भावार्थ—यदि सस्यका स्वामी सूर्य हो तो पूर्व धान्य सस्ता हो, बहुत चोर हों, राजाओंमें युद्ध हो, मेघ जल बहुल वर्षे, सस्यधान्य थोडा वृक्षादिकी उपज बहुत होवे ॥ १ ॥

सस्याधिपे शीतकरे प्रजासुखं मेघः पयो मुंचति गोपगोधुक्? ॥ देवद्विजाराधनतत्परा नृपा धरा भवेद्धान्यधनौघपूर्णा ॥ २ ॥

भावार्थ—जो सस्याधिप चन्द्रमा हो तो प्रजाको सुख हो, मेघ बहुत ... करे, देवता ब्राह्मण इनकी आराधना राजालोग करें और पृथिवी धान्यसमूहसे पूर्ण होवे ॥ २ ॥

सस्यधान्यपतौ धरणीसुते गजतुरंगखरोष्ट्रगवा- ... ॥ ननु भवेद्बहुरोग घनो जलं न समसौख्य- ... पधान्यहृत् ॥ ३ ॥

धान्याधिपफलम् ।

सूर्ये धान्याधिपे जाते अल्पतोयप्रदा घनाः ॥
मापमुद्गतिलानां च महर्घं जायते ध्रुवम् ॥ १ ॥

भापार्थ—सूर्य यदि धान्याधिप हो तो मेघ थोडा जल वर्षे उड़द, मूंग, तिल निश्चय ये महंगे भाव विकें ॥ १ ॥

चन्द्रे धान्याधिपे जाते तोयपूर्णा वसुन्धरा ॥
वर्द्धन्ते सर्वसस्यानि राजते विविधोत्सवैः ॥ २ ॥

भापार्थ—यदि चन्द्रमा धान्याधिप हो तो पृथिवी जलसे पूर्ण होवे सर्व सस्य वृद्धिको प्राप्त हों, विविध प्रकारके उत्सवसे शोभित होवें ॥२॥

गोधूमसर्षपा मुद्गतिलमापप्रवालकाः ॥
महर्घं जायते घोरं भौमे धान्याधिपे सति ॥ ३ ॥

भापार्थ—यदि भौम धान्याधिप हो तो गेहूं, सरसों, मूंग, तिल उड़द, मूंगा ये बहुत महंगे हो ॥ ३ ॥

बहुसस्ययुता पृथ्वी रसानां च महर्घता ॥
नीतियुक्ताः सदा भूपा बुधे धान्याधिपे सति ॥ ४ ॥

भापार्थ—यदि बुध धान्याधिप हो तो पृथिवी बहुत सस्यसे युक्त होवे रसवस्तु सब महंगे भाव विकें, राजालोग सर्वदा नीतिमें युक्त रहें ॥४॥

गोधूमाः शालिमुद्गाश्च कंगुमापाश्च कोद्रवाः ॥
सुभिक्षं जायते देवि गुरौ धान्याधिपे सति ॥ ५ ॥

भापार्थ—हे देवि! यदि बृहस्पति धान्याधिप हो तो गेहूं, धान, मूंग, कांगन, उड़द, कोदों ये सस्ते भाव विकें ॥ ५ ॥

सुभिक्षं जायते स्वस्थं सर्वोपद्रवनाशनम् ॥
शुक्रे धान्याधिपे जाते महर्घं जायते ध्रुवम् ॥ ६ ॥

भावार्थ—यदि शुक्र धान्याधिप हो तो सुभिक्ष हो, स्वास्थ्य हो, सब द्रव्योंका नाश हो, पीछेसे धान्यादि वस्तुओंका भाव महंगा होवे ॥ ६॥

दुर्भिक्षं जायते तत्र कलहं देशविग्रहम् ॥
सौराष्ट्रदेशो नष्टश्च यत्र धान्याधिपः शनिः ॥ ७ ॥

भावार्थ—यदि शनि धान्याधिप हो तो दुर्भिक्ष हो, कलह हो, देशमें विग्रह हो और सोराष्ट्रदेशमें मनुष्यादि नष्ट होवे ॥ ७ ॥

सस्याधिपफलम् ।

सस्याधिनाथे तरणौ हि पूर्वं धान्यं समर्घं बहवोऽपि चौराः ॥ युद्धे नृपाणां जलदा जलाढ्याः स्वल्पं च सस्यं बहुभूरुहाश्च ॥ १ ॥

भावार्थ—यदि सस्यका स्वामी सूर्य हो तो पूर्व धान्य सस्ता हो, चोर बहुत हो, राजाओंसे युद्ध हो, मेघ जल बहुत वर्षे, सस्यधान्य थोडा उपजे, वृक्षादिकी उपज बहुत होवे ॥ १ ॥

सस्याधिपे शीतकरे प्रजासुखं मेघः पयो मुंचति गोपगोधुक्? ॥ देवद्विजाराधनतत्परा नृपा धरा भवेद्धान्यधनौघपूर्णा ॥ २ ॥

भावार्थ—जो सस्याधिप चन्द्रमा हो तो प्रजाको सुख हो, मेघ बहुत जलवृष्टि करें, देवता ब्राह्मण इनकी आराधना राजालोग करें और पृथिवी धन व धान्यसमूहसे पूर्ण होवे ॥ २ ॥

प्रथमधान्यपतौ धरणीसुते गजतुरंगखरोष्ट्रगवामपि ॥ ननु भवेद्बहुरोग घनो जलं न समसौख्यकरं नृपधान्यहृत् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—यदि सस्याधिप मंगल हो तो हाथी, घोडा, गर्दभ, गौवें इनको रोग बहुत होवे, और बहुत जल नहीं वर्षे, सुभिक्ष नहीं होवे तथा तुष (भूसीवाला) धान्य नहीं होवे ॥ ३ ॥

जलधरा जलराशिमुचो भृशं सुखसमृद्धियुतं निरुपद्रवम् ॥ द्विजगणः स्तुतिपाठकरः सदा प्रथमसस्यपतौ सति बोधने ॥ ४ ॥

भाषार्थ—यदि प्रथम सस्याधिप बुध हो तो मेघ उत्तम वृष्टि करें, सुखकी वृद्धि हो, उपद्रव कुछ नहीं होवे, ब्राह्मणलोग स्तुतिपाठ सदा करें॥४॥

सस्यपतौ सुरराजपुरोहिते सकलसौख्यकरः श्रुतिपूर्वकः ॥ जलधरा जलदा बहुसस्यदा रसपयांसि बहूनि वसूनि वै ॥ ५ ॥

भाषार्थ—यदि बृहस्पति सस्यपति हो तो सकल सौख्य करे और मेघ बहुत जल वर्षे, रस, दुग्ध, धनादि पदार्थ बहुत हों ॥ ५ ॥

शुक्रो यदा धान्यपतिर्धरायां मेघो जलं वर्षति शोभनं च ॥ गोधूमशालीक्षुघनाप्रियंगुवृक्षेषु पुष्पाणि सुखप्रदानि ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो शुक्र सस्याधिप हो तो पृथ्वीपर बहुत उत्तम वर्षा होवे, और गेहूं, धान, ऊख, नागरमोथा, कागनी, और वृक्षोंमें फल फूल सुखप्रद उत्पन्न होवें ॥ ६ ॥

रविसुते यदि धान्यपतौ जनो नृपतिभिः परिपीडितविग्रहः॥ गदभयं तुपधान्यहरं सदा दुरितवादविवादयुता नराः ॥ ७ ॥

भावार्थ—यदि शनैश्चर सस्याधिप हो तो मनुष्य राजासे परिपीडित होवे और विग्रह हो, रोगभय होवे और भूसीवाले धान्य नहीं हों, सदा पाप वादविवादकरके मनुष्य युक्त हो ॥ ७ ॥

अथ मेघाधिपफलम् ।

रवौ मेघाधिपे जाते स्वल्पतोयप्रदा घनाः ॥
स्वल्पं धान्यं भवेल्लोके भयं च भूतले सदा ॥ १ ॥

भावार्थ—यदि सूर्य मेघाधिप हो तो मेघ थोडा जल वर्षे, लोकमें थोडा धान्य होवे और सदा पृथ्वीपर भय हो ॥ १ ॥

चन्द्रे मेघाधिपे जाते बहुतोयप्रदा घनाः ॥
नन्दन्ति पार्थिवाः सर्वे प्रजानां च सुखं सदा ॥ २ ॥

भावार्थ—चन्द्रमा मेघाधिप होनेसे मेघ बहुत वर्षा करें, सब राजालोग आनन्दित होवे, प्रजा सदा सुखी रहे ॥ २ ॥

अवनिजे जलदस्य पतौ भुवि श्रुतिविचारविहीनपराभवाः ॥ क्वचिदपि प्रचुरं जलमल्पकं क्वचिदपि प्रचुरं बहुतापदम् ॥ ३ ॥

भावार्थ—यदि मंगल मेघाधिप हो तो पृथ्वीपर ब्राह्मण वेदविचारसे विहीन होवे, कहीं वर्षा बहुत होवे, कहीं थोडी वृष्टि होवे, और बहुत ताप होवे, मनुष्य ये आपत्तिसे युक्त होवे ॥ ३ ॥

अमृतरश्मिसुते यदि वारिपे बहु जलं तुपधान्यरसादिकम् ॥ द्विजवरा यजनोत्सुकचेतसो विविधसौख्ययुता धरणी तदा ॥ ४ ॥

भावार्थ--यदि मेघाधिप बुध हो तो बहुत जल वर्षे और तुषधान्य व रस आदिक वस्तुयें बहुत हों, ब्राह्मणलोग यजन पूजन करनेमें मन लगावें, और नाना प्रकारके सुखसे युक्त पृथिवी होवे ॥ ४ ॥

गुरुरधिप्रियवृष्टिकरः सदाऽखिलविलासवती धरणी तदा ॥ श्रुतिविचारपरा नरपालका रससमृद्धियुताः किल मानवाः ॥ ५ ॥

भावार्थ--यदि बृहस्पति मेघाधिप हो तो बहुत उत्तम अर्थात् समयपर वर्षा होवे और सम्पूर्ण पृथिवीपर प्रजा सुखभोगयुक्त होवे, राजालोग वेदविचारमें तत्पर हों, तथा सम्पूर्ण मनुष्य रससमृद्धिसे युक्त होवें ॥ ५ ॥

भृगुसुतो जलदस्य पतिर्यदा जलयुता जलदा दिवि शोभिनः ॥ धननिधानयुता द्विजपालका नृपतयो जनतासुखदायकाः ॥ ६ ॥

भावार्थ--जो मेघाधिप शुक्र हो तो मेघ आकाशमंडलमें जलसे युक्त होकर शोभाको प्राप्त होवें, द्विजपालक जन धनसंपन्न होवें, राजाओंके प्रजाके मनुष्य सुखी होवें ॥ ६ ॥

रविसुते जलदस्य पतौ भवेदिरलवृष्टिवती वसुधा तदा ॥ मनसि तापकरो नृपतिः सदा विविधरोगयुता जनता तदा ॥ ७ ॥

भावार्थ--यदि शनैश्चर मेघाधिप हो तो पृथिवीपर वर्षा थोडीही हो, राजाके सदा ताप मनमें रहे, मनुष्योंको नाना प्रकारके रोग आक्रमण करें ॥ ७ ॥

रसाधिपफलम् ।

रसपतौ तरणौ धरणी तदा विरसभोगरताल्प पयोधरा ॥ वसनतैलघृतप्रियमानवाः सुखरसं च भुनक्ति महीपतिः ॥ १ ॥

भावार्थ—यदि सूर्य रसाधिप हो तो जल थोडा वर्षे, वस्त्र तेल घी ये वस्तु मनुष्योंको प्रिय हों, राजालोग सुख भोग करें ॥ १ ॥

यदि विधौ रसपे भुवि मानवो नवनवां युवतीं बुभुजे प्रियाम् ॥ जलधरा बहुवारिविधायका रसवती धनधान्यवती मही ॥ २ ॥

भावार्थ—यदि चन्द्रमा रसाधिप हो तो मनुष्य पृथिवीपर नूतन अपनी प्यारी युवतीसे भोगविलास करे अर्थात् विवाह बहुत होवें, मेघ बहुत वर्षा करें, पृथिवी रसवस्तुओंसे व धनधान्यसे भरपूर होवे ॥ २ ॥

यदि धरातनयो रसपो भवेन्नरसराशियुता जनता शुभा ॥ नरपतिर्विषमोजनतापदो न जलदो बहुवृष्टिकरो भुवि ॥ ३ ॥

भावार्थ—यदि धरातनय (मंगल) रसाधिप हो तो रस वस्तुयें बहुत नहीं होवें, राजालोग विषमता करें, जिससे मनुष्योंको क्लेश हो और पृथ्वीपर बहुत वर्षा नहीं होवे ॥ ३ ॥

रसपतौ द्विजराजसुते मही सुलभधान्यघृतादियुता जनाः ॥ प्रमुदिता वरनायकपालिता बहुजलाखिलदेशसुरक्षिताः ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो द्विजराजसुत (बुध) रसाधिप हो तो पृथिवीपर मनुष्य धान्य और घी आदिसे युक्त हो, राजालोग सुखी रहें, बहु जल वर्षे जिससे देश सुरक्षित होवे ॥ ४ ॥

यदि गुरौ रसपे जनसौख्यदे कमलवंति सरांसि तृणानि च ॥ जनपदा द्विजपूजनतत्परा गजवाजिरथोष्ट्रयुता नृपाः ॥ ५ ॥

भावार्थ—यदि बृहस्पति रसाधिप हो तो मनुष्योंको सुख हो, सरिताओंमें कमल बहुत उपजे, तृणपदार्थ बहुत उपजें, ब्राह्मणपूजनमें मनुष्य तत्पर हो, हाथी, घोडा, रथ, ऊंट, इनकरके राजालोग युक्त होवें ॥ ५ ॥

भृगुसुते रसनायकतां गते जनपदा जलतोषितमानसाः ॥ सुखसुभिक्षप्रमोदवती धरा धरणिपा नरपालनतत्पराः ॥ ६ ॥

भावार्थ—यदि शुक्र रसाधिप हो तो मनुष्योंके मन उत्तम वर्षा होनेसे प्रसन्न रहे, पृथिवी सुख और सस्ते भावके कारण प्रमोदवती हो, राजा प्रजापालनमें तत्पर हों. ॥ ६ ॥

रविसुते रसपे रससंक्षयो न जलदा गददाश्च पयोधराः ॥ अजगवां गजवाजिखरोष्ट्रहा जनपदेषु नरा न रसैर्युताः ॥ ७ ॥

भावार्थ—यदि शनैश्चर रसाधिप हो तो मेघ वर्षा नहीं करें, बकरी, गौ, हाथी, घोडा, गर्दभ, ऊंट, इनका विनाश हो, रसोंका अभाव हो ॥ ७ ॥

नीरसाधिपतौ सूर्ये त्रपुचन्दनयोरपि ॥
रत्नमाणिक्यमुक्तादेरर्घवृद्धिः प्रजायते ॥ १ ॥

भापार्थ—यदि नीरसाधिप सूर्य हो तो शीशा, चन्दन, रत्न, माणिक, मोती आदिका भाव वृद्धिको प्राप्त हो ॥ १ ॥

नीरसाधिपफलम् ।

शुक्लवर्णादिवस्तूनां मुक्तारजतवाससाम् ॥
अर्घवृद्धिः प्रजायेत शशांके नीरसाधिपे ॥ २ ॥

भापार्थ—यदि चन्द्रमा नीरसाधिप हो तो सपेद रंगकी वस्तुयें मोती, चांदी, वस्त्र, इनके भावकी वृद्धि हो ॥ २ ॥

नीरसेशो यदा भौमः प्रवालं रक्तवाससम् ॥
रक्तचन्दनताम्राणामर्घवृद्धिर्दिने दिने ॥ ३ ॥

भापार्थ—जो नीरसाधिप मंगल हो तो मूंगा, रक्त वस्त्र, लाल चन्दन इनका भाव दिन दिन वृद्धिको प्राप्त होवे ॥ ३ ॥

चित्रवस्त्रादिकं चैव शंखचन्दनपूर्वकम् ॥
अर्घवृद्धिः प्रजायेत नीरसेशो बुधो यदि ॥ ४ ॥

भापार्थ—यदि नीरसाधिप बुध हो तो चित्रवस्त्र आदिक और शंख, चन्दन आदि वस्तुओंके भावकी वृद्धि होवे ॥ ४ ॥

हरिद्रापीतवस्तूनां पीतवस्त्रादिकं च यत् ॥
नीरसेशो यदा जीवः सर्वेषां प्रीतिरुत्तमा ॥ ५ ॥

भापार्थ—जो नीरसाधिप बृहस्पति हो तो हरदी आदि पीत वस्तु और पीत वस्त्र आदि जो हैं उनमें सबकी प्रीति विशेष करके होवे ॥ ५ ॥

कर्पूरागरुगन्धानां हेममौक्तिकवाससाम् ॥
अर्घवृद्धिः प्रजायेत नीरसेशो भृगुर्यदि ॥ ६ ॥

भावार्थ—यदि नीरसेश शुक्र हो तो कपूर, अगर, चन्दन, सुवर्ण, मोती, वस्त्र आदि वस्तुओंका भाव वृद्धिको प्राप्त होवे ॥ ६ ॥

॥

त्रपुपिंडादिलोहानां कृष्णवस्त्रादिवस्तुनाम् ॥
अर्घवृद्धिः प्रजायेत मन्दे नीरसनायके ॥ ७ ॥

भापार्थ—जो शनैश्चर नीरस वस्तुओंका स्वामी हो तो सीसा और पिंड आदि लोहाका, कृष्णवस्त्रादिक वस्तुओंका भाव वृद्धिको प्राप्त होवे॥७॥

दुर्गेशफलम् ।

नयविशेपकरस्तरणिस्तदा गतभया नरराजपुरोगमाः ॥ समधिकेन तदा नृपतोन्यतः पथिपु संव्रजतां न भयं क्वचित् ॥ १ ॥

भापार्थ—जो सूर्य दुर्गेश (गढका स्वामी) हो तो राजालोग विशेष नीतिसम्पन्न हों और निर्भय रहे, तथा पथिकलोगोंको मार्गमें किसी प्रकारका भय नहीं होवे ॥ १ ॥

गढपतिर्मृगलांछनको यदा नृपसुराज्यविलासितपौरजाः ॥ वहुधनेक्षुजगोरसभोगिनो नरवरा नवर्णितविग्रहाः ॥ २ ॥

भापार्थ—जो चन्द्रमा गढपति हो तो मनुष्योंको राजासे सुख प्राप्त हो, अनेक धन और मधुर रस, गोरसके भोगसे युक्त हो, राजाओं मनुष्योंसे वर्णन किये जायगे ॥ २ ॥

अवनिजो गढनायकतां गतो विविधदुःखवियोगसमन्वितः ॥ जनपदेपु जनः क्रयविक्रये भयविशेपतया न फलं क्वचित् ॥ ३ ॥

भापार्थ—यदि मंगल गढनायक हो तो मनुष्य नाना प्रकारके दुःख और वियोगसे युक्त होवे और खरीदने वेचनेके काममें भय विशेप हो, फल कुछ न हो ॥ ३ ॥

नयसाम्यसुखं शशिजे प्रभौ भवति राशिगते विशेपतः ॥ शशिसुते यदि कोटकपालके प-
यपु द्रव्ययुजां न भयं क्वचित ॥ ४ ॥

भापार्थ—यदि बुध गढनायक हो तौ विपयसुख समान भावसे प्राप्त और पथिकजन लाभ सहित और निर्भय पूर्वक रहें अर्थात् धन और किसी प्रकारका भय न होवे ॥ ४ ॥

सुरगुरौ गढपे नयशोभिता नरवरा नरपाः कर-
पालिताः ॥ गिरिपु वै नगरेपु समं सुखं सुखमे-
ति द्विजशस्त्रवतां विशाम् ॥ ५ ॥

भापार्थ—यदि बृहस्पति गढनायक हो तो राजालोग नीतिके धर्मावके शोभाको प्राप्त हो, पर्वतों और नगरोंमें समान सुख प्राप्त होवे, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके अतिसुख प्राप्त होवे ॥ ५ ॥

नरवरेसुविशेषपतिर्यदा भृगुसुतो बहुसौख्यकरो नि-
मतः ॥ विनयवाणिजगेहसमः सुखो गतवनं नि-
कटेऽपि च दूरतः ॥ ६ ॥

भापार्थ—जो शुक्र गढपति होतो राजा प्रजा सुखसे युक्त होवें, व्यापारमें लाभ हो, गृहके समान वनमें जानें निकट व दूर एक समान सुख प्राप्त होवे ॥ ६ ॥

रविसुते गढपालिनि विग्रहो सकलदेशगताश्चलि-
ता जनाः ॥ विविधवैरिविशेपितनागराः कृपिधनं
न लभेद्भुवि कश्चन ॥ ७ ॥

त्रपुपिंडादिलोहानां कृष्णवस्त्रादिवस्तुनाम् ॥
अर्घवृद्धिः प्रजायेत मन्दे नीरसनायके ॥ ७ ॥

भापार्थ—जो शनैश्चर नीरस वस्तुओंका स्वामी हो तो सीसा और पिंड आदि लोहाका, कृष्णवस्त्रादिक वस्तुओंका भाव वृद्धिको प्राप्त होवे॥७॥

दुर्गेशफलम् ।

नयविशेषकरस्तरणिस्तदा गतभया नरराजपुरोगमाः ॥ समधिकेन तदा नृपतोन्यतः पथिपु संव्रजतां न भयं क्वचित् ॥ १ ॥

भापार्थ—जो सूर्य दुर्गेश (गढका स्वामी) हो तो राजालोग विशेष नीतिसम्पन्न हों और निर्भय रहे, तथा पथिकलोगोंको मार्गमें किसी प्रकारका भय नहीं होवे ॥ १ ॥

गढपतिर्मृगलांछनको यदा नृपसुराज्यविलासितपरिजाः ॥ वहुधनेक्षुजगोरसभोगिनो नरवरा नरवर्णितविग्रहाः ॥ २ ॥

भापार्थ—जो चन्द्रमा गढपति हो तो मनुष्योंको राजासे सुख प्राप्त हो, अनेक धन और मधुर रस, गोरसके भोगसे युक्त हो, राजाओं मनुष्योंसे वर्णन किये जायगे ॥ २ ॥

अवनिजो गढनायकतां गतो विविधदुःखवियोगसमन्वितः ॥ जनपदेपु जनः क्रयविक्रये भयविशेपतया न फलं क्वचित ॥ ३ ॥

भापार्थ—यदि मंगल गढनायक हो तो मनुष्य नाना प्रकारके दुःख और वियोगसे युक्त होवे और खरीदने वेचनेके काममें भय विशेष हो, फल कुछ न हो ॥ ३ ॥

विषयसाम्यसुखं शशिजे प्रभौ भवति राशिगते तु विशेषतः ॥ शशिसुते यदि कोटकपालके पथिषु द्रव्ययुजां न भयं क्वचित ॥ ४ ॥

भाषार्थ—यदि बुध गढनायक हो तौ विषयसुख समान भावसे प्राप्त हो, और पथिकजन लाभ सहित और निर्भय पूर्वक रहें अर्थात् धन मिले और किसी प्रकारका भय न होवे ॥ ४ ॥

सुरगुरौ गढपे नयशोभिता नरवरा नरपाः करपालिताः ॥ गिरिषु वै नगरेषु समं सुखं सुखमेति द्विजशस्त्रवतां विशाम् ॥ ५ ॥

भाषार्थ—यदि बृहस्पति गढनायक हो तो राजालोग नीतिके वर्तावसे शोभाको प्राप्त हो, पर्वतों और नगरोंमें समान सुख प्राप्त होवे, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके अतिसुख प्राप्त होवे ॥ ५ ॥

नरवरेभुविशेद्यपतिर्यदा भृगुसुतो बहुसौख्यकरो मतः ॥ विनयवाणिजगेहसमः सुखो गतवनं निकटेऽपि च दूरतः ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो शुक्र गढपति होतो राजा प्रजा सुखसे युक्त होवें, व्यापारमें लाभ हो, गृहके समान वनमें जानें निकट व दूर एक समान सुख प्राप्त होवे ॥ ६ ॥

रविसुते गढपालिनि विग्रहो सकलदेशगताश्चलिता जनाः ॥ विविधवैरिविशेषितनागराः कृषिधनं न लभेद्भुवि कश्चन ॥ ७ ॥

भापार्थ—जो रविसुत (शनैश्चर) गढनायक हो तो समस्त मनुष्योंमे विग्रह भाव होवे, नागरिकजन अनेक वैरियोंसे युक्त होवें, खेतीसे कुछ धन पृथिवीपर प्राप्त न होवे ॥ ७ ॥

फलेशफलम् ।

द्रुमवती फलपुष्पवती धरा प्रमुदिता फलभोगविरोधतः ॥ बहुजलं जलदो भुवि मुंचति क्वचिदपि प्रमितं फलपो रविः, ॥ १ ॥

भापार्थ—यदि सूर्य फलपति हो तो पृथिवी वृक्ष फल फूलसे यु होवे, फलभोगसे प्रजा आनन्दित होवे, बहुत जल पृथिवीपर मेघ व परन्तु किसी भागमें वृष्टि विशेष होवे, किसी भागमें नहींभी होवे ॥ १

यदि विधुः फलपो द्रुमराशयः फलयुता व्रतिभिः कुसुमैर्युताः ॥ द्विजमुखा वरभोगसमन्विता नृपतयो नयनाटनतत्पराः ॥ २ ॥

भापार्थ—यदि चन्द्रमा फलपति हो तो सम्पूर्ण वृक्ष फल फूल युक्त होवे, ब्राह्मणादि सब भोग करके युक्त होवे और राजालोग नी पूर्वक परिभ्रमण करें ॥ २ ॥

फलपतिर्यदि भूतनयो भवेत्सुबहुपुष्पफलान्वितमेदिनी ॥ गतभयान्र्तदेशजनास्तदा नृपतयो बहुविग्रहकारकाः ॥ ३ ॥

भापार्थ—यदि मंगल फलपति हो तो पृथिवी बहुतसे फल व फूल से युक्त होवे, आनर्तदेशके मनुष्य भयकरके रहित होवें और राजालो बहुतही युद्ध करें. ॥ ३ ॥

यदि बुधे फलपे फलमुत्तमं जलधरा जलराशि-
मुचस्तदा ॥ बहुतृणं कुसुमं कमलैर्युतं जनप-
दा जनसौख्यमुदान्विताः ॥ ४ ॥

भापार्थ—जो बुध फलपति हो तो फलोंकी उपज अच्छी हो और मेघ उत्तम वर्षा करें, तृणपदार्थ, फूल व कमल आदि बहुत हों, राजा प्रजा सुख और आनन्दसे युक्त होवें ॥ ४ ॥

सुरगुरुः फलनायकतां गतो गतभया वनराशिम-
हाद्रुमाः ॥ यजनयाजनकोत्सवमंदिराः श्रुतिवि-
चारपरा द्विजपूर्वकाः ॥ ५ ॥

भापार्थ—यदि बृहस्पति फलनायक हो तो वनमें सम्पूर्ण वृक्ष भली भांति फलें फूलें, मन्दिरोंमें पूजन यज्ञका उत्सव होवे, ब्राह्मणादि सब वेदविचार सम्पन्न होवें ॥ ५ ॥

यदि फलस्य पतौ भृगुजे धरा मृदुसुमामहीरु-
हराशयः ॥ बहुपथा नरनाथसुभोगदा द्विजवराः
श्रुतिपाठपरायणाः ॥ ६ ॥

भापार्थ—जो फलपति शुक्र हो तो सब वृक्ष फलें फूलें, राजालोग सुखपूर्वक परिभ्रमण करते हुये प्रजापालन करें, ब्राह्मणलोग वेदपाठ करनेमें तत्पर रहें ॥ ६ ॥

यदि शनिः फलपः कलहो भवेज्जनितपुष्पगणा-
स्तरवः सदा ॥ द्विजभयं नरतस्करजं तदा जन-
पदा जनराशिसमाकुला ॥ ७ ॥

भापार्थ—यदि शनैश्चर धनपति हो तो धनकी न्यूनता हो, ग
लोग सदा रोगसे युक्त हों, धनहीन वणिक् व्यापार करें, कृ
जीविका करनेवाले और द्विजवर (श्रेष्ठ ब्राह्मण) चिन्तासे युक्त रहे॥

इति श्रीमज्ज्योतिर्विद्पण्डितनारायणप्रसादमिश्रलिखित-
सांवत्सरीपद्धतिभाषाऽनुवादे राजमंत्र्यादिफलविचारो नाम
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ रोहिणीसंवत्सरवासादिविचारफल-
वर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

तत्रादौ रोहिणीवासफलम् ।

मेपसंक्रांतिके समय नक्षत्रसे अभिजितसमेत १।२।६।९।१५।१६।२२।२ ये नक्षत्र समुद्रमें, और ३।७।१०।१४।१७।२१।२४।२८ ये नक्षत्र तटमें और ४।६।११।१३।१८।२०।२५।२७ ये नक्षत्र संधिमें, और ५।१२।१९।२ ये नक्षत्र शृंगमें जानना । इनका फल आगे लिखते हैं.

समुद्रे तु महावृष्टिस्तटे वृष्टिः सुशोभना ॥
पर्वते विन्दुमात्रश्च खंडवृष्टिश्च सन्धिषु ॥ १ ॥

भापार्थ—रोहिणीका वास जो समुद्रमें हो तो वर्षा बहुत होवे, तटमें रोहिणीका वास हो तो उत्तम वृष्टि होवे, और रोहिणीका वास पर्वत अर्थात् शृंगमें हो तो विन्दुमात्र वर्षा हो, अर्थात् बूंदें पड जाया करें और सन्धिमें रोहिणीका वास हो तो वर्षा खंडित हो जावे, अर्थात् कहीं वर्षे कहीं बहुत कमती वर्षा होवे ॥ १ ॥

संवत्सरवासफलम् ।

यदि रोहिणी वास समुद्रमें हो तो संवत्सरका वास मालीके घर जानना, और संधिमें रोहिणीका वास हो तो वैद्यके घर, पर्वतमें रोहिणी-

का वास हो तो कुम्हारके घर, और तटमें रोहिणीका वास हो तो रजक (धोबी) के घर संवत्सरका निवास जानना

सर्ववस्तुसमर्घं स्यान्मालाकारगृहेऽब्दके ॥

संवत्सरका वास यदि मालाकारके घर हो तो सब वस्तुओंका भाव सस्ता रहे ॥

सर्वधान्यं महर्घं स्याद्वणिग्वेश्मनि संस्थिते ॥ २ ॥

भावार्थ—जो संवत्सरका वास वैश्यके घर होवे तो सब प्रकारके धान्य महंगे भाव विकें ॥ २ ॥

कुंभकारगृहे वासो तद्वर्षे मध्यमं फलम् ॥

यदि संवत्सरका वास कुंभकारके घर हो तो उस वर्षमें मध्यम फल होवे ॥

वापीकूपतडागानि नदीनदवनानि च ॥
जलपूर्णानि दृश्यन्ते वासो रजकवेश्मनि ॥ ३ ॥

भावार्थ—यदिसंवत्सरका वास रजक (धोबी) के घर हो तो वापी (बावली), कूप (कुवां), तडाग (तलाव), नदी, नद, वन ये सब जलसे पूर्ण दीख पडें ॥ ३ ॥

संक्रांतिके बारह मासके मुहूर्त इकट्ठा करनेसे समय मुहूर्त होता है । बारह मासकी तिथि इकट्ठी करके उसमें क्षयतिथि हीन करनेपर शेष समय दिन जानना ॥

आर्द्राप्रवेशे तिथ्यादिफलम् ।

तत्रादौ तिथिफलम् ।

प्रतिपद्यदि चार्द्रायाः प्रवेशे शुभदा रवेः ॥
द्वितीया सस्यवृद्धिः स्यात्तृतीया त्वन्निधनम्॥१॥

भापार्थ—प्रतिपदातिथिको यदि आर्द्राका सूर्य प्रवेश हो तो
जानना, । द्वितीयाको आर्द्राके सूर्यप्रवेश होनेसे सस्यकी वृद्धि होवे.
को प्रवेश होतो उपद्रव हो ॥ ४ ॥

चतुर्थ्यामशुभः प्रोक्तः पंचम्यामुत्तमोत्तमः ॥
षष्ठ्यां धनसमृद्धिः स्यात्सप्तम्यां क्षेममुत्तमम्

भापार्थ—चतुर्थीमें प्रवेश हो तो अशुभ कहना. पंचमीमें प्रवेश हो तो उत्तमोत्तम जानना, षष्ठीमें प्रवेश हो तो धनकी समृद्धि होवे, ... आर्द्राके प्रवेश हो तो उत्तम क्षेम हो ॥ ५ ॥

अष्टम्यां सस्यवृद्धिः स्यान्नवम्यां त्वीतिबाधनम् ॥
दशम्यां शुभदः प्रोक्तएकादश्यां सुभिक्षकृत ॥ ६ ॥

भापार्थ—अष्टमीमें आर्द्राके प्रवेश हो तो सस्यकी वृद्धि होवे, नवमीमें हो तो उत्पात होवे, दशमीमें हो तो शुभफल होवे, एकादशीमें हो तो भाव सस्ता होवे ॥ ६ ॥

द्वादश्यांशुभदाः प्रोक्त स्त्रयोदश्यां जलप्लवम् ॥
भूते त्वर्घविनाशाय पूर्णा पूर्णफलप्रदा ॥७॥
अमायां सस्यनाशाय इत्युक्तं जगमोहने ॥ ८ ॥

भापार्थ—द्वादशीमें आर्द्राके प्रवेश हो तो शुभ जानना, त्रयोदशीमें हो तो जल वृष्टि उत्तम हो, चतुर्दशीमें हो तो सस्ताईका विनाश हो, पूर्णिमामें हो तो पूर्ण फल होवे, अमावास्यामें होवे तो सस्यका विनाश होवे यह जगमोहन ग्रन्थमें कथन किया है ॥ ७ । ८ ॥

वारफलम् ।

रौद्रेऽर्के भानुवारे स्यात्प्रवेशे पशुनाशनम् ॥
सोमे सुभिक्षदः प्रोक्तो भौमे निधनमाप्नुयात् ॥ ९ ॥

बुधे क्षेमं सुभिक्षं च गुरौ चार्द्रां समृद्धयः ॥
शुक्रेशान्तिकरं प्रोक्तं मन्दे मन्दफलं भवेत् ॥१०॥

भापार्थ—रविवारके दिन यदि आर्द्रार्कप्रवेश हो तो पशुओंका विनाश होवे, सोमवारको आर्द्रार्कप्रवेश हो तो सुभिक्ष (मद्दा) होवे, मंगलवारको हो तो मरण होवे, बुधवारको हो तो सुभिक्ष हो अर्थात् भाव सस्ता होवे, बृहस्पतिको आर्द्रार्कप्रवेश हो तो समृद्धि होवे, शुक्रवारको हो तो शान्तिकर जानना, शनैश्चरको हो तो मन्द फल होवे ॥ ९ ॥ १० ॥

नक्षत्रफलम् ।

प्रवेशे रौद्रनक्षत्रे अश्विन्यां तु भयं भवेत् ॥
भरण्यामशुभं प्रोक्तं कृत्तिकायामवर्षणम् ॥ ११ ॥

भापार्थ—यदि आर्द्रानक्षत्रके सूर्य अश्विनीनक्षत्रमें प्रवेश हो तो भयदायक जानने. भरणीनक्षत्रमें अशुभ फल जानना, कृत्तिकामें आर्द्रार्कप्रवेश हो तो वर्षा नहीं होवे ॥ ११ ॥

धातृमृगे सुभिक्षं च रौद्रे रौद्रफलं भवेत ॥
पुष्ये जलाप्लुतो लोको अदितिश्चाभिवृद्धये ॥ १२ ॥

भापार्थ—रोहिणी और मृगशिरामें आर्द्रार्कप्रवेश हो तो सुभिक्ष होवे, आर्द्रामें हो तो उत्तम फल नहीं होवे, पुष्यमें हो तो जलवृष्टि विशेष होवे, पुनर्वसुमें हो तो वृद्धि होवे ॥ १२ ॥

सार्पभे दारुणं प्रोक्तं सर्वसौख्यविनाशनम् ॥
मघायां स्वल्पवृष्टिः स्याद्भगे कीर्तिकरं भवेत् ॥१३॥

भापार्थ—आश्लेषानक्षत्रमें आर्द्रार्कप्रवेश हो तो अशुभ [illegible]
सर्व [illegible] होवे, मघामें हो तो थोड़ी वर्षा होवे,
हो तो [illegible] १३ ॥

उत्तरात्रितये वृद्धिः करे सर्वसुखावहम् ॥
चित्रायां चित्रधान्यानि यदा शुभफलं भवेत् ।

भाषार्थ—तीनों उत्तरा (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा) में जो आर्द्राऽर्कप्रवेश हो तो वृद्धि होवे, हस्तनक्षत्रमें यदि आर्द्राऽर्कप्रवेश हो तो सर्व सुख प्राप्त हो, चित्रामें हो तो चित्रधान्य (अनेक प्रकारके अन्न) उपजें और शुभ फल होवे, ॥ १४ ॥

स्वातौ सस्याभिवृद्धिः स्याद्विशाखा रोगनाशनम् ॥ मैत्रे सर्वमहीपालाः सन्तुष्टाः सर्वजन्तवः ॥ १५ ॥

भाषार्थ—स्वातिनक्षत्रमें आर्द्राऽर्कप्रवेश हो तो सस्यकी वृद्धि होवे, विशाखामें हो तो रोगकी वृद्धि होवे, अनुराधामें हो तो सब राजा और सम्पूर्ण प्राणी सन्तुष्ट रहें ॥ १५ ॥

ऐन्द्रे सर्पभयं कुर्यान्मूले सर्वभयावहः ॥
जलर्क्षे चातिरुद्धः स्याच्छ्रवणर्क्षे शुभं भवेत् ॥ १६ ॥

भाषार्थ—ज्येष्ठानक्षत्रमें यदि आर्द्राऽर्कप्रवेश हो तो सर्पभय होवे, मूलनक्षत्रमें हो तो सब प्रकारका भय होवे, पूर्वाषाढामें हो तो मेघवर्षा बहुत हो अथवा अतिरुद्ध (रुकावट) हो, श्रवणमें यदि आर्द्राऽर्कप्रवेश हो तो शुभ फल जानना ॥ १६ ॥

वासवर्क्षे तु धरणी संपूर्णफलदायिनी ॥
शतभे जलसंकिर्णा पूर्वाभाद्रे न शोभनम् ॥ १७ ॥

भाषार्थ—धनिष्ठानक्षत्रमें आर्द्राऽर्कप्रवेश हो तो पृथिवी सम्पूर्ण फल देनेवाली होवे, शतभिषामें हो तो जल बहुत वर्षे, पूर्वाभाद्रपदमें हो तो शुभ नहीं जानना ॥ १७ ॥

नृपविध्वंसनादीनि पौष्णर्क्षे कुरुते फलम् ॥ १८ ॥

भावार्थ—रेवतीनक्षत्रमें यदि आर्द्राऽर्कप्रवेश हो तो राजविध्वंस आदि फल करे ॥ १८ ॥

योगफलम् ।

विष्कुंभे पंचके चैव रौद्रर्क्षप्रविशो यदि ॥
सुभिक्षं जलसंकीर्णं नृपाः स्वस्थाः शुभप्रदाः ॥१९॥

भावार्थ—विष्कुंभयोगसे पांच (विष्कंभ, प्रीति, आयुष्मान, सौभाग्य, शोभन इन) योगोंमें यदि आर्द्रार्कप्रवेश हो तो सुभिक्ष हो, जल बहुत वर्षे, राजालोग सुखी रहे और शुभ फल होवे ॥ १९ ॥

अतिगंडेऽतियुद्धं स्याद्वृद्धियोगे सुभिक्षकृत् ॥
शूलगंडौ दोषकरौ वृद्धिश्चैवातिशोभनम् ॥ २० ॥

भावार्थ—अतिगंडमें यदि आर्द्रार्कप्रवेश हो तो अतियुद्ध होवे, वृद्धियोगमें हो तो सुभिक्ष (सस्ता भाव) हो, शूल और गंडयोगमें हो तो दोषकर जानने, वृद्धियोगमें यदि आर्द्राऽर्कप्रवेश हो तो बहुत शुभ जानना ॥ २० ॥

व्याघाते जलनाशाय हर्षणे परितोषदः ॥
वज्रयोगे सर्वजनाः पीड्यन्ते वर्षणं क्वचित् ॥ २१ ॥

भावार्थ—व्याघातयोगमें हो तो जलका नाश होवे, हर्षणयोगमें आर्द्रार्कप्रवेश हो तो परितोष (आनन्द) प्रद जानने, वज्रयोगमें हो तो सब मनुष्य पीडित होवें और कहीं वर्षा होवे ॥ २१ ॥

सिद्धिः सर्वाभिवृद्धिः स्याद्व्यतीपाते धनक्षयः ॥
अल्पवृष्टिर्वरीयांस्तु परिघश्चार्थनाशकृत् ॥ २२ ॥

भावार्थ—सिद्धियोगमें यदि आर्द्राकप्रवेश हो तो सब प्रकारसे वृद्धि [illegible]
[illegible]त हो, व्यतीपातमें हो तो धनका क्षय होवे, वरियानयोगमें हो तो
[illegible]र्षा थोडी होवे, परिघयोगमें यदि आर्द्राकप्रवेश हो तो अर्थ (धन अथवा
[illegible]मना) का विनाश करे ॥ २२ ॥

शिवे शिवं स्यात्सस्यस्य सिद्धिसाध्यौ सुभिक्षदौ ॥
शुभशुक्लौ वृद्धिकरौ जनानन्दकरावुभौ ॥ २३ ॥

भावार्थ—शिवयोगमें यदि आर्द्राकप्रवेश हो तो कल्याण होवे, सिद्धि
साध्यमें हो तो सुभिक्ष (महा) होवे, शुभ और शुक्लयोगमें हो तो
वृद्धि करे, मनुष्योंको शुभ होवे ॥ २३ ॥

ब्रह्मयोगे मध्यफलं ऐंद्रे वृष्टिः प्रजायते ॥
वैधृतौ चेन्महार्द्रा सूर्यार्क्षं प्रविशेद्यदा ॥ २४ ॥
दुर्भिक्षं मरणं व्याधिं कुर्यादितत्फलं स्फुटम् ॥२५॥

भावार्थ—ब्रह्मयोगमें यदि आर्द्राऽर्कप्रवेश हो तो मध्यम फल जानना,
ऐन्द्रयोगमें हो तो वृष्टि अच्छी होवे, वैधृतियोगमें यदि आर्द्राप्रवेश हो तो
दुर्भिक्ष, मरण और व्याधि होवे, यह स्फुट फल कथन किया ॥ २४॥२५

वेलाफलम् ।

उदयकाले जगतां विपत्तिर्मध्यंदिने स्वल्प-
फला च पृथ्वी ॥ अस्तंगतार्द्रा बहुसस्यसम्पत्-
क्षेमं सुभिक्षं स्थिरं मध्यरात्रौ ॥ २६ ॥

भावार्थ—यदि उदयकालमें आर्द्राप्रवेश हो तो जगत्‌में [illegible]
हो, मध्याह्नमें हो तो पृथ्वीपर फल थोडे हों, अस्तकाल यदि आर्द्रा
[illegible] हो तो बहुत [illegible] धान्य होवे, मध्यरात्रिमें यदि आर्द्राप्रवेश हो
तो सुभिक्ष ([illegible]) होवे ॥ २६ ॥

जन्मे सौख्यं तथा क्लेशं रोगं लोकापवादकम् ।
सन्मानं विजयं हानिं कथितं पूर्वसूरिभिः ॥ ७३ ॥

भावार्थ—[illegible]को गिनाय उसमें एक घटाय देवे और [illegible] ... ...है, यदि १ शेष रहे तो लाभ हो, २ शेषसे [illegible], ३ शेषसे क्लेश, ४ शेषसे रोग, ५ शेषसे लोकापवाद, ६ शेषसे सन्मान, ७ शेषसे विजय, ८ शेषसे हानि, ऐसा पूर्व पंडितोंकरके कहा गया है ॥ ७३ ॥

शनिचाह्ननादिविचार ।

ऋक्षे यत्र शनिस्थितो भवति तद्वक्त्रे तदा योजयेत् ।
बाहौ दक्षिणके ततो भचतुरः षट् पादयोर्निर्दिशेत् ॥
पंचोरस्यथ तुर्यभान्यथ करे वामे त्रयं शीर्षगं ।
युग्मे लोचनयोर्द्वयं गुदगतं जन्मर्क्षे प्रोक्तं फलम् ॥ ७४ ॥

भावार्थ—जिस नक्षत्रपर शनि हो वह नक्षत्र मुखमें स्थापन करे, फिर चार नक्षत्र दक्षिण भुजापर रक्खे, फिर छः नक्षत्र दोनों पावोंमें स्थापन करे, पांच नक्षत्र मुखपर धरे, फिर चार नक्षत्र वामे हाथपर धरे, फिर तीन नक्षत्र शिरपर धरे, फिर दो नक्षत्र दोनों नेत्रोंपर धरे, दो नक्षत्र गुदामें स्थापन करे इस प्रकार स्थापन कर जहां जन्मनक्षत्र पड़ा हो उसके अनुसार फल कहे ॥ ७४ ॥

मुखे हानिर्जयो बाहौ [illegible] ॥
[illegible]

एक मासोत्तरं वर्षं दिनानां दशकं तथा
प्रत्येकऋक्षमाक्रम्य शनिर्गच्छाति सर्वतः ॥ ७६ ॥

भावार्थ—एक महीना एक वर्ष दश दिन तक शनैश्चर एक नक्षत्रपर स्थित रहता है इस प्रकार शनिकी गति सर्वत्र जानना ॥ ७६ ॥

सार्द्धवर्षद्वयं राशिमेकं सकलसम्मतम् ॥
त्रिंशद्वर्षाण्यभिव्याप्य राशिचक्रे भवेच्छनिः ॥७७

भावार्थ—ढाई वर्ष शनि एक राशिपर रहताहै ऐसा सबका सम्मत है तीस वर्ष बारहों राशियोंको शनि भोगता है ॥ ७७ ॥

एवं सौरेर्गतिं ज्ञात्वा फलं ब्रूयाद्विचक्षणः ॥
अभीष्टफललाभाय विनाशाय शुभस्य च ॥
शनेरिदं फलं प्रोक्तं स्वरशास्त्रादिसम्मतम् ॥ ७८ ॥

भावार्थ—इस प्रकार शनिकी गतिको जानकर पंडितजन फल कथन करे, इच्छित फल लाभके अर्थ, तथा शुभफलविनाशनिमित्त यह शनिका फल स्वरशास्त्र आदिके सम्मतसे कथन किया है ॥ ७८ ॥

रिष्फ १२ रूप १ धन २ भेषु भास्करिः संस्थि-
तो भवति यस्य जन्मभात् ॥ लोचनोदरपदेषु
संस्थितिः कथ्यते रविजलोकजैर्जनैः ॥ ७९ ॥
स्थानभेषु पुनरुच्यते बुधैः सार्द्धभूधरसमासु
भास्करिः॥ तत्र चक्रमनवद्यमुच्यते मानुजाकृति-
पदं मुनीरितम् ॥ ८० ॥

भावार्थ—जिसके जन्मराशिसे १२।१।२ राशिमें शनि हो तो शनिकी दृष्टि, हृदय और चरणपर जानना, बारहवां शनि दृष्टि, हृदय

र्भिक्ष (महंगा भाव), ४ शेषसे सुभिक्ष, ५ शेषसे महर्घ, ६ शेषसे
म, शून्य शेष रहे तो रौरव (अकाल पडे ऐसा) जानना ॥ १ ॥

उदाहरण शालिवाहनशाके १७८५ इनको ३ से गुणाकिया तो ५३५५
नमें ५ मिलाये तो ५३६० इनमें ७ का भाग दिया तो शेष ५ से
हर्घ (महंगा भाव) जानना ॥

संवत्सरात्सुभिक्षादिज्ञानम् ।

त्रिघ्ने संवत्सरे युक्ते शरैर्भक्तेऽथ सप्तभिः ॥
चतुर्द्विमिते शेषे सुभिक्षं विपुलं भवेत् ॥ २ ॥
त्रिपंचके च दुर्भिक्षं षट्भूसंख्ये च मध्यमम् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—अब संवत्सरसे सुभिक्ष आदिका ज्ञान कहते हैं, विक्रमीय
वित्सरांकोंको तीनसे गुणाकर पांच मिलाय सातका भाग देवे, जो ४।२
ष रहें तो बहुत सुभिक्ष (सस्ता भाव) रहे, और ३।५ शेषसे दुर्भि
, ६।१ शेषसे मध्यम, शून्य शेष रहे तो रौरव (अकाल) जानना
सा फल संवत्सरमें पंडितोंने कहा है ॥ २ ॥ ३ ॥

तथाच ।

द्विघ्नः संवत्सरो रामैर्युतो भक्तो नगैस्तथा ॥
शेषे बाणमिते युग्मे सुभिक्षं हायनं भवेत् ॥ ४ ॥
वेदचन्द्रमिते ज्ञेयं दुर्भिक्षं रौरवं तु खे ॥ रसान-
लमिते मध्यमेतदर्घ फलं बुधैः ॥ ५ ॥

भावार्थ—विक्रमीय संवत्सरांकोंको दोसे गुणाकर तीन मिलाय सातका
ग देवे जो ५।२ शेष रहे तो उस वर्षमें सुभिक्ष होवे, चार और एक शेष
हे तो दुर्भिक्ष, और शून्य रहे तो रौरव (अकाल) जानना। और छः व
न शेष रहनेसे मध्यम भाव जानना, ऐसा फल पंडितोंने कहा है ॥४॥५॥

ज्येष्ठप्रतिपदादियोगः ।

ष्ठे शुक्लतिथावाद्ये चन्द्रेज्ये भृगुवासरे ॥
भिक्षं शोभना वृष्टिर्दुर्भिक्षं पापवासरे ॥ ६ ॥

ार्थ—ज्येष्ठमास शुक्लपक्ष प्रतिपदातिथिको यदि चन्द्र, गुरु, शुक्र-
ो तो सुभिक्ष और उत्तम वृष्टि होवे और पापवार (मंगल शनि
) हो तो दुर्भिक्ष जानना ॥ ६ ॥

आषाढद्वितीयानवमीयोगः ।

आषाढे शुक्लपक्षे च द्वितीया नवमी दिने ॥
चन्द्रेज्यभृगुवारे स्यात्सुवृष्टिश्च समर्घता ॥ ७ ॥
बुधे साम्यं रवौ तापः कुजे वृष्टिर्न जायते ॥
शनिवारे प्रजापीडा दुर्भिक्षं रौरवं तदा ॥ ८ ॥

भावार्थ—आषाढमास शुक्लपक्ष द्वितीया और नवमीतिथि [illegible]
गुरु, शुक्रवारके दिन हो तो उत्तम वृष्टि हो और सस्ता भाव रहे, बुध [illegible]
हो तो सम भाव जानना, रविवार हो तो ताप हो, मंगलवार [illegible]
वर्षा नहीं होवे, शनिवार हो तो प्रजाको पीडा हो और घोर दुर्भिक्ष
होवे ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ प्रतिमासदर्शफलम् ।

शुभवारान्वितं दर्शं सुभिक्षं च प्रजासुखम् ॥
पापवारान्वितं दुःखं तदा धान्यमहर्घता ॥ ९ ॥

भावार्थ—यदि अमावास्याके दिन शुभवार ([illegible]
[illegible]) हो तो सुभिक्ष और प्रजाको सुख [illegible] और [illegible]

अथ ग्रहचारवशात्सर्ववस्तूनां महर्घताज्ञानम् ।

यदा तिष्ठति भौमस्य क्षेत्रे कोऽपि ग्रहस्तदा ॥
षण्मासं तुषधान्यानां जायते च महर्घता ॥ १० ॥

भाषार्थ—जो मंगलके घर (मेष वृश्चिक) में कोईभी ग्रह होवे तो छः महीने तुषधान्य महंगे होवे ॥ १० ॥

शुक्रक्षेत्रे कुजे मासद्वयं सर्वमहर्घता ॥
चन्द्रे च दिननाथे च सर्वरोगोऽशुभं तदा ॥ ११ ॥
शनौ राहौ सर्वधान्यं महर्घं राजविग्रहः ॥ १२ ॥

भाषार्थ—शुक्रके घर (वृष तुलाराशि) में मंगल हो तो दो महीने सब धान्य महंगे विकें, शनि राहु हो तो सब धान्य महंगे हों और राजाओंमें विग्रह हो ॥ ११ ॥ १२ ॥

शुक्रक्षेत्रे च चन्द्रे च चन्द्रक्षेत्रे भृगोः सुते ॥
पाखंडानां भवेद्वृद्धिर्धान्यानां च महर्घता ॥ १३ ॥

भाषार्थ—शुक्रक्षेत्रमें चन्द्रमा हो, चन्द्रमाके क्षेत्रमें शुक्र हो तो पाखंडोंकी वृद्धि हो और सर्व धान्योंका भाव महंगा होवे ॥ १३ ॥

रविक्षेत्रे भृगोः पुत्रे पशूनां च महर्घता ॥
बुधक्षेत्रे शनौ चन्द्रे सर्वधान्यमहर्घता ॥ १४ ॥

भाषार्थ—सूर्यके क्षेत्रमें शुक्र हो तो पशुओंका भाव महंगा हो जावे, बुधके क्षेत्रमें शनि चन्द्र हो तो सर्व धान्य महंगे हो जावे ॥ १४ ॥

शुक्रक्षेत्रे गुरौ भौमे कार्पासादिमहर्घता ॥
भौमक्षेत्रे शनौ राहौ ताम्रादीनां महर्घता ॥ १५ ॥

भावार्थ—शुक्रक्षेत्रमें गुरु भौम हो तो कपास आदिका भाव महंगा हो जावे, भौम (मंगल) के क्षेत्रमें शनि राहु हो तो ताम्र आदिका भाव महंगा हो जावे ॥ १५ ॥

शनिक्षेत्रे शनौ राहौ सुभिक्षं चन्द्रभास्करे ॥
पशुनाशो धान्यवृद्धिर्गुडादीनां महर्घता ॥ १६ ॥

भावार्थ—शनिक्षेत्रमें शनि राहु हो तो सुभिक्ष हो, चन्द्र सूर्य हो तो पशुनाश हो, धान्यकी वृद्धि हो और गुड आदि वस्तुओंका भाव महंगा हो जावे ॥ १६ ॥

गुरुक्षेत्रे शनौ राहौ पशुनाशस्तृणक्षयात् ॥
भौमे राजविरोधश्च बुधे वृष्टिश्च भूयसी ॥ १७ ॥

भावार्थ—गुरुके क्षेत्रमें शनि राहु हो तो पशुनाश और तृणक्षय होवे, मंगल हो तो राजाओंमें विरोध हो, बुध हो तो बहुत वर्षा होवे ॥१७॥

भौमक्षेत्रे यदा सन्ति राहुभौमार्कभार्गवाः ॥
षण्मासं गुडकर्पासघृतक्षीरमहर्घता ॥ १८ ॥

भावार्थ—मंगलके क्षेत्रमें जो राहु, भौम, सूर्य, शुक्र हो तो छः महीने गुड, कपास, घी, दूध इनका भाव महंगा होवे ॥ १८ ॥

मन्दक्षेत्रे यदा सन्ति मन्दराहुबुधास्तथा ॥
चतुष्पदानां नाशश्च द्विपदानां च जायते ॥ १९ ॥

भावार्थ—शनिके क्षेत्रमें जो शनि, राहु, बुध ये होवें तो चौपायोंका नाश होवे और द्विपदोंकाभी नाश होवे ॥ १९ ॥

भौमक्षेत्रे यदा सन्ति शुक्रभौमनिशाकराः ॥
तदा मुक्ताप्रशूनां [illegible]शंखस्य च महर्घता

भावार्थ—मंगलके क्षेत्रमें जो शुक्र मंगल शनैश्चर हों तो मोती और
[illegible], शंख, इनका भाव महंगा हो जावे ॥ २० ॥

शुक्रभौमौ गुरुक्षेत्रे प्रजापीडा च जायते ॥
ग्रहराशिसमायोगे फलमेतत्प्रकीर्तितम् ॥ २१ ॥

भावार्थ—गुरुके क्षेत्रमें शुक्र मंगल हों तो प्रजाको पीडा होवे ।
ग्रहराशिके योगसे यह फल कहा है ॥ २१ ॥

एकमासे पंचवारफलम् ।

शुक्लाद्ये मासके पंच पापखेटस्य वासराः ॥
प्रजापीडा भवेत्तत्र धान्यस्यापि महर्घता ॥ २२ ॥
मासे पंच शुभा वारा यद्येकस्मिन्प्रजायते ॥
सुभिक्षं सर्वसस्यानां तदा च सुखिनो जनाः ॥२३॥

भावार्थ—अब एक मासमें पांच वारका फल कहते हैं । शुक्लपक्षकी
[illegible] मासपर्यन्त अर्थात् जिस चान्द्रमासमें पाप ग्रहका पांच वार होवे
[illegible] उस महीनेमें प्रजाको पीडा हो और धान्यका भाव भी महंगा हो
[illegible], तथा यदि कोईभी शुभग्रह (चंद्र, बुध, बृहस्पति, शुक्र) पांच
[illegible] होवे तो सब सस्यधान्य सस्ते भाव बिकें और मनुष्योंको सुख हो ॥२३॥

तथाच ।

पंचार्काः पंच वा भौमाः पंच वा मन्दवासराः ॥
दुर्भिक्षं भयमादद्यं तदा शेषाः शुभावहाः ॥ २४ ॥

भावार्थ—जिस महीनेमें पांच शनिवार वा पांच मंगलवार अथवा पांच
[illegible] हों तो दुर्भिक्ष हो और प्रजामें भय होवे, शेष वारों (चंद्र
[illegible], बृहस्पति शुक्र) में पांच हों तो शुभ फल देनेवाले जानने ॥२४॥

संक्रान्तिवशान्महर्घसमर्घज्ञानम् ।

सुभिक्षं संक्रमे सौम्ये वारेऽधिकमुहूर्तके ॥
महर्घं पापवारे वा मुहूर्ते चाक्षभूमिते ॥ २५ ॥

भावार्थ—जो संक्रान्ति शुभवारमें अधिक मुहूर्त (४५) वाली होवे तो सुभिक्ष हो और पापवारमें बारह मुहूर्ती जो संक्रान्ति हो तो दुर्भिक्ष होवे ॥ २५ ॥

पूर्वसंक्रमभाद्वित्रिमिते च संक्रमे रवेः ॥
सुभिक्षं स्याच्चतुःपंचमिते भे तु महर्घता ॥
षष्ठे भे संक्रमे चातिदुर्भिक्षं रौरवं भवेत् ॥ २६ ॥

भावार्थ—पिछली संक्रांति जिस नक्षत्रमें प्रवेश हो उससे दूसरे वा तीसरे नक्षत्रमें यदि संक्रांति अर्के तो सुभिक्ष (मद्दा) होवे और चौथे पांचवें नक्षत्रमें अर्के तो महर्घता होवे और छठे नक्षत्रमें अर्के तो बहुत बडा काल पडे ॥ २६ ॥

तथाच ।

संक्रान्तिनाडी नवमिश्रिता च सप्ताहता पावक-
भाजिता च ॥ एके समर्घं द्वितये च साम्यं शून्यं
महर्घं मुनयो वदन्ति ॥ २७ ॥

भावार्थ—संक्रान्तिकी घटीसंख्यामें नव संयुक्त करे और सातसे गुणा-कर तीनका भाग देवे, यदि एक शेष रहे तो भाव सस्ता होवे, दो शेष रहें तो सम भाव जानना, तीन अथवा शून्य शेष रहनेसे भाव महंगा होवे ऐसा जानना ॥ २७ ॥

ग्रैष्मशारदधान्यानिष्पत्तिज्ञानम् ।

वृषे संक्रमणे भानोः केन्द्रस्वान्त्यगतैः शुभैः ॥
शारदी धान्यनिष्पत्तिरुत्तमा हायने मता ॥ २८ ॥
पापैरेवं स्थितैः स्वल्पा मिश्रैर्मिश्रा प्रकीर्तिता ॥
पापाद्यूनगते नश्येदुत्पन्नमपि सस्यकम् ॥ २९ ॥
द्यूनशत्रुगते पापे निष्पत्तिः स्वल्पिका भवेत् ॥
इत्थं वृश्चिकसंक्रान्तौ विज्ञेयं ग्रीष्मधान्यकम् ॥ ३० ॥

भावार्थ—वृषराशिके सूर्य जिस लग्नमें प्रवेश हों उस समय सूर्यके केन्द्र (१।४।७।१०) स्थान और २।१२में शुभ ग्रह स्थित हों तो शारदऋतुका धान्य उस वर्षमें उत्तम होवे, और पूर्वोक्त १।४।७।१०।२।१२ स्थानोंमें पापग्रह हों तो थोडा धान्य उपजे, शुभ ग्रह पाप ग्रह मिश्रित हों तो मध्यम उपज कहना, तथा यदि पापग्रह सातवें स्थानमें हों तो उत्पन्न सस्यकामी नाश होवे, । और जो सातवें छठे पाप ग्रह हों तो थोडा धान्य उत्पन्न होवे इस प्रकार वृश्चिककी संक्रान्तिसे ग्रीष्मधान्यकी उत्पत्ति जानिये ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

चापादित्रितये सूर्ये सौम्यैर्युक्तेक्षिते ग्रहैः ॥
शरद्धान्यं समर्घं स्याद् ग्राह्यं तद्धान्यजीविभिः ३१
पापयुक्तेक्षिते धान्यमहर्घं जायतेऽखिलम् ॥

भावार्थ—धनुराशिको आदि ले तीन राशियों (धन मकर कुंभ) में सूर्य स्थित हों, उस समय शुभग्रहयुक्त हों और देखते हों तो शरद्धान्य सस्ते भाव बिके, उस धान्यसे जीविका करनेवालेको वह धान्य संग्रह करना उचित है ॥ ३१ ॥ पापयुक्तदृष्ट हो तो धान्य महंगा होवे ।

एवं मेषात्त्रिगे ग्रीष्मे धान्यं ज्ञेयं विचक्षणैः ॥ ३२ ॥

भावार्थ—एवं मेषसे तीन राशि (मेष, वृष, मिथुन) स्थित सूर्यसे धान्यका विचार करना ॥ ३२ ॥

महर्घयोगः ।

संक्रान्तिऋक्षं तिथिवारयुक्तं नामाक्षरैक्यं त्रिहतं च शेषम् ॥ एकेन वृद्धि द्विगुणं विशेषो शून्येन शून्यं वदति स्फुटं च ॥ ३३ ॥

भावार्थ—संक्रान्तिनक्षत्र, तिथि वारयुक्त करे और नामाक्षर मिलाय कर तीनका भाग देवे, एक शेष रहे तो वृद्धि अर्थात् सस्ता भाव हो, दो शेषसे विशेष सस्ता हो, शून्य शेष रहनेसे शून्य अर्थात् भाव महँगा होवे ॥ ३३ ॥

रिक्ता तिथिः क्रूरयुता च षष्ठी मध्यान्हरात्रौ च इनोदयेऽपि ॥ ज्येष्ठार्यमार्द्राशततारका च स्वातौ भुजंगे त्वथ संक्रम श्च ॥ तदा महर्घ प्रकरोति नूनं सत्यं च सत्यं वदति स्फुटं च ॥ ३४ ॥

भावार्थ—रिक्ता (४।९।१४) तिथि और क्रूर (मंगल, रवि, शनि) षष्ठी तिथि, मध्याह्न समय, वा रात्रिमें व सूर्योदयसमय, तथा ज्येष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, आर्द्रा, शतभिषा, स्वाति, आश्लेषा इन नक्षत्रोंमें संक्रान्ति [illegible] होवे तो उस महीनेमें निश्चय अन्नादिक वस्तुओंका भाव महँगा यह सत्य सत्य कथन किया है ॥ ३४ ॥

प्रश्नांकं रविभिर्भक्तं शेषांके [illegible]
सस्यमौल्यं समानं स्यात्पंच॥ [illegible] ॥

ग्रैष्मशारदधान्यनिष्पत्तिज्ञानम् ।

वृषे संक्रमणे भानोः केन्द्रस्वान्त्यगतैः शुभैः ॥
शारदी धान्यनिष्पत्तिरुत्तमा हायने मता ॥ २८
पापैरेवं स्थितैः स्वल्पा मिश्रैर्मिश्रा प्रकीर्तिता ।
पापाद्यूनगते नश्येदुत्पन्नमपि सस्यकम् ॥ २९ ॥
द्यूनशत्रुगते पापे निष्पत्तिः स्वल्पिका भवेत् ॥
इत्थं वृश्चिकसंक्रान्तौ विज्ञेयं ग्रीष्मधान्यकम्॥३

भावार्थ—वृषराशिके सूर्य जिस लग्नमें प्रवेश हों उस समय शु[illegible] केन्द्र (१।४।७।१०) स्थान और २।१२में शुभ ग्रह स्थित हों [illegible] [illegible] धान्य उस वर्षमें उत्तम होवे, और पूर्वोक्त १।४।७।१०।२।[illegible] [illegible] पापग्रह हों तो थोडा धान्य उपजे, शुभ ग्रह पाप ग्रह मि[illegible] हों तो [illegible] उपज कहना, तथा यदि पापग्रह सातवें स्थानमें हों [illegible] [illegible] सस्यकाभी नाश होवे, । और जो सातवें छठे पाप ग्रह हों [illegible] [illegible] धान्य [illegible] होवे इस प्रकार वृश्चिककी संक्रान्तिमें ग्रीष्मधान्य[illegible] [illegible] ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

[illegible] सौम्ययुक्तेक्षिते ग्रहैः ॥
[illegible] समर्घं स्याद् ग्राह्यं तद्धान्यजीविभिः॥
पापयुक्तेक्षिते धान्यमहर्घं जायतेऽखिलम् ॥

भावार्थ—[illegible] आदि ले तीन राशियों ([illegible]) [illegible] सूर्य स्थित हों, उस समय शुभग्रहयुक्त हों और देखते हों तो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ३१ ॥ पापयुक्त [illegible] धान्य महँग [illegible]

एवं [illegible] ग्रैष्मं धान्यं [illegible]

र्थ—एवं मेषसे तीन राशि (मेष, वृष, मिथुन) स्थित सूर्यमे ...कालवाले धान्यका विचार करना ॥ ३२ ॥

महर्घयोगः ।

संक्रान्तिऋक्षं तिथिवारयुक्तं नामाक्षरैक्यं त्रिहृतं च शेषम् ॥ एकेन वृद्धि द्विगुणं विशेषो शून्येन शून्यं वदति स्फुटं च ॥ ३३ ॥

भाषार्थ—संक्रान्तिनक्षत्र, तिथि वारयुक्त करे और नामाक्षर मिलाय कर तीनका भाग देवे, एक शेष रहे तो वृद्धि अर्थात् सस्ता भाव हो, दो शेषसे विशेष सस्ता हो, शून्य शेष रहनेसे शून्य अर्थात् भाव महंगा होवे ॥ ३३ ॥

रिक्ता तिथिः क्रूरयुता च षष्ठी मध्यान्हरात्रौ च इनोदयेऽपि ॥ ज्येष्ठार्यमाद्राशततारका च स्वातौ भुजंगे त्वथ संक्रमश्च ॥ तदा महर्घं प्रकरोति नूनं सत्यं च सत्यं वदति स्फुटं च ॥ ३४ ॥

भाषार्थ—रिक्ता (४।९।१४) तिथि और क्रूर (मंगल, रवि, शनि) र, षष्ठी तिथि, मध्याह्न समय, वा रात्रिमें व सूर्योदयसमय, तथा ज्येष्ठा, त्तराफाल्गुणी, आर्द्रा, शतभिषा, स्वाति, आश्लेषा इन नक्षत्रोंमें संक्रान्ति-वेश होने तो उस महीनेमें निश्चय अन्नादिक वस्तुओंका भाव महंगा ... सत्य कथन किया है ॥ ३४ ॥

...भर्भक्तं शेषांके फलमादिशेत् ॥
...समानं स्यात्पंचाब्धिमवशेषके ॥३५॥

महर्घं द्वित्रिचैकेन रसाष्टनवदिग्भवेत् ॥ एका-
दशे सप्तशून्ये समर्घं च न संशयः ॥ ३६ ॥

भाषार्थ—प्रश्नके अक्षरसंख्यामें बारहका भाग देवे, शेष अंक जो रहे तो फल कहे, जो पांच चार शेष रहें तो सस्यका मौल्य समान रहे, और दो, तीन, एक शेष रहे तो महंगा भाव रहे, छः, आठ, नव, दश शेष रहनेसेभी महर्घ जानना, और ग्यारह, सात, शून्य शेष रहनेसे निःसन्देह सस्ता भाव होवे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

सर्वमासस्य प्रतिपत्तिथौ चेच्छनिवासरः ॥
शुक्लायां सर्वसस्यानि महर्घन्ति न संशयः ॥ ३७ ॥

भाषार्थ—सब महीनोंमेंसे जिस मासकी प्रतिपदाको शनिवार होवे तो शुक्लपक्षमें निःसन्देह सब सस्यधान्य महंगे होजावे ॥ ३७ ॥

प्रतिपच्छुक्लपक्षस्य वृद्धिं याति शुभप्रदा ॥
त्रुटिता दुःखदा प्रोक्ता चतुर्दश्यष्टमी तथा ॥ ३८ ॥

भाषार्थ—शुक्लपक्षकी प्रतिपदा यदि वृद्धिको प्राप्त हो तो शुभप्रद जानना, क्षय हो तो दुःखप्रद जानना, तथा चतुर्दशी और अष्टमीका फल जानना ॥ ३८ ॥

श्रवणे च यदा क्रूरो ग्रहः कश्चित्समाश्रितः ॥
अन्नं महर्घतां याति गोधूमाश्च विशेषतः ॥ ३९ ॥

भाषार्थ—श्रवणनक्षत्रमें जो क्रूर ग्रह हो तो अन्न महंगा पकके गेहूं महंगे हो जावे ॥ ३९ ॥

अग्रे याति दिवानाथो पृष्ठे च भृगुनन्दनः
मध्ये सोमसुतो याति भवत्यत्र ॥ ४० ॥

भावार्थ—आगेकी राशिमें सूर्य और पीछेकी राशिमें शुक्र और बीचमें बुध हो, अथवा एकही राशिमें स्थित आगे सूर्य पीछे शुक्र बीचमें बुध हो तो सब वस्तुओंका भाव महंगा हो जावे ॥ ४० ॥

पौपस्य यद्यमावास्या ज्येष्ठानक्षत्रसंयुता ॥
तदा सस्यमहर्घत्वं मूलयुक्ताऽल्पमूल्यता ॥ ४१ ॥
यदा तोयर्क्षसंयुक्ता तदा सस्यविवर्द्धिनी ॥
उत्तरापाढसंयुक्ता भयदुर्भिक्षकारिणी ॥ ४२ ॥

भावार्थ—पौषमासकी अमावास्या यदि ज्येष्ठानक्षत्रसे युक्त हो तो सस्यको महंगा करे, मूलनक्षत्रसे युक्त हो तो अल्पमूल्य होवे, यदि पूर्वापाढानक्षत्रसे युक्त हो तो सस्यधान्यको वढायवेवारी जानने, उत्तरा-पाढानक्षत्रसे युक्त हो तो दुर्भिक्षकारिणी जानने ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

पौपमासेऽर्कसंक्रान्तिः सूर्यवारे यदा भवेत् ॥
धान्यमूल्यं द्विगुणितं तदा भवति नान्यथा ॥४३॥

भावार्थ—पौपमासमें सूर्यसंक्रान्तिके दिन यदि रविवार हो तो अन्न द्विगुणा मूल्य होता है अर्थात् दूने मोलसे अन्न विकता है इसमें संदेह नहीं ॥ ४३ ॥

कविरस्तं यदा याति फाल्गुणे मासि निश्चितम् ॥
तदा दुर्भिक्षमादेश्यं पणमासं दैवचिन्तकैः ॥ ४४ ॥

भावार्थ—यदि फाल्गुणमासमें शुक्रास्त हो तो छः महिनेतक दुर्भिक्ष होवे ऐसा दैवज्ञोंने निश्चय किया है ॥ ४४ ॥

सप्तमीकृत्तिकायुक्ता फाल्गुणस्य सिता यदा ॥
तदा भाद्रपदे मासि कुत्रां मेघःप्रवर्षति ॥ ४५ ॥

भापार्थ—फाल्गुणमास शुक्लपक्ष सप्तमी तिथिके दिन यदि कृत्तिकानक्षत्र हो तो भाद्रपदमासमें अमावास्याके दिन वर्षा होवे ॥ ४५ ॥

आषाढे श्रावणे पौषे चार्कभौमशनैश्चराः ॥
वासरा यत्र जायन्ते फलं चैषां शृणुष्व तत् ॥४६॥
पंचार्कवासरे रोगाः पंचभौमे महद्भयम् ॥
पंचमन्दे च दुर्भिक्षं खगाः शेषाः शुभावहाः ॥४७॥

भापार्थ—आषाढ, श्रावण, पौषमासमें पांच रवि, भौम, शनिवार हों उनका फल कहते हैं सो सुने, पांच रविवार हों तो रोग प्रगट हो, पांच भौम हों तो महाभय उत्पन्न हो, पांच शनि हों तो दुर्भिक्ष होवे, शेष वार हों तो शुभ जानना ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

यदारसौरी सुरराजमंत्री यदेकराशौ समसप्तके वा ॥ लंकात्वयोध्यापुरमध्यदेशे क्षुधाभयं शस्त्रभयं करोति ॥ ४८ ॥

भापार्थ—जो मंगल, शनि, गुरु ये एक राशिमें हों अथवा परस्पर सप्तम राशिपर होवें तो लंका अयोध्या आदिके मध्यमें जो देश हैं उनमें क्षुधाभय और शस्त्रभय होवे ॥ ४८ ॥

भानोरलिप्रवेशे केन्द्रैस्तस्माच्छुभग्रहाक्रान्तैः ॥
वलवद्भिः सौम्यैर्वा निरीक्षिते ग्रैष्मिकाविवृद्धिः ॥४९॥

भापार्थ—वृश्चिकराशिके सूर्य जिस दिन प्रवेश हो उससे केन्द्र १।४।७।१० में शुभ ग्रह हों अथवा बलवान शुभ ग्रह देखते होय तो ग्रीष्मऋतुमें होनेवाले अन्न (गेहूं जो आदि) वृद्धिको प्राप्त होवें ॥४९॥

वस्त्राविककुतुपानां मसूरगोधूमरालयवानाम् ॥
स्थलसंभवौषधीनां कनकस्य च कीर्तितो मेषः ॥५०॥

भावार्थ—भेड व बकरीके ऊनी वस्त्र (कंबल पसमीने आदि) अ-था घी तेल धरनेके कुप्पे, मसूर, गेहूं, राल, जौ और स्थलमें उत्पन्न होनेवाली औषधियां, सुवर्ण इन सबका स्वामी मेषराशी है ॥ ५० ॥

गवि वस्त्रकुसुमगोधूमशालियवमहिषसुरभितनयाः स्युः ॥ मिथुनेऽपि धान्यशारदवल्लीशालूकर्पासाः ॥ ५१ ॥

भावार्थ—वस्त्र, फूल, गेहूं, धान, जौ, भैंसे, बैल इनका स्वामी वृष राशि है । और शरदऋतुके धान्य (अन्न), ज्वार, बाजरा आदि तथा दाख आदि वेल, कमल, कमलकी जड (भसीड़े), कपास इनका स्वामी मिथुनराशि है ॥ ५ ॥

कर्किणि कोद्रवकदलीदूर्वाफलकन्दपत्रचोचानि ॥ सिंहे तुषधान्यरसाः सिंहादीनां त्वचः सगुडाः॥५२॥

भावार्थ—कोदों, केला, दूब, फल, कंद, पत्रज, दालचीनी आदिका स्वामी कर्कराशी है । और तुष (भूसी) वाले धान्य, रस, सिंहादि जीवोंकी खाल, गुड, इनका स्वामी सिंहराशी है ॥ ५२ ॥

षष्ठेऽतसी कलायः कुलत्थगोधूममुद्गनिष्पावाः ॥ सप्तमराशौ मापा गोधूमाः सर्षपाः सयवाः ॥ ५३ ॥

भावार्थ—अलसी, मटर, कुलथी, गेहूं, मूंग, चौंरा इनका स्वामी कन्याराशि है । और उडद, गेहूं, सरसों, जौ इनका स्वामी तुलाराशि है ॥५३॥

अष्टमराशाविक्षुः सेक्यं लोहान्यजाविकं चापि ॥ नवमे तु तुरगलवणांवरास्त्रतिलधान्यमूलानि ॥५४॥

भावार्थ—ईख और जो वस्तु जल सींचनेसे उत्पन्न हो, लोहा भेड़, बकरी आदिके ऊनी कपडे आदि इनका स्वामी वृश्चिकराशि है । तथा

घोडे, नमक, वस्त्र, अस्त्र (धनुषादि) तिल, धान्य, मूल इनका स्वामी धनुराशि है ॥ ५४ ॥

मकरे तरुगुल्माद्यं सेक्येक्षुसुवर्णकृष्णलोहानि ॥
कुंभे सलिलजफलकुसुमरत्नविचित्राणि रूपाणि ॥५५॥

भाषार्थ—वृक्ष, गुल्म (छोटे वृक्ष) सींचनेसे होनेवाली वस्तु, ईख सुवर्ण, कृष्णलोह (खेरीआदि) इनका स्वामी मकर है । जलोत्पन्न वस्तुयें, फल, फूल, रत्न तथा चित्रविचित्ररूपवाले पदार्थ इन सबका स्वामी कुंभराशि है ॥ ५५ ॥

मीने कपालसंभवरत्नान्यम्बूद्भवानि वज्राणि ॥
स्नेहाश्च नैकरूपा व्याख्याता मत्स्यजातं च ॥५६॥

भाषार्थ—कपालसे उत्पन्न होनेवाले रत्न (मोती आदि), जलसे उत्पन्न होनेवाले पदार्थ, हीरे, स्नेह (घी तेल आदि) सबजातिके मछली आदि इनका स्वामी मीनराशि है ॥ ५६ ॥

राशेश्चतुर्दशार्थायसप्तनवपंचमस्थितो जीवः ॥
एकादशदशपंचमाष्टमेषु शशिजश्च वृद्धिकरः ॥५७॥

भाषार्थ—जिस राशिके चौथे, दशवें, दूसरे, ग्यारहवें, सातवें, नवें, वा पांचवें बृहस्पति हो तो उस राशिके द्रव्योंकी वृद्धि कहना, और जिस राशिके ग्यारहवें, दशवें, पांचवें, आठवें इन स्थानोंमेंसे किसी स्थानमें बुध हो तो उस राशिके द्रव्योंकी वृद्धि कहना ॥ ५७ ॥

षट्सप्तमगो हानिं वृद्धिं शुक्रः करोति शेषेषु ॥
उपचयसंस्थाः क्रूराः शुभदाः शेषेषु हानिकराः ५८

भाषार्थ—तथा जिस राशिसे छठे वा सातवें शुक्र हो तो उस राशिके द्रव्योंकी हानि करे, परन्तु शेष स्थानोंमें स्थित होनेसे शुक्र वृद्धि

करता है एवं क्रूर ग्रह जिस राशिके उपचय (३।६।१०।११ स्थान) में स्थित हों तो उस राशिके वस्तुओंकी वृद्धि होवे, अन्य शेष स्थानोंमें क्रूर ग्रह स्थित हों तो उस राशिके वस्तुओंकी हानि होवे ॥ ५८ ॥

राशेर्यस्य क्रूराः पीडास्थानेषु संस्थिता बलिनः ॥
तत्प्रोक्तद्रव्याणां महर्घता दुर्लभत्वं च ॥ ५९ ॥

भाषार्थ—जिस राशिके पीडास्थान अर्थात् उपचय विना (अन्य स्थानोंमें) क्रूर ग्रह बलवान् होकर स्थित होवें उस राशिके सब द्रव्य महँगे और दुर्लभ हो जाते हैं ॥ ५९ ॥

इष्टस्थाने सौम्या बलिनो येषां भवन्ति राशिनाम् ॥
तद्द्रव्याणां वृद्धिः सामर्घं वल्लभत्वं च ॥ ६० ॥

भाषार्थ—जिन राशियोंसे उत्तम स्थानोंमें शुभ ग्रह बलवान् होकर स्थित हों उन राशियोंके द्रव्योंकी वृद्धि हो, तथा सस्ते रहें और उन द्रव्योंकी सबको कामना रहे ॥ ६० ॥

गोचरपीडायामपि राशिर्बलिभिः शुभग्रहैर्दृष्टः ॥
पीडां न करोति तथा क्रूरैरेवं विपर्यासः ॥ ६१ ॥

भाषार्थ—गुरु आदि ग्रहोंके जो पीछे शुभ स्थान कहे उनको छोड ग्रह राशिके और स्थानोंमें स्थित होय तो गोचरपीडा होती है। जिस राशिको गोचरपीडा होय और उस राशिको बलवान् शुभ ग्रह देखते होय तो उस राशिके द्रव्योंकी हानि नहीं होती और राशिको गोचरपीडा होय और बलवान् क्रूर देखते हों तो उस राशिके द्रव्योंकी हानि और महर्घता होती है ॥ ६१ ॥

मेषोपगते सूर्ये ग्रीष्मजधान्यसंग्रहं कृत्वा ॥
वनमूलफलस्य वृषे चतुर्थमासे तयोर्लाभः ॥ ६२ ॥

सूर्यचन्द्रनक्षत्रसंज्ञा ।

अश्विन्यादित्रयं चैव आर्द्रादेः पंचकं तथा ॥
पूर्वापाढादिचत्वारि चोत्तरा रेवतीद्वयम् ॥ ८१ ॥
उक्तानि शशिभान्यत्र प्रोच्यन्ते सूर्यभान्यथ ॥
रोहिणी च मृगश्चैव पूर्वाफाल्गुनिका तथा ॥ ८२ ॥
सूर्य सूर्ये भवेद्वायुश्चन्द्रे चन्द्रे न वर्षति ॥
सूर्यचन्द्रसमायोगस्तदा वर्षति मेघराट् ॥ ८३ ॥

भापार्थ—अश्विनी आदि ३ नक्षत्र (अश्विनी, भरणी, कृतिका), र्द्रा आदि ५ नक्षत्र (आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा), तथा र्वापाढा आदि चार नक्षत्र (पूर्वापाढा, उत्तरापाढा, श्रवण, घनिष्ठा) त्तरा, रेवती, ये नक्षत्र चन्द्रमाके हैं । अथ सूर्यके नक्षत्र कहते हैं, रोहिणी गशिरा, पूर्वाफाल्गुनी और जो शेष हैं वे सब सूर्यके हैं, सूर्य सूर्यका योग । तो वायु वहे, चन्द्रचन्द्रके योगमें वर्षा नहीं होवे और सूर्य चन्द्रका ग हो तो वर्षा बहुत होवे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

संवत्सरलग्नफलम् ।

यस्मिन्वर्षे च लग्ने शशिनि तनुगते सौम्यराशिस्थि-
ते वा ॥ केन्द्रे याते प्रचुरमुदकं सौम्ययातोपदृष्टे ॥
पापैर्दृष्टे न च बहु जलं प्रश्नकालेऽपि तद्व-
द्वाच्यं सर्वं फलमविकलं चन्द्रवद्भार्गवोऽपि ॥ ८४ ॥

भापार्थ—जिस संवत्सरकी लग्नमें वा केन्द्रस्थानमें हो चन्द्रमा शुभ ग्रहकी राशिमें स्थित हो और शुभ ग्रहोंकी दृष्टि हो तो जल बहुत वर्षे, तथा यदि चन्द्रमा पाप ग्रहकी राशिमें हो और पाप ग्रहोंकी दृष्टि हो तो बहुत जल नहीं वर्षे, प्रश्नसमयमेंभी इसी प्रकार विचार करना, और

चन्द्रमाके समान शुक्रकामी विचार करना, अर्थात् शुक्र लग्नमें वा किसी केन्द्रमें शुभ ग्रहकी राशिमें हो और शुभ ग्रहोंकी दृष्टि हो तो बहुत जल वर्षे, और पापराशिगत हो पाप ग्रहोंकी दृष्टि हो तो बहुत जल नहीं वर्षे ॥ ८४ ॥

वृष्टिलक्षणम् ।

प्रष्टा पृच्छन्स्पृशति सलिलं वारिकार्योन्मुखो वा ॥
पृच्छाकाले सलिलमिति वा श्रूयते सन्मुखे वा ॥
दृष्टः कूपो विमलसलिलं चेद्ददेद्वारिवृष्टि मन्तः
सर्वं भवति च फलं व्यत्यये व्यत्ययेन ॥ ८५ ॥

भावार्थ—वृष्टिप्रश्नकर्ता प्रश्नसमय यदि जलका स्पर्श करे, अथवा प्रश्नसमय जलशब्द सुने, किंवा जलकी बनी हुई वस्तु, तथा कुआं, बावडी, तालाव इन (जलाशयों) पर दृष्टि जाय तो जलकी वृष्टि अच्छी होवे, इससे विपरीत लक्षण हो तो विपरीत फल होवे अर्थात् वर्षा नहीं होवे॥८५

प्रातःकाले पीतरश्मिर्दुर्निरीक्ष्यो भवेद्रविः ॥
स्निग्धवैडूर्यकान्तिश्चेन्मेघो वृष्टिप्रदः स्मृतः ॥८६॥

भावार्थ—जो प्रातः समय सूर्यमें तेज अधिक हो, कान्ति पीतवर्ण हो और मेघ चिकने श्यामवर्ण हों तो ऐसे मेघ वर्षा करनेवाले कहे हैं ॥८६॥

प्रातःकाले यदा सूर्यो मध्याह्ने दुःसहो भवेत् ॥
तद्दिने वृष्टिदः प्रोक्तो घृतस्वर्णसमप्रभः ॥ ८७ ॥

भावार्थ—जो प्रातः समय और मध्याह्नसमयमें सूर्यका तेज अधिक हो और कान्ति गलाये हुये सुवर्णके समान हो तो उस दिन वर्षा होवे ॥ ८७ ॥

यदा जलं वै विरसं जलदा गोत्रसन्निभाः ॥
दिशश्च विमलाः सर्वाः काकांडाभं नभस्तलम् ॥८८॥
न यदा वाति पवनश्छन्नं यान्ति झषादयः ॥
शब्दं कुर्वन्ति मंडूकास्तदा वृष्टिरनुत्तमा ॥ ८९ ॥

भाषार्थ—जो जल विरस हों, बादल पर्वताकार हों, दिशायें निर्मल कौवाके अंडाके समान आकाश हो, तथा पवन न चले, मछली द जलचरप्राणी नीचे जा लगें, मेंडक शब्द करने लगें तो उत्तम होवे ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

नखैर्लिखन्ति मार्जाराः पृथिवीं च यदा भृशम् ॥
लोहानां मलनिचयो विस्रगन्धो यदा भवेत् ॥९०॥
सेतुं कुर्वन्ति रथ्यायां शिशवो मिलिता यदा ॥
शुद्धांजनाभा गिरयो वाष्पमुद्रितकंदराः ॥ ९१ ॥

भाषार्थ—बिल्ली आदि अपने पंजोंसे पृथिवीको खोदें, लोहेके मैलमें घ आवे, मार्गमें बालक सब मिलकर सेतु बांधें और अंजनसमान हो जायं पर्वतोंकी गुफा पसीजने लगें ॥ ९० ॥ ९१ ॥

पिपीलिका यदांडानि गृहीत्वोच्चं प्रयान्ति च ॥
सर्पा वृक्षं समायान्ति यदा वृष्टिरभूत्किल ॥ ९२॥
गावः सूर्यं निरीक्ष्यंते कृकलासगणास्तथा ॥
गृहान्नेच्छन्ति पशवो निर्गमं कुक्कुरास्तथा ॥ ९३॥

भाषार्थ—तथा जो चिउंटी अपने अंडोंको लेलेकर ऊपरको चढें. साप ऊपर चढें तो निश्चय वर्षा करें, तथा गौवें सूर्यकी ओर देखें, ट भी सूर्यको देखें, पशु घरसे जानेकी इच्छा न करें तथा कुत्तेभी बाहर निकलना नहीं चाहे ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

प्रश्नलग्नात्तोयराशिर्यदि वित्तस्तृतीयके ॥
तोयसंज्ञो ग्रहस्तत्र भवत्यभ्रं जलप्रदम् ॥ ९९ ॥
संयोगे सितबुधयोस्तथा च गुरुशुक्रयोः ॥
तथैव जीवबुधयोर्वृष्टिः स्यान्नात्र संशयः ॥१००॥

भापार्थ—प्रश्नलग्नसे दूसरे वा तीसरे जलराशि हो और वहां जलग्रह स्थित हो तो शीघ्र वर्षा होवे, तथा जो शुक्र बुध एक राशिमें हों, बृहस्पति शुक्र एक घरमें हों अथवा बुध गुरु एक राशिमें हों तो निःसन्देह शीघ्र वर्षा होवे ॥ ९९ ॥ १०० ॥

यदा भवन्ति सूर्यस्य ग्रहाः पृष्ठावलम्बिनः ॥
पुरतो वा यदा यांति तदा त्वेकार्णवा मही॥१०१॥
बुधभृग्वोर्मध्यगतः सूर्यश्चेज्जलशोषकः ॥
तयोर्यदि समीपस्थस्तदा बहुजलप्रदः ॥ १०२ ॥

भापार्थ—जो सूर्यके आगे वा पीछे ग्रह होय तो पृथ्वी जलमयी हो जावे, तथा जो बुध और शुक्रके मध्यगत सूर्य हों तो जलको शोषे और जो पासही हो तो शीघ्र बहुत जल बरसे ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

अग्रे याति तदा भौमः पश्चाचलति भास्करः ॥
तदा वृष्टिर्न विपुला जायते नात्र संशयः ॥ १०३॥

भापार्थ—जो आगे मंगल हो और पीछे सूर्य हो तो वर्षा बहुत नहीं हो, अन्यथा वृष्टि होवे इसमें संदेह नहीं ॥ १०३ ॥

शुक्रस्यास्तमये वृष्टिरिज्ये चोदयमागते ॥
संचरत्यवनीसुनो मन्दे वृष्टिस्त्रिधा मता ॥ १०४

भापार्थ—शुक्रके अस्तमें और बृहस्पतिके उदयमें तथा मंगल व शनैश्चरके संचारमें वृष्टि होती है, यह तीन प्रकारकी वृष्टि कही है ॥ १०४ ॥

प्रत्यगिन्द्रधनुः संध्याप्रदीपे मेघगर्जनम् ॥
मक्षिकानल्पतां याति मांडा स्यात्तु पिपीलिका १०५
मध्ये तीव्रातपश्चाह्नि नरा निद्रालवो भृशम् ॥
विज्ञेया लक्षणैरेभिः सद्योवृष्टिर्घनागमे ॥ १०६ ॥

भावार्थ—पूर्वदिशामें सन्ध्यासमय इन्द्रधनु दीख पडे, प्रदोषसमय मेघ गर्जे, मक्खियोंकी संख्या कमती हो, चिउंटी अंडे लेकर निकलें, दो पहरको दिनमें तपन बहुत हो, मनुष्य बहुत निद्रातुर हो जावें, इन लक्षणोंसे ऐसा जानना कि बादलोंका आगम होकर शीघ्र वर्षा होवेगी ॥ १०६ ॥

स्वल्पवृष्टिलक्षणम् ।

नो माघे हिमवर्षणं न मरुतश्चंडास्तथा फाल्गुने ।
चैत्रे वृष्टिविवर्जितं तु गगनं मेघेन पूर्णो रविः ॥
वैशाखे न घनोपलस्य पतनं ज्येष्ठे न चंडोरवि ।
वृष्टिः स्वल्पतरा सदैव कथिता वर्षासु नित्यं बुधैः॥१०७॥

भावार्थ—माघमासमें हिम (ठंढ) न पडे, फाल्गुणमासमें वायु न बहे, चैत्रमें वर्षा न हो और बादल घिरे रहे, वैशाखमें ओले गरजै, ज्येष्ठमासमें अधिक तपन न हो तो वर्षाकालमें सदैव थोडीही वर्षा होवे, ऐसा पूर्वाचार्योंने कथन किया है ॥ १०७ ॥

वृष्टिज्ञानम् ।

मूलर्क्षे भास्करे याते तदारभ्य दशाहकम् ॥
विद्युदभ्रादिना गर्भे यत्र तत्र दिने भवेत् ॥
स्मादार्द्रादिनक्षत्रे भानौ वृष्टिः प्रजायते ॥ १०८॥

प्रश्नलग्नात्तोयराशिर्यदि वित्तस्तृतीयके ॥
तोयसंज्ञो ग्रहस्तत्र भवत्यभ्रं जलप्रदम् ॥ ९९ ॥
संयोगे सितवुधयोस्तथा च गुरुशुक्रयोः ॥
तथैव जीववुधयोर्वृष्टिः स्यान्नात्र संशयः ॥१००॥

भावार्थ—प्रश्नलग्नसे दूसरे वा तीसरे जलराशि हो और वहां जल ग्रह स्थित हो तो शीघ्र वर्षा होवे, तथा जो शुक्र बुध एक राशिमें हों, बृहस्पति शुक्र एक घरमें हों अथवा बुध गुरु एक राशिमें हों तो निःसन्देह शीघ्र वर्षा होवे ॥ ९९ ॥ १०० ॥

यदा भवन्ति सूर्यस्य ग्रहाः पृष्ठावलम्बिनः ॥
पुरतो वा यदा यांति तदा त्वेकार्णवा मही॥१०१॥
बुधभृग्वोर्मध्यगतः सूर्यश्चेज्जलशोषकः ॥
तयोर्यदि समीपस्थस्तदा बहुजलप्रदः ॥ १०२ ॥

भावार्थ—जो सूर्यके आगे वा पीछे ग्रह होय तो पृथ्वी जलमयी हो जावे, तथा जो बुध और शुक्रके मध्यगत सूर्य हों तो जलको शोषे और जो पासही हो तो शीघ्र बहुत जल बरसे ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

अग्रे याति तदा भौमः पश्चाचलति भास्करः ॥
तदा वृष्टिर्न विपुला जायते नात्र संशयः ॥ १०३॥

भावार्थ—जो आगे मंगल हो और पीछे सूर्य हो तो वर्षा बहुत नहीं हो, अन्यथा वृष्टि होवे इसमें संदेह नहीं ॥ १०३ ॥

शुक्रस्यास्तमये वृष्टिरिज्ये चोदयमागते ॥
मंगलस्यशनैश्चरे मन्दे वृष्टिस्त्रिधा मता ॥ १०४

भावार्थ—शुक्रके अस्तमें और बृहस्पतिके उदयमें तथा मंगल व शनैश्चरके संगममें वृष्टि होती है, यह तीन प्रकारकी वृष्टि कही है ॥ १०४ ॥

भाषार्थ—मूलनक्षत्रमें सूर्य जिस दिन प्रवेश हो उस दिनसे दश दिनतक जिस दिन बिजली चमके, बादल गर्जे उसी क्रमसे आर्द्रादिनक्षत्रार्कमें वर्षासमय वृष्टि होवे ॥ १०८ ॥

मूलभाद्भरणी यावद्भेषु चैकादशेष्वपि ॥ १०९ ॥
पौषमासदिनर्क्षेषु गर्भस्त्वभ्रादिना भवेत् ॥
तत आर्द्रादिके सूर्यक्रमाद्वृष्टिः प्रजायते ॥ ११० ॥

भाषार्थ—मूलनक्षत्रसे भरणीतक पौषमासमें जिस दिन बादल हो बिजली चमके मेघ गर्जे तो आर्द्रार्कादिमें वर्षासमय क्रमसे वर्षा होवे, जैसे पौषमासमें मूलनक्षत्रके दिन अभ्रादि हो तो आर्द्रानक्षत्रार्क और पूर्वाषाढाके दिन मेघगर्जनादि हो तो पुनर्वसुनक्षत्रार्क उत्तराषाढके दिन मेघगर्जनादि हो तो पुष्यनक्षत्रार्क वर्षासमय भली भांति वर्षे, इसी क्रमसे विचार कर लेवे और आगामी वर्षाका हाल जान लेवे ॥ १०९ ॥ ११० ॥

अश्विन्यादिषु धिष्ण्येषु चैत्रे दशसु चेद्भवेत् ॥
अभ्रादिकं तथा गर्भः आर्द्रादौ वृष्टिदः क्रमात् ।१११।
मेषार्कदिनमारभ्य ज्ञेयमेवमथापि वा ॥ ११२ ॥

भाषार्थ—चैत्रमासमें अश्विनी आदि मघापर्यन्त दशनक्षत्रोंके दिन मेघगर्जनादि हो तो वर्षासमय आर्द्रार्कादि दश नक्षत्र क्रमपूर्वक वर्षा करनेवाले जानने, इसी प्रकार जिस दिन मेषार्क प्रवेश हो उस दिनसे दश दिन अभ्रादिकयोग हो तो आर्द्रार्कादि नक्षत्रक्रमसे वृष्टि करनेवाले जानने ॥ १११ ॥ ११२ ॥

यदाभ्रं दृश्यते व्योम्नि चैकादश्यां तु कार्तिके ॥
आषाढे मासि वृष्टिश्च तदा भवति भूयसी ॥ ११३॥

भापार्थ—जो कार्तिकमास एकादशीके दिन आकाशमें मेघ दीख पड़ें तो आषाढमासमें बहुत वर्षा होवे ॥ ११३ ॥

मार्गाष्टम्यां यदा विद्युद्दर्पणं श्रावणे भवेत् ॥
पौपकृष्णे दशम्यां चेद्वृष्टिर्भाद्रपदे तथा ॥ ११४ ॥

भापार्थ—जो मार्गशिरमासमें अष्टमीके दिन विजली चमके बादल गर्जे तो श्रावणमासमें वर्षा अच्छी होवे, एवं पौपकृष्ण दशमीके दिन जो बादल हो मेघगर्जे तो भाद्रमासमें उत्तम वृष्टि होवे ॥ ११४ ॥

सप्तम्यां माघशुक्लस्य भवेदभ्रादिकं यदा ॥
ज्येष्ठे मूले न चेद्वृष्टिः सुवृष्टिर्बहुला मता ॥ ११५॥

भापार्थ—माघमास शुक्लपक्ष सप्तमीके दिन जो मेघ गर्जे और ज्येष्ठमासमें मूलनक्षत्रके दिन वर्षा नहीं हो तो वर्षाकालमें अच्छी वर्षा होवे॥११५

आढकप्रमाणम् ।

युग्मा ३ ज १ गो २ मत्स्य १२ गते शशांके भानुर्यदा कर्कटके प्रयाति ॥ तदा शता १००ऽऽढं हरि ५ कार्मुके ८ ऽर्द्ध ५० तुलेथ ७ कन्या ६ मृग १० योरशीतिः ८० ॥ १६ ॥ कुलीरकुंभौलिगते यदा स्यात्षड्विंश २६ काढं भुवि वारिपातः ॥ अर्द्धं पर्वतभागेषु तदर्द्धं मारुते गतम् ॥ तदर्द्धं याति मेदिन्यां वाराहेण च भाषितम् ॥ ११७ ॥

भापार्थ—जो कर्कराशिके सूर्यप्रवेशसमय चन्द्रमा मिथुन, मेप, वृष, अथवा मीनका हो तो एक सौ १०० आढक वर्षा जानना, सिंह धनु-

भावार्थ—मूलनक्षत्रमें सूर्य जिन दिन प्रवेश हो उस दिनसे दश दिनतक जिस दिन बिजली चमके, बादल गर्जे उसी क्रमसे आर्द्रादिनक्षत्रोंमें वर्षालक्षण वृष्टि होवे ॥ १०८ ॥

मूलभाद्भरणी यावद्भेषु चैकादशेष्वपि ॥ १०९ ॥
पौषमासदिनर्क्षेषु गर्भस्त्वभ्रादिना भवेत् ॥
तत आर्द्रादिके मूर्यक्रमाद्दृष्टिः प्रजायते ॥ ११० ॥

भावार्थ—मूलनक्षत्रसे भरणीतक पौषमासमें जिस दिन बादल हो बिजली चमके मेघ गर्जे तो आर्द्रादिमें वर्षालक्षण क्रमसे वर्षा होवे, जैसे [illegible] मूलनक्षत्रके दिन अभ्रादि हो तो आर्द्रानक्षत्रके और पूर्वाषाढ़के दिन मेघगर्जनादि हो तो पुनर्वसुनक्षत्रके उत्तराषाढ़के दिन मेघगर्जनादि हो तो पुष्यनक्षत्रके वर्षालक्षण भली भांति वर्षे, इसी क्रमसे [illegible] और आगामी वर्षाका हाल जान लेो ॥ १०९ ॥ ११० ॥

आश्विन्यादिषु चित्रर्क्षेषु चैत्रे दशसु चेद्गतैः ॥
अभ्रादिकं तथा गर्भः आर्द्रादौ वृष्टिदः क्रमात् ॥ १११ ॥
मेषार्कदिनमारभ्य ज्ञेयमेवमथापि वा ॥ ११२ ॥

भावार्थ—चैत्रमासमें अश्विनी आदि चित्रापर्यन्त दशनक्षत्रोंके दिन [illegible] आर्द्रादिमें [illegible] वर्षा [illegible] मेषके सूर्य जिस दिन [illegible] प्रवेश हो उस दिनसे [illegible] तो आर्द्रादिमें [illegible] वृष्टि [illegible] ॥ १११ ॥ ११२ ॥

[illegible] चैकादश्यां न कार्त्तिके ॥
[illegible] तदा भवति [illegible] ॥ ११३ ॥

भापार्थ—जो कार्तिकमास एकादशीके दिन आकाशमें मेघ दीख पड़ें तो आषाढ़मासमें बहुत वर्षा होवे ॥ ११३ ॥

मार्गाष्टम्यां यदा विद्युद्दर्पणं श्रावणे भवेत् ॥
पौषकृष्णे दशम्यां चेद्वृष्टिर्भाद्रपदे तथा ॥ ११४ ॥

भापार्थ—जो मार्गशिरमासमें अष्टमीके दिन बिजली चमके बादल गर्जे तो श्रावणमासमें वर्षा अच्छी होवे, एवं पौषकृष्ण दशमीके दिन जो बादल हो मेघगर्जे तो भाद्रमासमें उत्तम वृष्टि होवे ॥ ११४ ॥

सप्तम्यां माघशुक्लस्य भवेदभ्रादिकं यदा ॥
ज्येष्ठे मूले न चेद्वृष्टिः सुवृष्टिर्बहुला मता ॥ ११५ ॥

भापार्थ—माघमास शुक्लपक्ष सप्तमीके दिन जो मेघ गर्जे और ज्येष्ठमासमें मूलनक्षत्रके दिन वर्षा नहीं हो तो वर्षाकालमें अच्छी वर्षा होवे ॥ ११५

आढकप्रमाणम् ।

युग्मा ३ ज १ गो २ मत्स्य १२ गते शशांके भानुर्यदा कर्कटके प्रयाति ॥ तदा शता १००ऽऽढं हरि ५ कार्मुके ८ ढं ९० तुलेथ ७ कन्या ६ मृगं १० योरशीतिः ८० ॥ १६ ॥ कुलीरकुंभौलिगते यदा स्यात्पड्विंश २६ काढं भुवि वारिपातः ॥ अर्द्धं पर्वतभागेषु तदर्द्धं मारुते गतम् ॥ तदर्द्धं याति मेदिन्यां वाराहेण च भापितम् ॥ ११७ ॥

भापार्थ—जो कर्कराशिके सूर्यप्रवेशसमय चन्द्रमा मिथुन, मेष, वृष, अथवा मीनका हो तो एक सौ १०० आढक वर्षा जानना, सिंह धनु-

भापार्थ—मूलनक्षत्रमें सूर्य जिस दिन प्रवेश हो उस दिनसे दश दिनतक जिस दिन विजली चमके, वादल गर्जे उसी क्रमसे आर्द्रादिनक्षत्रार्कमें वर्षासमय वृष्टि होवे ॥ १०८ ॥

मूलभाद्भरणी यावद्भेषु चैकादशेष्वपि ॥ १०९ ॥
पौषमासदिनर्क्षेपु गर्भस्त्वभ्रादिना भवेत् ॥
तत आर्द्रादिके सूर्यक्रमाद्वृष्टिः प्रजायते ॥ ११० ॥

भापार्थ—मूलनक्षत्रसे भरणीतक पौषमासमें जिस दिन वादल हो विजली चमके मेघ गर्जे तो आर्द्रार्कादिमें वर्षासमय क्रमसे वर्षा होवे, जैसे पौषमासमें मूलनक्षत्रके दिन अभ्रादि हो तो आर्द्रानक्षत्रार्क और पूर्वापाढाके दिन मेघगर्जनादि हो तो पुनर्वसुनक्षत्रार्क उत्तरापाढके दिन मेघगर्जनादि हो तो पुष्यनक्षत्रार्क वर्षासमय भली भांति वर्षे, इसी क्रमसे विचार कर लेवे और आगामी वर्षाका हाल जान लेवे ॥ १०९ ॥ ११० ॥

अश्विन्यादिपु धिष्ण्येपु चैत्रे दशसु चेद्भवेत् ॥
अभ्रादिकं तथा गर्भः आर्द्रादौ वृष्टिदः क्रमात् ।१११।
मेषार्कदिनमारभ्य ज्ञेयमेवमथापि वा ॥ ११२ ॥

भापार्थ—चैत्रमासमें अश्विनी आदि मघापर्यन्त दशनक्षत्रोंके दिन मेघगर्जनादि हो तो वर्षासमय आर्द्रार्कादि दश नक्षत्र क्रमपूर्वक वर्षा करनेवाले जानने, इसी प्रकार जिस दिन मेषार्क प्रवेश हो उस दिनसे दश दिन अभ्रादिकयोग हो तो आर्द्रार्कादि नक्षत्रक्रममें वृष्टि करनेवाले जानने ॥ १११ ॥ ११२ ॥

यदाभ्रं दृश्यते व्योम्नि चैकादश्यां तु कार्तिके
आपाढे मासि वृष्टिश्च तदा भवति नूतनं

भाषार्थ—जो कार्तिकमास एकादशीके दिन आकाशमें मेघ दीख पड़ें तो आषाढमासमें बहुत वर्षा होवे ॥ ११३ ॥

मार्गाष्टम्यां यदा विद्युद्दर्पणं श्रावणे भवेत् ॥
पौषकृष्णे दशम्यां चेद्वृष्टिर्भाद्रपदे तथा ॥ ११४ ॥

भाषार्थ—जो मार्गशिरमासमें अष्टमीके दिन बिजली चमके बादल र्जे तो श्रावणमासमें वर्षा अच्छी होवे, एवं पौषकृष्ण दशमीके दिन जो बादल हो मेघगर्जे तो भाद्रमासमें उत्तम वृष्टि होवे ॥ ११४ ॥

सप्तम्यां माघशुक्लस्य भवेदभ्रादिकं यदा ॥
ज्येष्ठे मूले न चेद्वृष्टिः सुवृष्टिर्बहुला मता ॥ ११५॥

भाषार्थ—माघमास शुक्लपक्ष सप्तमीके दिन जो मेघ गर्जे और ज्येष्ठमासमें मूलनक्षत्रके दिन वर्षा नहीं हो तो वर्षाकालमें अच्छी वर्षा होवे॥११५

आढकप्रमाणम् ।

युग्मा ३ ज १ गो २ मत्स्य १२ गते शशांके भानुर्यदा कर्कटके प्रयाति ॥ तदा शता १००ऽऽढं हरि ५ कार्मुके ८ ऽर्द्धं ५० तुलेथ ७ कन्या ६ मृगं १० योरशीतिः ८० ॥ १६ ॥ कुलीरकुंभौलिगते ...ा स्यात्पडिंश २६ काढं भुवि वारिपातः ॥ ...र्द्धं पर्वतभागेषु तदर्द्धं मारुते गतम् ॥ तदर्द्धं ...ति मेदिन्यां वाराहेण च भाषितम् ॥ ११७ ॥

...—जो कर्कराशिके ...प्रवेशसमय चन्द्रमा मिथुन, मेष, वृष, मीनका हो तो ... आढक वर्षा जानना, सिंह धनु-

का चन्द्रमा हो तो पचास ५० आढक, और तुला कन्या वा मकरका चन्द्रमा हो तो असी ८० आढक वर्षा जानना, तथा कर्क, कुंभ अथवा वृश्चिकका चन्द्रमा हो तो छव्वीस २६ आढक वर्षा जानना, जितने आढक वर्षा हो उसमेंसे आधे आढक पर्वतभागमें, उसके आधे वायुभागमें, और आधे भूमिमें जानना, यह वराहजीने कथन किया है॥११६॥११७

रविनक्षत्रवाहनम् ।

दिनेशभात्सूर्यभवं हि धस्रं विगण्य सप्तोद्धृतमर्कवाहनम् ॥ भवेत्तुरंगः शशकश्च शूकरः शचानको गोर्महिषश्च दर्दुरः ॥ ११८ ॥

भाषार्थ—जिस दिन सूर्यनक्षत्रप्रवेश हो उस दिनके नक्षत्रसे सूर्यनक्षत्रतक गिने और सातका भाग देवे जो एक शेष रहे तो घोडा वाहन, २ शेषसे शशक (खरहा), ३ शेषसे शूकर, ४ शेषसे शचान, पांच शेषसे बैल, ६ शेषसे भैंसा, ७ शेषसे मेंढक वाहन, यह सूर्यनक्षत्रवाहन है ॥ ११८ ॥

सप्तनाडीचक्रम् ।

कृत्तिकादि लिखेच्चक्रं साभिजित्सप्तनाडिकम् ॥ चंडा वायुस्तथावन्हिः सौम्या नीरा जलाऽमृता ११९ नाडीनां सप्त नामानि ज्ञेयान्येतानि पंडितैः ॥ क्रमान्मन्दाऽर्कभौमेज्यशुक्रज्ञाब्जास्तदीश्वराः १२०

भाषार्थ—कृत्तिकादि नक्षत्र अभिजित्सहित सप्तनाडीचक्रमें लिखे, १ चंडा, वायु, ३ अग्नि, ४ सौम्या, ५ नीरा, ६ जला, अमृता, ये सातों नाडियोंके नाम हैं, सो पंडितों करके जानना, अब क्रमसे इनके स्वामी

होते है कि, १ शनि, २ सूर्य, ३ मंगल, ४ गुरु, ५ शुक्र, ६ बुध ७ न्द्र ॥ ११९ ॥ १२० ॥

ग्रहा यद्येकनाडीस्थाः सौम्याः पापा यथा तथा ॥
तेभ्यो नाडीफलं वाच्यं सदसद्वा विचक्षणैः॥१२१॥

भावार्थ—जो ग्रह एक नाडीमें स्थित हो शुभ ग्रह वा पाप ग्रह ो ग्रहोंके योगसे नाडीफल शुभ वा अशुभ पंडितोंने कथन करना है ॥ १२१ ॥

सप्तनाडीचक्रम्						
चंडा	वाता	वन्हि	सौम्या	नीरा	जला	अमृता
कृ.	रो.	मृ.	आ.	पु	पु.	श्ले
चि.	स्वा	वि.	ह.	उ.	पू.	म.
ऽनु.	ज्ये.	मू.	पू.	उ.	ऽभि	श्र.
भ.	अ.	रे.	उ.	पू.	श.	ध.
शनि	सूर्य	भौम	गुरु	शुक्र	बुध	चंद्र

चंडानाड्यां महावातान् वातनाड्यां तथानिलम् ॥
वन्हिनाड्यां स्थिता दाहं सौम्यनाड्यां महाभ्रकम् १२२
नीरनाड्यां पयोवृष्टिर्जलनाड्यां च वर्षणम् ॥
कुर्वन्त्यमृतनाड्यां च महावृष्टिं नभश्चराः ॥ १२३॥

कहते हैं कि, १ शनि, २ सूर्य, ३ मंगल, ४ गुरु, ५ शुक्र, ६ बुध ७ चन्द्र ॥ ११९ ॥ १२० ॥

ग्रहा यद्येकनाडीस्था सौम्याः पापा यथा तथा ॥
तेभ्यो नाडीफलं वाच्यं सदसद्वा विचक्षणैः॥१२१॥

भावार्थ—जो ग्रह एक नाडीमें स्थित हो शुभ ग्रह वा पाप ग्रह उन्हो ग्रहोंके योगसे नाडीफल शुभ वा अशुभ पंडितोंने कथन करना है ॥ १२१ ॥

सप्तनाडीचक्रम्

चंडा	वाता	वन्हि	सौम्या	नीरा	जला	अमृता
कृ.	रो.	मृ.	आ.	पु	पु.	श्ले
वि.	स्वा	चि.	ह.	उ.	पू.	म.
अनु.	ज्ये.	मू.	पू.	उ.	अभि	श्र.
भ.	अ.	रे.	उ.	पू.	श.	ध.
शनि	सूर्य	भौम	गुरु	शुक्र	बुध	चंद्र

चंडानाड्यां महावातान् वातनाड्यां तथानिलम् ॥
वन्हिनाड्यां स्थिता दाहं सौम्यनाड्यां महाभ्रकम् १२२
नीरनाड्यां पयोवृष्टिर्जलनाड्यां च वर्षणम् ॥
कुर्वन्त्यमृतनाड्यां च [illegible] श्वराः ॥ १२३॥

का चन्द्रमा हो तो पचास ५० आढक, और तुला कन्या वा मकरका चन्द्रमा हो तो असी ८० आढक वर्षा जानना, तथा कर्क, कुंभ अथवा वृश्चिकका चन्द्रमा हो तो छव्वीस २६ आढक वर्षा जानना, जितने आढक वर्षा हो उसमेंसे आधे आढक पर्वतभागमें, उसके आधे वायुभागमें, और आधे भूमिमें जानना, यह वराहजीने कथन किया है॥११६॥११७

रविनक्षत्रवाहनम् ।

दिनेशभात्सूर्यभवं हि घस्रं विगण्य सप्तोद्धृतमर्कवाहनम् ॥ भवेत्तुरंगः शशकश्च शूकरः शचानको गोर्महिपश्च दर्दुरः ॥ ११८ ॥

भाषार्थ—जिस दिन सूर्यनक्षत्रप्रवेश हो उस दिनके नक्षत्रसे सूर्यनक्षत्रतक गिने और सातका भाग देवें जो एक शेष रहे तो घोडा वाहन, २ शेषसे शशक (खरहा), ३ शेषसे शूकर, ४ शेषसे शचान, पांच शेषसे बैल, ६ शेषसे भैंसा, ७ शेषसे मेंढक वाहन, यह सूर्यनक्षत्रवाहन है ॥ ११८ ॥

सप्तनाडीचक्रम् ।

कृत्तिकादि लिखेचक्रं साभिजित्सप्तनाडिकम् ॥
चंडा वायुस्तथावन्हिः सौम्या नीरा जलऽमृता ११९
नाडीनां सप्त नामानि ज्ञेयान्येतानि पंडितैः ॥
क्रमान्मन्दाऽर्कभौमेज्यशुक्रज्ञाब्जास्तदीश्वराः १२०

भाषार्थ—कृत्तिकादि नक्षत्र अभिजित्सहित सप्तनाडीचक्रमें लिखे, १ चंडा, वायु, ३ अग्नि, ४ सौम्या, ५ नीरा, ६ जला, अमृता, ये सातों नाडियोंके नाम हैं, सो पंडितों करके जानना, अब क्रमसे इनके स्वामी

ज्योतिषग्रन्थाः।

	की.
१ अर्धप्रकाश ज्योतिष भाषाटीका इसमें तेजी मंदी वस्तु देखनेका विचार है	०-४
२ अयोध्याजातक ज्योतिष भाषाटीका (इसमें बालकका जन्म जन्मजातकादि भलीभांति वर्णित है)	-४
३ कालज्ञान भाषाटीका	-४
४ करेखासंख्यावली (छंदबद्ध सुगमसामुद्रिक)	-४
५ गंगास्थिलनिर्णय भाषाटीका	-२
६ केरलमत प्रश्नसंग्रह इसमें प्रश्न देखनेक है	-४
७ गर्गमनोरमा भाषा और संस्कृत टीकासह	-२
८ गर्गजातक भाषाटीका	-३
९ ग्रहगोचर भा० टी०	-२
१० ग्रहलाघव भा० टी०	-१
११ ग्रहशांति संस्कृत (अतिउत्तम)	-१०
१२ चमत्कारचिन्तामणि भाषाटीका	-४
१३ जन्मपत्र और वर्षपत्रके फार्म मत्येकका	-१॥
१४ जातकालङ्कार भाषाटीका	-६
१५ जातकालंकारसटीक	-६
१६ जातकाभरण मूल ग्लेज १२ आ. रफ्	-१०
१७ जातकाभरण भा० टी०	१-८
१८ जातकचन्द्रिका भा०टी०(अत्युत्तमजन्मजातक मन्वादि भावफलषड्वर्गफल अनेकानेक योग दशादिवर्णित पासमें अवश्य रखने योग्य है)	-१२
१९ जातक संग्रह भाषाटीका इसमें जिन विषयोंकी कि जन्मपत्रफलादेशमें आवश्यकता होती है वेही समस्त विषय अनेक संस्कृत जातकग्रथोंसे सार २ लेकर भाषाटीकासहित छपे हैं	२-८
२० जैमिनिसूत्रसटीक चार अध्याय	-६
२१ जैमिनीसूत्र भा० टी०	-१०
२२ ज्योतिषश्यामसंग्रह भा० टी० ग्लेज (बहुत प्रकारसे जन्मपत्रका नाव योगानुयोग उचादिफल दशा अरिष्ट राजयोगादि भाव भलीप्रकार कह सकते हैं)	२-८
२३ " रफ	१-०
२४ ज्योतिषसार भाषाटीका सहित	१-०
२५ ज्योतिषकी लावणी	-२
२६ ज्योतिःशास्त्र निर्घंटु	-२
२७ ज्योतिषकी चाबी भाषामें	-१
२८ तत्वप्रदीप (जातक ग्रन्थ देखने योग्य)	-३
२९ ताजिकनीलकण्ठी सटीक तन्त्रत्रयात्मक संस्कृत टीकासह खुलापाना	१-०
३० " " जिल्दकी	१-०
३१ ताजकनीलकण्ठी महीधरकृत भाषाटीका	१-८
३२ ताजिकभूषण भाषाटीका	[illegible]
३३ तिथिनिर्णय मूल	॥
३४ "	[illegible]

भाषार्थ—चंडानाडीमें मेघ हों तो बहुत वायु बहे, वातनाडीमें हों तो पवन हो, अग्निनाडीमें हो तो दाह हो, सौम्यनाडीमें हो तो बहुत मेघ हों, नीरनाडी और जलनाडीमें हों तो बहुत वर्षा होवे, अमृतनाडीमें ग्रह हों तो महावृष्टि होवे ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

चंद्रः पीयूषनाडीस्थः मिश्रैः खेटैश्च संयुतः ॥
त्रिचतुः पंचसप्ताहं शुभवृष्टिप्रदो मतः ॥ १२४ ॥
जलनाडीस्थिते चंद्रे मिश्रखेचरसंयुते ॥
दिनार्द्धं प्रत्यहं वृष्टिः पंचाहं जायते शुभा ॥ १२५ ॥
नीरनाड्यां गते चंद्रे मिश्रैः खेटैश्च संयुते ॥
पादोनं तद्दिनं वृष्टिर्बहुतोया भवेद्धरा ॥ १२६ ॥

भाषार्थ—चन्द्रमा पीयुषनाडीमें अन्य ग्रहोंसहित हो तो ३।४।५।७ दिनतक वर्षा होवे, मिश्र ग्रहोंसमेत चंद्रमा जलनाडीमें हो तो पांच दिनतक आधे आधे दिन वर्षा होवे है, नीरनाडीमें जो चन्द्रमा अन्य ग्रहोंसहित हो तो चौथाई दिन बहुतही वर्षा होवे ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

टीकाकारप्रार्थना ॥

अतिशीघ्रतया चेयं कृता व्याख्या मया किल ॥
अत्रकुत्राप्यशुद्धं चेत्क्षन्तव्यं विबुधैर्नरैः ॥ १ ॥

भाषार्थ—अतिशीघ्रतापूर्वक यह व्याख्या मैंने करी इसमें यदि कहीं कुछ अशुद्धता रह गई हो उसको बुद्धिवान्पंडित जनोंको क्षमा करनी योग्य है, यह हमारी प्रार्थना है ॥ १ ॥

इति श्रीमदयोध्यामंडलांतर्गतनिरखीरीनिवासिज्योतिर्वित्पण्डित-नारायणप्रसादमिश्रविरचितमांत्रसागरपद्धतिभाषानुवादे मदर्व-मसमं वर्षाविचारो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

ज्योतिषग्रन्थाः।

	रु.
१ अर्घप्रकाश ज्योतिष भाषाटीका इसमें तेजी मंदी वस्तु देखनेका विचार है०	–४
२ अपोष्ण्याजातक ज्योतिष भाषाटीका (इसमें बालकका जन्म जन्मजातकादि भलीभांति वर्णित है) ...	–४
३ कालज्ञान भाषाटीका	–४
४ करलेखासंख्यावली (छंदबद्ध मुग-गसामुद्रिक)	–४
५ गंगास्थितनिर्णय भाषाटीका ...	–२
६ केरलमत प्रश्नसंग्रह इसमें प्रश्न देखनेके हैं	–४
७ गर्गमनोरमा भाषा और संस्कृत टीकासह	–२
८ गर्गजातक भाषाटीका	–३
९ ग्रहगोचर भा० टी०	–२
१० ग्रहलाघव भा० टी०	– १
११ ग्रहशांति संस्कृत (अतिउत्तम)	–१०
१२ चमत्कारचिन्तामणी भाषाटीका	–४
१३ जन्मपत्र और वर्षपत्रके फार्म प्रत्येकका	–३॥
१४ जातकालङ्कार भाषाटीका ...	–६
१५ जातकालंकारसटीक	–६
१६ जातकाभरण मूल ग्लेज १२ आ. रफ्	–१०
१७ जातकाभरण भा० टी०	१–८
१८ जातकचन्द्रिका भा०टी०(अत्युत्तमजन्मजातक मन्वादि भाव-फलपद्वर्गफल अनेकानेक योग दशादिवर्णित पासमें अवश्य रखने योग्य है)... ...	–१२
१९ जातक संग्रह भाषाटीका इसमें जिन विषयोंकी कि जन्मपत्रफलादेशमें आवश्यकता होती है वेही समस्त विषय अनेक संस्कृत जातकग्रंथोंसे सार २ लेकर भाषाटीकासहित छपे हैं	...२–८
२० जैमिनिसूत्रसटीक चार अध्याय	–६
२१ जैमिनीसूत्र भा० टी० ...	...–१०
२२ ज्योतिषश्यामसंग्रह भा० टी० ग्लेज (बहुत प्रकारसे जन्मपत्रका भाव योगानुयोग उच्चादि-बल दशा अरिष्ट राजयोगादि भाव भलीप्रकार कह सकते हैं)	२–८
२३ „ रफ ...	...२–०
२४ ज्योतिषसार भाषाटीका सहित	१–०
२५ ज्योतिषकी लावणी ...	... –२
२६ ज्योतिःशास्त्र निंदु ...	... –२
२७ ज्योतिषकी चाबी भाषामें ...	–१
२८ तत्वप्रदीप (जातक ग्रन्थ देखने योग्य)	–३
२९ ताजिकनीलकण्ठी सटीक तन्त्र-त्रयात्मक संस्कृत टीकासह खुलापाना	१–०
३० „ „ जिल्दकी	१–०
३१ ताजकनीलकण्ठी महीधरकृत भाषाटीका	१–८
३२ ताजिकभूषण भाषाटीका ...	–८
३३ तिथिनिर्णय मूल संस्कृत ...	–१॥
३४ नष्टजन्माङ्गदीपिका और पंचा-	

भावार्थ—चंडानाडीमें मेघ हों तो बहुत वायु वहे, वातनाडीमें हों तो पवन हो, अग्निनाडीमें हो तो दाह हो, सौम्यनाडीमें हो तो बहुत मेघ हों, नीरनाडी और जलनाडीमें हों तो बहुत वर्षा होवे, अमृतनाडीमें ग्रह हों तो महावृष्टि होवे ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

चंद्रः पीयूषनाडीस्थः मिश्रैः खेटैश्च संयुतः ॥
त्रिचतुः पंचसप्ताहं शुभवृष्टिप्रदो मतः ॥ १२४ ॥
जलनाडीस्थिते चंद्रे मिश्रखेचरसंयुते ॥
दिनार्द्धं प्रत्यहं वृष्टिः पंचाहं जायते शुभा ॥ १२५ ॥
नीरनाड्यां गते चंद्रे मिश्रैः खेटैश्च संयुते ॥
पादोनं तद्दिनं वृष्टिर्बहुतोया भवेद्धरा ॥ १२६ ॥

भावार्थ—चन्द्रमा पीयुषनाडीमें अन्य ग्रहोंसहित हो तो ३।४।५ ७ दिनतक वर्षा होवे, मिश्र ग्रहोंसमेत चंद्रमा जलनाडीमें हो तो पांच दिनतक आधे आधे दिन वर्षा होवे घे, नीरनाडीमें जो चन्द्रमा अन्य ग्रहोंसहित हो तो चौथाई दिन बहुतही वर्षा होवे ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

टीकाकारप्रार्थना ॥

अतिशीघ्रतया चेयं कृता व्याख्या मया किल ॥
अत्रकुत्राप्यशुद्धं चेत्क्षन्तव्यं विबुधैर्नरैः ॥ १ ॥

भावार्थ—अतिशीघ्रतापूर्वक यह व्याख्या मैंने करी इसमें यदि कहीं कुछ असुद्धता रह गई हो उसको बुद्धिवानपंडित जनोंको क्षमा करनी योग्य है, यह हमारी प्रार्थना है ॥ १ ॥

इति श्रीमदयोध्यामंडलान्तर्गतविलग्रामनिवासिज्योतिर्वित्पण्डित-नागपतनारायणमिश्रविरचितमानसागरीपद्धतिभाषानुवादे महर्घ-समर्घवर्षाविचारो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।



ज्योतिषग्रन्थाः ।

	रु. आ.
१ अर्थप्रकाश ज्योतिष भाषाटीका इसमें तेजी मंदी वस्तु देखनेका विचार है	०-४
अयोध्याजातक ज्योतिष भाषाटीका (इसमें बालकका जन्म जन्मजातकादि भलीभांति वर्णित है) ...	-४
३ कालज्ञान भाषाटीका	-४
४ कररेखाभेदपावली (छंदबद्ध सुगमसामुद्रिक)	-४
५ गंगास्थित्तनिर्णय भाषाटीका ...	-२
६ केरलमत प्रश्नसंग्रह इसमें प्रश्न देखनेके हैं	-४
७ गर्गमनोरमा भाषा और संस्कृत टीकासह	-२
८ गर्गजातक भाषाटीका	-३
९ ग्रहगोचर भा॰ टी॰	-२
१० ग्रहलाघव भा॰ टी॰	-१
११ ग्रहशांति संस्कृत (अनिउत्तम)	-१०
१२ चमत्कारचिन्तामणि भाषाटीका	-४
१३ जन्मपत्र और वर्षपत्रके फार्म प्रत्येकका	-१॥
१४ जातकालङ्कार भाषाटीका ...	-६
१५ जातकालंकारसटीक	-६
१६ जातकाभरण मूल ग्लेज १२ आ. रफ्	-१०
१७ जातकाभरण भा॰ टी॰	१-८
१८ जातकचन्द्रिका भा॰टी॰(अत्युत्तमजन्मजातक मन्वादि भावफलषड्वर्गफल अनेकानेक योग दशादिवर्णित पासमें अवश्य रखने योग्य है)... ...	-१२
१९ जातक संग्रह भाषाटीका इसमें जिन विषयोंकी कि जन्मपत्रफलादेशमें आवश्यकता होती है वेही समस्त विषय अनेक संस्कृत जातकग्रंथोंसे सार २ लेकर भाषाटीकासहित छपे हैं	२-८
२० जेमिनिसूत्रसटीक चार अध्याय	-६
२१ जैमिनीसूत्र भा॰ टी॰ ...	-१०
२२ ज्योतिषश्यामसंग्रह भा॰ टी॰ ग्लेज (बहुत प्रकारसे जन्मपत्रका नाव योगानुयोग उच्चादिबल दशा अरिष्ट राजयोगादि भाव भलीप्रकार कह सकते हैं)	२-८
२३ „ रफ	२-०
२४ ज्योतिषसार भाषाटीका सहित	१-०
२५ ज्योतिषकी लावणी	-१
२६ ज्योतिःशास्त्र निघंटु	-२
१७ ज्योतिषकी चाबी भाषामें ...	-१
२८ तत्वप्रदीप (जातक ग्रन्थ देखने योग्य)	-३
२९ ताजिकनीलकण्ठी सटीक तन्त्रत्रयात्मक संस्कृत टीकासह खुलापाना	१-०
३० „ „ जिल्दकी	१-०
३१ ताजकनीलकण्ठी महीधरकृत भाषाटीका	१-८
१२ ताजिकभूषण भाषाटीका ...	-८
३३ तिथिनिर्णय मूल संस्कृत ...	-१॥
१४ नष्टजन्माङ्गदीपिका और पंचा-	

भापार्थ—चंडानाडीमें मेव हों तो बहुत वायु वहे, वातनाडीमें हों तो पवन हो, अग्निनाडीमें हो तो दाह हो, सौम्यनाडीमें हो तो बहुत मेघ हों, नीरनाडी और जलनाडीमें हों तो बहुत वर्षा होवे, अमृतनाडीमें ग्रह हों तो महावृष्टि होवे ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

चंद्रः पीयूपनाडीस्थः मिश्रैः खेटैश्च संयुतः ॥
त्रिचतुः पंचसप्ताहं शुभवृष्टिप्रदो मतः ॥ १२४ ॥
जलनाडीस्थिते चंद्रे मिश्रखेचरसंयुते ॥
दिनार्द्धं प्रत्यहं वृष्टिः पंचाहं जायते शुभा ॥ १२५ ॥
नीरनाड्यां गते चंद्रे मिश्रैः खेटैश्च संयुते ॥
पादोनं तद्दिनं वृष्टिर्बहुतोया भवेद्धरा ॥ १२६ ॥

भापार्थ—चन्द्रमा पीयुपनाडीमें अन्य ग्रहोंसहित हो तो ३।४।५ ७ दिनतक वर्षा होवे, मिश्र ग्रहोंसमेत चंद्रमा जलनाडीमें हो तो पांच दिनतक आधे आधे दिन वर्षा होवे घे, नीरनाडीमें जो चन्द्रमा अन्य ग्रहोंस-हित हो तो चौथाई दिन बहुतही वर्षा होवे ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

टीकाकारप्रार्थना ॥

अतिशीघ्रतया चेयं कृता व्याख्या मया किल ॥
अत्रकुत्राप्यशुद्धं चेत्क्षन्तव्यं विबुधैर्नरैः ॥ १ ॥

भापार्थ—अतिशीघ्रतापूर्वक यह व्याख्या मैंने करी इसमें यदि कहीं कुछ अशुद्धता रह गई हो उसको बुद्धिवानूपंडित जनोंको क्षमा करनी योग्य है, यह हमारी प्रार्थना है ॥ १ ॥

इति श्रीमदयोध्यामंडलांतर्वर्तिलखीरीनिवासिज्योतिर्वित्पण्डित-नारायणप्रसादमिश्रविलिखितसांवत्सरीपद्धतिभापानुवादे महर्घ-समर्घ वर्षाविचारो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

समाप्तोयं ग्रन्थः ।

ज्योतिषग्रन्थाः ।

रु.

अर्घप्रकाश ज्योतिष भाषाटीका इसमें तेजी मंदी वस्तु देखनेका विचार है०-४

२ अयोध्याजातक ज्योतिष भाषाटीका (इसमें बालकका जन्म जन्मजातकादि भलीभांति वर्णित है) ... -४

३ कालज्ञान भाषाटीका ... ... -४

४ करलखाखेलपावली (छंदबद्ध सुगमसामुद्रिक) ... ... -४

५ गंगास्थित्वनिर्णय भाषाटीका ... -२

६ केरलमत प्रश्नसंग्रह इसमें प्रश्न देखनेके है ... ... -४

७ गर्गमनोरमा भाषा और संस्कृत टीकासह ... ... -२

८ गर्गजातक भाषाटीका ... ... -३

९ ग्रहगोचर भा० टी० ... ... -२

१० ग्रहलाघव भा० टी० ... ...- १

११ ग्रहशांति संस्कृत (अतिउत्तम) -१०

१२ चमत्कारचिन्तामणि भाषाटीका -४

१३ जन्मपत्र और वर्षपत्रके फार्म सत्येकका ... ... -१॥

१४ जातकालङ्कार भाषाटीका ... -६

१५ जातकालंकार सटीक ... १

१६ ...

रु.

रखने योग्य है)... ... -११

१९ जातक संग्रह भाषाटीका इसमें जिन विषयोंकी कि जन्मपत्रकारदेखनेमें आवश्यकता होती है वेही समस्त विषय अनेक संस्कृत जातकग्रंथोंसे सार २ लेकर भाषाटीकासहित छपे हैं २-८

२० जैमिनिसूत्रसटीक चार अध्याय -६

२१ जैमिनीसूत्र भा० टी० ... ...-१०

२२ ज्योतिषश्यामसंग्रह भा० टी० ग्लेज (बहुत प्रकारसे जन्मपत्रका नाव योगानुयोग दशादिफल दशा आदि राजयोगादि भाव भलीप्रकार कह सकते हैं)२-८

२३ " रफ १-८

२४ ज्योतिषसार भाषाटीका सचित्र १-

२५ ज्योतिषकी सारणी ...

२६ ज्योतिःसार सिंधु ...

२७ ज्योतिषकी ...

२८ तत्त्वदीप (...) ...

२९ ...

તે હોતાં (હોવાથી), સ્વપરના એકત્વના અધ્યાસને લીધે જ્ઞાનમાત્ર એવા
(આત્મસ્વરૂપમાંથી) ભ્રષ્ટ થયેલો, પર એવા રાગદ્વેષ સાથે એક થઈને જેને
પ્રવર્ત્યો છે એવો પોતે 'આ હું ખરેખર રાગી છું, દ્વેષી છું (અર્થાત્ આ
કરું છું, દ્વેષ કરું છું)' એમ (માનતો થકો) રાગી અને દ્વેષી થાય છે; તેથી
ભાવને લીધે અજ્ઞાની પોતાને પર એવા રાગદ્વેષરૂપ કરતો થકો કર્મોને કરે છે.

જ્ઞાનીને તો, સમ્યક્ પ્રકારે સ્વપરના વિવેક વડે ભિન્ન આત્માની
અત્યંત ઉદય પામી હોવાથી, જ્ઞાનમય ભાવ જ હોય છે; અને તે હોતાં
નાનાત્વના વિજ્ઞાનને લીધે જ્ઞાનમાત્ર એવા પોતામાં સુનિવિષ્ટ (સમ્યક્ પ્રકારે
થયેલો, પર એવા રાગદ્વેષથી પૃથગ્ભૂતપણાને (ભિન્નપણાને) લીધે નિજરસથી
અહંકાર નિવૃત્ત થયો છે એવો પોતે ખરેખર કેવળ જાણે જ છે, રાગી અને દ્વે
નથી (અર્થાત્ રાગ અને દ્વેષ કરતો નથી); તેથી જ્ઞાનમય ભાવને લીધે જ્ઞાની
પર એવા રાગદ્વેષરૂપ નહિ કરતો થકો કર્મોને કરતો નથી.

ભાવાર્થ:—આ આત્માને ક્રોધાદિક મોહનીય કર્મની પ્રકૃતિનો (
રાગદ્વેષનો) ઉદય આવતાં, પોતાના ઉપયોગમાં તેનો રાગદ્વેષરૂપ મલિન સ્વાદ
અજ્ઞાનીને સ્વપરનું ભેદજ્ઞાન નહિ હોવાથી તે એમ માને છે કે "આ રા
મલિન ઉપયોગ છે તે જ મારું સ્વરૂપ છે—તે જ હું છું." આમ રાગદ્વેષમાં અ
કરતો અજ્ઞાની પોતાને રાગીદ્વેષી કરે છે; તેથી તે કર્મોને કરે છે. આ પ્રમાણે
મય ભાવથી કર્મબંધ થાય છે.

જ્ઞાનીને ભેદજ્ઞાન હોવાથી તે એમ જાણે છે કે "જ્ઞાનમાત્ર શુદ્ધ ઉ
તે જ મારું સ્વરૂપ છે—તે જ હું છું; રાગદ્વેષ છે તે કર્મનો રસ છે—મારું સ્વરૂપ
આમ રાગદ્વેષમાં અહંબુદ્ધિ નહિ કરતો જ્ઞાની પોતાને રાગીદ્વેષી કરતો નથી,
જ્ઞાતા જ રહે છે; તેથી તે કર્મોને કરતો નથી. આ પ્રમાણે જ્ઞાનમય ભાવથી ક
થતો નથી.

હવે આગળની ગાથાના અર્થની સૂચનારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(આર્યા)

ज्ञानमय एव भावः कुतो भवेद् ज्ञानिनो न पुनरन्यः ।
अज्ञानमयः सर्वः कुतोऽयमज्ञानिनो नान्यः ॥ ६६ ॥

અર્થ:—અહીં પ્રશ્ન છે કે જ્ઞાનીને કેમ જ્ઞાનમય જ ભાવ હોય અને
(અર્થાત્ અજ્ઞાનમય) ન હોય? વળી અજ્ઞાનીને કેમ સર્વ ભાવ અજ્ઞાનમય
અને અન્ય (અર્થાત્ ...

આ જ પ્રશ્નના ઉત્તરરૂપ ગાથા કહે છે:—

णाणमया भावाओ णाणमओ चेव जायए भावो ।
जह्मा तह्मा णाणिस्स सव्वे भावा हु णाणमया ॥ १२८ ॥
अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायए भावो ।
जह्मा तह्मा भावा अण्णाणमया अणाणिस्स ॥ १२९ ॥

ज्ञानमयाद्भावाद् ज्ञानमयश्चैव जायते भावः ।
यस्मात्तस्माज्ज्ञानिनः सर्वे भावाः खलु ज्ञानमयाः ॥ १२८ ॥
अज्ञानमयाद्भावादज्ञानश्चैव जायते भावः ।
यस्मात्तस्माद्भावा अज्ञानमया अज्ञानिनः ॥ १२९ ॥

અન્વયાર્થ:—[यस्मात्] કારણ કે [ज्ञानमयात् भावात् च] જ્ઞાનમય વમાંથી [ज्ञानमयः एव] જ્ઞાનમય જ [भावः] ભાવ [जायते] ઉત્પન્ન થાય છે સ્માત્] તેથી [ज्ञानिनः] જ્ઞાનીના [सर्वे भावाः] સર્વ ભાવો [खलु] ખરેખર નમયાઃ] જ્ઞાનમય જ હોય છે. [च] અને, [यस्मात्] કારણ કે [अज्ञानमयात् ાત્] અજ્ઞાનમય ભાવમાંથી [अज्ञानः एव] અજ્ઞાનમય જ [भावः] ભાવ યતે] ઉત્પન્ન થાય છે [तस्मात्] તેથી [अज्ञानिनः] અજ્ઞાનીના [भावाः] ભાવો જ્ઞાનમયાઃ] અજ્ઞાનમય જ હોય છે.

ટીકા:—ખરેખર અજ્ઞાનમય ભાવમાંથી જે કોઈ પણ ભાવ થાય છે તે સઘળોય જ્ઞાનમયપણાને નહિ ઉલ્લંઘતો થકો અજ્ઞાનમય જ હોય છે, તેથી અજ્ઞાનીના ભાવો ાય અજ્ઞાનમય હોય છે. અને જ્ઞાનમય ભાવમાંથી જે કોઈ પણ ભાવ થાય છે તે ળોય જ્ઞાનમયપણાને નહિ ઉલ્લંઘતો થકો જ્ઞાનમય જ હોય છે, તેથી જ્ઞાનીના ભાવો ાય જ્ઞાનમય હોય છે.

વળી જ્ઞાનમય કો ભાવમાંથી જ્ઞાનભાવ જ ઊપજે,
તે કારણે જ્ઞાનીતણા સૌ ભાવ જ્ઞાનમયી ખરે. ૧૨૮.
અજ્ઞાનમય કો ભાવથી અજ્ઞાનભાવ જ ઊપજે,
તે કારણે અજ્ઞાનીના અજ્ઞાનમય ભાવો બને. ૧૨૯.

तं खलु जीवणिबद्धं कम्मइयवग्गणागयं जइया ।
तइया दु होदि हेदू जीवो परिणामभावाणं ॥ १३६ ॥

अज्ञानस्य स उदयो या जीवानामतत्त्वोपलब्धिः ।
मिथ्यात्वस्य तूदयो जीवस्याश्रद्धानत्वम् ॥ १३२ ॥
उदयोऽसंयमस्य तु यज्जीवानां भवेदविरमणम् ।
यस्तु कलुषोपयोगो जीवानां स कषायोदयः ॥ १३३ ॥
तं जानीहि योगोदयं यो जीवानां तु चेष्टोत्साहः ।
शोभनोऽशोभनो वा कर्तव्यो विरतिभावो वा ॥ १३४ ॥
एतेषु हेतुभूतेषु कार्मणवर्गणागतं यत्तु ।
परिणमतेऽष्टविधं ज्ञानावरणादिभावैः ॥ १३५ ॥
तत्खलु जीवनिबद्धं कार्मणवर्गणागतं यदा ।
तदा तु भवति हेतुर्जीवः परिणामभावानाम् ॥ १३६ ॥

અન્વયાર્થ:—[जीवानां] જીવોને [या] જે [अतत्त्वोपलब्धिः] તત્ત્વનું
જ્ઞાન (અર્થાત્ વસ્તુસ્વરૂપનું અયથાર્થ-વિપરીત જ્ઞાન) છે [सः] તે [अज्ञानस्य]
જ્ઞાનનો [उदयः] ઉદય છે [तु] અને [जीवस्य] જીવને [अश्रद्धानत्वं] જે
તત્ત્વનું) અશ્રદ્ધાન છે તે [मिथ्यात्वस्य] મિથ્યાત્વનો [उदयः] ઉદય છે; [तु]
ળી [जीवानां] જીવોને [यत्] જે [अविरमणं] અવિરમણ અર્થાત્ અત્યાગભાવ
તે [असंयमस्य] અસંયમનો [उदयः] ઉદય [भवेत्] છે [तु] અને [जीवानां]
જીવોને [यः] જે [कलुषोपयोगः] મલિન (અર્થાત્ જાણપણાની સ્વચ્છતા રહિત)
પયોગ છે [सः] તે [कषायोदयः] કષાયનો ઉદય છે; [तु] વળી [जीवानां]
જીવોને [यः] જે [शोभनः अशोभनः वा] શુભ કે અશુભ [कर्तव्यः विरतिभावः
] પ્રવૃત્તિ કે નિવૃત્તિરૂપ [चेष्टोत्साहः] (મનવચનકાયા-આશ્રિત) ચેષ્ટાનો ઉત્સાહ
[तं] તે [योगोदयं] યોગનો ઉદય [जानीहि] જાણ.

[एतेषु] આ (ઉદયો) [हेतुभूतेषु] હેતુભૂત થતાં [यत् तु] જે [कार्मण
र्गणागतं] કાર્મણવર્ગણાગત (કાર્મણવર્ગણારૂપ) પુદ્‌ગલદ્રવ્ય [ज्ञानावरणादिभावैः

કાર્મણવરગણારૂપ તે જ્યાં જીવનિબદ્ધ બને ખરે,
આત્માય જીવપરિણામભાવોનો તદા હેતુ બને. ૧૩૬.

भणविधं] જ્ઞાનાવરણાદિભાવોરૂપે આઠ પ્રકારે [परिणमते] પરિણમે છે
पर्यागतं] તે કાર્મણવર્ગણાગત પુદ્ગલદ્રવ્ય [यदा] જ્યારે [खलु]
निबद्धं] જીવમાં બંધાય છે [तदा तु] ત્યારે [जीवः] જીવ [
(પોતાના અજ્ઞાનમય) પરિણામભાવોનો [हेतुः] હેતુ [भवति] થાય

ટીકાઃ—તત્ત્વના અજ્ઞાનરૂપે (અર્થાત્ વસ્તુસ્વરૂપની અન્યથા ઉ
જ્ઞાનમાં સ્વાદરૂપ થતો (—સ્વાદમાં આવતો) અજ્ઞાનનો ઉદય છે. મિથ્યાત્વ
કષાય અને યોગના ઉદયો—કે જેઓ (નવાં) કર્મના હેતુઓ છે તેઓ—તેમ
અજ્ઞાનમય ચાર ભાવો છે. તત્ત્વના અશ્રદ્ધાનરૂપે જ્ઞાનમાં સ્વાદરૂપ થતો મિ
ઉદય છે; અવિરમણરૂપે (અત્યાગભાવરૂપે) જ્ઞાનમાં સ્વાદરૂપ થતો અસંયમ
કલુષ (મલિન) ઉપયોગરૂપે જ્ઞાનમાં સ્વાદરૂપ થતો કષાયનો ઉદય છે; શુભાશુભ
કે નિવૃત્તિના વ્યાપારરૂપે જ્ઞાનમાં સ્વાદરૂપ થતો યોગનો ઉદય છે. આ
મિથ્યાત્વાદિના ઉદયો હેતુભૂત થતાં જે કાર્મણવર્ગણાગત પુદ્ગલદ્રવ્ય જ્ઞાનાવ
આઠ પ્રકારે સ્વયમેવ પરિણમે છે, તે કાર્મણવર્ગણાગત પુદ્ગલદ્રવ્ય જ્યારે
નિબદ્ધ થાય ત્યારે જીવ સ્વયમેવ અજ્ઞાનથી સ્વપરના એકત્વના અધ્યાસને
અશ્રદ્ધાન આદિ પોતાના અજ્ઞાનમય પરિણામભાવોનો હેતુ થાય છે.

ભાવાર્થઃ—અજ્ઞાનભાવના ભેદરૂપ જે મિથ્યાત્વ, અવિરતિ, કષ
યોગના ઉદયો તે પુદ્ગલનાં પરિણામ છે અને તેમનો સ્વાદ અતત્ત્વશ્રદ્ધાનાદિ
આવે છે. તે ઉદયો નિમિત્તભૂત થતાં, કાર્મણવર્ગણારૂપ નવાં પુદ્ગલો સ્વતઃ
વરણાદિ કર્મરૂપે પરિણમે છે અને જીવ સાથે બંધાય છે; અને તે સમયે જી
સ્વયમેવ પોતાના અજ્ઞાનભાવથી અતત્ત્વશ્રદ્ધાનાદિ ભાવોરૂપે પરિણમે છે અને
પોતાના અજ્ઞાનમય ભાવોનું કારણ પોતે જ થાય છે.

મિથ્યાત્વાદિનો ઉદય થવો, નવાં પુદ્ગલોનું કર્મરૂપે પરિણમવું તથા
અને જીવનું પોતાના અતત્ત્વશ્રદ્ધાનાદિ ભાવોરૂપે પરિણમવું—એ ત્રણેય
જ થાય છે; સૌ સ્વતંત્રપણે પોતાની મેળે જ પરિણમે છે, કોઈ કોઈને
નથી. ૧૩૨-૧૩૬.

જીવથી જુદું જ પુદ્ગલદ્રવ્યનું પરિણામ છે એમ હવે પ્રતિપાદન

जइ जीवेण सह च्चिय पुग्गलदव्वस्स कम्मपरिणामो।
एवं पुग्गलजीवा हु दोवि कम्मत्तमावण्णा ॥ १३७॥

જો કર્મરૂપ પરિણામ, જીવ ભેળાં જ, પુદ્ગલનાં બને,
તો જીવ ને પુદ્ગલ ઉભય પણ કર્મપણું પામે અરે! ૧૩

एक्कस्स दु परिणामो पुग्गलदव्वस्स कम्मभावेण ।
ता जीवभावहेदूहि विणा कम्मस्स परिणामो ॥ १३८ ॥

यदि जीवेन सह चैव पुद्गलद्रव्यस्य कर्मपरिणामः ।
एवं पुद्गलजीवौ खलु द्वावपि कर्मत्वमापन्नौ ॥ १३७ ॥
एकस्य तु परिणामः पुद्गलद्रव्यस्य कर्मभावेन ।
तज्जीवभावहेतुभिर्विना कर्मणः परिणामः ॥ १३८ ॥

અન્વયાર્થઃ—[यदि] જો [पुद्गलद्रव्यस्य] પુદ્‌ગલદ્રવ્યને [जीवेन सह] જીવની સાથે જ [कर्मपरिणामः] કર્મરૂપ પરિણામ થાય છે (અર્થાત્ બન્ને ભેળાં જ કર્મરૂપે પરિણમે છે) એમ માનવામાં આવે તો [एवं] એ રીતે [पुद्गलजीवौ द्वौ अपि] પુદ્‌ગલ અને જીવ બન્ને [खलु] ખરેખર [कर्मत्वं आपन्नौ] કર્મપણાને [तु] પરંતુ [कर્मभावेन] કર્મભાવે [परिणामः] પરિણામ તો [पुद्गलद्रव्यस्य] પુદ્‌ગલદ્રવ્યને એકને જ થાય છે [तत्] તેથી [जीवभावहेतुभिः विना] ભાવરૂપ નિમિત્તથી રહિત જ અર્થાત્ જુદું જ [कर्मणः] કર્મનું [परिणामः] ણામ છે.

ટીકાઃ—જો પુદ્‌ગલદ્રવ્યને, કર્મપરિણામના નિમિત્તભૂત એવા રાગાદિ-અજ્ઞાન-ણામે પરિણમેલા જીવની સાથે જ (અર્થાત્ બન્ને ભેગાં મળીને જ), કર્મરૂપ ણામ થાય છે—એમ વિતર્ક કરવામાં આવે તો, જેમ ભેળાં થયેલાં હળદર અને ી બન્નેને લાલ રંગરૂપ પરિણામ થાય છે તેમ, પુદ્‌ગલદ્રવ્ય અને જીવ બન્નેને કર્મરૂપ ણામ આવી પડે. પરંતુ પુદ્‌ગલદ્રવ્યને એકને જ કર્મપણારૂપ પરિણામ તો થાય તેથી જીવનું રાગાદિ અજ્ઞાનપરિણામ કે જે કર્મનું નિમિત્ત છે તેનાથી જુદું જ ્ગલકર્મનું પરિણામ છે.

ભાવાર્થઃ—જો પુદ્‌ગલદ્રવ્ય અને જીવ ભેળાં થઈને કર્મરૂપે પરિણમે છે એમ વામાં આવે તો બન્નેને કર્મરૂપ પરિણામ ઠરે. પરંતુ જીવ તો જડ કર્મરૂપે કદી ણમી શકતો નથી; તેથી જીવનું અજ્ઞાનપરિણામ કે જે કર્મને નિમિત્ત છે તેનાથી જ પુદ્‌ગલદ્રવ્યનું કર્મપરિણામ છે. ૧૩૭-૧૩૮.

પુદ્‌ગલદ્રવ્યથી જુદું જ જીવનું પરિણામ છે એમ હવે પ્રતિપાદન કરે છેઃ—

પણ કર્મભાવે પરિણમન છે એક પુદ્‌ગલદ્રવ્યને,
જીવભાવહેતુથી અલગ, તેથી, કર્મનાં પરિણામ છે. ૧૩૮.

जीवस्स दु कम्मेण य सह परिणामा हु होंति रागादी।
एवं जीवो कम्मं च दोवि रागादिमावण्णा ॥ १३९ ॥

एकस्स दु परिणामो जायदि जीवस्स रागमादीहिं।
ता कम्मोदयहेदूहि विणा जीवस्स परिणामो ॥ १४० ॥

जीवस्य तु कर्मणा च सह परिणामाः खलु भवंति रागादयः।
एवं जीवः कर्म च द्वे अपि रागादित्वमापन्ने ॥ १३९ ॥
एकस्य तु परिणामो जायते जीवस्य रागादिभिः।
तत्कर्मोदयहेतुभिर्विना जीवस्य परिणामः ॥ १४० ॥

અન્વયાર્થઃ—[जीवस्य तु] જો જીવને [कर्मणा च सह] કર્મની સ [रागादयः परिणामाः] રાગાદિ પરિણામો [खलु भवंति] થાય છે (અર્થાત ભેળાં થઈને રાગાદિરૂપે પરિણમે છે) એમ માનવામાં આવે [एवं] તો એ રીતે [कर्म च] જીવ અને કર્મ [द्वे अपि] બન્ને [रागादित्वं आपन्ने] રાગાદિપણાને [तु] પરંતુ [रागादिभिः परिणामः] રાગાદિભાવે પરિણામ તો [जीवस्य एक જીવને એકને જ [जायते] થાય છે [तत्] તેથી [कर्मोदयहेतुभिः विना] કર્મો નિમિત્તથી રહિત જ અર્થાત્ જુદું જ [जीवस्य] જીવનું [परिणामः] પરિણા

ટીકાઃ—જો જીવને, રાગાદિ-અજ્ઞાનપરિણામના નિમિત્તભૂત એવું ઉ આવેલું પુદ્ગલકર્મ તેની સાથે જ (અર્થાત્ બન્ને ભેગાં મળીને જ), રાગાદિ-અ પરિણામ થાય છે—એમ વિતર્ક કરવામાં આવે તો, જેમ ભેળાં થયેલાં ફટકી હળદર બન્નેને લાલ રંગરૂપ પરિણામ થાય છે તેમ, જીવ અને પુદ્ગલકર્મ રાગાદિ અજ્ઞાનપરિણામ આવી પડે. પરંતુ જીવને એકને જ રાગાદિ તો થાય છે; તેથી પુદ્ગલકર્મનો ઉદય કે જે જીવના રાગાદિ-અજ્ઞાનપરિણામનું છે તેનાથી જુદું જ જીવનું પરિણામ છે.

જીવનાં, કરમ ભેળાં જ, જો પરિણામ રાગાદિક બને,
તો કર્મ ને જીવ ઉભય પણ રાગાદિપણું પામે અરે! ૧૩
પણ પરિણમન રાગાદિરૂપ તો થાય છે જીવ એકને,
તેથી જ કર્મોદયનિમિત્તથી અલગ જીવપરિણામ છે. ૧૪

ભાવાર્થ:—જો જીવ અને પુદ્‌ગલકર્મ ભેળાં થઈને રાગાદિરૂપે પરિણમે છે એમ માનવામાં આવે તો બન્નેને રાગાદિરૂપ પરિણામ થાય. પરંતુ પુદ્‌ગલકર્મ તો રાગાદિરૂપ (જીવઅજ્ઞાનરૂપે) કદી પરિણમી શકતું નથી; તેથી પુદ્‌ગલકર્મનો ઉદય કે જે રાગાદિપરિણામને નિમિત્ત છે તેનાથી જુદું જ જીવનું પરિણામ છે. ૧૩૯–૧૪૦.

'આત્મામાં કર્મ બદ્ધસ્પૃષ્ટ છે કે અબદ્ધસ્પૃષ્ટ છે'—તે હવે નયવિભાગથી કહે છે:—

जीवे कम्मं बद्धं पुट्ठं चेदि ववहारणयभणिदं ।
सुद्धणयस्स दु जीवे अबद्धपुट्ठं हवइ कम्मं ॥ १४१ ॥

जीवे कर्म बद्धं स्पृष्टं चेति व्यवहारनयभणितम् ।
शुद्धनयस्य तु जीवे अबद्धस्पृष्टं भवति कर्म ॥ १४१ ॥

અન્વયાર્થ:—[जीवे] જીવમાં [कर्म] કર્મ [बद्धं] (તેના પ્રદેશો સાથે) બંધાયેલું છે [च] તથા [स्पृष्टं] સ્પર્શાયેલું છે [इति] એવું [व्यवहारनयभणितं] વ્યવહારનયનું કથન છે [तु] અને [जीवे] જીવમાં [कर्म] કર્મ [अबद्धस्पृष्टं] અબંધાયેલું, અસ્પર્શાયેલું [भवति] છે એવું [शुद्धनयस्य] શુદ્ધનયનું કથન છે.

ટીકા:—જીવના અને પુદ્‌ગલકર્મના એકબંધપર્યાયપણાથી જોતાં તેમને અત્યંત ભિન્નતાનો અભાવ હોવાથી જીવમાં કર્મ બદ્ધસ્પૃષ્ટ છે એવો વ્યવહારનયનો પક્ષ છે. જીવના અને પુદ્‌ગલકર્મના અનેકદ્રવ્યપણાથી જોતાં તેમને અત્યંત ભિન્નતા હોવાથી જીવમાં કર્મ અબદ્ધસ્પૃષ્ટ છે એવો નિશ્ચયનયનો પક્ષ છે. ૧૪૧.

પણ તેથી શું? જે આત્મા તે બન્ને નયપક્ષોને ઓળંગી ગયો છે તે જ સમયસાર છે,—એમ હવે ગાથામાં કહે છે:—

कम्मं बद्धमबद्धं जीवे एवं तु जाण णयपक्खं ।
पक्खातिक्कंतो पुण भण्णदि जो सो समयसारो ॥ १४२ ॥

છે કર્મ જીવમાં બદ્ધસ્પૃષ્ટ—કથિત નય વ્યવહારનું;
પણ બદ્ધસ્પૃષ્ટ ન કર્મ જીવમાં—કથન છે નય શુદ્ધનું. ૧૪૧.
છે કર્મ જીવમાં બદ્ધ વા અણબદ્ધ એ નયપક્ષ છે;
પણ પક્ષથી અતિક્રાંત ભાખ્યો તે 'સમયનો સાર' છે. ૧૪૨.

कर्म बद्धमबद्धं जीवे एवं तु जानीहि नयपक्षम् ।
पक्षातिक्रांतः पुनर्भण्यते यः स समयसारः ॥ १४२ ॥

અન્વયાર્થઃ—[जीवे] જીવમાં [कर्म] કર્મ [बद्धं] બદ્ધ છે અથવા [अबद्धं] અબદ્ધ છે—[एवं तु] એ પ્રકારે તો [नयपक्षं] નયપક્ષ [जानीहि] જાણ; [पुनः] પણ [यः] જે [पक्षातिक्रांतः] પક્ષાતિક્રાંત (અર્થાત્ પક્ષને ઓળંગી ગયેલો) [भण्यते] કહેવાય છે.[सः] તે [समयसारः] સમયસાર (અર્થાત્ નિર્વિકલ્પ શુદ્ધ આત્મતત્ત્વ) છે.

ટીકાઃ—'જીવમાં કર્મ બદ્ધ છે' એવો જે વિકલ્પ તથા 'જીવમાં કર્મ અબદ્ધ છે' એવો જે વિકલ્પ તે બન્ને નયપક્ષ છે. જે તે નયપક્ષને અતિક્રમે છે (-ઓળંગી જાય છે, છોડે છે), તે જ સકળ વિકલ્પને અતિક્રમ્યો થકો પોતે નિર્વિકલ્પ, એક વિજ્ઞાનઘનસ્વભાવરૂપ થઈને સાક્ષાત્ સમયસાર થાય છે. ત્યાં (વિશેષ સમજાવવામાં આવે છે કે)—જે 'જીવમાં કર્મ બદ્ધ છે' એમ વિકલ્પ કરે છે તે 'જીવમાં કર્મ અબદ્ધ છે' એવા એક પક્ષને અતિક્રમતો હોવા છતાં વિકલ્પને અતિક્રમતો નથી, અને જે 'જીવમાં કર્મ અબદ્ધ છે' એમ વિકલ્પ કરે છે તે પણ 'જીવમાં કર્મ બદ્ધ છે' એવા એક પક્ષને અતિક્રમતો હોવા છતાં વિકલ્પને અતિક્રમતો નથી; વળી જે 'જીવમાં કર્મ બદ્ધ છે અને અબદ્ધ પણ છે' એમ વિકલ્પ કરે છે તે, તે બન્ને પક્ષને નહિ અતિક્રમતો થકો વિકલ્પને અતિક્રમતો નથી. તેથી જે સમસ્ત નયપક્ષને અતિક્રમે છે તે જ સમસ્ત વિકલ્પને અતિક્રમે છે; જે સમસ્ત વિકલ્પને અતિક્રમે છે તે જ સમયસારને પ્રાપ્ત કરે છે—અનુભવે છે.

ભાવાર્થઃ—જીવ કર્મથી 'બંધાયો છે' તથા 'નથી બંધાયો'—એ બન્ને નયપક્ષ છે. તેમાંથી કોઈએ બંધપક્ષ પકડ્યો, તેણે વિકલ્પ જ ગ્રહણ કર્યો; કોઈએ અબંધપક્ષ પકડ્યો, તેણે પણ વિકલ્પ જ ગ્રહણ કર્યો; અને કોઈએ બન્ને પક્ષ પકડ્યા, તેણે પણ પક્ષરૂપ વિકલ્પનું જ ગ્રહણ કર્યું. પરંતુ એવા વિકલ્પોને છોડી જે કોઈ પણ પક્ષ ન પકડે તે જ શુદ્ધ પદાર્થનું સ્વરૂપ જાણી તે-રૂપ સમયસારને—શુદ્ધાત્માને—પામે છે. નયપક્ષ પકડવો તે રાગ છે, તેથી સમસ્ત નયપક્ષને છોડવાથી વીતરાગ સમયસાર થવાય છે.

હવે, 'જો આમ છે તો નયપક્ષના ત્યાગની ભાવનાને ખરેખર કોણ ન નચાવે?' એમ કહીને શ્રીમાન અમૃતચંદ્ર આચાર્ય નયપક્ષના ત્યાગની ભાવનાના ૨૩ કળશરૂપ કાવ્યો કહે છે:—

(ઉપેન્દ્રવજ્રા)

य एव मुक्त्वा नयपक्षपातं
स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्यम् ।
विकल्पजालच्युतशान्तचित्ता-
स्त एव साक्षादमृतं पिबन्ति ॥ ६९ ॥

અર્થ:—જેઓ નયપક્ષપાતને છોડી (પોતાના) સ્વરૂપમાં ગુપ્ત થઈને સદા રહે છે તેઓ જ, જેમનું ચિત્ત વિકલ્પજાળથી રહિત શાંત થયું છે એવા થયા થકા, સાક્ષાત્ અમૃતને પીએ છે.

ભાવાર્થ:—જ્યાંસુધી કાંઈ પણ પક્ષપાત રહે છે ત્યાંસુધી ચિત્તનો ક્ષોભ મટતો નથી. જ્યારે નયોનો સર્વ પક્ષપાત મટી જાય ત્યારે વીતરાગ દશા થઈને સ્વરૂપમાં સ્થિતિ થાય છે અને અતીંદ્રિય સુખ અનુભવાય છે.

હવેના ૨૦ કળશમાં નયપક્ષને વિશેષ વર્ણવે છે અને કહે છે કે આવા સમસ્ત નયપક્ષોને જે છોડે છે તે તત્ત્વવેદી (તત્ત્વનો જાણનાર) સ્વરૂપને પામે છે:—

(ઉપજાતિ)

एकस्य बद्धो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ७० ॥

અર્થ:—જીવ કર્મથી બંધાયેલો છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને જીવ કર્મથી બંધાયેલો નથી એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જીવ વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વવેદી (વસ્તુસ્વરૂપનો જાણનાર) પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જીવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે (અર્થાત્ તેને ચિત્સ્વરૂપ જીવ જેવો છે તેવો નિરંતર અનુભવાય છે).

ભાવાર્થ:—આ ગ્રંથમાં પ્રથમથી જ વ્યવહારનયને ગૌણ કરીને અને શુદ્ધનયને મુખ્ય કરીને કથન કરવામાં આવ્યું છે. ચૈતન્યનાં પરિણામ પરનિમિત્તથી અનેક થાય છે તે સર્વને પહેલેથી જ આચાર્ય ગૌણ કહેતા આવ્યા છે અને જીવને શુદ્ધ ચૈતન્યમાત્ર કહ્યો છે. એ રીતે જીવ-પદાર્થને શુદ્ધ, નિત્ય, અભેદ ચૈતન્યમાત્ર સ્થાપીને હવે કહે છે કે—આ શુદ્ધનયનો પણ પક્ષપાત (વિકલ્પ) કરશે તે પણ શુદ્ધ સ્વ-

રૂપના સ્વાદને નહિ પામે. અશુદ્ધ નયની તો વાત જ શી? પણ એ કોઈ
પણ પક્ષપાત કરશે તો પક્ષનો રાગ નહિ મટે તેથી વીતરાગતા નહિ થાય.
છોડી ચિન્માત્ર સ્વરૂપ વિષે લીન થયે જ સમયસારને પમાય છે. માટે શુદ્ધનયને
તેનો પણ પક્ષપાત છોડી શુદ્ધ સ્વરૂપનો અનુભવ કરી, સ્વરૂપ વિષે પ્રવૃત્તિરૂ
પ્રાપ્ત કરી, વીતરાગ દશા પ્રાપ્ત કરવી યોગ્ય છે.

(ઉપજાતિ)

एकस्य मूढो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ७१ ॥

અર્થઃ—જીવ મૂઢ (મોહી) છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને જી
(મોહી) નથી એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જીવ વિષે બે નં
બે પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જીવ વિ
જ છે (અર્થાત્ તેને ચિત્સ્વરૂપ જીવ જેવો છે તેવો નિરંતર અનુભવાય છે

(ઉપજાતિ)

एकस्य रक्तो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ७२ ॥

અર્થઃ—જીવ રાગી છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને જીવ રાગી નથી
બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જીવ વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે
તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જીવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપજાતિ)

एकस्य दुष्टो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ७३ ॥

અર્થઃ—જીવ દ્વેષી છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને જીવ દ્વેષી નથી એ
બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જીવ વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે. જે ત
વેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જીવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપજાતિ)

एकस्य कर्ता न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ७४ ॥

અર્થઃ—જીવ કર્તા છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને જીવ કર્તા નથી એવો [બી]જા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જીવ વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વ[વેદી] પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જીવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપજાતિ)

एकस्य भोक्ता न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ७५ ॥

અર્થઃ—જીવ ભોક્તા છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને જીવ ભોક્તા નથી [એ]વો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જીવ વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે. [જે] તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જીવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપજાતિ)

एकस्य जीवो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ७६ ॥

અર્થઃ—જીવ જીવ છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને જીવ જીવ નથી એવો [બ]ીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જીવ વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે. જે [ત]ત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જીવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપજાતિ)

एकस्य सूक्ष्मो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ७७ ॥

અર્થઃ—જીવ સૂક્ષ્મ છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને જીવ સૂક્ષ્મ નથી એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જીવ વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે. જે [ત]ત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જીવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપજાતિ)

एकस्य हेतुर्न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ७८ ॥

અર્થઃ—જીવ હેતુ (કારણ) છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને જીવ હેતુ (કારણ) નથી એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જીવ વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જીવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપજાતિ)

एकस्य कार्यं न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥७९॥

અર્થઃ—જીવ કાર્ય છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને જીવ કાર્ય નથી એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જીવ વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જીવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપજાતિ)

एकस्य भावो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८०॥

અર્થઃ—જીવ ભાવ છે (અર્થાત્ ભાવરૂપ છે) એવો એક નયનો પક્ષ છે અને જીવ ભાવ નથી (અર્થાત્ અભાવરૂપ છે) એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જીવ વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જીવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપજાતિ)

एकस्य चैको न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८१॥

અર્થઃ—જીવ એક છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને જીવ એક નથી (–અનેક છે) એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જીવ વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જીવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપજાતિ)

एकस्य सान्तो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८२॥

અર્થઃ—જીવ સાંત (–અંત સહિત) છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને જીવ સાંત નથી એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જીવ વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જીવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપજાતિ)

एकस्य नित्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८३॥

અર્થ:—જીવ નિત્ય છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને જીવ નિત્ય નથી
વો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જીવ વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે.
તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જીવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપજાતિ)

एकस्य वाच्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ८४ ॥

અર્થ:—જીવ વાચ્ય (અર્થાત્ વચનથી કહી શકાય એવો) છે એવો એક
નો પક્ષ છે અને જીવ વાચ્ય (-વચનગોચર) નથી એવો બીજા નયનો પક્ષ છે;
આમ ચિત્સ્વરૂપ જીવ વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે
ને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જીવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપજાતિ)

एकस्य नाना न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ८५ ॥

અર્થ:—જીવ નાનારૂપ છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને જીવ નાનારૂપ
થી એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જીવ વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત
. જે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જીવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપજાતિ)

एकस्य चेत्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ८६ ॥

અર્થ:—જીવ ચેત્ય (-ચેતાવાયોગ્ય) છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને જીવ
ત્ય નથી એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જીવ વિષે બે નયોના બે પક્ષ
ાત છે. જે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જીવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપજાતિ)

एकस्य दृश्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ८७ ॥

અર્થ:—જીવ દૃશ્ય (-દેખાવાયોગ્ય) છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને જીવ
ય નથી એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જીવ વિષે બે નયોના બે પક્ષ-
ાત છે. જે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જીવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપજાતિ)

एकस्य वेद्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ८८ ॥

અર્થઃ—જીવ વેદ્ય (-વેદાવાયોગ્ય, જણાવાયોગ્ય) છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને જીવ વેદ્ય નથી એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જીવ વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જીવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે.

(ઉપજાતિ)

एकस्य भातो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ८९ ॥

અર્થઃ—જીવ 'ભાત' (પ્રકાશમાન અર્થાત્ વર્તમાન પ્રત્યક્ષ) છે એવો એક નયનો પક્ષ છે અને જીવ 'ભાત' નથી એવો બીજા નયનો પક્ષ છે; આમ ચિત્સ્વરૂપ જીવ વિષે બે નયોના બે પક્ષપાત છે. જે તત્ત્વવેદી પક્ષપાતરહિત છે તેને નિરંતર ચિત્સ્વરૂપ જીવ ચિત્સ્વરૂપ જ છે (અર્થાત્ તેને ચિત્સ્વરૂપ જીવ જેવો છે તેવો નિરંતર અનુભવાય છે).

ભાવાર્થઃ—બદ્ધ અબદ્ધ, મૂઢ અમૂઢ, રાગી અરાગી, દ્વેષી અદ્વેષી, કર્તા અકર્તા, ભોક્તા અભોક્તા, જીવ અજીવ, સૂક્ષ્મ સ્થૂલ, કારણ અકારણ, કાર્ય અકાર્ય, ભાવ અભાવ, એક અનેક, સાન્ત અનન્ત, નિત્ય અનિત્ય, વાચ્ય અવાચ્ય, નાના અનાના, ચેત્ય અચેત્ય, દૃશ્ય અદૃશ્ય, વેદ્ય અવેદ્ય, ભાત અભાત ઇત્યાદિ નયોના પક્ષપાત છે. જે પુરુષ નયોના કથન અનુસાર યથાયોગ્ય વિવક્ષાપૂર્વક તત્ત્વનો—વસ્તુસ્વરૂપનો નિર્ણય કરીને નયોના પક્ષપાતને છોડે છે તે પુરુષને ચિત્સ્વરૂપ જીવનો ચિત્સ્વરૂપે અનુભવ થાય છે.

જીવમાં અનેક સાધારણ ધર્મો છે પરંતુ ચિત્સ્વભાવ તેનો પ્રગટ અનુભવગોચર અસાધારણ ધર્મ છે તેથી તેને મુખ્ય કરીને અહીં જીવને ચિત્સ્વરૂપ કહ્યો છે.

ઉપરના ૨૦ કળશના કથનને હવે સંકોચે છેઃ—

(વસંતતિલકા)

स्वेच्छासमुच्छलदनल्पविकल्पजाला-
मेवं व्यतीत्य महतीं नयपक्षकक्षाम् ।
अन्तर्बहिः समरसैकरसस्वभावं
स्वं भावमेकमुपयात्यनुभूतिमात्रम् ॥ ९० ॥

અર્થ:—એ પ્રમાણે જેમાં બહુ વિકલ્પોની જાળો આપોઆપ ઊઠે છે એવી ટી નયપક્ષકક્ષાને (નયપક્ષની ભૂમિને) ઓળંગી જઈને (તત્ત્વવેદી) અંદર અને હાર સમતા-રસરૂપી એક રસ જ જેનો સ્વભાવ છે એવા અનુભૂતિમાત્ર એક પોતાના ાવને (-સ્વરૂપને) પામે છે.

હવે નયપક્ષના ત્યાગની ભાવનાનું છેલ્લું કાવ્ય કહે છે:—

(રથોદ્ધતા)

इन्द्रजालमिदमेवमुच्छलत्
पुष्कलोच्चलविकल्पवीचिभिः ।
यस्य विस्फुरणमेव तत्क्षणं
कृत्स्नमस्यति तदस्मि चिन्महः ॥ ९१ ॥

અર્થ:—પુષ્કળ, મોટા, ચંચળ વિકલ્પરૂપ તરંગો વડે ઊઠતી આ સમસ્ત દ્રજાળને જેનું *સ્ફુરણ માત્ર જ તત્ક્ષણ ભગાડી મૂકે છે તે ચિન્માત્ર તેજઃપુંજ હું છું.

ભાવાર્થ:—ચૈતન્યનો અનુભવ થતાં સમસ્ત નયોના વિકલ્પરૂપી ઇંદ્રજાળ તે ણે જ વિલય પામે છે; એવો ચિત્પ્રકાશ હું છું. ૧૪૨.

'પક્ષાતિક્રાન્તનું' (પક્ષને ઓળંગી ગયેલાનું) શું સ્વરૂપ છે?—એ પ્રશ્નના ત્તરરૂપ ગાથા હવે કહે છે:—

दोण्हवि णयाण भणियं जाणइ णवरं तु समयपडिबद्धो ।
ण दु णयपक्खं गिण्हदि किंचिवि णयपक्खपरिहीणो ॥ १४३ ॥

द्वयोरपि नययोर्भणितं जानाति केवलं तु समयप्रतिबद्धः ।
न तु नयपक्षं गृह्णाति किंचिदपि नयपक्षपरिहीनः ॥ १४३ ॥

અન્વયાર્થ:—[नयपक्षपरिहीनः] નયપક્ષથી રહિત જીવ, [समयप्रतिबद्धः] મયથી પ્રતિબદ્ધ થયો થકો (અર્થાત્ ચિત્સ્વરૂપ આત્માને અનુભવતો થકો), [द्वयोः पि] બન્ને [नययोः] નયોના [भणितं] કથનને [केवलं तु] કેવળ [जानाति]

*સ્ફુરણ = ફરકવું તે; ચમત્કાર કરવો તે.

નયદ્વયકથન જાણે જ કેવળ સમયમાં પ્રતિબદ્ધ જે,
નયપક્ષ કંઈ પણ નવ ગ્રહે, નયપક્ષથી પરિહીન તે. ૧૪૩.

જાણે જ છે [तु] પરંતુ [नयपक्षं] નયપક્ષને [किंचित् अपि] જરા પણ [गृह्णाति] ગ્રહણ કરતો નથી.

ટીકા:—જેવી રીતે કેવળી ભગવાન, વિશ્વના સાક્ષીપણાને લીધે, અવયવભૂત એવા જે વ્યવહારનિશ્ચયનયપક્ષો તેમના સ્વરૂપને જ કેવળ જાણે છે નિરંતર પ્રકાશમાન સહજ, વિમળ, સકળ કેવળજ્ઞાન વડે સદા પોતે જ વિ થયા હોઈને, શ્રુતજ્ઞાનની ભૂમિકાના અતિક્રાન્તપણા વડે (અર્થાત્ શ્રુતજ્ઞાનની ભૂ ઓળંગી ગયા હોવાને લીધે) સમસ્ત નયપક્ષના ગ્રહણથી દૂર થયા હોવાથી, કે નયપક્ષને ગ્રહતા નથી, તેવી રીતે જે (શ્રુતજ્ઞાની આત્મા), ક્ષયોપશમથી ઉપજવું થાય છે એવા શ્રુતજ્ઞાનાત્મક વિકલ્પો ઉત્પન્ન થતા હોવા છતાં પરનું કરવા પ્રતિ ઉત્સાહ નિવૃત્ત થયો હોવાને લીધે, શ્રુતજ્ઞાનના અવયવભૂત વ્યવહાર નયપક્ષોના સ્વરૂપને જ કેવળ જાણે છે પરંતુ, તીક્ષ્ણ જ્ઞાનદૃષ્ટિથી ગ્રહવામાં આ નિર્મળ, નિત્ય-ઉદિત, ચિન્મય સમયથી પ્રતિબદ્ધપણા વડે (અર્થાત્ ચૈતન્યમ ત્માના અનુભવન વડે) તે વખતે (અનુભવ વખતે) પોતે જ વિજ્ઞાનઘન થયો હો શ્રુતજ્ઞાનાત્મક સમસ્ત અંતરંગ તથા બાહ્ય (અક્ષરસ્વરૂપ) ઉત્પન્ન થતા ભૂમિકાના અતિક્રાન્તપણા વડે સમસ્ત નયપક્ષના ગ્રહણથી દૂર થયો હોવાથી, કો નયપક્ષને ગ્રહતો નથી, તે (આત્મા) ખરેખર સમસ્ત વિકલ્પોથી પર, જ્ઞાનાત્મા, પ્રત્યગ્જ્યોતિ, આત્મખ્યાતિરૂપ, અનુભૂતિમાત્ર સમયસાર છે.

ભાવાર્થ:—જેમ કેવળી ભગવાન સદા નયપક્ષના સ્વરૂપના સાક્ષી (દ્રષ્ટા) છે તેમ શ્રુતજ્ઞાની પણ જ્યારે સમસ્ત નયપક્ષોથી રહિત થઈ શુદ્ધ ચૈ ભાવનું અનુભવન કરે છે ત્યારે નયપક્ષના સ્વરૂપનો જ્ઞાતા જ છે. એક નયનો પક્ષ ગ્રહણ કરે તો મિથ્યાત્વ સાથે મળેલો રાગ થાય; પ્રયોજનના વશે એ પ્રધાન કરી તેનું ગ્રહણ કરે તો મિથ્યાત્વ સિવાય માત્ર ચારિત્રમોહનો રાગ રહે જ્યારે નયપક્ષને છોડી વસ્તુસ્વરૂપને કેવળ જાણે જ ત્યારે તે વખતે શ્રુતજ્ઞાન કેવળીની માફક વીતરાગ જેવો જ હોય છે એમ જાણવું.

તે આત્મા આવો અનુભવ કરે છે એમ કળશમાં કહે છે:—

(સ્વાગતા)

चित्स्वभावभरभावितभावा-
भावभावपरमार्थतयैकम् ।
बंधपद्धतिमपास्य समस्तां
चेतये समयसारमपारम् ॥ ९२ ॥

અર્થ:—ચિત્સ્વભાવના પુંજ વડે જ પોતાનાં ઉત્પાદ, વ્યય અને ધ્રૌવ્ય ભવાય —કરાય છે)—એવું જેનું પરમાર્થ સ્વરૂપ હોવાથી જે એક છે એવા અપાર સમય-ને હું, સમસ્ત બંધપદ્ધતિને દૂર કરીને અર્થાત્ કર્મના ઉદયથી થતા સર્વ ભાવોને ને, અનુભવું છું.

ભાવાર્થ:—નિર્વિકલ્પ અનુભવ થતાં, જેના કેવળજ્ઞાનાદિ ગુણોનો પાર નથી ા સમયસારરૂપી પરમાત્માનો અનુભવ જ વર્તે છે, 'હું અનુભવું છું' એવો પણ લ્પ હોતો નથી—એમ જાણવું. ૧૪૩.

પક્ષાતિક્રાંત જ સમયસાર છે એમ નિયમથી ઠરે છે—એમ હવે કહે છે:—

सम्मद्दंसणणाणं एसो लहदित्ति णवरि ववदेसं ।
सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो ॥ १४४ ॥

सम्यग्दर्शनज्ञानमेष लभत इति केवलं व्यपदेशम् ।
सर्वनयपक्षरहितो भणितो यः स समयसारः ॥ १४४ ॥

અન્વયાર્થ:—[यः] જે [सर्वनयपक्षरहितः] સર્વ નયપક્ષોથી રહિત णितः] કહેવામાં આવ્યો છે [सः] તે [समयसारः] સમયસાર છે; [एषः] આને (—સમયસારને જ) [केवलं] કેવળ [सम्यग्दर्शनज्ञानं] સમ્યગ્દર્શન અને જ્ઞાન તિ] એવી [व्यपदेशं] સંજ્ઞા (નામ) [लभते] મળે છે. (નામ જુદાં હોવા છતાં ુ એક જ છે.)

ટીકા:—જે ખરેખર સમસ્ત નયપક્ષો વડે ખંડિત નહિ થતો હોવાથી જેનો સ્ત વિકલ્પોનો વ્યાપાર અટકી ગયો છે એવો છે, તે સમયસાર છે; ખરેખર આ ને જ કેવળ સમ્યગ્દર્શન અને જ્ઞાનનું નામ મળે છે. (સમ્યગ્દર્શન અને જ્ઞાન યસારથી જુદાં નથી, એક જ છે.)

પ્રથમ, શ્રુતજ્ઞાનના અવલંબનથી જ્ઞાનસ્વભાવ આત્માનો નિશ્ચય કરીને, પછી માની પ્રગટ પ્રસિદ્ધિને અર્થે, પર પદાર્થની પ્રસિદ્ધિનાં કારણો જે ઇંદ્રિયદ્વારા અને દ્વારા પ્રવર્તતી બુદ્ધિઓ તેમને મર્યાદામાં લાવીને જેણે મતિજ્ઞાન-તત્ત્વને (-મતિ-ના સ્વરૂપને) આત્મસન્મુખ કર્યું છે એવો, તથા નાના પ્રકારના પક્ષોના આલંબનથી

સમ્યક્ત્વ તેમ જ જ્ઞાનની જે એકને સંજ્ઞા મળે,
નયપક્ષ સકલ રહિત ભાખ્યો તે 'સમયનો સાર' છે. ૧૪૪.

જાણે જ છે [तु] પરંતુ [नयपक्षं] નયપક્ષને [किंचित् अपि] ક
गृह्णाति] ગ્રહણ કરતો નથી.

ટીકા:—જેવી રીતે કેવળી ભગવાન, વિશ્વના સાક્ષીપણાને લીધે, અવયવભૂત એવા જે વ્યવહારનિશ્ચયનયપક્ષો તેમના સ્વરૂપને જ કેવળ જાણે નિરંતર પ્રકાશમાન સહજ, વિમળ, સકળ કેવળજ્ઞાન વડે સદા પોતે થયા હોઈને, શ્રુતજ્ઞાનની ભૂમિકાના અતિક્રાન્તપણા વડે (અર્થાત્ શ્રુતજ્ઞાનની ઓળંગી ગયા હોવાને લીધે) સમસ્ત નયપક્ષના ગ્રહણથી દૂર થયા હોવાથી, નયપક્ષને ગ્રહતા નથી, તેવી રીતે જે (શ્રુતજ્ઞાની આત્મા), ક્ષયોપશમથી ઉપજતું થાય છે એવા શ્રુતજ્ઞાનાત્મક વિકલ્પો ઉત્પન્ન થતા હોવા છતાં પરનું કરવા પ્રતિ ઉત્સાહ નિવૃત્ત થયો હોવાને લીધે, શ્રુતજ્ઞાનના અવયવભૂત વ્યવહારનિ નયપક્ષોના સ્વરૂપને જ કેવળ જાણે છે પરંતુ, તીક્ષ્ણ જ્ઞાનદ્રષ્ટિથી ગ્રહવામાં નિર્મળ, નિત્ય-ઉદિત, ચિન્મય સમયથી પ્રતિબદ્ધપણા વડે (અર્થાત્ ચૈતન્યમ ત્માના અનુભવન વડે) તે વખતે (અનુભવ વખતે) પોતે જ વિજ્ઞાનઘન થ શ્રુતજ્ઞાનાત્મક સમસ્ત અંતરંગ તથા બાહ્ય (અક્ષરસ્વરૂપ) ઉત્પન્ન થતા વિક ભૂમિકાના અતિક્રાન્તપણા વડે સમસ્ત નયપક્ષના ગ્રહણથી દૂર થયો હોવાથી કો નયપક્ષને ગ્રહતો નથી, તે (આત્મા) ખરેખર સમસ્ત વિકલ્પોથી પર, પર જ્ઞાનાત્મા, પ્રત્યગ્જ્યોતિ, આત્મખ્યાતિરૂપ, અનુભૂતિમાત્ર સમયસાર છે.

ભાવાર્થ:—જેમ કેવળી ભગવાન સદા નયપક્ષના સ્વરૂપના સાક્ષી દ્રષ્ટા) છે તેમ શ્રુતજ્ઞાની પણ જ્યારે સમસ્ત નયપક્ષોથી રહિત થઈ શુદ્ધ ચૈ ભાવનું અનુભવન કરે છે ત્યારે નયપક્ષના સ્વરૂપનો જ્ઞાતા જ છે. એક નયનો પક્ષ ગ્રહણ કરે તો મિથ્યાત્વ સાથે મળેલો રાગ થાય; પ્રયોજનના વશે એ પ્રધાન કરી તેનું ગ્રહણ કરે તો મિથ્યાત્વ સિવાય માત્ર ચારિત્રમોહનો રાગ રહે જ્યારે નયપક્ષને છોડી વસ્તુસ્વરૂપને કેવળ જાણે જ ત્યારે તે વખતે શ્રુતજ્ઞાની કેવળીની માફક વીતરાગ જેવો જ હોય છે એમ જાણવું.

તે આત્મા આવો અનુભવ કરે છે એમ કળશમાં કહે છે:—

(સ્વાગતા)

चित्स्वभावभरभावितभावा-
भावभावपरमार्थतयैकम् ।
बन्धपद्धतिमपास्य समस्तां
चेतये समयसारमपारम् ॥ ९२ ॥

અર્થ:—ચિત્સ્વભાવના પુંજ વડે જ પોતાનાં ઉત્પાદ, વ્યય અને ધ્રૌવ્ય ભવાય —કરાય છે)—એવું જેનું પરમાર્થ સ્વરૂપ હોવાથી જે એક છે એવા અપાર સમય- ને હું, સમસ્ત બંધપદ્ધતિને દૂર કરીને અર્થાત્ કર્મના ઉદયથી થતા સર્વ ભાવોને ને, અનુભવું છું.

ભાવાર્થ:—નિર્વિકલ્પ અનુભવ થતાં, જેના કેવળજ્ઞાનાદિ ગુણોનો પાર નથી । સમયસારરૂપી પરમાત્માનો અનુભવ જ વર્તે છે, 'હું અનુભવું છું' એવો પણ લ્પ હોતો નથી—એમ જાણવું. ૧૪૩.

પક્ષાતિક્રાંત જ સમયસાર છે એમ નિયમથી ઠરે છે—એમ હવે કહે છે:—

सम्मद्दंसणणाणं एसो लहदित्ति णवरि ववदेसं ।
सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो ॥ १४४ ॥

सम्यग्दर्शनज्ञानमेष लभत इति केवलं व्यपदेशम् ।
सर्वनयपक्षरहितो भणितो यः स समयसारः ॥ १४४ ॥

અન્વયાર્થ:—[यः] જે [सर्वनयपक्षरहितः] સર્વ નયપક્ષોથી રહિત ભણિતઃ] કહેવામાં આવ્યો છે [सः] તે [समयसारः] સમયસાર છે; [एषः] આને (—સમયસારને જ) [केवलं] કેવળ [सम्यग्दर્શનજ્ઞાનં] સમ્યગ્દર્શન અને જ્ઞાન ઇતિ] એવી [व्यपदेशं] સંજ્ઞા (નામ) [लभते] મળે છે. (નામ જુદાં હોવા છતાં વસ્તુ એક જ છે.)

ટીકા:—જે ખરેખર સમસ્ત નયપક્ષો વડે ખંડિત નહિ થતો હોવાથી જેનો સમસ્ત વિકલ્પોનો વ્યાપાર અટકી ગયો છે એવો છે, તે સમયસાર છે; ખરેખર આ કને જ કેવળ સમ્યગ્દર્શન અને જ્ઞાનનું નામ મળે છે. (સમ્યગ્દર્શન અને જ્ઞાન સમયસારથી જુદાં નથી, એક જ છે.)

પ્રથમ, શ્રુતજ્ઞાનના અવલંબનથી જ્ઞાનસ્વભાવ આત્માનો નિશ્ચય કરીને, પછી આત્માની પ્રગટ પ્રસિદ્ધિને અર્થે, પર પદાર્થની પ્રસિદ્ધિનાં કારણો જે ઇંદ્રિયદ્વારા અને નદ્વારા પ્રવર્તતી બુદ્ધિઓ તેમને મર્યાદામાં લાવીને જેણે મતિજ્ઞાન-તત્ત્વને (-મતિ- જ્ઞાનના સ્વરૂપને) આત્મસન્મુખ કર્યું છે એવો, તથા નાના પ્રકારના પક્ષોના આલંબનથી

સમ્યક્ત્વ તેમ જ જ્ઞાનની જે એકને સંજ્ઞા મળે,
નયપક્ષ સકલ રહિત ભાખ્યો તે 'સમયનો સાર' છે

થતા અનેક વિકલ્પો વડે આકુળતા ઉત્પન્ન કરનારી શ્રુતજ્ઞાનની બુદ્ધિઓને પણ મર્યાદામાં લાવીને શ્રુતજ્ઞાન-તત્ત્વને પણ આત્મ-સન્મુખ કરતો, અત્યંત વિકલ્પરહિત થઈને, તત્કાળ નિજ રસથી જ પ્રગટ થતા, આદિ-મધ્ય-અંત રહિત, અનાકુળ, કેવળ એક, આખા વિશ્વના ઉપર જાણે કે તરતો હોય તેમ અખંડ પ્રતિભાસમય, અનંત વિજ્ઞાનઘન, પરમાત્મારૂપ સમયસારને જ્યારે આત્મા અનુભવે છે તે વખતે જ આત્મા સમ્યક્ પ્રકારે દેખાય છે (અર્થાત્ શ્રદ્ધાય છે) અને જણાય છે તેથી સમયસાર જ સમ્યગ્દર્શન અને જ્ઞાન છે.

ભાવાર્થઃ—આત્માને પહેલાં આગમજ્ઞાનથી જ્ઞાનસ્વરૂપ નિશ્ચય કરીને પછી ઇંદ્રિયબુદ્ધિરૂપ મતિજ્ઞાનને જ્ઞાનમાત્રમાં જ મેળવી દઈને, તથા શ્રુતજ્ઞાનરૂપી નયોના વિકલ્પોને મટાડી શ્રુતજ્ઞાનને પણ નિર્વિકલ્પ કરીને, એક અખંડ પ્રતિભાસનો અનુભવ કરવો તે જ 'સમ્યગ્દર્શન' અને 'સમ્યગ્જ્ઞાન' એવાં નામ પામે છે; સમ્યગ્દર્શન અને સમ્યગ્જ્ઞાન કાંઈ અનુભવથી જુદાં નથી.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છેઃ—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

आक्रामन्नविकल्पभावमचलं पक्षैर्नयानां विना
सारो यः समयस्य भाति निभृतैरास्वाद्यमानः स्वयम्।
विज्ञानैकरसः स एष भगवान्पुण्यः पुराणः पुमान्
ज्ञानं दर्शनमप्ययं किमथवा यत्किंचनैकोऽप्ययम् ॥ ९३ ॥

અર્થઃ—નયોના પક્ષો રહિત, અચળ નિર્વિકલ્પભાવને પામતો જે (સમયનો) સાર પ્રકાશે છે તે આ સમયસાર (શુદ્ધ આત્મા)—કે જે (નિશ્ચળ, આત્મલીન) પુરુષો વડે સ્વયં આસ્વાદ્યમાન છે (આસ્વાદ લેવાય છે, અનુભવાય છે) તે—વિજ્ઞાન જ જેનો એક રસ છે એવા ભગવાન છે, પવિત્ર પુરાણ પુરુષ છે; જ્ઞાન કહો કે દર્શન કહો તે આ (સમયસાર) જ છે; અથવા વધારે શું કહીએ? જે કાંઈ છે તે આ એક જ છે (—માત્ર જુદાં જુદાં નામથી કહેવાય છે). ૯૩.

આ આત્મા જ્ઞાનથી ચ્યુત થયો હતો તે જ્ઞાનમાં જ આવી મળે છે એમ કહે છેઃ—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

दूरं भूरिविकल्पजालगहने भ्राम्यन्निजौघाच्च्युतो
दूरादेव विवेकनिम्नगमनान्नीतो निजौघं बलात्।

विज्ञानैकरसस्तदेकरसिनामात्मानमात्मा हरन् ।
आत्मन्येव सदा गतानुगततामायात्ययं तोयवत् ॥ ९४ ॥

અર્થ:—જેમ પાણી પોતાના સમૂહથી ચ્યુત થયું થકું દૂર ગહન વનમાં ભમતું હોય તેને દૂરથી જ ઢાળવાળા માર્ગદ્વારા પોતાના સમૂહ તરફ બળથી વાળવામાં આવે; પછી તે પાણી, પાણીને પાણીના સમૂહ તરફ ખેંચતું થકું પ્રવાહ રૂપ થઈને, પોતાના સમૂહમાં આવી મળે; તેવી રીતે આ આત્મા પોતાના વિજ્ઞાનઘનસ્વભાવથી ચ્યુત થયો થકો પ્રચુર વિકલ્પજાળના ગહન વનમાં દૂર ભમતો હતો તેને દૂરથી જ વિવેકરૂપી ઢાળવાળા માર્ગદ્વારા પોતાના વિજ્ઞાનઘનસ્વભાવ તરફ બળથી વાળવામાં આવ્યો; કેવળ વિજ્ઞાનઘનના જ રસીલા પુરુષોને જે એક વિજ્ઞાનરસવાળો જ અનુભવાય છે એવો તે આત્મા, આત્માને આત્મામાં ખેંચતો થકો (અર્થાત્ જ્ઞાન જ્ઞાનને ખેંચતું થકું પ્રવાહરૂપ થઈને), સદા વિજ્ઞાનઘનસ્વભાવમાં આવી મળે છે.

ભાવાર્થ:—જેમ જળ, જળના નિવાસમાંથી કોઈ માર્ગે બહાર નીકળી વનમાં અનેક જગ્યાએ ભમે; પછી કોઈ ઢાળવાળા માર્ગદ્વારા, જેમ હતું તેમ પોતાના નિવાસ-સ્થાનમાં આવી મળે; તેવી રીતે આત્મા પણ મિથ્યાત્વના માર્ગે સ્વભાવથી બહાર નીકળી વિકલ્પોના વનમાં ભ્રમણ કરતો થકો કોઈ ભેદજ્ઞાનરૂપી ઢાળવાળા માર્ગદ્વારા પોતે જ પોતાને ખેંચતો પોતાના વિજ્ઞાનઘનસ્વભાવમાં આવી મળે છે.

હવે કર્તાકર્મ અધિકારનો ઉપસંહાર કરતાં, કેટલાંક કળશરૂપ કાવ્યો કહે છે; પ્રથમ કળશમાં કર્તા અને કર્મનું સંક્ષિપ્ત સ્વરૂપ કહે છે:—

(અનુષ્ટુપ્)

विकल्पकः परं कर्ता विकल्पः कर्म केवलम् ।
न जातु कर्तृकर्मत्वं सविकल्पस्य नश्यति ॥ ९५ ॥

અર્થ:—વિકલ્પ કરનાર જ કેવળ કર્તા છે અને વિકલ્પ જ કેવળ કર્મ છે; (બીજું કોઈ કર્તા-કર્મ નથી); જે જીવ વિકલ્પસહિત છે તેનું કર્તાકર્મપણું કદી નાશ પામતું નથી.

ભાવાર્થ:—જ્યાંસુધી વિકલ્પભાવ છે ત્યાંસુધી કર્તાકર્મભાવ છે; જ્યારે વિકલ્પનો અભાવ થાય ત્યારે કર્તાકર્મભાવનો પણ અભાવ થાય છે.

જે કરે છે તે કરે જ છે, જે જાણે છે તે જાણે જ છે—એમ હવે કહે છે:—

(રથોદ્ધતા)

यः करोति स करोति केवलं
यस्तु वेत्ति स तु वेत्ति केवलम् ।
यः करोति न हि वेत्ति स क्वचित्
यस्तु वेत्ति न करोति स क्वचित् ॥ ९६ ॥

અર્થ:—જે કરે છે તે કેવળ કરે જ છે અને જે જાણે છે તે કેવળ [જાણે] છે; જે કરે છે તે કદી જાણતો નથી અને જે જાણે છે તે કદી કરતો નથી.

ભાવાર્થ:—કર્તા છે તે જ્ઞાતા નથી અને જ્ઞાતા છે તે કર્તા નથી.

એવી જ રીતે કરવારૂપ ક્રિયા અને જાણવારૂપ ક્રિયા બન્ને ભિન્ન છે એમ હવે કહે છે:—

(ઇંદ્રવજ્રા)

ज्ञप्तिः करोतौ न हि भासतेऽन्तः
ज्ञप्तौ करोतिश्च न भासतेऽन्तः ।
ज्ञप्तिः करोतिश्च ततो विभिन्ने
ज्ञाता न कर्तेति ततः स्थितं च ॥ ९७ ॥

અર્થ:—કરવારૂપ ક્રિયાની અંદરમાં જાણવારૂપ ક્રિયા ભાસતી નથી અને જાણવારૂપ ક્રિયાની અંદરમાં કરવારૂપ ક્રિયા ભાસતી નથી; માટે જ્ઞપ્તિક્રિયા અને 'કરોતિ'ક્રિયા બન્ને ભિન્ન છે; અને તેથી એમ ઠર્યું કે જે જ્ઞાતા છે તે કર્તા નથી.

ભાવાર્થ:—'હું પરદ્રવ્યને કરું છું' એમ જ્યારે આત્મા પરિણમે છે ત્યારે તો કર્તાભાવરૂપ પરિણમનક્રિયા કરતો હોવાથી અર્થાત્ 'કરોતિ'ક્રિયા કરતો હોવાથી કર્તા જ છે અને જ્યારે 'હું પરદ્રવ્યને જાણું છું' એમ પરિણમે છે ત્યારે જ્ઞાતાભાવે પરિણમતો હોવાથી અર્થાત્ જ્ઞપ્તિક્રિયા કરતો હોવાથી જ્ઞાતા જ છે.

અહીં કોઈ પૂછે છે કે અવિરત-સમ્યગ્દષ્ટિ આદિને જ્યાંસુધી ચારિત્રમોહનો ઉદય છે ત્યાંસુધી તે કષાયરૂપ પરિણમે છે તો તેને કર્તા કહેવાય કે નહિ? તેનું સમાધાન:—અવિરત સમ્યગ્દષ્ટિ વગેરેને શ્રદ્ધા-જ્ઞાનમાં પરદ્રવ્યના સ્વામીપણારૂપ કર્તાપણાનો અભિપ્રાય નથી; કષાયરૂપ પરિણમન છે તે ઉદયની બળજોરીથી છે; તેનો તે જ્ઞાતા છે; તેથી અજ્ઞાન સંબંધી કર્તાપણું તેને નથી. નિમિત્તની બળજોરીથી થતા

. કિંચિત્ હોય છે તે સંસારનું કારણ નથી. જેમ વૃક્ષની જડ કાપ્યા પછી તે વૃક્ષ ચિત્ કાળ રહે અથવા ન રહે—ક્ષણે ક્ષણે તેનો નાશ જ થતો જાય છે, તેમ અહીં મજવું.

ફરીને એ જ વાતને દૃઢ કરે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

कर्ता कर्मणि नास्ति नास्ति नियतं कर्मापि तत्कर्तरि
द्वंद्वं विप्रतिषिध्यते यदि तदा का कर्तृकर्मस्थितिः ।
ज्ञाता ज्ञातरि कर्म कर्मणि सदा व्यक्तेति वस्तुस्थिति-
र्नेपथ्ये बत नानटीति रभसा मोहस्तथाप्येष किम् ॥ ९८ ॥

અર્થ:—કર્તા નક્કી કર્મમાં નથી, અને કર્મ છે તે પણ નક્કી કર્તામાં નથી—મ જો બન્નેનો પરસ્પર નિષેધ કરવામાં આવે છે તો કર્તાકર્મની સ્થિતિ શી? (અત્ જીવ-પુદ્ગલને કર્તાકર્મપણું ન જ હોઈ શકે). આ પ્રમાણે જ્ઞાતા સદા જ્ઞાતામાં છે અને કર્મ સદા કર્મમાં જ છે એવી વસ્તુસ્થિતિ પ્રગટ છે તોપણ અરે! નેપથ્યમાં આ મોહ કેમ અત્યંત જોરથી નાચી રહ્યો છે? (એમ આચાર્યને ખેદ અને આશ્ચર્ય ય છે).

ભાવાર્થ:—કર્મ તો પુદ્ગલ છે, તેનો કર્તા જીવને કહેવામાં આવે તે અસત્ય . તે બન્નેને અત્યંત ભેદ છે, જીવ પુદ્ગલમાં નથી અને પુદ્ગલ જીવમાં નથી; તો ી તેમને કર્તાકર્મભાવ કેમ હોઈ શકે? માટે જીવ તો જ્ઞાતા છે તે જ્ઞાતા જ છે, પુદ્ગલકર્મનો કર્તા નથી; અને પુદ્ગલકર્મ છે તે પુદ્ગલ જ છે, જ્ઞાતાનું કર્મ નથી. આચાર્યે ખેદપૂર્વક કહ્યું છે કે—આમ પ્રગટ ભિન્ન દ્રવ્યો છે તોપણ 'હું કર્તા છું' અને આ પુદ્ગલ મારું કર્મ છે' એવો અજ્ઞાનીનો આ મોહ (—અજ્ઞાન) કેમ નાચે છે!

અથવા જો મોહ નાચે છે તો ભલે નાચો; તથાપિ વસ્તુસ્વરૂપ તો જેવું છે વું જ છે—એમ હવે કહે છે:—

(મંદાક્રાંતા)

कर्ता कर्ता भवति न यथा कर्म कर्मापि नैव
ज्ञानं ज्ञानं भवति च यथा पुद्गलः पुद्गलोऽपि ।
ज्ञानज्योतिर्ज्वलितमचलं व्यक्तमंतस्तथोच्चै-
श्चिच्छक्तीनां निकरभरतोऽत्यंतगंभीरमेतत् ॥ ९९ ॥

અર્થ:—અચળ, વ્યક્ત અને ચિત્શક્તિઓના (-જ્ઞાનના અખિ-
ચ્છેદોના) સમૂહના ભારથી અત્યંત ગંભીર આ જ્ઞાનજ્યોતિ અંતરંગમાં ઉછળે
રીતે જાજ્વલ્યમાન થઈ કે—આત્મા અજ્ઞાનમાં કર્તા થતો હતો તે હવે કર્તા ન
અને અજ્ઞાનના નિમિત્તે પુદ્ગલ કર્મરૂપ થતું હતું તે કર્મરૂપ થતું નથી; વર્તે
જ્ઞાનરૂપ જ રહે છે અને પુદ્ગલ પુદ્ગલરૂપ જ રહે છે.

ભાવાર્થ:—આત્મા જ્ઞાની થાય ત્યારે જ્ઞાન તો જ્ઞાનરૂપ જ પરિણમે
પુદ્ગલકર્મનો કર્તા થતું નથી; વળી પુદ્ગલ પુદ્ગલ જ રહે છે, કર્મરૂપે
નથી. આમ યથાર્થ જ્ઞાન થયે બન્ને દ્રવ્યનાં પરિણામને નિમિત્તનૈમિત્તિકભાવ
આવું જ્ઞાન સમ્યગ્દૃષ્ટિને હોય છે.

ટીકા:—આ પ્રમાણે જીવ અને અજીવ કર્તાકર્મનો વેશ છોડીને
નીકળી ગયા.

ભાવાર્થ:—જીવ અને અજીવ બન્ને કર્તા-કર્મનો વેશ ધારણ કરી એક
રંગભૂમિમાં દાખલ થયા હતા. સમ્યગ્દૃષ્ટિનું જ્ઞાન કે જે યથાર્થ દેખનારું છે
તેમનાં જુદાં જુદાં લક્ષણથી એમ જાણી લીધું કે તેઓ એક નથી પણ બે છે
તેઓ વેશ દૂર કરી રંગભૂમિમાંથી બહાર નીકળી ગયા. બહુરૂપીનું એવું
હોય છે કે દેખનાર જ્યાંસુધી ઓળખે નહિ ત્યાંસુધી ચેષ્ટા કર્યા કરે, પરંતુ
યથાર્થ ઓળખી લે ત્યારે નિજ રૂપ પ્રગટ કરી ચેષ્ટા કરવી છોડી દે. તેવી રીતે
પણ જાણવું. ૧૪૮.

જીવ અનાદિ અજ્ઞાન વસાય વિકાર ઉપાય વણે કરતા સોય
તાકરિ બંધન આન તણૂં ફલ લે સુખ દુઃખ ભવાશ્રમવાસોય
જ્ઞાન ભયે કરતા ન બને તબ બંધ ન હોય ખુલે પરપાસો
આતમમાંહિ સદા સુવિલાસ કરે સિવ પાય રહે નિતિ થાસો

આમ આ સમયસારગ્રંથની આત્મખ્યાતિ નામની ટીકાની પંડિત જય…
…ભાષાવચનિકામાં બીજો કર્તાકર્મ અધિકાર પૂર્ણ થયો.



— ૩ —

પુણ્ય-પાપ અધિકાર

પુણ્ય-પાપ બન્ને કરમ, બંધરૂપ દુર માની;
શુદ્ધાત્મા જેણે લહ્યો, નમું ચરણ હિત જાણી.

પ્રથમ ટીકાકાર કહે છે કે 'હવે એક જ કર્મ બે પાત્રરૂપ થઈને પુણ્ય-પાપરૂપે
ે છે.'

જેમ નૃત્યના અખાડામાં એક જ પુરુષ પોતાને બે રૂપે બનાવી નાચતો હોય
ાર્થ જાણનાર ઓળખી લે છે અને એક જ જાણે છે, તેવી રીતે જોકે કર્મ
છે તોપણ પુણ્ય-પાપના ભેદ બે પ્રકારનાં રૂપ કરી નાચે છે તેને, સમ્યગ્દૃષ્ટિનું
કે જે યથાર્થ છે તે એકરૂપ જાણી લે છે. તે જ્ઞાનના મહિમાનું કાવ્ય આ અધિ-
શરૂઆતમાં ટીકાકાર આચાર્ય કહે છેઃ—

(દ્રુતવિલંબિત)

तदथ कर्म शुभाशुभभेदतो
द्वितयतां गतमैक्यमुपानयन् ।
ग्लपितनिर्भरमोहरजा अयं
स्वयमुदेत्यवबोधसुधाप्लवः ॥ १०० ॥

અર્થઃ—હવે (કર્તાકર્મ અધિકાર પછી), શુભ અને અશુભના ભેદને લીધે
ણાને પામેલા તે કર્મને એકરૂપ કરતો, જેણે અત્યંત મોહ-રજને દૂર કરી છે
આ (પ્રત્યક્ષ—અનુભવગોચર) જ્ઞાન-સુધાંશુ (-સમ્યજ્ઞાનરૂપી ચંદ્રમા) સ્વયં
પ પામે છે.

ભાવાર્થઃ—અજ્ઞાનથી એક જ કર્મ બે પ્રકારનું દેખાતું હતું તેને જ્ઞાને
પ્રકારનું બતાવ્યું. જ્ઞાનમાં મોહરૂપી રજ લાગી રહી હતી તે દૂર કરવામાં આવ

ત્યારે યથાર્થ જ્ઞાન થયું; જેમ ચંદ્રને વાદળાં તથા ધુમ્મસનું પડલ આડું આ[illegible] યથાર્થ પ્રકાશ થતો નથી પરંતુ આવરણ દૂર થતાં ચંદ્ર યથાર્થ પ્રકાશે છે, તે[illegible] અહીં પણ જાણવું.

હવે પુણ્ય-પાપના સ્વરૂપના દૃષ્ટાંતરૂપ કાવ્ય કહે છેઃ—

(મંદાક્રાંતા)

एको दूरात्त्यजति मदिरां ब्राह्मणत्वाभिमाना-
दन्यः शूद्रः स्वयमहमिति स्नाति नित्यं तयैव ।
द्वावप्येतौ युगपदुदरान्निर्गतौ शूद्रिकायाः
शूद्रौ साक्षादपि च चरतो जातिभेदभ्रमेण ॥ १०१ ॥

અર્થઃ—(શૂદ્રાણીના એકી સાથે જન્મેલા બે પુત્રોમાંથી એક [illegible] ઉછર્યો અને બીજો શૂદ્રના ઘેર જ રહ્યો). એક તો 'હું બ્રાહ્મણ છું' એમ [illegible]ણના અભિમાનને લીધે મદિરાને દૂરથી જ છોડે છે અર્થાત્ સ્પર્શતો પણ ન[illegible] 'હું પોતે શૂદ્ર છું' એમ માનીને મદિરાથી જ નિત્ય સ્નાન કરે છે અર્થાત્ તે[illegible] ગણે છે. આ બન્ને પુત્રો શૂદ્રાણીના ઉદરથી એકી સાથે જન્મ્યા છે તેથી ([illegible] બન્ને સાક્ષાત્ શૂદ્ર છે, તોપણ જાતિભેદના ભ્રમ સહિત તેઓ પ્રવર્તે છે—આ[illegible] છે. (આ પ્રમાણે પુણ્ય-પાપનું પણ જાણવું.)

ભાવાર્થઃ—પુણ્ય-પાપ બન્ને વિભાવપરિણતિથી ઉપજ્યાં હોવા[illegible] બંધરૂપ જ છે. વ્યવહારદૃષ્ટિએ ભ્રમને લીધે તેમની પ્રવૃત્તિ જુદી જુદી [illegible] સારું અને બૂરું—એમ બે પ્રકારે તેઓ દેખાય છે. પરમાર્થદૃષ્ટિ તો તેમ[illegible] જ, બંધરૂપ જ, ખરાબ જ જાણે છે.

હવે શુભાશુભ કર્મના સ્વભાવનું વર્ણન ગાથામાં કરે છેઃ—

कम्ममसुहं कुसीलं सुहकम्मं चावि जाणह सुसीलं ।
कह तं होदि सुसीलं जं संसारं पवेसेदि ॥ १४५ ॥

कर्माशुभं कुशीलं शुभकर्म चापि जानीथ सुशीलम् ।
कथं तद्भवति सुशीलं यत्संसारं प्रवेशयति ॥ १४५ ॥

[illegible]

[illegible]

અન્વયાર્થઃ—[अशुभं कर्म] અશુભ કર્મ [कुशीलं] કુશીલ છે (-ખરાબ ...पि च] અને [शुभकर्म] શુભ કર્મ [सुशीलं] સુશીલ છે (-સારું છે) ...जानीथ] તમે જાણો છો! [तत्] તે [सुशीलं] સુશીલ [कथं] કેમ [भवति] ...यत्] કે જે [संसारं] (જીવને) સંસારમાં [प्रवेशयति] પ્રવેશ કરાવે છે?

ટીકાઃ—કોઈ કર્મને શુભ જીવપરિણામ નિમિત્ત હોવાથી અને કોઈ કર્મને ...ર જીવપરિણામ નિમિત્ત હોવાથી કર્મના કારણમાં ભેદ—તફાવત છે (અર્થાત્ જુદાં જુદાં છે); કોઈ કર્મ શુભ પુદ્ગલપરિણામમય અને કોઈ કર્મ અશુભ ...પરિણામમય હોવાથી કર્મના સ્વભાવમાં ભેદ છે; કોઈ કર્મનો શુભ ફળરૂપે અને ...ર્મનો અશુભ ફળરૂપે વિપાક થતો હોવાથી કર્મના અનુભવમાં (-સ્વાદમાં) ભેદ ...ઈ કર્મ શુભ (સારા) એવા મોક્ષમાર્ગને આશ્રિત હોવાથી અને કોઈ કર્મ અશુભ ...બ) એવા બંધમાર્ગને આશ્રિત હોવાથી કર્મના આશ્રયમાં ભેદ છે. માટે—જોકે ...ાર્થે) કર્મ એક જ છે તોપણ—કેટલાકનો એવો પક્ષ છે કે કોઈ કર્મ શુભ છે ...કોઈ કર્મ અશુભ છે. પરંતુ તે તો પ્રતિપક્ષ અર્થાત્ વિરુદ્ધ પક્ષ છે. તેનો નિષેધ ...નિશ્ચય પક્ષ આ પ્રમાણે છેઃ—

શુભ કે અશુભ જીવપરિણામ કેવળ અજ્ઞાનસ્વરૂપ હોવાથી એક છે; તે એક ...ી કર્મના કારણમાં ભેદ નથી; માટે કર્મ એક જ છે. શુભ કે અશુભ પુદ્ગલ-...ામ કેવળ પુદ્ગલમય હોવાથી એક છે; તે એક હોવાથી કર્મના સ્વભાવમાં ભેદ ...માટે કર્મ એક જ છે. શુભ કે અશુભ ફળરૂપે થતો વિપાક કેવળ પુદ્ગલમય ...ી એક છે; તે એક હોવાથી કર્મના અનુભવમાં (-સ્વાદમાં) ભેદ નથી; માટે ...એક જ છે. શુભ (સારો) એવો મોક્ષમાર્ગ તો કેવળ જીવમય હોવાથી અને ...મ (ખરાબ) એવો બંધમાર્ગ તો કેવળ પુદ્ગલમય હોવાથી તેઓ અનેક (-જુદાં ...બે) છે; તેઓ અનેક હોવા છતાં કર્મ તો કેવળ પુદ્ગલમય એવા બંધમાર્ગને ...શ્રિત હોવાથી કર્મના આશ્રયમાં ભેદ નથી; માટે કર્મ એક જ છે.

ભાવાર્થઃ—કોઈ કર્મ તો અરહંતાદિમાં ભક્તિ-અનુરાગ, જીવો પ્રત્યે અનુ-...ં પરિણામ, મંદ કષાયથી ચિત્તની ઉજ્જ્વળતા ઇત્યાદિ શુભ પરિણામોના નિમિત્તે ...) અને કોઈ કર્મ તીવ્ર ક્રોધાદિક અશુભ લેશ્યા, નિર્દયપણું, વિષયાસક્તિ, દેવ-ગુરુ ...પૂજ્ય પુરુષો પ્રત્યે વિનયભાવે ન પ્રવર્તવું ઇત્યાદિ અશુભ પરિણામોના નિમિત્તથી ...છે; આમ હેતુનો ભેદ હોવાથી કર્મના શુભ અને અશુભ એવા બે ભેદ છે. ...દનીય, શુભઆયુ, શુભનામ અને શુભગોત્ર—એ કર્મોનાં પરિણામ (-પ્રકૃતિ ...)માં તથા ચાર ઘાતિકર્મો, અશાતાવેદનીય, અશુભઆયુ, અશુભનામ, અશુભ-...-એ કર્મોનાં પરિણામ (-પ્રકૃતિ વગેરે-)માં ભેદ છે; આમ સ્વભાવનો ભેદ હોવાથી

હવે, (શુભ-અશુભ) બન્ને કર્મો અવિશેષપણે (કાંઈ તફાવત વિના) બંધનાં છે એમ સિદ્ધ કરે છે:—

सोवण्णियं पि णियलं बंधदि कालायसं पि जह पुरिसं ।
बंधदि एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कम्मं ॥ १४६ ॥

सौवर्णिकमपि निगलं बध्नाति कालायसमपि यथा पुरुषम् ।
बध्नात्येवं जीवं शुभमशुभं वा कृतं कर्म ॥ १४६ ॥

અન્વયાર્થ:—[यथा] જેમ [सौवर्णिकं] સુવર્ણની [निगलं] બેડી [अपि] पुरुषं] પુરુષને [बध्नाति] બાંધે છે અને [कालायसं] લોખંડની [अपि] ધે છે, [एवं] તેવી રીતે [शुभं वा अशुभं] શુભ તેમ જ અશુભ [कृतं कर्म] કર્મ [जीवं] જીવને [बध्नाति] (અવિશેષપણે) બાંધે છે.

ટીકા:—જેમ સુવર્ણની અને લોખંડની બેડી કાંઈ પણ તફાવત વિના પુરુષને છે કારણ કે બંધનપણાની અપેક્ષાએ તેમનામાં તફાવત નથી; તેવી રીતે શુભ અશુભ કર્મ કાંઈ પણ તફાવત વિના પુરુષને (જીવને) બાંધે છે કારણ કે બંધ- ી અપેક્ષાએ તેમનામાં તફાવત નથી. ૧૪૬.

હવે બન્ને કર્મોનો નિષેધ કરે છે:—

तम्हा दु कुसीलेहि य रायं मा कुणह मा व संसग्गं ।
साहीणो हि विणासो कुसीलसंसग्गरायेण ॥ १४७ ॥

तस्मात्तु कुशीलाभ्यां च रागं मा कुरुत मा वा संसर्गम् ।
स्वाधीनो हि विनाशः कुशीलसंसर्गरागेण ॥ १४७ ॥

અન્વયાર્થ:—[तस्मात् तु] માટે [कुशीलाभ्यां] એ બન્ને કુશીલો સાથે] રાગ [मा कुरुत] ન કરો [वा] અથવા [संसर्गं च] સંસર્ગ પણ [मा]

જ્યમ લોહનું ત્યમ કનકનું જંજીર જકડે પુરુષને,
એવી રીતે શુભ કે અશુભ કૃત કર્મ બાંધે જીવને. ૧૪૬.
તેથી કરો નહિ રાગ કે સંસર્ગ ઉભય કુશીલનો,
છે કુશીલના સંસર્ગ-રાગે નાશ સ્વાધીનતાતણો. ૧૪૭.

કર્મના શુભ અને અશુભ એવા બે ભેદ છે. કોઈ કર્મના ફળનો અનુભવ સુ
અને કોઈ કર્મના ફળનો અનુભવ દુઃખરૂપ છે; આમ અનુભવનો ભેદ હોવાથી
શુભ અને અશુભ એવા બે ભેદ છે. કોઈ કર્મ મોક્ષમાર્ગને આશ્રિત છે (અર્થ
માર્ગમાં બંધાય છે) અને કોઈ કર્મ બંધમાર્ગના આશ્રયે છે; આમ આ
હોવાથી કર્મના શુભ અને અશુભ એવા બે ભેદ છે. આ પ્રમાણે હેતુ,
અનુભવ અને આશ્રય—એ ચાર પ્રકારે કર્મમાં ભેદ હોવાથી કોઈ કર્મ શુભ,
કોઈ અશુભ છે એમ કેટલાકનો પક્ષ છે.

હવે એ ભેદપક્ષનો નિષેધ કરવામાં આવે છેઃ—જીવનાં શુભ અને
પરિણામ બન્ને અજ્ઞાનમય છે તેથી કર્મનો હેતુ એક અજ્ઞાન જ છે; માટે કર્મ
છે. શુભ અને અશુભ પુદ્‍ગલપરિણામો બન્ને પુદ્‍ગલમય જ છે તેથી કર્મનો
એક પુદ્‍ગલપરિણામરૂપ જ છે; માટે કર્મ એક જ છે. સુખરૂપ અને દુઃખરૂપ
બન્ને પુદ્‍ગલમય જ છે તેથી કર્મનો અનુભવ એક પુદ્‍ગલમય જ છે; માટે
જ છે. મોક્ષમાર્ગ અને બંધમાર્ગમાં, મોક્ષમાર્ગ તો કેવળ જીવનાં પરિણામ
અને બંધમાર્ગ કેવળ પુદ્‍ગલનાં પરિણામમય જ છે તેથી કર્મનો આશ્રય કેવ
માર્ગ જ છે (અર્થાત્ કર્મ એક બંધમાર્ગના આશ્રયે જ થાય છે—મોક્ષમા
નથી); માટે કર્મ એક જ છે.

આ પ્રમાણે કર્મના શુભાશુભ ભેદના પક્ષને ગૌણ કરી તેનો નિ
કારણ કે અહીં અભેદપક્ષ પ્રધાન છે, અને અભેદપક્ષથી જોવામાં આવે તો
જ છે—બે નથી.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છેઃ—

(ઉપજાતિ)

हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणां
सदाप्यभेदान्न हि कर्मभेदः ।
तद्बंधमार्गाश्रितमेकमिष्टं
स्वयं समस्तं खलु बंधहेतुः ॥ १०२ ॥

અર્થઃ—હેતુ, સ્વભાવ, અનુભવ અને આશ્રય—એ ચારનો (અર્થ
ચાર પ્રકારે) સદાય અભેદ હોવાથી કર્મમાં નિશ્ચયથી ભેદ નથી; માટે, સમસ્ત
પોતે નિશ્ચયથી બંધમાર્ગને આશ્રિત હોવાથી અને બંધનું કારણ હોવાથી
જ માનવામાં આવ્યું છે—એક જ માનવું યોગ્ય છે. ૧૦૨.

હવે, (શુભ-અશુભ) બન્ને કર્મો અવિશેષપણે (કાંઈ તફાવત વિના) બંધનાં છે એમ સિદ્ધ કરે છેઃ—

सोवण्णियं पि णियलं बंधदि कालायसं पि जह पुरिसं ।
बंधदि एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कम्मं ॥ १४६ ॥

सौवर्णिकमपि निगलं बध्नाति कालायसमपि यथा पुरुषम् ।
बध्नात्येवं जीवं शुभमशुभं वा कृतं कर्म ॥ १४६ ॥

અન્વયાર્થઃ—[यथा] જેમ [सौवर्णिकं] સુવર્ણની [निगलं] બેડી [अपि] [पुरुषं] પુરુષને [बध्नाति] બાંધે છે અને [कालायसं] લોખંડની [अपि] બાંધે છે, [एवं] તેવી રીતે [शुभं वा अशुभं] શુભ તેમ જ અશુભ [कृतं कर्म] કર્મ [जीवं] જીવને [बध्नाति] (અવિશેષપણે) બાંધે છે.

ટીકાઃ—જેમ સુવર્ણની અને લોખંડની બેડી કાંઈ પણ તફાવત વિના પુરુષને છે કારણ કે બંધનપણાની અપેક્ષાએ તેમનામાં તફાવત નથી; તેવી રીતે શુભ અશુભ કર્મ કાંઈ પણ તફાવત વિના પુરુષને (-જીવને) બાંધે છે કારણ કે બંધની અપેક્ષાએ તેમનામાં તફાવત નથી. ૧૪૬.

હવે બન્ને કર્મોનો નિષેધ કરે છેઃ—

तम्हा दु कुसीलेहि य रायं मा कुणह मा व संसग्गं ।
साहीणो हि विणासो कुसीलसंसग्गरायेण ॥ १४७ ॥

तस्मात्तु कुशीलाभ्यां च रागं मा कुरुत मा वा संसर्गम् ।
स्वाधीनो हि विनाशः कुशीलसंसर्गरागेण ॥ १४७ ॥

અન્વયાર્થઃ—[तस्मात् तु] માટે [कुशीलाभ्यां] એ બન્ને કુશીલો સાથે] રાગ [मा कुरुत] ન કરો [वा] અથવા [संसर्गं च] સંસર્ગ પણ [मा]

જેમ લોહનું ત્યમ કનકનું જંજીર જકડે પુરુષને,
એવી રીતે શુભ કે અશુભ કૃત કર્મ બાંધે જીવને. ૧૪૬.
તેથી કરો નહિ રાગ કે સંસર્ગ એ કુશીલોતણો,
છે કુશીલના સંસર્ગ-રાગે નાશ સ્વાધીનતાતણો.

ન કરો [हि] કારણ કે [कुशीलसंसर्गरागेण] કુશીલ સાથે સંસર્ગ અને રાગ ..
[स्वाधीनः विनाशः] સ્વાધીનતાનો નાશ થાય છે (અથવા તો પોતાનો ઘાત ..
જ થાય છે).

ટીકાઃ—જેમ કુશીલ (ખરાબ) એવી મનોરમ અને અમનોરમ હાથણી
કૂટણી સાથે રાગ અને સંસર્ગ (હાથીને) બંધનાં કારણ થાય છે તેવી રીતે ..
એવાં શુભ અને અશુભ કર્મ સાથે રાગ અને સંસર્ગ બંધનાં કારણ હોવાથી, ..
શુભ કર્મો સાથે રાગ અને સંસર્ગનો નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે. ૧૪૭.

હવે, બન્ને કર્મ નિષેધવાયોગ્ય છે એ વાતનું ભગવાન કુંદકુંદાચાર્ય ..
દૃષ્ટાંતથી સમર્થન કરે છેઃ—

जह णाम कोवि पुरिसो कुच्छियसीलं जणं वियाणित्ता ।
वज्जेदि तेण समयं संसग्गं रायकरणं च ॥ १४८ ॥
एमेव कम्मपयडीसीलसहावं च कुच्छिदं णाउं ।
वज्जंति परिहरंति य तस्संसग्गं सहावरया ॥ १४९ ॥

यथा नाम कोऽपि पुरुषः कुत्सितशीलं जनं विज्ञाय ।
वर्जयति तेन समकं संसर्गं रागकरणं च ॥ १४८ ॥
एवमेव कर्मप्रकृतिशीलस्वभावं च कुत्सितं ज्ञात्वा ।
वर्जयंति परिहरंति च तत्संसर्गं स्वभावरताः ॥ १४९ ॥

અન્વયાર્થઃ—[यथा नाम] જેમ [कोऽपि पुरुषः] કોઈ પુરુષ [कु..
शीलं] કુત્સિત શીલવાળા અર્થાત્ ખરાબ સ્વભાવવાળા [जनं] પુરુષને [वि..
જાણીને [तेन समकं] તેની સાથે [संसर्गं च रागकरणं] સંસર્ગ અને રાગ ..
[वर्जयति] છોડી દે છે, [एवं एव च] તેવી જ રીતે [स्वभावरताः] ..
રત પુરુષો [कर्मप्रकृतिशीलस्वभावं] કર્મપ્રકૃતિના શીલ-સ્વભાવને [कुत्सितं] ..

જેવી રીતે કો પુરુષ કુત્સિતશીલ જનને જાણીને,
સંસર્ગ તેની સાથ તેમ જ રાગ કરવો પરિતજે; ૧૪૮.
એમ જ કરમપ્રકૃતિશીલસ્વભાવ કુત્સિત જાણીને,
નિજ ભાવમાં રત રાગ ને સંસર્ગ તેનો પરિહરે. ૧૪૯.

મ [ज्ञात्वा] જાણીને [तत्संसर्गं] તેની સાથે સંસર્ગ [वर्जयंति] છોડી
ર્જંતિ च] અને રાગ છોડી દે છે.

ટીકા:—જેમ કોઈ કુશળ વન-હસ્તી પોતાના બંધને માટે સમીપ આવતી
ગી મનોરમ કે અમનોરમ હાથણીરૂપી કૂટણીને પરમાર્થે બૂરી જાણીને
ાગ તથા સંસર્ગ કરતો નથી, તેવી રીતે આત્મા અરાગી જ્ઞાની થયો થકો
ને માટે સમીપ આવતી (ઉદયમાં આવતી) મનોરમ કે અમનોરમ
શુભ)—બધીયે કર્મપ્રકૃતિને પરમાર્થે બૂરી જાણીને તેની સાથે રાગ તથા
નથી.

ભાવાર્થ:—હાથીને પકડવા હાથણી રાખવામાં આવે છે; હાથી કામાંધ થયો
ીરૂપી કૂટણી સાથે રાગ તથા સંસર્ગ કરે છે તેથી પકડાઈ જઈને પરાધીન
ભોગવે છે, અને જો ચતુર હાથી હોય તો તેની સાથે રાગ તથા સંસર્ગ
ાવી રીતે અજ્ઞાની જીવ કર્મપ્રકૃતિને સારી સમજીને તેની સાથે રાગ તથા
તેથી બંધમાં પડી પરાધીન થઈને સંસારનાં દુઃખ ભોગવે છે, અને જો
ા તેની સાથે રાગ તથા સંસર્ગ કદી કરતો નથી. ૧૪૮-૧૪૯.

, બન્ને કર્મો બંધનાં કારણ છે અને નિષેધવાયોગ્ય છે એમ આગમથી

बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो ।
 जिणोवदेसो तह्मा कम्मेसु मा रज्ज ॥ १५० ॥

रक्तो बध्नाति कर्म मुच्यते जीवो विरागसंप्राप्तः ।
एषो जिनोपदेशः तस्मात् कर्मसु मा रज्यस्व ॥ १५० ॥

અન્વયાર્થ:—[रक्तः जीवः] રાગી જીવ [कर्म] કર્મ [बध्नाति] બાંધે
ાપ્તઃ] અને વૈરાગ્યને પામેલો જીવ [मुच्यते] કર્મથી છૂટે છે—[एषः]
દેશઃ] જિનભગવાનનો ઉપદેશ છે; [तस्मात्] માટે (હે ભવ્ય જીવ!)
કર્મોમાં [मा रज्यस्व] પ્રીતિ—રાગ ન કર.

ટીકા:—"રક્ત અર્થાત્ રાગી અવશ્ય કર્મ બાંધે અને વિરક્ત અર્થાત્ વિરાગી
" એવું જે આ આગમવચન છે તે, સામાન્યપણે રાગીપણાના નિમિત્ત-

રક્ત બાંધે કર્મને, વૈરાગ્યપ્રાપ્ત મુકાય છે,
જિનતણો ઉપદેશ તેથી ન રાચ તું કર્મો વિષે. ૧૫૦.

પણાને લીધે શુભ અને અશુભ બન્ને કર્મને અવિશેષપણે બંધનાં કારણ [illegible] કરે છે અને તેથી બન્ને કર્મને નિષેધે છે.

આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છેઃ—

(સ્વાગતા)

कर्म सर्वमपि सर्वविदो यद्
बंधसाधनमुशन्त्यविशेषात् ।
तेन सर्वमपि तत्प्रतिषिद्धं
ज्ञानमेव विहितं शिवहेतुः ॥ १०३ ॥

અર્થઃ—કારણ કે સર્વજ્ઞદેવો સમસ્ત (શુભ તેમ જ અશુભ) કર્મને અવિશેષપણે બંધનું સાધન (કારણ) કહે છે તેથી (એમ સિદ્ધ થયું કે સર્વજ્ઞદેવોએ) સમસ્ત કર્મને નિષેધ્યું છે અને જ્ઞાનને જ મોક્ષનું કારણ ફરમાવ્યું છે.

જો સમસ્ત કર્મ નિષેધવામાં આવ્યું છે તો પછી મુનિઓને શરણ શું રહ્યું તે હવેના કળશમાં કહે છેઃ—

(શિખરિણી)

निषिद्धे सर्वस्मिन् सुकृतदुरिते कर्मणि किल
प्रवृत्ते नैष्कर्म्ये न खलु मुनयः सन्त्यशरणाः ।
तदा ज्ञाने ज्ञानं प्रतिचरितमेषां हि शरणं
स्वयं विन्दन्त्येते परमममृतं तत्र निरताः ॥ १०४ ॥

અર્થઃ—શુભ આચરણરૂપ કર્મ અને અશુભ આચરણરૂપ કર્મ—એવા સમસ્ત કર્મનો નિષેધ કરવામાં આવતાં અને એ રીતે નિષ્કર્મ અવસ્થા પ્રવર્તતાં મુનિઓ કાંઈ અશરણ નથી; (કારણ કે) જ્યારે નિષ્કર્મ અવસ્થા (નિવૃત્તિ અવસ્થા) પ્રવર્તે છે ત્યારે જ્ઞાનમાં આચરણ કરતું—રમણ કરતું—પરિણમતું જ્ઞાન જ તે મુનિઓને શરણ છે; તેઓ તે જ્ઞાનમાં લીન થયા થકા પરમ અમૃતને પોતે અનુભવે છે—આસ્વાદે છે.

ભાવાર્થઃ—સુકૃત કે દુષ્કૃત—બન્નેનો નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે તો મુનિઓને કાંઈ પણ કરવાનું નહિ રહેવાથી તેઓ મુનિપણું શાના આશ્રયે પાળી શકે?—એમ કોઈને શંકા થાય તો તેનું સમાધાન આપ્યું છે.

ર્મોનો ત્યાગ થયે જ્ઞાનનું મહા શરણ છે. તે જ્ઞાનમાં લીન થતાં સર્વ આકુળતા
પરમાનંદનો ભોગવટો હોય છે—જેનો સ્વાદ જ્ઞાની જ જાણે છે. અજ્ઞાની કષાયી
જ્ઞાનાનંદનો સ્વાદ નથી
ર્મને જ સર્વસ્વ જાણી તેમાં લીન થઈ રહ્યો છે,
. ૧૫૦.

હવે, જ્ઞાન મોક્ષનું કારણ છે એમ સિદ્ધ કરે છે:—

परमट्ठो खलु समओ सुद्धो जो केवली मुणी णाणी ।
तम्हि ट्ठिदा सहावे मुणिणो पावंति णिव्वाणं ॥ १५१ ॥

परमार्थः खलु समयः शुद्धो यः केवली मुनिर्ज्ञानी ।
तस्मिन् स्थिताः स्वभावे मुनयः प्राप्नुवंति निर्वाणम् ॥ १५१ ।

અન્વયાર્થ:—[खलु] નિશ્ચયથી [यः] જે [परमार્થः] પરમાર્થ (પરમ
દાર્થ) છે, [समयः] સમય છે, [शुद्धः] શુદ્ધ છે, [केवली] કેવળી છે, [मुनिः]
નિ છે, [ज्ञानी] જ્ઞાની છે, [तस्मिन् स्वभावे] તે સ્વભાવમાં [स्थिताः] સ્થિત
મુનયः] મુનિઓ [निर्वाणं] નિર્વાણને [प्राप्नुवंति] પામે છે.

ટીકા:—જ્ઞાન મોક્ષનું કારણ છે, કેમ કે જ્ઞાન શુભાશુભ કર્મોના બંધનું કારણ
હે હોવાથી તેને એ રીતે મોક્ષનું કારણપણું બને છે. તે જ્ઞાન, સમસ્ત કર્મ આદિ
ન્ય જાતિઓથી ભિન્ન કેવળ જુદી જ જાતનો પરમાર્થ (-પરમ પદાર્થ) છે—આત્મા
. તે (આત્મા) એકી સાથે એકરૂપે પ્રવર્તતાં એવાં જે જ્ઞાન અને ગમન (પરિણમન)
સ્વરૂપ હોવાથી સમય છે, સકળ નયપક્ષોથી અમિલિત (અમિશ્રિત) એવા એક
નસ્વરૂપ હોવાથી શુદ્ધ છે, કેવળ ચિન્માત્ર વસ્તુસ્વરૂપ હોવાથી કેવળી છે, કેવળ મનન
... (જ્ઞાનમાત્ર) ભાવસ્વરૂપ હોવાથી મુનિ છે, પોતે જ જ્ઞાનસ્વરૂપ હોવાથી જ્ઞાની
'સ્વ'ના ભવનમાત્રસ્વરૂપ હોવાથી સ્વભાવ છે અથવા સ્વતઃ (પોતાથી જ) ચેત
ના *ભવનમાત્રસ્વરૂપ હોવાથી સદ્ભાવ છે (કારણ કે જે સ્વતઃ હોય તે સત્ સ્વરૂ
હોય). આ પ્રમાણે શબ્દભેદ હોવા છતાં વસ્તુભેદ નથી (—નામ જુદાં જુદાં
તાં વસ્તુ એક જ છે).

* ભવન = હોવું તે.

પરમાર્થ છે નક્કી, સમય છે, શુદ્ધ, કેવળી, મુનિ, જ્ઞાની છે,
એવા સ્વભાવે સ્થિત મુનિઓ મોક્ષની પ્રાપ્તિ કરે.

હવે ફરીને પણ, પુણ્યકર્મના પક્ષપાતીને સમજાવવા માટે તેનો દોષ

परमट्ठबाहिरा जे ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छंति ।
संसारगमणहेदुं वि मोक्खहेदुं अजाणंता ॥ १५४ ॥

परमार्थबाह्या ये ते अज्ञानेन पुण्यमिच्छंति ।
संसारगमनहेतुमपि मोक्षहेतुमजानंतः ॥ १५४ ॥

અન્વયાર્થ:—[ये] જેઓ [परमार्थबाह्याः] પરમાર્થથી બાહ્ય છે તેઓ [मोक्षहेतुम्] મોક્ષના હેતુને [अजानंतः] નહિ જાણતા થકા—[संसारगमनहेतुम् अपि] જોકે પુણ્ય સંસારગમનનો હેતુ છે તોપણ—[अज्ञानेन] અજ્ઞાનથી પુણ્યને (મોક્ષનો હેતુ જાણીને) [इच्छंति] ઇચ્છે છે.

ટીકા:—સમસ્ત કર્મના પક્ષનો નાશ કરવાથી ઉપજતો જે આત્મલાભ (નિજ સ્વરૂપની પ્રાપ્તિ) તે આત્મલાભસ્વરૂપ મોક્ષને આ જગતમાં કેટલાક ઇચ્છતા હોવા છતાં, મોક્ષના કારણભૂત સામાયિકની—કે જે સામાયિક સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રસ્વભાવવાળા પરમાર્થભૂત જ્ઞાનના *ભવનમાત્ર છે, એકાગ્રતાલક્ષણયુક્ત છે અને સમયસારસ્વરૂપ છે તેની—પ્રતિજ્ઞા લઈને પણ, દુરંત કર્મચક્રને પાર ઉતરવાની નામર્દાઈને લીધે (અસમર્થતાને લીધે) પરમાર્થભૂત જ્ઞાનના ભવનમાત્ર જે સામાયિક તે સામાયિકસ્વરૂપ આત્મસ્વભાવને નહિ પામતા થકા, જેમને અતિ સ્થૂલ સંક્લેશપરિણામરૂપ કર્મો નિવૃત્ત થયાં છે અને અત્યંત સ્થૂલ વિશુદ્ધપરિણામરૂપ કર્મો પ્રવર્તે છે એવા તેઓ, કર્મના અનુભવના ગુરુપણા-લઘુપણાની પ્રાપ્તિમાત્રથી જ સંતુષ્ટ ચિત્તવાળા થતા થકા, પોતે સ્થૂલ લક્ષ્યવાળા હોઈને (સંક્લેશપરિણામોને છોડતા હોવા છતાં) સમસ્ત કર્મકાંડને મૂળથી ઉખેડતા નથી. આ રીતે તેઓ, પોતે પોતાના અજ્ઞાનથી કેવળ અશુભ કર્મને જ બંધનું કારણ માનીને, વ્રત, નિયમ, શીલ, તપ વગેરે શુભ કર્મો પણ બંધનાં કારણ હોવા છતાં તેમને બંધનાં કારણ નહિ જાણતા થકા, મોક્ષના કારણ તરીકે તેમનો અંગીકાર કરે છે—મોક્ષના કારણ તરીકે તેમનો આશ્રય

* ભવન = થવું તે, પરિણમન.

પરમાર્થબાહ્ય જીવો અરે! જાણે ન હેતુ મોક્ષનો,
અજ્ઞાનથી તે પુણ્ય ઇચ્છે હેતુ જે સંસારનો.

ભાવાર્થ:—કેટલાક અજ્ઞાની લોકો દીક્ષા લેતી વખતે સામાયિકની પ્રતિજ્ઞા
છે પરંતુ સૂક્ષ્મ એવા આત્મસ્વભાવની શ્રદ્ધા, લક્ષ તથા અનુભવ નહિ કરી શકવાથી,
લ લક્ષ્યવાળા તે જીવો સ્થૂલ સંક્લેશપરિણામોને છોડીને એવાં જ સ્થૂલ વિશુદ્ધ-
ણામોમાં (શુભ પરિણામોમાં) રાચે છે. (સંક્લેશપરિણામો તેમ જ વિશુદ્ધપરિણામો
અત્યંત સ્થૂલ છે; આત્મસ્વભાવ જ સૂક્ષ્મ છે.) આ રીતે તેઓ—જોકે વાસ્તવિક
સર્વકર્મરહિત આત્મસ્વભાવનું અનુભવન જ મોક્ષનું કારણ છે તોપણ—કર્માનુ-
ના બહુપણા-થોડાપણાને જ બંધ-મોક્ષનું કારણ માનીને, વ્રત, નિયમ, શીલ, તપ
રે શુભ કર્મોનો મોક્ષના હેતુ તરીકે આશ્રય કરે છે. ૧૫૪.

હવે જીવોને પરમાર્થ મોક્ષકારણ (ખરું મોક્ષનું કારણ) બતાવે છે:—

जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं तेसिमधिगमो णाणं ।
रायादीपरिहरणं चरणं एसो दु मोक्खपहो ॥ १५५ ॥

जीवादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं तेषामधिगमो ज्ञानम् ।
रागादिपरिहरणं चरणं एषस्तु मोक्षपथः ॥ १५५ ॥

અન્વયાર્થ:—[जीवादिश्रद्धानं] જીવાદિ પદાર્થોનું શ્રદ્ધાન [सम्यक्त्वं]
ક્ત્વ છે, [तेषां अधिगमः] તે જીવાદિ પદાર્થોનો અધિગમ [ज्ञानं] જ્ઞાન છે અને
रागादिपरिहरणं] રાગાદિનો ત્યાગ [चरणं] ચારિત્ર છે;—[एषः तु] આ જ
मोक्षपथः] મોક્ષનો માર્ગ છે.

ટીકા:—મોક્ષનું કારણ ખરેખર સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર છે. તેમાં, સમ્યગ્દર્શન
જીવાદિ પદાર્થોના શ્રદ્ધાનસ્વભાવે જ્ઞાનનું થવું—પરિણમવું તે છે; જીવાદિ પદાર્થોના
નસ્વભાવે જ્ઞાનનું થવું—પરિણમવું તે જ્ઞાન છે; રાગાદિના ત્યાગસ્વભાવે જ્ઞાનનું
નું—પરિણમવું તે ચારિત્ર છે. માટે જ્ઞાન જ પરમાર્થ મોક્ષકારણ છે.

ભાવાર્થ:—આત્માનું અસાધારણ સ્વરૂપ જ્ઞાન જ છે. વળી આ પ્રકરણમાં
નને જ પ્રધાન કરીને વ્યાખ્યાન છે. તેથી 'સમ્યગ્દર્શન, જ્ઞાન અને ચારિત્ર—એ
રૂપ સ્વરૂપે જ્ઞાન જ પરિણમે છે' એમ કહીને જ્ઞાનને જ મોક્ષનું કારણ કહ્યું છે. જ્ઞાન
તે અભેદ વિવક્ષામાં આત્મા જ છે—એમ કહેવામાં કાંઈ પણ વિરોધ નથી. માટે
ામાં કેટલેક સ્થળે આચાર્યદેવે જ્ઞાનસ્વરૂપ આત્માને 'જ્ઞાન'શબ્દથી કહ્યો છે. ૧૫૫.

જીવાદિનું શ્રદ્ધાન સમકિત, જ્ઞાન તેમનું જ્ઞાન છે,
રાગાદિ-વર્જન ચરણ છે, ને આ જ મુક્તિપંથ છે. ૧૫૫.

હવે, પરમાર્થ મોક્ષકારણથી અન્ય જે કર્મ તેનો નિષેધ કરે છે:—

मोत्तूण णिच्छयट्ठं ववहारेण विदुसा पवट्टंति ।
परमट्ठमस्सिदाण दु जदीण कम्मक्खओ विहिओ ॥ १५

मुक्त्वा निश्चयार्थं व्यवहारेण विद्वांसः प्रवर्तंते ।
परमार्थमाश्रितानां तु यतीनां कर्मक्षयो विहितः ॥ १५६ ॥

અન્વયાર્થ:—[निश्चयार्थं] નિશ્ચયનયના વિષયને [मुक्त्वा] છોડીને [विद्वांसः] વિદ્વાનો [व्यवहारेण] વ્યવહાર વડે [प्रवर्तंते] પ્રવર્તે છે; [तु] [परमार्थं आश्रितानां] પરમાર્થને (-આત્મસ્વરૂપને) આશ્રિત [यतीनां] યતી જ [कर्मक्षयः] કર્મનો નાશ [विहितः] આગમમાં કહ્યો છે. (કેવળ વ્ય પ્રવર્તનારા પંડિતોને કર્મક્ષય થતો નથી.)

ટીકા:—પરમાર્થ મોક્ષહેતુથી જુદો, જે વ્રત, તપ વગેરે શુભકર્મ મોક્ષહેતુ કેટલાક લોકો માને છે, તે આખોય નિષેધવામાં આવ્યો છે; કારણ કે તે હેતુ) અન્ય દ્રવ્યના સ્વભાવવાળો (અર્થાત્ પુદ્‌ગલસ્વભાવી) હોવાથી તેના સ્વ વડે જ્ઞાનનું ભવન થતું નથી,—માત્ર પરમાર્થ મોક્ષહેતુ જ એક દ્રવ્યના સ્વ (અર્થાત્ જીવસ્વભાવી) હોવાથી તેના સ્વભાવ વડે જ્ઞાનનું ભવન થાય છે.

ભાવાર્થ:—મોક્ષ આત્માનો થાય છે તો તેનું કારણ પણ આત્મસ્વ હોવું જોઈએ. જે અન્ય દ્રવ્યના સ્વભાવવાળું હોય તેનાથી આત્માનો મોક્ષ કે શુભ કર્મ પુદ્‌ગલસ્વભાવી છે તેથી તેના ભવનથી પરમાર્થ આત્માનું ભવ શકે; માટે તે આત્માના મોક્ષનું કારણ થતું નથી. જ્ઞાન આત્મસ્વભાવી છે ભવનથી આત્માનું ભવન થાય છે; માટે તે આત્માના મોક્ષનું કારણ થાય રીતે જ્ઞાન જ વાસ્તવિક મોક્ષહેતુ છે.

હવે આ જ અર્થના કળશરૂપ બે શ્લોકો કહે છે:—

(અનુષ્ટુપ)

वृत्तं ज्ञानस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं सदा ।
एकद्रव्यस्वभावत्वान्मोक्षहेतुस्तदेव तत् ॥ १०६ ॥

વિદ્વજ્જનો ભૂતાર્થ તજી વ્યવહારમાં વર્તન કરે,
પણ કર્મક્ષયનું વિધાન તો પરમાર્થ-આશ્રિત સંતને. ૧૫૬.

वृत्तं कर्मस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं न हि ।
द्रव्यांतरस्वभावत्वान्मोक्षहेतुर्न कर्म तत् ॥ १०७ ॥

અર્થ:—જ્ઞાન એકદ્રવ્યસ્વભાવી (-જીવસ્વભાવી-) હોવાથી જ્ઞાનના સ્વ-
થી હંમેશાં જ્ઞાનનું ભવન થાય છે; માટે જ્ઞાન જ મોક્ષનું કારણ છે.

કર્મ અન્યદ્રવ્યસ્વભાવી (-પુદ્ગલસ્વભાવી-) હોવાથી કર્મના સ્વભાવથી
નું ભવન થતું નથી; માટે કર્મ મોક્ષનું કારણ નથી.

હવે આગળના કથનની સૂચનાનો શ્લોક કહે છે:—

(અનુષ્ટુપ્)

मोक्षहेतुतिरोधानाद्बंधत्वात्स्वयमेव च ।
मोक्षहेतुतिरोधायिभावत्वात्तन्निषिध्यते ॥ १०८ ॥

અર્થ:—કર્મ મોક્ષના કારણનું તિરોધાન કરનારું હોવાથી, તે પોતે જ બંધ-
ર હોવાથી અને તે મોક્ષના કારણના *તિરોધાયિભાવસ્વરૂપ હોવાથી તેનો નિષેધ-
આવે છે. ૧૫૬.

હવે પ્રથમ, કર્મ મોક્ષના કારણનું તિરોધાન કરનારું છે એમ સિદ્ધ કરે છે:—

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदी मलमेलणासत्तो ।
मिच्छत्तमलोच्छण्णं तह सम्मत्तं खु णायव्वं ॥ १५७ ॥
वत्थस्स सेदभावो जह णासेदी मलमेलणासत्तो ।
अण्णाणमलोच्छण्णं तह णाणं होदि णायव्वं ॥ १५८ ॥

મળમિલનલેપથી નાશ પામે શ્વેતપણું જ્યમ વસ્ત્રનું,
મિથ્યાત્વમળના લેપથી સમ્યક્ત્વ એ રીત જાણવું. ૧૫૭.
મળમિલનલેપથી નાશ પામે શ્વેતપણું જ્યમ વસ્ત્રનું,
અજ્ઞાનમળના લેપથી વળી જ્ઞાન એ રીત જાણવું. ૧૫૮.

તિરોધાયિ = તિરોધાન કરનાર.

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदी मलमेलणासत्तो।
कसायमलोच्छण्णं तह चारित्तं पि णायव्वं ॥ १५९ ॥

वस्त्रस्य श्वेतभावो यथा नश्यति मलमेलनासक्तः।
मिथ्यात्वमलावच्छन्नं तथा सम्यक्त्वं खलु ज्ञातव्यम् ॥ १५७ ॥

वस्त्रस्य श्वेतभावो यथा नश्यति मलमेलनासक्तः।
अज्ञानमलावच्छन्नं तथा ज्ञानं भवति ज्ञातव्यम् ॥ १५८ ॥

वस्त्रस्य श्वेतभावो यथा नश्यति मलमेलनासक्तः।
कषायमलावच्छन्नं तथा चारित्रमपि ज्ञातव्यम् ॥ १५९ ॥

અન્વયાર્થઃ—[यथा] જેમ [वस्त्रस्य] વસ્ત્રનો [श्वेतभावः] શ્વેતભાવ [मलमेलनासक्तः] મેલના મળવાથી ખરડાયો થકો [नश्यति] નાશ પામે છે—તિરોભૂત થાય છે, [तथा] તેવી રીતે [मिथ्यात्वमलावच्छन्नं] મિથ્યાત્વરૂપી મેલથી વ્યાપ્ત થયું—ખરડાયું [सम्यक्त्वं खलु] સમ્યક્ત્વ ખરેખર તિરોભૂત થાય છે [ज्ञातव्यम्] એમ જાણવું. [यथा] જેમ [वस्त्रस्य] વસ્ત્રનો [श्वेतभावः] શ્વેતભાવ [मलमेलनासक्तः] મેલના મળવાથી ખરડાયો થકો [नश्यति] નાશ પામે છે—તિરોભૂત થાય છે, [तथा] તેવી રીતે [अज्ञानमलावच्छन्नं] અજ્ઞાનરૂપી મેલથી ખરડાયું—વ્યાપ્ત થયું [ज्ञानं भवति] જ્ઞાન તિરોભૂત થાય છે [ज्ञातव्यम्] એમ જાણવું. [यथा] જેમ [वस्त्रस्य] વસ્ત્રનો [श्वेतभावः] શ્વેતભાવ [मलमेलनासक्तः] મેલના મળવાથી ખરડાયો થકો [नश्यति] નાશ પામે છે—તિરોભૂત થાય છે, [तथा] તેવી રીતે [कषायमलावच्छन्नं] કષાયરૂપી મેલથી ખરડાયું—વ્યાપ્ત થયું [चारित्रम् अपि] ચારિત્ર પણ તિરોભૂત થાય છે [ज्ञातव्यम्] એમ જાણવું.

ટીકાઃ—[illegible]

[illegible]

સ્વરૂપ મેલથી વ્યાપ્ત થયેલો શ્વેત વસ્ત્રના સ્વભાવભૂત શ્વેતસ્વભાવ તિરોભૂત થાય છે તેમ. જ્ઞાનનું ચારિત્ર કે જે મોક્ષના કારણરૂપ સ્વભાવ છે તે, પરભાવસ્વરૂપ કષાય નામના કર્મમળ વડે વ્યાપ્ત થવાથી તિરોભૂત થાય છે—જેમ પરભાવસ્વરૂપ મેલથી વ્યાપ્ત થયેલો શ્વેત વસ્ત્રના સ્વભાવભૂત શ્વેત સ્વભાવ તિરોભૂત થાય છે તેમ. માટે મોક્ષના કારણનું (-સમ્યગ્દર્શન, જ્ઞાન અને ચારિત્રનું-) તિરોધાન કરતું હોવાથી કર્મને નિષેધવામાં આવ્યું છે.

ભાવાર્થ:—સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર મોક્ષમાર્ગ છે. જ્ઞાનનું સમ્યક્ત્વરૂપ પરિણમન મિથ્યાત્વકર્મથી તિરોભૂત થાય છે; જ્ઞાનનું જ્ઞાનરૂપ પરિણમન અજ્ઞાનકર્મથી તિરોભૂત થાય છે; અને જ્ઞાનનું ચારિત્રરૂપ પરિણમન કષાયકર્મથી તિરોભૂત થાય છે. આ રીતે મોક્ષના કારણભાવોને કર્મ તિરોભૂત કરતું હોવાથી તેનો નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે. ૧૫૭-૧૫૯.

હવે, કર્મ પોતે જ બંધસ્વરૂપ છે એમ સિદ્ધ કરે છેઃ—

सो सव्वणाणदरिसी कम्मरएण णियेणवच्छण्णो ।
संसारसमावण्णो ण विजाणदि सव्वदो सव्वं ॥ १६० ॥

स सर्वज्ञानदर्शी कर्मरजसा निजेनावच्छन्नः ।
संसारसमापन्नो न विजानाति सर्वतः सर्वम् ॥ १६० ॥

અન્વયાર્થ:—[सः] તે આત્મા [सर्वज्ञानदर्शी] (સ્વભાવથી) સર્વને જાણનારો તથા દેખનારો છે તોપણ [निजेन कर्मरजसा] પોતાના કર્મમળથી [अवच्छन्नः] ખરડાયો—વ્યાપ્ત થયો—થકો [संसारसमापन्नः] સંસારને પ્રાપ્ત થયેલો તે [सर्वतः] સર્વ પ્રકારે [सर्वं] સર્વને [न विजानाति] જાણતો નથી.

ટીકા:—જે પોતે જ જ્ઞાન હોવાને લીધે વિશ્વને (-સર્વ પદાર્થોને) સામાન્ય-વિશેષપણે જાણવાના સ્વભાવવાળું છે એવું જ્ઞાન અર્થાત્ આત્મદ્રવ્ય, અનાદિ કાળથી પોતાના પુરુષાર્થના અપરાધથી પ્રવર્તતા એવા કર્મમળ વડે લેપાયું-વ્યાપ્ત થયું-હોવાથી જ, બંધ-અવસ્થામાં સર્વ પ્રકારે સંપૂર્ણ એવા પોતાને અર્થાત્ સર્વ પ્રકારે સર્વ જ્ઞેયોને જાણનારા એવા પોતાને નહિ જાણતું થયું, આ પ્રમાણે પ્રત્યક્ષ અજ્ઞાનભાવે

તે સર્વજ્ઞાની-દર્શી પણ નિજ કર્મરજ-આચ્છાદને,
સંસારપ્રાપ્ત ન જાણતો તે સર્વ રીતે સર્વને. ૧૬૦.

चारित्रप्रतिनिबद्धः कषायो जिनवरैः परिकथितः ।
तस्योदयेन जीवोऽचारित्रो भवति ज्ञातव्यः ॥ १६३ ॥

અન્વયાર્થ:—[सम्यक्त्वप्रतिनिबद्धं] સમ્યક્ત્વને રોકનારું [मिथ्यात्वं] મિ-
એમ [जिनवरैः] જિનવરોએ [परिकथितं] કહ્યું છે; [तस्य उदयेन] તેના
जीवः] જીવ [मिथ्यादृष्टिः] મિથ્યાદૃષ્ટિ થાય છે [इति ज्ञातव्यः] એમ
ज्ञानस्य प्रतिनिबद्धं] જ્ઞાનને રોકનારું [अज्ञानं] અજ્ઞાન છે એમ [जिनवरैः]
[परिकथितं] કહ્યું છે; [तस्य उदयेन] તેના ઉદયથી [जीवः] જીવ
અજ્ઞાની [भवति] થાય છે [ज्ञातव्यः] એમ જાણવું. [चारित्रप्रतिनिबद्धः]
કનાર [कषायः] કષાય છે એમ [जिनवरैः] જિનવરોએ [परिकथितः]
तस्य उदयेन] તેના ઉદયથી [जीवः] જીવ [अचारित्रः] અચારિત્રી
થાય છે [ज्ञातव्यः] એમ જાણવું.

ટીકા:—સમ્યક્ત્વ કે જે મોક્ષના કારણરૂપ સ્વભાવ છે તેને રોકનારું મિથ્યાત્વ
થ્યાત્વ) તો પોતે કર્મ જ છે, તેના ઉદયથી જ જ્ઞાનને મિથ્યાદૃષ્ટિપણું થાય
જે મોક્ષના કારણરૂપ સ્વભાવ છે તેને રોકનારું અજ્ઞાન છે; તે તો પોતે કર્મ
ા ઉદયથી જ જ્ઞાનને અજ્ઞાનીપણું થાય છે. ચારિત્ર કે જે મોક્ષના કારણરૂપ
તેને રોકનાર કષાય છે; તે તો પોતે કર્મ જ છે, તેના ઉદયથી જ જ્ઞાનને
ણું થાય છે. માટે, (કર્મ) પોતે મોક્ષના કારણના તિરોધાયિભાવસ્વરૂપ
ને નિષેધવામાં આવ્યું છે.

ભાવાર્થ:—સમ્યગ્દર્શન, જ્ઞાન અને ચારિત્ર મોક્ષના કારણરૂપ ભાવો છે
વિપરીત મિથ્યાત્વાદિ ભાવો છે; કર્મ તે મિથ્યાત્વાદિ ભાવો-સ્વરૂપ છે. આ
મોક્ષના કારણભૂત ભાવોથી વિપરીત ભાવોસ્વરૂપ છે.

હેલાં ત્રણ ગાથાઓમાં કહ્યું હતું કે કર્મ મોક્ષના કારણરૂપ ભાવોનું—સમ્યક્-
ાતક છે. પછીની એક ગાથામાં એમ કહ્યું કે કર્મ પોતે જ બંધસ્વરૂપ છે.
ત્રણ ગાથાઓમાં કહ્યું કે કર્મ મોક્ષના કારણરૂપ ભાવોથી વિરોધી ભાવો-
મિથ્યાત્વાદિસ્વરૂપ છે. આ પ્રમાણે એમ બતાવ્યું કે કર્મ મોક્ષના કારણનું
ંધસ્વરૂપ છે અને બંધના કારણસ્વરૂપ છે, માટે નિષિદ્ધ છે.

અશુભ કર્મ તો મોક્ષનું કારણ છે જ નહિ, બાધક જ છે, તેથી નિષિદ્ધ જ
ુભ કર્મ પણ કર્મસામાન્યમાં આવી જતું હોવાથી તે પણ બાધક જ છે
જ છે એમ જાણવું.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છેઃ—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

संन्यस्तव्यमिदं समस्तमपि तत्कर्मैव मोक्षार्थिना
संन्यस्ते सति तत्र का किल कथा पुण्यस्य पापस्य वा।
सम्यक्त्वादिनिजस्वभावभवनान्मोक्षस्य हेतुर्भव-
न्नैष्कर्म्यप्रतिबद्धमुद्धतरसं ज्ञानं स्वयं धावति ॥१०९॥

અર્થઃ—મોક્ષાર્થીએ આ સઘળુંય કર્મમાત્ર ત્યાગવા યોગ્ય છે. જ્યાં કર્મ છોડવામાં આવે છે ત્યાં પછી પુણ્ય કે પાપની શી વાત? (કર્મમાત્ર ત્યાં પુણ્ય સારું અને પાપ ખરાબ—એવી વાતને ક્યાં અવકાશ છે? કર્મ બન્ને આવી ગયાં.) સમસ્ત કર્મનો ત્યાગ થતાં, સમ્યક્ત્વાદિ જે પોતાને તે-રૂપે થવાથી—પરિણમવાથી મોક્ષના કારણભૂત થતું, નિષ્કર્મ અવસ્થા ઉદ્ધત (-ઉત્કટ) રસ પ્રતિબદ્ધ અર્થાત્ સંકળાયેલો છે એવું જ્ઞાન આપોઆપ આવે છે.

ભાવાર્થઃ—કર્મને દૂર કરીને, પોતાના સમ્યક્ત્વાદિસ્વભાવરૂપે પરિ મોક્ષના કારણરૂપ થતું જ્ઞાન આપોઆપ પ્રગટ થાય છે, ત્યાં પછી તેને કોણ

હવે આશંકા ઉપજે છે કે—અવિરત સમ્યગ્દષ્ટિ વગેરેને જ્યાંસુધી ઉદય રહે ત્યાંસુધી જ્ઞાન મોક્ષનું કારણ કેમ થઈ શકે? વળી કર્મ અને જ્ઞા (–કર્મના નિમિત્તે થતી શુભાશુભ પરિણતિ અને જ્ઞાનપરિણતિ બન્ને–) એ રહી શકે? તે આશંકાના સમાધાનનું કાવ્ય કહે છેઃ—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

यावत्पाकमुपैति कर्मविरतिर्ज्ञानस्य सम्यङ् न सा
कर्मज्ञानसमुच्चयोऽपि विहितस्तावन्न काचित्क्षतिः ।
किंत्वत्रापि समुल्लसत्यवशतो यत्कर्म बंधाय त-
न्मोक्षाय स्थितमेकमेव परमं ज्ञानं विमुक्तं स्वतः ॥ ११० ॥

અર્થઃ—જ્યાંસુધી જ્ઞાનની કર્મવિરતિ બરાબર પરિપૂર્ણતા પામતી ત્યાંસુધી કર્મ અને જ્ઞાનનું એકઠાપણું શાસ્ત્રમાં કહ્યું છે; તેમના એકઠા રહેવામાં પણ ક્ષતિ અર્થાત્ વિરોધ નથી. પરંતુ અહીં એટલું વિશેષ જાણવું કે

જે (-જબરદસ્તીથી) જે કર્મ પ્રગટ થાય છે અર્થાત્ ઉદય થાય છે તે તો બંધનું થાય છે, અને મોક્ષનું કારણ તો, જે એક પરમ જ્ઞાન છે તે એક જ થાય છે— જ્ઞાન સ્વતઃ વિમુક્ત છે (અર્થાત્ ત્રણે કાળે પરદ્રવ્ય-ભાવોથી ભિન્ન છે).

ભાવાર્થઃ—જ્યાંસુધી યથાખ્યાત ચારિત્ર થતું નથી ત્યાંસુધી સમ્યગ્દૃષ્ટિને બે રહે છે— શુભાશુભ કર્મધારા અને જ્ઞાનધારા. તે બન્ને સાથે રહેવામાં કાંઈ પણ નથી. તે સ્થિતિમાં કર્મ પોતાનું કાર્ય કરે છે અને જ્ઞાન પોતાનું કાર્ય કરે છે. અંશે શુભાશુભ કર્મધારા છે તેટલા અંશે કર્મબંધ થાય છે અને જેટલા અંશે ધારા છે તેટલા અંશે કર્મનો નાશ થતો જાય છે. વિષય-કષાયના વિકલ્પો કે વ્રત-નાં વિકલ્પો—શુદ્ધ સ્વરૂપનો વિચાર સુદ્ધાં—કર્મબંધનું કારણ છે; શુદ્ધ પરિણતિ જ્ઞાનધારા જ મોક્ષનું કારણ છે.

હવે કર્મ અને જ્ઞાનનો નયવિભાગ બતાવે છેઃ—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

मग्नाः कर्मनयावलंबनपरा ज्ञानं न जानंति यन्
मग्ना ज्ञाननयैषिणोऽपि यदतिस्वच्छंदमंदोद्यमाः ।
विश्वस्योपरि ते तरंति सततं ज्ञानं भवंतः स्वयं
ये कुर्वंति न कर्म जातु न वशं यांति प्रमादस्य च ॥ १११ ॥

અર્થઃ—કર્મનયના આલંબનમાં તત્પર (અર્થાત્ કર્મનયના પક્ષપાતી) જીવો ડૂબેલા છે કારણ કે તેઓ જ્ઞાનને જાણતા નથી. જ્ઞાનનયના ઇચ્છક (અર્થાત્ પક્ષપાતી) પુરુષો પણ ડૂબેલા છે કારણ કે તેઓ સ્વચ્છંદથી અતિ મંદ-ઉદ્યમી છે (સ્વરૂપપ્રાપ્તિનો પુરુષાર્થ કરતા નથી, પ્રમાદી છે અને વિષયકષાયમાં વર્તે છે). તે જીવો વિશ્વના ઉપર તરે છે કે જેઓ પોતે નિરંતર જ્ઞાનરૂપ થતા—પરિણમતા થકા કર્મ કરતા નથી અને કદાપિ પ્રમાદને વશ પણ થતા નથી (-સ્વરૂપમાં ઉદ્યમી રહે છે).

ભાવાર્થઃ—અહીં સર્વથા એકાંત અભિપ્રાયનો નિષેધ કર્યો છે કારણ કે સર્વથા એકાંત અભિપ્રાય જ મિથ્યાત્વ છે.

કેટલાક લોકો પરમાર્થભૂત જ્ઞાનસ્વરૂપ આત્માને તો જાણતા નથી અને વ્યવહાર દર્શનજ્ઞાનચારિત્રરૂપ ક્રિયાકાંડના આડંબરને મોક્ષનું કારણ જાણી તેમાં તત્પર રહે છે—તેનો પક્ષપાત કરે છે. આવા કર્મનયના પક્ષપાતી લોકો—જેઓ જ્ઞાનને તો જાણતા નથી અને કર્મનયમાં જ ખેદખિન્ન છે તેઓ—સંસારમાં ડૂબે છે.

વળી કેટલાક લોકો આત્મસ્વરૂપને યથાર્થ જાણતા નથી અને સર્વથા એકાંતવાદી મિથ્યાદૃષ્ટિઓના ઉપદેશથી અથવા પોતાની મેળે જ અંતરંગમાં જ્ઞાનનું સ્વરૂપ ખોટી રીતે કલ્પી તેમાં પક્ષપાત કરે છે. પોતાની પરિણતિમાં જરાય ફેર પાડ્યા વિના તેઓ પોતાને સર્વથા અબંધ માને છે અને વ્યવહાર દર્શનજ્ઞાનચારિત્રના ક્રિયાકાંડને નિરર્થક જાણી છોડી દે છે. આવા જ્ઞાનનયના પક્ષપાતી લોકો જેઓ સ્વરૂપનો પુરુષાર્થ કરતા નથી અને શુભ પરિણામોને છોડી સ્વચ્છંદી થઈ વિષય-કષાયમાં વર્તે છે તેઓ પણ સંસારસમુદ્રમાં ડૂબે છે.

મોક્ષમાર્ગી જીવો જ્ઞાનરૂપે પરિણમતા થકા શુભાશુભ કર્મને હેય જાણે છે અને શુદ્ધ પરિણતિને જ ઉપાદેય જાણે છે. તેઓ માત્ર અશુભ કર્મને જ નહિ પણ શુભ કર્મને પણ છોડી, સ્વરૂપમાં સ્થિર થવાને નિરંતર ઉદ્યમવંત છે—સંપૂર્ણ સ્વરૂપસ્થિરતા થતાં સુધી તેનો પુરુષાર્થ કર્યા જ કરે છે. જ્યાંસુધી, પુરુષાર્થની અપૂર્ણતાને લીધે, શુભાશુભ પરિણામોથી છૂટી સ્વરૂપમાં સંપૂર્ણપણે ટકી શકાતું નથી ત્યાંસુધી—જોકે સ્વરૂપસ્થિરતાનું અંતર્-આલંબન તો શુદ્ધ પરિણતિ પોતે જ છે તોપણ—આલંબન લેનારને જેઓ બાહ્ય આલંબનરૂપ થાય છે એવા (શુદ્ધ સ્વરૂપના વિચાર આદિ) શુભ પરિણામોમાં તે જીવો હેયબુદ્ધિએ પ્રવર્તે છે, પરંતુ શુભ કર્મોને નિરર્થક ગણી છોડી દઈને સ્વચ્છંદપણે અશુભ કર્મોમાં પ્રવર્તવાની બુદ્ધિ તેમને કદી થતી નથી. આવા જીવો—જેઓ એકાંત અભિપ્રાય રહિત છે તેઓ—કર્મનો નાશ કરી સંસારથી નિવૃત્ત થાય છે.

હવે પુણ્ય-પાપ અધિકારને પૂર્ણ કરતાં આચાર્યદેવ જ્ઞાનનો મહિમા કરે છે:—

(મંદાક્રાંતા)

मदोन्मादं भ्रमरसभराम्नाटयत्पीतमोहं
मूलोन्मूलं सकलमपि तत्कर्म कृत्वा बलेन।
हेलोन्मीलत्परमकलया सार्धमारब्धकेलि
ज्ञानज्योतिः कवलिततमः प्रोज्जजृम्भे भरेण ॥११२॥

અર્થ:—મોહરૂપી મદિરા પીધો હોવાથી જે ભ્રમના રસના ભારથી (અતિશયપણાથી) શુભાશુભ કર્મના ભેદરૂપી ઉન્માદને (ગાંડપણને) નચાવે છે એવા સમસ્ત કર્મને પોતાના બળ વડે મૂળથી ઉખેડી નાખીને જ્ઞાનજ્યોતિ અત્યંત સામર્થ્ય સહિત પ્રગટ થઈ. કેવી છે તે જ્ઞાનજ્યોતિ? જે અજ્ઞાનરૂપી અંધકારને કોળિયો કરી ગઈ છે અર્થાત્ જેણે અજ્ઞાનરૂપી અંધકારનો નાશ કર્યો છે, જે લીલા

પુરુષાર્થથી) ઉઘડતી—વિકસતી જાય છે અને જેણે પરમ કળા અર્થાત્
પ ક્રીડા શરૂ કરી છે એવી તે જ્ઞાનજ્યોતિ છે.

ભાવાર્થઃ—પોતાને (જ્ઞાનજ્યોતિને) પ્રતિબંધક કર્મ કે જે શુભ અને
એવા બેરૂપ થઈને નાચતું હતું અને જ્ઞાનને ભુલાવી દેતું હતું તેને પોતાની
ઉખેડી નાખીને જ્ઞાનજ્યોતિ સંપૂર્ણ સામર્થ્ય સહિત પ્રકાશિત થઈ. આ
અથવા જ્ઞાનકળા કેવળજ્ઞાનરૂપી પરમકળાનો અંશ છે અને કેવળજ્ઞાનના
સ્વરૂપને તે જાણે છે તેમ જ તે તરફ પ્રગતિ કરે છે, તેથી એમ કહ્યું છે કે
જ્યોતિએ કેવળજ્ઞાન સાથે ક્રીડા માંડી છે." જ્ઞાનકળા સહજપણે વિકાસ પામતી
અને છેવટે પરમકળા અર્થાત્ કેવળજ્ઞાન થઈ જાય છે.

ટીકાઃ—પુણ્ય-પાપરૂપ બે પાત્રરૂપ થયેલું કર્મ એક પાત્રરૂપ થઈને (રંગ-
ભૂમિમાંથી) બહાર નીકળી ગયું.

ભાવાર્થઃ—કર્મ સામાન્યપણે એક જ છે તોપણ તેણે પુણ્ય-પાપરૂપી બે
પાત્રોનો સ્વાંગ ધારણ કરીને રંગભૂમિમાં પ્રવેશ કર્યો હતો. તેને જ્ઞાને યથાર્થપણે એક
જાણી લીધું ત્યારે તે એક પાત્રરૂપ થઈને રંગભૂમિમાંથી બહાર નીકળી ગયું, નૃત્ય
કરતું અટકી ગયું. ૧૬૧—૧૬૩.

આસ્રવ, કારણ, રૂપ, સવાદસું ભેદ વિચારી ગિને દોઊ ન્યારે,
પુણ્ય રુ પાપ શુભાશુભભાવનિ બંધ ભયે સુખદુઃખકરા રે;
જ્ઞાન ભયે દોઊ એક લખે બુધ આસ્રવ આદિ સમાન વિચારે,
બંધકે કારણ હૈં દોઊ રૂપ, ઇન્હૈં તજિ જિનમુનિ મોક્ષ પધારે.

આમ આ સમયસારગ્રંથની આત્મખ્યાતિ નામની ટીકાની પંડિત જયચંદ્રજીકૃત
ભાષાવચનિકામાં ત્રીજો પુણ્ય-પાપ અધિકાર પૂર્ણ થયો.



ટીકા:—આ જીવમાં રાગ, દ્વેષ અને મોહ—એ આસ્રવો છે. ... નિમિત્તે થાય છે માટે તેઓ જડ નહિ હોવાથી ચિદાભાસ છે (—જેમાં ... ભાસ છે એવા છે, ચિદ્વિકાર છે).

મિથ્યાત્વ, અવિરતિ, કષાય અને યોગ—એ પુદ્‌ગલપરિણામો, ... પુદ્‌ગલકર્મના આસ્રવણનાં (—આવવાનાં) નિમિત્ત હોવાથી, ખરેખર ... છે; અને તેમને (મિથ્યાત્વાદિ પુદ્‌ગલપરિણામોને) કર્મ-આસ્રવણના ... નિમિત્ત રાગદ્વેષમોહ છે—કે જેઓ અજ્ઞાનમય આત્મપરિણામો છે. માટે (... પુદ્‌ગલપરિણામોને) આસ્રવણના નિમિત્તપણાના નિમિત્તભૂત હોવાથી રાગ... આસ્રવો છે. અને તે તો (—રાગદ્વેષમોહ તો) અજ્ઞાનીને જ હોય છે એમ ... જ નીકળે છે. (ગાથામાં સ્પષ્ટ શબ્દોમાં કહ્યું નથી તોપણ ગાથાના જ ... આશય નીકળે છે.)

ભાવાર્થ:—જ્ઞાનાવરણાદિ કર્મોના આસ્રવણનું (—આગમનનું) ... મિથ્યાત્વાદિકર્મના ઉદયરૂપ પુદ્‌ગલનાં પરિણામ છે, માટે તે ખરેખર આસ્ર... તેમને કર્મ-આસ્રવણના નિમિત્તભૂત થવાનું નિમિત્ત જીવનાં રાગદ્વેષમોહ... મય) પરિણામ છે માટે રાગદ્વેષમોહ જ આસ્રવો છે. તે રાગદ્વેષમોહને ચિ... કહેવામાં આવે છે. તે રાગદ્વેષમોહ જીવને અજ્ઞાન-અવસ્થામાં જ હોય છે... સહિત જ્ઞાન જ અજ્ઞાન કહેવાય છે. માટે મિથ્યાદૃષ્ટિને અર્થાત્ અજ્ઞાનીને ... મોહરૂપી આસ્રવો હોય છે. ૧૬૪—૧૬૫.

હવે જ્ઞાનીને તે આસ્રવોનો (ભાવાસ્રવોનો) અભાવ છે એમ ...

णत्थि दु आसवबंधो सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो ।
संते पुव्वणिबद्धे जाणदि सो ते अबंधंतो ॥ १६६ ॥

नास्ति त्वास्रवबंधः सम्यग्दृष्टेरास्रवनिरोधः ।
संति पूर्वनिबद्धानि जानाति स तान्यबध्नन् ॥ १६६ ॥

અન્વયાર્થ:—[सम्यग्दृष्टेः तु] સમ્યગ્દૃષ્ટિને [आस्रवबंधः] આ... નિમિત્ત છે એવો બંધ [नास्ति] નથી, [आस्रवनिरोधः] (કારણ ...)

સુદૃષ્ટિને આસ્રવનિમિત્ત ન બંધ, આસ્રવરોધ છે;
નહિ બાંધતો, જાણે જ પૂર્વનિબદ્ધ જે સત્તા વિષે. ...

(ાવાસ્રવનો) નિરોધ છે; [नापि] નવાં કર્મોને [अबध्नन्] નહિ બાંધતો [सः] તે, તિ] સત્તામાં રહેલાં [पूर्वनिबद्धानि] પૂર્વે બંધાયેલાં કર્મોને [जानाति] જાણે જ છે.

ટીકા:—ખરેખર જ્ઞાનીને જ્ઞાનમય ભાવો વડે અજ્ઞાનમય ભાવો અવશ્યમેવ ધાય છે—રોકાય છે—અભાવરૂપ થાય છે (કારણ કે પરસ્પર વિરોધી ભાવો સાથે શકે નહિ); તેથી અજ્ઞાનમય ભાવોરૂપ રાગ-દ્વેષ-મોહ—કે જેઓ આસ્રવભૂત સ્રવસ્વરૂપ) છે—તેમનો નિરોધ હોવાથી, જ્ઞાનીને આસ્રવનો નિરોધ હોય જ છે. જ્ઞાની, આસ્રવો જેમનું નિમિત્ત છે એવાં (જ્ઞાનાવરણાદિ) પુદ્ગલકર્મોને બાંધતો ;—સદાય અકર્તાપણું હોવાથી નવાં કર્મો નહિ બાંધતો થકો સત્તામાં રહેલાં પૂર્વ-કર્મોને, પોતે જ્ઞાનસ્વભાવવાળો હોઈને, કેવળ જાણે જ છે. (જ્ઞાનીનો જ્ઞાન જ ભાવ છે, કર્તાપણું સ્વભાવ નથી; કર્તાપણું હોય તો કર્મ બાંધે, જ્ઞાતાપણું હોવાથી બાંધતો નથી.)

ભાવાર્થ:—જ્ઞાનીને અજ્ઞાનમય ભાવો હોતા નથી, અજ્ઞાનમય ભાવો નહિ થી (અજ્ઞાનમય) રાગદ્વેષમોહ અર્થાત્ આસ્રવો હોતા નથી અને આસ્રવો નહિ થી નવો બંધ થતો નથી. આ રીતે જ્ઞાની સદાય અકર્તા હોવાથી નવાં કર્મ બાંધતો અને પૂર્વે બંધાયેલાં જે કર્મો સત્તામાં રહ્યાં છે તેમનો જ્ઞાતા જ રહે છે.

અવિરતસમ્યગ્દ્રષ્ટિને પણ અજ્ઞાનમય રાગદ્વેષમોહ હોતા નથી. મિથ્યાત્વ સહિત દિક હોય તે જ અજ્ઞાનના પક્ષમાં ગણાય છે, સમ્યક્ત્વ સહિત રાગાદિક અજ્ઞાનના માં નથી. સમ્યગ્દ્રષ્ટિને નિરંતર જ્ઞાનમય પરિણમન જ હોય છે. તેને ચારિત્રમોહના ની બળજોરીથી જે રાગાદિક થાય છે તેનું સ્વામીપણું તેને નથી; તે રાગાદિકને સમાન જાણીને પ્રવર્તે છે અને પોતાની શક્તિ અનુસાર તેમને કાપતો જાય છે. જ્ઞાનીને જે રાગાદિક હોય છે તે વિદ્યમાન છતાં અવિદ્યમાન જેવાં છે; તેઓ ામી સામાન્ય સંસારનો બંધ કરતાં નથી, માત્ર અલ્પ સ્થિતિ-અનુભાગવાળો બંધ છે. આવા અલ્પ બંધને અહીં ગણવામાં આવ્યો નથી.

આ રીતે જ્ઞાનીને આસ્રવ નહિ હોવાથી બંધ થતો નથી. ૧૬૬.

હવે, રાગદ્વેષમોહ જ આસ્રવ છે એવો નિયમ કરે છે.—

भावो रागादिजुदो जीवेण कदो दु बंधगो भणिदो ।
रागादिविप्पमुक्को अबंधगो जाणगो णवरि ॥ १६७ ॥

રાગાદિયુત જે ભાવ જીવકૃત તેહને બંધક કહ્યો;
રાગાદિથી પ્રવિમુક્ત તે બંધક નહિ, જ્ઞાયક નર્યો. ૧૬૭.

भावो रागादियुतो जीवेन कृतस्तु बंधको भणितः ।
रागादिविप्रमुक्तोऽबंधको ज्ञायकः केवलम् ॥ १६७ ॥

અન્વયાર્થઃ—[जीवेन कृतः] જીવે કરેલો [रागादियुतः] રાગાદિયુક્ત [भावः तु] ભાવ [बंधकः भणितः] બંધક (અર્થાત્ નવાં કર્મનો બંધ કરનાર) કહેવામાં આવ્યો છે. [रागादिविप्रमुक्तः] રાગાદિથી વિમુક્ત ભાવ [अबंधकः] બંધક નથી, [केवलं ज्ञायकः] તે તો માત્ર જ્ઞાયક જ છે.

ટીકાઃ—ખરેખર, જેમ લોહચુંબક-પાષાણ સાથે સંસર્ગથી (લોખંડની સોયમાં) ઉત્પન્ન થયેલો ભાવ લોખંડની સોયને (ગતિ કરવાને) પ્રેરે છે, તેમ રાગદ્વેષમોહ સાથે મેળાપથી (આત્મામાં) ઉત્પન્ન થયેલો અજ્ઞાનમય ભાવ આત્માને કર્મ કરવાને પ્રેરે છે, અને જેમ લોહચુંબક-પાષાણ સાથે અસંસર્ગથી (લોખંડની સોયમાં) ઉત્પન્ન થયેલો ભાવ લોખંડની સોયને (ગતિ નહિ કરાવતો) સ્વભાવમાં જ રાખે છે તેમ રાગદ્વેષમોહ સાથે અમેળાપથી (આત્મામાં) ઉત્પન્ન થયેલો જ્ઞાનમય ભાવ, જેને કર્મ કરવાની ઉત્સુકતા નથી (અર્થાત્ કર્મ કરવાનો જેનો સ્વભાવ નથી) એવા આત્માને સ્વભાવમાં જ રાખે છે; માટે રાગાદિક સાથે મિશ્રિત (-ભેળસેળ) અજ્ઞાનમય ભાવ જ કર્તૃત્વમાં પ્રેરતો હોવાથી બંધક છે અને રાગાદિ સાથે અમિશ્રિત ભાવ સ્વભાવનો પ્રકાશક (પ્રગટ કરનાર) હોવાથી કેવળ જ્ઞાયક જ છે, જરા પણ બંધક નથી.

ભાવાર્થ.—રાગાદિક સાથે ભળેલો અજ્ઞાનમય ભાવ જ બંધનો કર્તા છે અને રાગાદિક સાથે નહિ ભળેલો જ્ઞાનમય ભાવ બંધનો કરનાર નથી—એ નિયમ છે.

હવે રાગાદિ સાથે નહિ ભળેલા ભાવની ઉત્પત્તિ બતાવે છેઃ—

पक्के फलम्हि पडिए जह ण फलं बज्झए पुणो विंटे ।
जीवस्स कम्मभावे पडिए ण पुणोदयमुवेई ॥ १६८ ॥

पक्वे फले पतिते यथा न फलं बध्यते पुनर्वृन्तैः ।
जीवस्य कर्मभावे पतिते न पुनरुदयमुपैति ॥ १६८ ॥

ફળ પક્વ ખરતાં, વૃંત સહ સંબંધ ફરી પામે નહિ,
ત્યમ કર્મભાવ ખર્યે, ફરી જીવમાં ઉદય પામે નહિ.

અન્વયાર્થ:—[यथा] જેમ [पक्के फले] પાકું ફળ [पतिते] ખરી પડતાં ઃ] ફરીને [फलं] ફળ [वृंतैः] ડીંટા સાથે [न बध्यते] જોડાતું નથી, તેમ स्य] જીવને [कर्मभावे] કર્મભાવ [पतिते] ખરી જતાં (અર્થાત્ છૂટો થતાં) ઃ] ફરીને [उदयं न उपैति] ઉત્પન્ન થતો નથી (અર્થાત્ જીવ સાથે જોડાતો નથી).

ટીકા:—જેમ પાકું ફળ ડીંટાથી એકવાર છૂટું પડ્યું થકું ફરીને ડીંટા સાથે ધ પામતું નથી, તેમ કર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન થતો ભાવ જીવભાવથી એકવાર છૂટો થકો ફરીને જીવભાવને પામતો નથી. આ રીતે જ્ઞાનમય એવો, રાગાદિક સાથે મળેલો ભાવ ઉત્પન્ન થાય છે.

ભાવાર્થ:—જો જ્ઞાન એકવાર (અપ્રતિપાતી ભાવે) રાગાદિકથી જુદું પરિણમે રીને તે ફરી રાગાદિક સાથે ભેળસેળ થઈ જતું નથી. આ રીતે ઉત્પન્ન થયેલો, દિક સાથે નહિ મળેલો જ્ઞાનમય ભાવ સદાકાળ રહે છે. પછી જીવ અસ્થિરતારૂપે દિકમાં જોડાય તે નિશ્ચયદૃષ્ટિમાં જોડાણ છે જ નહિ અને તેને જે અલ્પ બંધ થાય ણ નિશ્ચયદૃષ્ટિમાં બંધ છે જ નહિ, કારણ કે અબદ્ધસ્પૃષ્ટરૂપે પરિણમન નિરંતર જ કરે છે. વળી તેને મિથ્યાત્વની સાથે રહેનારી પ્રકૃતિઓનો બંધ થતો નથી અન્ય પ્રકૃતિઓ સામાન્ય સંસારનું કારણ નથી; મૂળથી કપાયેલા વૃક્ષનાં લીલાં ં જેવી તે પ્રકૃતિઓ શીઘ્ર સુકાવાયોગ્ય છે.

હવે, 'જે જ્ઞાનમય ભાવ છે તે જ ભાવાસ્રવનો અભાવ છે' એવા અર્થનું રૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(શાલિની)

भावो रागद्वेषमोहैर्विना यो
जीवस्य स्याद् ज्ञाननिर्वृत्त एव ।
रुंधन् सर्वान् द्रव्यकर्मास्रवौघान्
एषोऽभावः सर्वभावास्रवाणाम् ॥ ११४ ॥

અર્થ:—જીવને જે રાગદ્વેષમોહ વગરનો, જ્ઞાનથી જ રચાયેલો ભાવ છે અને ર્વ દ્રવ્યકર્મના આસ્રવના ઘોકને (અર્થાત્ જથ્થાબંધ દ્રવ્યકર્મના પ્રવાહને) રોક- છે, તે (જ્ઞાનમય) ભાવ સર્વ ભાવાસ્રવના અભાવસ્વરૂપ છે.

ભાવાર્થ:—મિથ્યાત્વ રહિત ભાવ જ્ઞાનમય છે. તે જ્ઞાનમય ભાવ રાગદ્વેષમોહ નો છે અને દ્રવ્યકર્મના પ્રવાહને રોકનારો છે; તેથી તે ભાવ જ ભાવ-આસ્રવના ાવસ્વરૂપ છે.

અજ્ઞાનનું [illegible] મિથ્યાત્વ જ છે; તેથી મિથ્યાત્વ [illegible] બંધ. અહીં આસ્રવનો અભાવ થયો એમ અહીં [illegible] ૧૧૮.

હવે, જ્ઞાનીને દ્રવ્યાસ્રવનો અભાવ છે એમ કહે છે:—

पुढवीपिंडसमाणा पुव्वणिबद्धा दु [illegible]
[illegible] दु ते बद्धा [illegible] णाणिस्स ॥ [illegible]

[illegible]

[illegible]

અન્વયાર્થ:—[illegible]

[illegible]

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છેઃ—

(ઉપજાતિ)

भावास्रवाभावमयं प्रपन्नो
द्रव्यास्रवेभ्यः स्वत एव भिन्नः ।
ज्ञानी सदा ज्ञानमयैकभावो
निरास्रवो ज्ञायक एक एव ॥ ११५ ॥

અર્થઃ—ભાવાસ્રવોના અભાવને પામેલો અને દ્રવ્યાસ્રવોથી તો સ્વભાવથી
જ એવો જ્ઞાની—કે જે સદા એક જ્ઞાનમય ભાવવાળો છે તે—નિરાસ્રવ જ છે,
એક જ્ઞાયક જ છે.

ભાવાર્થઃ—રાગદ્વેષમોહસ્વરૂપ ભાવાસ્રવનો જ્ઞાનીને અભાવ થયો છે અને
વથી તો તે સદાય સ્વયમેવ ભિન્ન જ છે કારણ કે દ્રવ્યાસ્રવ પુદ્ગલપરિણામ-
છે અને જ્ઞાની ચૈતન્યસ્વરૂપ છે. આ રીતે જ્ઞાનીને ભાવાસ્રવ તેમ જ દ્રવ્યા-
અભાવ હોવાથી તે નિરાસ્રવ જ છે. ૧૧૫.

હવે પૂછે છે કે જ્ઞાની નિરાસ્રવ કઈ રીતે છે? તેના ઉત્તરની ગાથા કહે છેઃ—

चउविह अणेयभेयं बंधंते णाणदंसणगुणेहिं ।
समए समए जह्मा तेण अबंधोत्ति णाणी दु ॥ १७० ॥

चतुर्विधा अनेकभेदं बध्नंति ज्ञानदर्शनगुणाभ्याम् ।
समये समये यस्मात् तेनाबंध इति ज्ञानी तु ॥ १७० ॥

અન્વયાર્થઃ—[यस्मात्] કારણ કે [चतुर्विधाः] ચાર પ્રકારના દ્રવ્યાસ્રવો
र्शनगुणाभ्याम्] જ્ઞાનદર્શનગુણો વડે [समये समये] સમયે સમયે [अनेकभेदं]
પ્રકારનું કર્મ [बध्नंति] બાંધે છે [तेन] તેથી [ज्ञानी तु] જ્ઞાની તો [अबंधः
અબંધ છે.

ટીકાઃ—પ્રથમ, જ્ઞાની તો આસ્રવભાવની ભાવનાના અભિપ્રાયના અભાવને

ચૌવિધ પ્રત્યય સમયસમયે જ્ઞાનદર્શનગુણથી
બહુભેદ બાંધે કર્મ, તેથી જ્ઞાની તો બંધક નથી. ૧૭૦.

લીધે નિરાસ્રવ જ છે; પરંતુ જે તેને પણ દ્રવ્ય પ્રત્યયો સમય સમય પ્રકારનું પુદ્‌ગલકર્મ બાંધે છે, ત્યાં જ્ઞાનગુણનું પરિણમન કારણ છે. ૧૭૦.

હવે વળી પૂછે છે કે જ્ઞાનગુણનું પરિણમન બંધનું કારણ કઈ રીતે ઉત્તરની ગાથા કહે છે:—

जह्मा दु जहण्णादो णाणगुणादो पुणोवि परिणमदि।
अण्णत्तं णाणगुणो तेण दु सो बंधगो भणिदो ॥ १७१॥

यस्मात्तु जघन्यात् ज्ञानगुणात् पुनरपि परिणमते ।
अन्यत्वं ज्ञानगुणः तेन तु स बंधको भणितः ॥ १७१ ॥

અન્વયાર્થ:—[यस्मात् तु] કારણ કે [ज्ञानगुणः] જ્ઞાનગુણ, [जघन्यात् ज्ञानगुणात्] જઘન્ય જ્ઞાનગુણને લીધે [पुनरपि] ફરીને પણ [अन्यत्वं] [परिणमते] પરિણમે છે, [तेन तु] તેથી [सः] તે (જ્ઞાનગુણ) [बंधकः] બંધક [भणितः] કહેવામાં આવ્યો છે.

ટીકા:—જ્ઞાનગુણનો જ્યાંસુધી જઘન્ય ભાવ છે (—ક્ષાયોપશમિક છે) ત્યાંસુધી તે (જ્ઞાનગુણ) અંતર્મુહૂર્તમાં વિપરિણામ પામતો હોવાથી ફરી ફરી અન્યપણે પરિણમન થાય છે. તે (જ્ઞાનગુણનું જઘન્ય ભાવે પરિણમન), યથાખ્યાત ચારિત્ર-અવસ્થાની નીચે અવશ્યંભાવી રાગનો સદ્‌ભાવ હોવાથી, બંધનું કારણ ...

ભાવાર્થ:—ક્ષયોપશમજ્ઞાન એક જ્ઞેય પર અંતર્મુહૂર્ત જ થંભે છે, પછી અવશ્ય અન્ય જ્ઞેયને અવલંબે છે; સ્વરૂપમાં પણ તે અંતર્મુહૂર્ત જ ટકી શકે છે, પછી વિપરિણામ પામે છે. માટે એમ અનુમાન પણ થઈ શકે છે કે સમ્યગ્દષ્ટિ આત્મા સવિકલ્પ દશામાં હો કે નિર્વિકલ્પ અનુભવદશામાં હો—યથાખ્યાતચારિત્ર-અવસ્થા પહેલાં તેને અવશ્ય રાગભાવનો સદ્‌ભાવ હોય છે; અને રાગ હોવાથી બંધ પણ થાય છે. માટે જ્ઞાનગુણના જઘન્ય ભાવને બંધનો હેતુ કહેવામાં આવ્યો છે. ૧૭૧.

હવે વળી ફરી પૂછે છે કે—જો આમ છે (અર્થાત્ જ્ઞાનગુણનો જઘન્ય ભાવ બંધનું કારણ છે) તો પછી જ્ઞાની નિરાસ્રવ કઈ રીતે છે? તેના ઉત્તરની ગાથા કહે છે:—

જે જ્ઞાનગુણની જઘન્યતામાં વર્તતો ગુણ જ્ઞાનનો,
ફરીફરી પ્રણમનો અન્યરૂપમાં, તેથી તે બંધક કહ્યો. ૧૭૧

… दंसणणाणचरित्तं जं परिणमदे जहण्णभावेण ।
… णाणी तेण दु बज्झदि पुग्गलकम्मेण विविहेण ॥ १७२ ॥

दर्शनज्ञानचारित्रं यत्परिणमते जघन्यभावेन ।
ज्ञानी तेन तु बध्यते पुद्गलकर्मणा विविधेन ॥ १७२ ॥

અન્વયાર્થ:—[यत्] કારણ કે [दर्शनज्ञानचारित्रं] દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર …न्यभावेन] જઘન્ય ભાવે [परिणमते] પરિણમે છે [तेन तु] તેથી [ज्ञानी] જ્ઞાની …विधेन] અનેક પ્રકારના [पुद्गलकर्मणा] પુદ્ગલકર્મથી [बध्यते] બંધાય છે.

ટીકા:—જે ખરેખર જ્ઞાની છે તે, બુદ્ધિપૂર્વક (ઇચ્છાપૂર્વક) રાગદ્વેષમોહરૂપી …ભાવોનો તેને અભાવ હોવાથી, નિરાસ્રવ જ છે. પરંતુ ત્યાં એટલું વિશેષ છે …કે જ્ઞાની જ્યાંસુધી જ્ઞાનને સર્વોત્કૃષ્ટ ભાવે દેખવાને, જાણવાને અને આચરવાને …મ વર્તતો થકો જઘન્ય ભાવે જ જ્ઞાનને દેખે છે, જાણે છે અને આચરે છે ત્યાંસુધી …પણ, જઘન્યભાવની અન્યથા અનુપપત્તિ વડે (અર્થાત્ જઘન્ય ભાવ અન્ય રીતે …બનતો હોવાને લીધે) જેનું અનુમાન થઈ શકે છે એવા અબુદ્ધિપૂર્વક કર્મ- …ના વિપાકનો સદ્ભાવ હોવાથી, પુદ્ગલકર્મનો બંધ થાય છે. માટે ત્યાંસુધી જ્ઞાનને …વું, જાણવું અને આચરવું કે જ્યાંસુધીમાં જ્ઞાનનો જેવડો પૂર્ણ ભાવ છે તેવડો …વામાં, જાણવામાં અને આચરવામાં બરાબર આવી જાય. ત્યારથી સાક્ષાત્ જ્ઞાની …ર થકો (આત્મા) સર્વથા નિરાસ્રવ જ હોય છે.

ભાવાર્થ:—જ્ઞાનીને બુદ્ધિપૂર્વક (અજ્ઞાનમય) રાગદ્વેષમોહનો અભાવ હોવાથી …ની નિરાસ્રવ જ છે. પરંતુ જ્યાંસુધી ક્ષયોપશમજ્ઞાન છે ત્યાંસુધી તે જ્ઞાની જ્ઞાનને …ર્વોત્કૃષ્ટ ભાવે દેખી, જાણી અને આચરી શકતો નથી—જઘન્ય ભાવે દેખી, જાણી …ને આચરી શકે છે; તેથી એમ જણાય છે કે તે જ્ઞાનીને હજુ અબુદ્ધિપૂર્વક કર્મ- …કનો વિપાક (અર્થાત્ ચારિત્રમોહસંબંધી રાગદ્વેષ) વિદ્યમાન છે અને તેથી તેને …ધ પણ થાય છે. માટે તેને એમ ઉપદેશ છે કે—જ્યાંસુધી કેવળજ્ઞાન ન ઉપજે ત્યાંસુધી …નનું જ નિરંતર ધ્યાન કરવું, જ્ઞાનને જ દેખવું, જ્ઞાનને જ જાણવું અને જ્ઞાનને જ …ચરવું. આ જ માર્ગે દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રનું પરિણમન વધતું જાય છે અને એમ …ાં કરતાં કેવળજ્ઞાન પ્રગટે છે. કેવળજ્ઞાન પ્રગટે ત્યારથી આત્મા સાક્ષાત્ જ્ઞાની છે …ી સર્વ પ્રકારે નિરાસ્રવ છે.

ચારિત્ર, દર્શન, જ્ઞાન જેથી જઘન્ય ભાવે પરિણમે,
તેથી જ જ્ઞાની વિવિધ પુદ્ગલકર્મથી બંધાય છે. ૧૭૨.

જ્યાંસુધી ક્ષાયોપશમિક જ્ઞાન છે ત્યાંસુધી અબુદ્ધિપૂર્વક (અર્થાત્ મોહનો) રાગ હોવા છતાં, બુદ્ધિપૂર્વક રાગના અભાવની અપેક્ષાએ જ્ઞાનીને પણું કહ્યું અને અબુદ્ધિપૂર્વક રાગનો અભાવ થતાં અને કેવળજ્ઞાન પ્રગટ્યે નિરાસ્રવપણું કહ્યું. આ, વિવક્ષાનું વિચિત્રપણું છે. અપેક્ષાથી સમજતાં એ કથન યથાર્થ છે.

હવે આ જ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

संन्यस्यन्निजबुद्धिपूर्वमनिशं रागं समग्रं स्वयं
वारंवारमबुद्धिपूर्वमपि तं जेतुं स्वशक्तिं स्पृशन्।
उच्छिन्दन्परवृत्तिमेव सकलां ज्ञानस्य पूर्णो भव-
न्नात्मा नित्यनिरास्रवो भवति हि ज्ञानी यदा स्यात्तदा॥

અર્થ:—આત્મા જ્યારે જ્ઞાની થાય ત્યારે, પોતે પોતાના સમસ્ત બુદ્ધિપૂર્વક રાગને નિરંતર છોડતો થકો અર્થાત્ નહિ કરતો થકો, વળી જે અબુદ્ધિપૂર્વક રાગ છે તેને પણ જીતવાને વારંવાર (જ્ઞાનાનુભવનરૂપ) સ્વશક્તિને સ્પર્શતો થકો અને (એ રીતે) સમસ્ત પરવૃત્તિને—પરપરિણતિને—ઉખેડતો જ્ઞાનના પૂર્ણભાવરૂપ થતો થકો, ખરેખર સદા નિરાસ્રવ છે.

ભાવાર્થ:—જ્ઞાનીએ સમસ્ત રાગને હેય જાણ્યો છે. તે રાગને મટાડવાને ઉદ્યમ કર્યા કરે છે; તેને આસ્રવભાવની ભાવનાનો અભિપ્રાય નથી; તેથી તે સદા નિરાસ્રવ જ કહેવાય છે.

પરવૃત્તિ (પરપરિણતિ) બે પ્રકારની છે—અશ્રદ્ધારૂપ અને અસ્થિરતારૂપ. જ્ઞાનીએ અશ્રદ્ધારૂપ પરવૃત્તિ છોડી છે અને અસ્થિરતારૂપ પરવૃત્તિ જીતવા માટે તે નિજ શક્તિને વારંવાર સ્પર્શે છે અર્થાત્ પરિણતિને સ્વરૂપ પ્રતિ વારંવાર વાળ્યા કરે છે. એ રીતે સકળ પરવૃત્તિને ઉખેડીને કેવળજ્ઞાન પ્રગટાવે છે.

'બુદ્ધિપૂર્વક' અને 'અબુદ્ધિપૂર્વક'નો અર્થ આ પ્રમાણે છે—જે રાગાદિપરિણામ ઇચ્છા સહિત થાય તે બુદ્ધિપૂર્વક છે અને જે રાગાદિપરિણામ ઇચ્છા વિના પરનિમિત્તની બળજોરીથી થાય તે અબુદ્ધિપૂર્વક છે. જ્ઞાનીને જે રાગાદિપરિણામ થાય છે તે બધાય અબુદ્ધિપૂર્વક જ છે; સવિકલ્પ દશામાં થતાં રાગાદિપરિણામ જ્ઞાનીના જાણવામાં છે તોપણ અબુદ્ધિપૂર્વક છે કારણ કે ઇચ્છા વિના થાય છે.

(પંડિત રાજમલજીએ આ કળશની ટીકા કરતાં 'બુદ્ધિપૂર્વક' અને 'અબુદ્ધિપૂર્વક'નો આ પ્રમાણે અર્થ કર્યો છે:—જે રાગાદિપરિણામ મન દ્વારા

બીને, પ્રવર્તે છે અને જેઓ પ્રવર્તતાં થકાં જીવને પોતાને જણાય છે તેમ જ ને પણ અનુમાનથી જણાય છે તે પરિણામો બુદ્ધિપૂર્વક છે; અને જે રાગાદિ મ ઇંદ્રિયમનના વ્યાપાર સિવાય કેવળ મોહના ઉદયના નિમિત્તે થાય છે અને જણાતાં નથી તે અબુદ્ધિપૂર્વક છે. આ અબુદ્ધિપૂર્વક પરિણામને પ્રત્યક્ષ જ્ઞાની છે અને તેમના અવિનાભાવી ચિહ્ન વડે તેઓ અનુમાનથી પણ જણાય છે.)

હવે શિષ્યની આશંકાનો શ્લોક કહે છે:—

(અનુષ્ટુપ્)

सर्वस्यामेव जीवन्त्यां द्रव्यप्रत्ययसन्ततौ ।
कुतो निरास्रवो ज्ञानी नित्यमेवेति चेन्मतिः ॥ ११७ ॥

અર્થ:—'જ્ઞાનીને સમસ્ત દ્રવ્યાસ્રવની સંતતિ વિદ્યમાન હોવા છતાં જ્ઞાની નિરાસ્રવ છે એમ શા કારણે કહ્યું?'—એમ જો તારી બુદ્ધિ છે (અર્થાત્ એ એવી આશંકા થાય છે) તો હવે તેનો ઉત્તર કહેવામાં આવે છે. ૧૧૭.

હવે, પૂર્વોક્ત આશંકાના ઉત્તરની ગાથા કહે છે:—

सव्वे पुव्वणिबद्धा दु पच्चया संति सम्मदिट्ठिस्स ।
उवओगप्पाओगं बंधंते कम्मभावेण ॥ १७३ ॥
संती दु णिरुवभोज्जा बाला इत्थी जहेह पुरिसस्स ।
बंधदि ते उवभोज्जे तरुणी इत्थी जह णरस्स ॥ १७४ ॥
होदूण णिरुवभोज्जा तह बंधदि जह हवंति उवभोज्जा ।
सत्तट्ठविहा भूदा णाणावरणादिभावेहिं ॥ १७५ ॥

જે સર્વ પૂર્વનિબદ્ધ પ્રત્યય વર્તતા સુદૃષ્ટિને,
ઉપયોગને પ્રાયોગ્ય બંધન કર્મભાવ વડે કરે. ૧૭૩.
સત્તા વિષે તે નિરુપભોગ્ય જ, બાળ સ્ત્રી જ્યમ પુરુષને
ઉપભોગ્ય બનતાં તેહ બાંધે, યુવતી જેમ પુરુષને. ૧૭૪.
અણભોગ્ય બની ઉપભોગ્ય જે રીત થાય તે રીત બાંધતા
જ્ઞાનાવરણ ઇત્યાદિ કર્મો સપ્ત-અષ્ટ પ્રકારનાં. ૧૭૫

एदेण कारणेण दु सम्मादिट्ठी अबंधगो भणिदो ।
आसवभावाभावे ण पच्चया बंधगा भणिदा ॥ १७…

सर्वे पूर्वनिबद्धास्तु प्रत्ययाः संति सम्यग्दृष्टेः ।
उपयोगप्रायोग्यं बध्नंति कर्मभावेन ॥ १७२ ॥

संति तु निरुपभोग्यानि बाला स्त्री यथेह पुरुषस्य ।
बध्नाति तानि उपभोग्यानि तरुणी स्त्री यथा नरस्य ॥ …

भूत्वा निरुपभोग्यानि तथा बध्नाति यथा भवंत्युपभोग्यानि ।
सप्ताष्टविधानि भूतानि ज्ञानावरणादिभावैः ॥ १७… ॥

एतेन कारणेन तु सम्यग्दृष्टिरबंधको भणितः ।
आस्रवभावाभावे न प्रत्यया बंधका भणिताः ॥ १७… ॥

અન્વયાર્થ:—[सम्यग्दृष्टेः] સમ્યગ્દૃષ્ટિને [सर्वे] બધા [पूर्वनिबद्धाः] [illegible]

[illegible]

યૌવનઅવસ્થામાં જે રીતે ઉપભોગ્ય
ામેલી એવી તે પહેલાંની પરણેલી સ્ત્રી યૌવનઅવસ્થામાં જે રીતે ઉપભોગ્ય કરે છે—વશ કરે છે,
અનુસારે, પુરુષના રાગભાવને લીધે જ, પુરુષને બંધન કરે છે—વશ કરે છે,
જેઓ પ્રથમ તો સત્તા-અવસ્થામાં અનુપભોગ્ય છે પરંતુ વિપાક-અવસ્થામાં
ોગ્ય થાય છે એવા પુદ્‌ગલકર્મરૂપ દ્રવ્યપ્રત્યયો હોવા છતાં તેઓ જે રીતે ઉપ-
ાય તે અનુસારે (અર્થાત્ ઉપયોગના પ્રયોગ અનુસારે), કર્મોદયના કાર્યરૂપ
વના સદ્‌ભાવને લીધે જ, બંધન કરે છે. માટે જ્ઞાનીને જો પૂર્વબદ્ધ દ્રવ્યપ્રત્યયો
ન છે, તો ભલે હો; તથાપિ તે (જ્ઞાની) તો નિરાસ્રવ જ છે, કારણ કે કર્મોદયનું
જે રાગદ્વેષમોહરૂપ આસ્રવભાવ તેના અભાવમાં દ્રવ્યપ્રત્યયો બંધનાં કારણ નથી.
. પુરુષને રાગભાવ હોય તો જ જુવાની પામેલી સ્ત્રી તેને વશ કરી શકે છે તેમ
આસ્રવભાવ હોય તો જ ઉદયપ્રાપ્ત દ્રવ્યપ્રત્યયો નવો બંધ કરી શકે છે.)

ભાવાર્થઃ—દ્રવ્યાસ્રવોના ઉદયને અને જીવના રાગદ્વેષમોહભાવોને નિમિત્ત-
ત્તિકભાવ છે. દ્રવ્યાસ્રવોના ઉદય વિના જીવને આસ્રવભાવ થઈ શકે નહિ અને
ંધ પણ થઈ શકે નહિ. દ્રવ્યાસ્રવોનો ઉદય થતાં જીવ જે પ્રકારે તેમાં જોડાય
, જે પ્રકારે તેને ભાવાસ્રવ થાય તે પ્રકારે દ્રવ્યાસ્રવો નવીન બંધનાં કારણ થાય
ત ભાવાસ્રવ ન કરે તો તેને નવો બંધ થતો નથી.

સમ્યગ્દૃષ્ટિને મિથ્યાત્વનો અને અનંતાનુબંધી કષાયનો ઉદય નહિ હોવાથી
તે પ્રકારના ભાવાસ્રવો તો થતા જ નથી અને મિથ્યાત્વ તેમ જ અનંતાનુબંધી
 સંબંધી બંધ પણ થતો નથી. (ક્ષાયિક સમ્યગ્દૃષ્ટિને સત્તામાંથી મિથ્યાત્વનો ક્ષય
 વખતે જ અનંતાનુબંધી કષાયનો તથા તે સંબંધી અવિરતિ અને યોગભાવનો
 ક્ષય થઈ ગયો હોય છે તેથી તેને તે પ્રકારનો બંધ થતો નથી; ઔપશમિક સમ્ય
ષ્ટિને મિથ્યાત્વ તેમ જ અનંતાનુબંધી કષાયો માત્ર ઉપશમમાં—સત્તામાં—જ હોવાથી
તામાં રહેલું દ્રવ્ય ઉદયમાં આવ્યા વિના તે પ્રકારના બંધનું કારણ થતું નથી; અને
ક્ષાયોપશમિક સમ્યગ્દૃષ્ટિને પણ સમ્યક્ત્વમોહનીય સિવાયની છ પ્રકૃતિઓ વિપાક-ઉદયમાં
આવતી નથી તેથી તે પ્રકારનો બંધ થતો નથી.)

અવિરતસમ્યગ્દૃષ્ટિ [illegible] કે અવિરતિપ્રમાદના ઉદય વર્તે છે તેમાં જે પ્રકારે
[illegible] જોડાય છે તે પ્રકારે તેને નવા બંધ થાય છે; તેથી ગુણસ્થાનોના વર્ણનમાં અવિરત
સમ્યગ્દૃષ્ટિ આદિ ગુણસ્થાનોમાં અમુક અમુક પ્રકૃતિના બંધ કહ્યો છે. પરંતુ આ બંધ
અલ્પ હોવાથી તેને સામાન્ય સંસારની અપેક્ષાએ બંધમાં ગણવામાં આવતો નથી.
સમ્યગ્દૃષ્ટિ અવિરતિપ્રમાદના ઉદયમાં [illegible] તો [illegible] જ નથી, માત્ર અસ્થિરતાના
[illegible] જોડાય છે; અને અસ્થિરતારૂપ [illegible] કોઈ પણ નિષ્ઠામાં જોડાણ જ નથી. [illegible]
સમ્યગ્દૃષ્ટિને રાગદ્વેષમોહના અભાવ [illegible] આવ્યો છે. જ્યાંસુધી કર્મનું
[illegible] કર્મના ઉદયમાં [illegible] [illegible] છે ત્યાંસુધી જ [illegible] કર્મનો [illegible]

જ્ઞાતાદ્રષ્ટા થઈને પરના નિમિત્તથી માત્ર અસ્થિરતારૂપે પરિણમે ત્યારે કર્તા નહીં જ છે. આ અપેક્ષાએ, સમ્યગ્દ્રષ્ટિ થયા પછી ચારિત્રમોહના ઉદયરૂપ પરિ... તેને જ્ઞાની અને અબંધક કહેવામાં આવ્યો છે. જ્યાંસુધી મિથ્યાત્વનો ઉદય છે તેમાં જોડાઈને જીવ રાગદ્વેષમોહભાવે પરિણમે છે ત્યાંસુધી જ તેને અજ્ઞાની અને કહેવામાં આવે છે. જ્ઞાની–અજ્ઞાનીનો અને બંધ–અબંધનો આ વિશેષ જાણવો. શુદ્ધ સ્વરૂપમાં લીન રહેવાના અભ્યાસદ્વારા કેવળજ્ઞાન પ્રગટવાથી જ્યારે સાક્ષાત્ સંપૂર્ણજ્ઞાની થાય છે ત્યારે તો તે સર્વથા નિરાસ્રવ થઈ જાય છે એમ કહેવાઈ ગયું છે.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છેઃ—

(માલિની)

विजहति न हि सत्तां प्रत्ययाः पूर्वबद्धाः
समयमनुसरंतो यद्यपि द्रव्यरूपाः ।
तदपि सकलरागद्वेषमोहव्युदासा-
दवतरति न जातु ज्ञानिनः कर्मबंधः ॥ ११८ ॥

અર્થઃ—જોકે પોતપોતાના સમયને અનુસરતા (અર્થાત્ પોતપોતાના સમયે ઉદયમાં આવતા) એવા પૂર્વબદ્ધ (પૂર્વે અજ્ઞાન-અવસ્થામાં બંધાયેલા) દ્રવ્યપ્રત્યયો પોતાની સત્તા છોડતા નથી (અર્થાત્ સત્તામાં છે—હયાત છે), તોપણ રાગદ્વેષમોહનો અભાવ હોવાથી જ્ઞાનીને કર્મબંધ કદાપિ અવતાર પામતો નથી—થતો નથી.

ભાવાર્થઃ—જ્ઞાનીને પણ પૂર્વે અજ્ઞાન-અવસ્થામાં બંધાયેલા દ્રવ્યપ્રત્યયો સત્તાઅવસ્થામાં હયાત છે અને તેમના ઉદયકાળે ઉદયમાં આવતા જાય છે. પરંતુ તે દ્રવ્યપ્રત્યયો જ્ઞાનીને કર્મબંધનું કારણ થતા નથી, કેમ કે જ્ઞાનીને સકળ રાગદ્વેષમોહભાવોનો અભાવ છે. અહીં સકળ રાગદ્વેષમોહનો અભાવ બુદ્ધિપૂર્વક રાગદ્વેષમોહની અપેક્ષાએ સમજવો.

હવે, આ જ અર્થ દૃઢ કરનારી બે ગાથાઓ આવે છે તેની સૂચનારૂપ શ્લોક કહે છેઃ—

(અનુષ્ટુપ)

रागद्वेषविमोहानां ज्ञानिनो यदसंभवः ।
तत एव न बंधोऽस्य ते हि बंधस्य कारणम् ॥ ११९ ॥

અર્થઃ—કારણ કે જ્ઞાનીને રાગદ્વેષમોહનો અસંભવ છે તેથી જ જ્ઞાનીને બંધ નથી; કેમ કે તે (રાગદ્વેષમોહ) જ બંધનું કારણ છે. ૧૧૯.

હવે આ અર્થના સમર્થનની બે ગાથાઓ કહે છે:—

रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स ।
तह्मा आसवभावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति ॥ १७७ ॥
हेदू चदुवियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं ।
तेसिं पि य रागादी तेसिमभावे ण वज्झंति ॥ १७८ ॥

रागो द्वेषो मोहश्च आस्रवा न संति सम्यग्दृष्टेः ।
तस्मादास्रवभावेन विना हेतवो न प्रत्यया भवंति ॥ १७७ ॥
हेतुश्चतुर्विकल्पः अष्टविकल्पस्य कारणं भणितम् ।
तेषामपि च रागादयस्तेषामभावे न बध्यंते ॥ १७८ ॥

અન્વયાર્થ:—[रागः] રાગ, [द्वेषः] દ્વેષ [च मोहः] અને મોહ—[आस्रवाः] એ આસ્રવો [सम्यग्दृष्टेः] સમ્યગ્દૃષ્ટિને [न संति] નથી [तस्मात्] [आस्रवभावेन विना] આસ્રવભાવ વિના [प्रत्ययाः] દ્રવ્યપ્રત્યયો [हेतवः] બંધનાં કારણ [न भवंति] થતા નથી.

[चतुर्विकल्पः हेतुः] (મિથ્યાત્વાદિ) ચાર પ્રકારના હેતુઓ [अष्टविकल्पस्य] પ્રકારનાં કર્મોનાં [कारणं] કારણ [भणितं] કહેવામાં આવ્યા છે, [च] અને [तेषां अपि] તેમને પણ [रागादयः] (જીવના) રાગાદિ ભાવો કારણ છે; [तेषां अभावे] તેથી રાગાદિ ભાવોના અભાવમાં [न बध्यंते] કર્મ બંધાતાં નથી. (માટે સમ્યગ્દૃષ્ટિને બંધ નથી.)

ટીકા:—સમ્યગ્દૃષ્ટિને રાગદ્વેષમોહ નથી કારણ કે સમ્યગ્દૃષ્ટિપણાની અન્યથા અનુપપત્તિ છે (અર્થાત્ રાગદ્વેષમોહના અભાવ વિના સમ્યગ્દૃષ્ટિપણું બની શકતું નથી); રાગદ્વેષમોહના અભાવમાં તેને (સમ્યગ્દૃષ્ટિને) દ્રવ્યપ્રત્યયો પુદ્ગલકર્મનું (અર્થાત્ પુદ્ગલકર્મના બંધનનું) હેતુપણું ધારતા નથી કારણ કે દ્રવ્યપ્રત્યયોને પુદ્ગલકર્મના હેતુપણાના હેતુઓ રાગાદિક છે; માટે હેતુના અભાવમાં હેતુમાનનો (અર્થાત્ કારણના અભાવમાં કાર્યનો) અભાવ પ્રસિદ્ધ હોવાથી જ્ઞાનીને બંધ નથી.

નહિ રાગદ્વેષ, ન મોહ—એ આસ્રવ નથી સુદૃષ્ટિને,
તેથી જ આસ્રવભાવ વિણ નહિ પ્રત્યયો હેતુ બને; ૧૭૭.
હેતુ ચતુર્વિધ અષ્ટવિધ કર્મોતણાં કારણ કહ્યા,
તેનાંય રાગાદિક કહ્યા, રાગાદિ નહિ ત્યાં બંધ ના. ૧૭૮.

ભાવાર્થ:—અહીં, રાગદ્વેષમોહના અભાવ વિના સમ્યગ્દષ્ટિપણું નહિ એવો અવિનાભાવી નિયમ કહ્યો ત્યાં મિથ્યાત્વસંબંધી રાગાદિકનો અભાવ જાણવો. મિથ્યાત્વસંબંધી રાગાદિકને જ અહીં રાગાદિક ગણવામાં આવ્યા છે. સમ્યક્ત્વ થયા પછી કાંઈક ચારિત્રમોહસંબંધી રાગ રહે છે તેને અહીં ગણ્યો નથી; તે ગૌણ છે. આ રીતે સમ્યગ્દષ્ટિને ભાવાસ્રવનો અર્થાત્ રાગદ્વેષમોહનો અભાવ છે. દ્રવ્યાસ્રવોને બંધના હેતુ થવામાં હેતુભૂત એવા રાગદ્વેષમોહનો સમ્યગ્દષ્ટિને અભાવ હોવાથી દ્રવ્યાસ્રવો બંધના હેતુ થતા નથી, અને દ્રવ્યાસ્રવો બંધના હેતુ નહિ થતા હોવાથી સમ્યગ્દષ્ટિને—જ્ઞાનીને—બંધ થતો નથી.

સમ્યગ્દષ્ટિને જ્ઞાની કહેવામાં આવે છે તે યોગ્ય જ છે. 'જ્ઞાની' શબ્દ મુખ્યપણે ત્રણ અપેક્ષાએ વપરાય છે:—(૧) પ્રથમ તો, જેને જ્ઞાન હોય તે જ્ઞાની કહેવાય; એમ સામાન્ય જ્ઞાનની અપેક્ષાએ તો સર્વ જીવો જ્ઞાની છે. (૨) સમ્યક્ જ્ઞાન અને મિથ્યા જ્ઞાનની અપેક્ષા લેવામાં આવે તો સમ્યગ્દષ્ટિને સમ્યગ્જ્ઞાન હોવાથી તે અપેક્ષાએ તે જ્ઞાની છે અને મિથ્યાદૃષ્ટિ અજ્ઞાની છે. (૩) સંપૂર્ણ જ્ઞાન અને અપૂર્ણ જ્ઞાનની અપેક્ષા લેવામાં આવે તો કેવળી ભગવાન જ્ઞાની છે અને છદ્મસ્થ અજ્ઞાની છે, કારણ કે સિદ્ધાંતમાં પાંચ ભાવોનું કથન કરતાં બારમા ગુણસ્થાન સુધી અજ્ઞાનભાવ કહ્યો છે. આ પ્રમાણે અનેકાંતથી અપેક્ષા વડે વિધિનિષેધ નિર્બાધપણે સિદ્ધ થાય છે; સર્વથા એકાંતથી કાંઈ પણ સિદ્ધ થતું નથી.

હવે જ્ઞાનીને બંધ થતો નથી એ શુદ્ધનયનું માહાત્મ્ય છે માટે શુદ્ધનયના મહિમાનું કાવ્ય કહે છે:—

(વસંતતિલકા)

अध्यास्य शुद्धनयमुद्धतबोधचिह्न-
मैकाग्र्यमेव कलयंति सदैव ये ते ।
रागादिमुक्तमनसः सततं भवंतः
पश्यंति बंधविधुरं समयस्य सारम् ॥ १२० ॥

અર્થ:—ઉદ્ધત જ્ઞાન (-કોઈનું દબાવ્યું દબાય નહિ એવું ઉન્નત જ્ઞાન) જેનું લક્ષણ છે એવા શુદ્ધનયમાં રહીને અર્થાત્ શુદ્ધનયનો આશ્રય લઈને જેઓ સદાય એકાગ્રપણાનો જ અભ્યાસ કરે છે તેઓ, નિરંતર રાગાદિથી રહિત ચિત્તવાળા વર્તતા થકા, બંધરહિત એવા સમયના સારને (અર્થાત્ પોતાના શુદ્ધ આત્મસ્વરૂપને) અનુભવે છે.

ભાવાર્થ:—અહીં શુદ્ધનય વડે એકાગ્રતાનો અભ્યાસ કરવાનું કહ્યું છે. [illegible] '—એવું જે આત્મદ્રવ્યનું [illegible] તે શુદ્ધનય [illegible] [illegible] કરે છે અને નિરંતર [illegible] [illegible]

શુદ્ધનય શ્રુતજ્ઞાનનો અંશ છે અને શ્રુતજ્ઞાન તો પરોક્ષ છે તેથી તે અપેક્ષાએ શુદ્ધનય દ્વારા થતો શુદ્ધ સ્વરૂપનો અનુભવ પણ પરોક્ષ છે. વળી તે અનુભવ એકદેશ શુદ્ધ છે તે અપેક્ષાએ તેને વ્યવહારથી પ્રત્યક્ષ પણ કહેવામાં આવે છે. સાક્ષાત્ શુદ્ધનય તો કેવળજ્ઞાન થયે થાય છે.

હવે કહે છે કે જેઓ શુદ્ધનયથી ચ્યુત થાય તેઓ કર્મ બાંધે છે:—

(વસંતતિલકા)

प्रच्युत्य शुद्धनयतः पुनरेव ये तु
रागादियोगमुपयांति विमुक्तबोधाः ।
ते कर्मबंधमिह बिभ्रति पूर्वबद्ध-
द्रव्यास्रवैः कृतविचित्रविकल्पजालम् ॥ १२१ ॥

અર્થ:—જગતમાં જેઓ શુદ્ધનયથી ચ્યુત થઈને ફરીને રાગાદિના સંબંધને પામે છે એવા જીવો, જેમણે જ્ઞાનને છોડ્યું છે એવા થયા થકા, પૂર્વબદ્ધ દ્રવ્યાસ્રવો વડે કર્મબંધને ધારણ કરે છે (-કર્મોને બાંધે છે)—કે જે કર્મબંધ અનેક પ્રકારના વિકલ્પોની જાળ કરે છે (અર્થાત્ જે કર્મબંધ અનેક પ્રકારનો છે).

ભાવાર્થ:—શુદ્ધનયથી ચ્યુત થવું એટલે 'હું શુદ્ધ છું' એવા પરિણમનથી છૂટીને અશુદ્ધરૂપે પરિણમવું તે અર્થાત્ મિથ્યાદૃષ્ટિ બની જવું તે. એમ થતાં, જીવને મિથ્યાત્વ સંબંધી રાગાદિક ઉત્પન્ન થાય છે, તેથી દ્રવ્યાસ્રવો કર્મબંધનાં કારણ થાય છે અને તેથી અનેક પ્રકારનાં કર્મ બંધાય છે. આ રીતે અહીં શુદ્ધનયથી ચ્યુત થવાનો અર્થ શુદ્ધતાના ભાનથી (સમ્યક્ત્વથી) ચ્યુત થવું એમ કરવો. ઉપયોગની અપેક્ષા અહીં ગૌણ છે, અર્થાત્ શુદ્ધનયથી ચ્યુત થવું એટલે શુદ્ધ ઉપયોગથી ચ્યુત થવું એવો અર્થ અહીં મુખ્ય નથી; કારણ કે શુદ્ધોપયોગરૂપ રહેવાનો કાળ અલ્પ હોવાથી માત્ર અલ્પ કાળ શુદ્ધોપયોગરૂપ રહીને પછી તેનાથી છૂટી જ્ઞાન અન્ય જ્ઞેયોમાં ઉપયુક્ત થાય તોપણ મિથ્યાત્વ વિના જે રાગનો અંશ છે તે અભિપ્રાયપૂર્વક નહિ હોવાથી જ્ઞાનીને માત્ર અલ્પ બંધ થાય છે અને અલ્પ બંધ સંસારનું કારણ નથી. માટે અહીં ઉપયોગની અપેક્ષા મુખ્ય નથી.

હવે જો ઉપયોગની અપેક્ષા લઈએ તો આ પ્રમાણે અર્થ ઘટે:—જીવ શુદ્ધસ્વરૂપના નિર્વિકલ્પ અનુભવથી છૂટે પરંતુ સમ્યક્ત્વથી ન છૂટે તો તેને ચારિત્રમોહના રાગથી કાંઈક બંધ થાય છે. તે બંધ જોકે અજ્ઞાનના પક્ષમાં નથી તોપણ તે બંધ તો છે જ. માટે તેને મટાડવાને સમ્યગ્દૃષ્ટિ જ્ઞાનીને શુદ્ધનયથી ન છૂટવાનો અર્થાત્ શુદ્ધોપયોગમાં લીન રહેવાનો ઉપદેશ છે. કેવળજ્ઞાન થતાં સાક્ષાત્ શુદ્ધનય થાય છે. ૧૭૭-૧૭૮.

હવે આ જ અર્થને દૃષ્ટાંતદ્વારા દૃઢ કરે છે:—

जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अ
मंसवसारुहिरादी भावे उदरग्गिसंजुत्तो ॥ १
तह णाणिस्स दु पुव्वं जे बद्धा पच्चया बहुवि
वज्झंते कम्मं ते णयपरिहीणा दु ते जीवा ॥ १

यथा पुरुषेणाहारो गृहीतः परिणमति सोऽनेकविधम्।
मांसवसारुधिरादीन् भावान् उदराग्निसंयुक्तः ॥ १७९ ॥
तथा ज्ञानिनस्तु पूर्वं ये बद्धाः प्रत्यया बहुविकल्पम्।
बध्नंति कर्म ते नयपरिहीनास्तु ते जीवाः ॥ १८० ॥

અન્વયાર્થ:—[यथा] જેમ [पुरुषेण] પુરુષ વડે [गृहीत:] [आहारः] જે આહાર [सः] તે [उदराग्निसंयुक्तः] ઉદરાગ્નિથી સં [अनेकविधं] અનેક પ્રકારે [मांसवसारुधिरादीन्] માંસ, વસા, રુધિર આ ભાવોરૂપે [परिणमति] પરિણમે છે, [तथा तु] તેમ [ज्ञानिनः] જ્ઞાનીને [પૂર્વે બંધાયેલા [ये प्रत्ययाः] જે દ્રવ્યાસ્રવો છે [ते] તે [बहुविकल्प] બ [कर्म] કર્મ [बध्नंति] બાંધે છે;—[ते जीवाः] એવા જીવો [नयपरि શુદ્ધનયથી ચ્યુત થયેલા છે. (જ્ઞાની શુદ્ધનયથી ચ્યુત થાય તો તેને કર્મ બં

ટીકા:—જ્યારે જ્ઞાની શુદ્ધનયથી ચ્યુત થાય ત્યારે તેને રાગાદિભાવો થવાથી, પૂર્વબદ્ધ દ્રવ્યપ્રત્યયો, પોતાને (-દ્રવ્યપ્રત્યયોને) કર્મબંધના હેતુ સદ્‌ભાવ થતાં હેતુમાન્ ભાવનું (-કાર્યભાવનું) અનિવાર્યપણું હોવાથી, જ્ઞા ભાવે પુદ્‌ગલકર્મને બંધરૂપે પરિણમાવે છે. અને આ અપ્રસિદ્ધ પણ ન આવું દૃષ્ટાંત જગતમાં પ્રસિદ્ધ—જાણીતું છે); કારણ કે ઉદરાગ્નિ, પુરુષે હારને રસ, રુધિર, માંસ આદિ ભાવે પરિણમાવે છે એમ જોવામાં આવે છે

ભાવાર્થ:—જ્ઞાની શુદ્ધનયથી છૂટે ત્યારે તેને રાગાદિભાવોનો સ , રાગાદિભાવોના નિમિત્તે દ્રવ્યાસ્રવો અવશ્ય કર્મબંધનાં કારણ થાય છે

પુરુષે ગ્રહેલ આહાર જે, ઉદરાગ્નિને સંયોગ તે
બહુવિધ માંસ, વસા અને રુધિરાદિ ભાવે પરિણમે;
ત્યમ જ્ઞાનીને પણ પ્રત્યયો જે પૂર્વકાળનિબદ્ધ ત
વિધ બાંધે કર્મ, જે જીવ શુદ્ધનયપરિચ્યુત બને ।

ણા બંધરૂપે પરિણમે છે. ટીકામાં જે એમ કહ્યું છે કે "દ્રવ્યપ્રત્યયો પુદ્ગલ-રૂપે પરિણમાવે છે", તે નિમિત્તથી કહ્યું છે. ત્યાં એમ સમજવું કે "દ્રવ્ય-નિમિત્તભૂત થતાં કાર્મણવર્ગણા સ્વયં બંધરૂપે પરિણમે છે."

હવે આ સર્વ કથનના તાત્પર્યરૂપ શ્લોક કહે છે:—

(અનુષ્ટુપ)

इदमेवात्र तात्पर्यं हेयः शुद्धनयो न हि ।
नास्ति बंधस्तदत्यागात्तत्त्यागाद्बंध एव हि ॥ १२२ ॥

અર્થ:—અહીં આ જ તાત્પર્ય છે કે શુદ્ધનય ત્યાગવાયોગ્ય નથી; કારણ કે ત્યાગથી (કર્મનો) બંધ થતો નથી અને તેના ત્યાગથી બંધ જ થાય છે.

ફરી, 'શુદ્ધનય છોડવાયોગ્ય નથી' એવા અર્થને દૃઢ કરનારું કાવ્ય કહે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

धीरोदारमहिम्न्यनादिनिधने बोधे निबध्नन्धृतिं
त्याज्यः शुद्धनयो न जातु कृतिभिः सर्वंकषः कर्मणाम् ।
तत्रस्थाः स्वमरीचिचक्रमचिरात्संहृत्य निर्यद्बहिः
पूर्णं ज्ञानघनौघमेकमचलं पश्यंति शांतं महः ॥ १२३ ॥

અર્થ:—ધીર (ચળાચળતા રહિત) અને ઉદાર (સર્વ પદાર્થોમાં વિસ્તારયુક્ત) મહિમા છે એવા અનાદિનિધન જ્ઞાનમાં સ્થિરતા બાંધતો (અર્થાત્ જ્ઞાનમાં પરિ-સ્થિર રાખતો) શુદ્ધનય—કે જે કર્મોને મૂળથી નાશ કરનારો છે તે—પવિત્ર ધર્મી (સમ્યગ્દૃષ્ટિ) પુરુષોએ કદી પણ છોડવાયોગ્ય નથી. શુદ્ધનયમાં સ્થિત તે પુરુષો, બહાર (જતા) એવા પોતાના જ્ઞાનકિરણોના સમૂહને (અર્થાત્ કર્મના નિમિત્તે પરમાં જતી (જ્ઞાનની) વિશેષ વ્યક્તિઓને) અલ્પ કાળમાં સમેટીને, પૂર્ણ, જ્ઞાનઘનના પુંજરૂપ, એક, (અચળ), શાંત તેજને—તેજઃપુંજને—દેખે છે અર્થાત્ અનુભવે છે.

ભાવાર્થ:—શુદ્ધનય, જ્ઞાનના સમસ્ત વિશેષોને ગૌણ કરી તથા પરનિમિત્તથી (થતા) સમસ્ત ભાવોને ગૌણ કરી, આત્માને શુદ્ધ, નિત્ય, અભેદરૂપ, એક ચૈતન્યમાત્ર (ગ્રહણ) કરે છે અને તેથી પરિણતિ શુદ્ધનયના વિષયસ્વરૂપ ચૈતન્યમાત્ર શુદ્ધ આત્મામાં (એકાગ્ર)—સ્થિર—થતી જાય છે. એ પ્રમાણે શુદ્ધનયનો આશ્રય કરનારા જીવો અલ્પ (કાળમાં) બહાર નીકળતી જ્ઞાનની વિશેષ વ્યક્તિઓને સંકેલીને, શુદ્ધનયમાં (આત્માની શુદ્ધતા)ના અનુભવમાં) નિર્વિકલ્પપણે ઠરતાં સર્વ કર્મોથી ભિન્ન, કેવળજ્ઞાનસ્વરૂપ, (અમૂર્તિ)ક પુરુષાકાર, વીતરાગ જ્ઞાનમૂર્તિસ્વરૂપ પોતાના આત્માને દેખે છે અને શુક્લ-

[illegible]

जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेयविहं।
मंसवसारुहिरादी भावे उदरग्गिसंजुत्तो ॥ १७९ ॥
तह णाणिस्स दु पुव्वं जे बद्धा पच्चया बहुवियप्पं।
बज्झंते कम्मं ते णयपरिहीणा दु ते जीवा ॥ १८० ॥

यथा पुरुषेणाहारो गृहीतः परिणमति सोऽनेकविधम्।
मांसवसारुधिरादीन् भावान् उदराग्निसंयुक्तः ॥ १७९ ॥
तथा ज्ञानिनस्तु पूर्वं ये बद्धाः प्रत्यया बहुविकल्पम्।
बध्नन्ति कर्म ते नयपरिहीनास्तु ते जीवाः ॥ १८० ॥

અન્વયાર્થ:—[યથા] જેમ [પુરુષેણ] પુરુષ વડે [ગૃહીતઃ] ગ્રહાયેલો [આહારઃ] જે આહાર [સઃ] તે [ઉદરાગ્નિસંયુક્તઃ] ઉદરાગ્નિથી સંયુક્ત [અનેકવિધમ્] અનેક પ્રકારે [માંસવસારુધિરાદીન્] માંસ, વસા, રુધિર આદિ [ભાવાન્] ભાવોરૂપે [પરિણમતિ] પરિણમે છે, [તથા તુ] તેમ [જ્ઞાનિનઃ] જ્ઞાનીને [પૂર્વં બદ્ધાઃ] પૂર્વે બંધાયેલા [યે પ્રત્યયાઃ] જે દ્રવ્યાસ્રવો છે [તે] તે [બહુવિકલ્પમ્] બહુ પ્રકારનાં [કર્મ] કર્મ [બધ્નન્તિ] બાંધે છે;—[તે જીવાઃ] એવા જીવો [નયપરિહીનાઃ તુ] શુદ્ધનયથી ચ્યુત થયેલા છે. (જ્ઞાની શુદ્ધનયથી ચ્યુત થાય તો તેને કર્મ બંધાય છે.)

ટીકા:—જ્યારે જ્ઞાની શુદ્ધનયથી ચ્યુત થાય ત્યારે તેને રાગાદિભાવોના સદ્ભાવને લીધે, પૂર્વબદ્ધ દ્રવ્યપ્રત્યયો, પોતાને (-દ્રવ્યપ્રત્યયોને) કર્મબંધના હેતુપણાના હેતુનો સદ્ભાવ થતાં હેતુમાન ભાવનું (-કાર્યભાવનું) અનિવાર્યપણું હોવાથી, [illegible] ભાવે પુદ્ગલકર્મને બંધરૂપે પરિણમાવે છે. અને આ અપ્રસિદ્ધ પણ નથી (આનું દૃષ્ટાંત જગતમાં પ્રસિદ્ધ—જાણીતું છે); કારણ કે ઉદરાગ્નિ, પુરુષે ગ્રહેલ આહારને રસ, રુધિર, માંસ આદિ ભાવે પરિણમાવે છે એમ જોવામાં આવે છે.

ભાવાર્થ:—જ્ઞાની શુદ્ધનયથી છૂટે ત્યારે તેને રાગાદિભાવોનો સદ્ભાવ થાય છે અને [illegible] છે, રાગાદિભાવોના નિમિત્તે દ્રવ્યાસ્રવો અવશ્ય કર્મબંધનાં કારણ થાય છે [illegible]

પુરુષે ગ્રહેલ આહાર જે, ઉદરાગ્નિને સંયોગ તે
બહુવિધ માંસ, વસા અને રુધિરાદિ ભાવે પરિણમે; ૧૭૯
ત્યમ જ્ઞાનીને પણ પ્રત્યયો જે પૂર્વકાળનિબદ્ધ તે
બહુવિધ બાંધે કર્મ, જો જીવ શુદ્ધનયપરિચ્યુત બને. ૧૮૦

— ५ —

संवर अधिकार

મોહરાગરૂપ દૂર કરી, સમિતિ ગુપ્તિ વ્રત પાળી;
સંવરમય આત્મા કર્યો, નમું તેહ, મન ધારી.

પ્રથમ ટીકાકાર આચાર્યમહારાજ કહે છે કે "હવે સંવર પ્રવેશ કરે છે.
આસ્રવ રંગભૂમિમાંથી બહાર નીકળી ગયા પછી હવે સંવર રંગભૂમિમાં પ્રવેશે છે.

ત્યાં પ્રથમ તો ટીકાકાર આચાર્યદેવ સર્વ સ્વાંગને જાણનારા સમ્યગ્જ્ઞાનના
મારૂપ મંગળ કરે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

आसंसारविरोधिसंवरजयैकांतावलिप्तास्रव-
न्यक्कारात्प्रतिलब्धनित्यविजयं संपादयत्संवरम् ।
व्यावृत्तं पररूपतो नियमितं सम्यक्स्वरूपे स्फुर-
ज्ज्योतिश्चिन्मयमुज्ज्वलं निजरसप्राग्भारमुज्जृम्भते ॥ १२५ ॥

અર્થ:—અનાદિ સંસારથી માંડીને પોતાના વિરોધી સંવરને જીતવાથી જે
એકાંત-ગર્વિત (અત્યંત અહંકારયુક્ત) થયો છે એવો જે આસ્રવ તેનો તિરસ્કાર
કરવાથી જેણે સદા વિજય મેળવ્યો છે એવા સંવરને ઉત્પન્ન કરતી, પરરૂપથી જુદી
(અર્થાત્ પરદ્રવ્ય અને પરદ્રવ્યના નિમિત્તે થતા ભાવોથી જુદી), પોતાના સમ્યક્
સ્વરૂપમાં નિશ્ચળપણે પ્રકાશતી, ચિન્મય, ઉજ્જ્વળ (-નિરાબાધ, નિર્મળ, દેદીપ્યમાન)
નિજરસના (પોતાના ચૈતન્યરસના) ભારવાળી—અતિશયપણાવાળી જ્યોતિ પ્રગટ
થાય છે, ફેલાય છે.

ભાવાર્થ:—અનાદિ કાળથી જે આસ્રવનો વિરોધી છે એવા સંવરને જીતીને
આસ્રવ મદથી ગર્વિત થયો છે. તે આસ્રવનો તિરસ્કાર કરીને તેના પર જેણે હંમેશને
માટે વિજય મેળવ્યો છે એવા સંવરને ઉત્પન્ન કરતો, સમસ્ત પરરૂપથી જુદો અને પોતાના

ધ્યાનમાં પ્રવૃત્તિ કરીને અંતર્મુહૂર્તમાં કેવળજ્ઞાન પ્રગટાવે છે. શુદ્ધનયનું આવું માહાત્મ્ય છે. માટે શુદ્ધનયના આલંબન વડે જ્યાંસુધી કેવળજ્ઞાન ઉપજે નહિ ત્યાંસુધી સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવોએ શુદ્ધનય છોડવાયોગ્ય નથી એમ શ્રી ગુરુઓનો ઉપદેશ છે.

હવે, આસ્રવોનો સર્વથા નાશ કરવાથી જે જ્ઞાન પ્રગટ થયું તે જ્ઞાનના મહિમાનું કાવ્ય કહે છેઃ—

(મંદાક્રાંતા)

रागादीनां झगिति विगमात्सर्वतोऽप्यास्रवाणां
नित्योद्योतं किमपि परमं वस्तु संपश्यतोऽन्तः ।
स्फारस्फारैः स्वरसविसरैः प्लावयत्सर्वभावा-
नालोकांतादचलमतुलं ज्ञानमुन्मग्नमेतत् ॥ १२४ ॥

અર્થઃ—જેનો ઉદ્યોત (પ્રકાશ) નિત્ય છે એવી કોઈ પરમ વસ્તુને અંતરંગમાં દેખનારા પુરુષને, રાગાદિક આસ્રવોનો શીઘ્ર સર્વ પ્રકારે નાશ થવાથી, આ જ્ઞાન પ્રગટ થયું—કે જે જ્ઞાન અત્યંત અત્યંત (-અનંત અનંત) વિસ્તાર પામતા નિજરસના ફેલાવથી સર્વ ભાવોને તરબોળ કરી દે છે અર્થાત્ સર્વ પદાર્થોને જાણે છે, જે જ્ઞાન પ્રગટ થયું ત્યારથી સદાકાળ અચળ છે અર્થાત્ પ્રગટ્યા પછી સદા એવું ને એવું જ રહે છે—ચળતું નથી, અને જે જ્ઞાન અતુલ છે અર્થાત્ જેના તુલ્ય બીજું કોઈ નથી.

ભાવાર્થઃ—જે પુરુષ અંતરંગમાં ચૈતન્યમાત્ર પરમ વસ્તુને દેખે છે અને શુદ્ધનયના આલંબન વડે તેમાં એકાગ્ર થતો જાય છે તે પુરુષને, તત્કાળ સર્વ રાગાદિક આસ્રવભાવોનો સર્વથા અભાવ થઈને, સર્વ અતીત, અનાગત ને વર્તમાન પદાર્થોને જાણનારું નિશ્ચળ, અતુલ કેવળજ્ઞાન પ્રગટ થાય છે. તે જ્ઞાન સર્વથી મહાન છે; તેના સમાન અન્ય કોઈ નથી.

ટીકાઃ—આ રીતે આસ્રવ (રંગભૂમિમાંથી) બહાર નીકળી ગયો.

ભાવાર્થઃ—આસ્રવનો સ્વાંગ રંગભૂમિમાં આવ્યો હતો તેને જ્ઞાને તેના યથાર્થ સ્વરૂપે જાણી લીધો તેથી તે બહાર નીકળી ગયો. ૧૭૯—૧૮૦.

યોગ કષાય મિથ્યાત્વ અસંયમ આસ્રવ દ્રવ્ય ત આગમ ગાયે,
રાગ વિરોધ વિમોહ વિભાવ અજ્ઞાનમયી યહ ભાવ જતાયે;
જે મુનિરાજ કરૈ ઇનિ પાલ સુરિદ્ધિ સમાજ લયે સિવ થાયે,
કાય નવાય નમૂં ચિત લાય કહૂં જય પાય લહૂં મન ભાયે.

આમ આ સમયસારગ્રંથની આત્મખ્યાતિ નામની ટીકાની પંડિત જયચંદ્રજીકૃત ભાષાવચનિકામાં ચોથો આસ્રવ અધિકાર પૂર્ણ થયો.

[नोकर्मणि] નોકર્મમાં [उपयोगः] ઉપયોગ [नास्ति] નથી [च] અને યોગે] ઉપયોગમાં [कर्म] કર્મ [च अपि] તેમ જ [नोकर्म] નોકર્મ [नो] નથી.—[एतत् तु] આવું [अविपरीतं] અવિપરીત [ज्ञानं] જ્ઞાન [यदा] જ્યારે [जीवस्य] જીવને [भवति] થાય છે, [तदा] ત્યારે [उपयोगशुद्धात्मा] પયોગસ્વરૂપ શુદ્ધાત્મા [किंचित् भावं] ઉપયોગ સિવાય અન્ય કોઈ પણ ભાવને करोति] કરતો નથી.

ટીકાઃ—ખરેખર એક વસ્તુની બીજી વસ્તુ નથી (અર્થાત્ એક વસ્તુની જી વસ્તુ કોઈ સંબંધી નથી) કારણ કે બન્નેના પ્રદેશો ભિન્ન હોવાથી તેમને એક ની અનુપપત્તિ છે (અર્થાત્ બન્નેની સત્તા જુદી જુદી છે); અને એ રીતે એક ની બીજી વસ્તુ નહિ હોવાથી એક સાથે બીજીને આધારાધેયસંબંધ પણ નથી જ. (દરેક વસ્તુને) પોતાના સ્વરૂપમાં પ્રતિષ્ઠારૂપ (દૃઢપણે રહેવારૂપ) જ આધારાધેય-બંધ છે. માટે જ્ઞાન કે જે જાણનક્રિયારૂપ પોતાના સ્વરૂપમાં પ્રતિષ્ઠિત (-રહેલું) છે જાણનક્રિયાનું જ્ઞાનથી અભિન્નપણું હોવાને લીધે, જ્ઞાનમાં જ છે; ક્રોધાદિક કે જે ાદિક્રિયારૂપ પોતાના સ્વરૂપમાં પ્રતિષ્ઠિત છે તે, ક્રોધાદિક્રિયાનું ક્રોધાદિથી અભિન્નપણું વાને લીધે, ક્રોધાદિકમાં જ છે. (જ્ઞાનનું સ્વરૂપ જાણનક્રિયા છે, માટે જ્ઞાન આધેય અને જાણનક્રિયા આધાર છે. જાણનક્રિયા આધાર હોવાથી એમ ઠર્યું કે જ્ઞાન જ ધાર છે, કારણ કે જાણનક્રિયા અને જ્ઞાન જુદાં નથી. આ રીતે એમ સિદ્ધ થયું કે ન જ્ઞાનમાં જ છે. એવી જ રીતે ક્રોધ ક્રોધમાં જ છે.) વળી ક્રોધાદિકમાં, કર્મમાં નોકર્મમાં જ્ઞાન નથી અને જ્ઞાનમાં ક્રોધાદિક, કર્મ કે નોકર્મ નથી કારણ કે તેમને સ્પર અત્યંત સ્વરૂપ-વિપરીતતા હોવાથી (અર્થાત્ જ્ઞાનનું સ્વરૂપ અને ક્રોધાદિક જ કર્મ-નોકર્મનું સ્વરૂપ અત્યંત વિરુદ્ધ હોવાથી) તેમને પરમાર્થભૂત આધા-ધેયસંબંધ નથી. વળી જ્ઞાનનું સ્વરૂપ જેમ જાણનક્રિયા છે તેમ (જ્ઞાનનું સ્વરૂપ) ધાદિક્રિયા પણ છે એમ, અને ક્રોધાદિકનું સ્વરૂપ જેમ ક્રોધાદિક્રિયા છે તેમ (ક્રોધા-કનું સ્વરૂપ) જાણનક્રિયા પણ છે એમ કોઈ રીતે સ્થાપી શકાતું નથી; કારણ કે ણનક્રિયા અને ક્રોધાદિક્રિયા ભિન્ન ભિન્ન સ્વભાવે પ્રકાશે છે અને એ રીતે સ્વભાવો ન્ન હોવાથી વસ્તુઓ ભિન્ન જ છે. આ રીતે જ્ઞાનને અને અજ્ઞાનને (ક્રોધાદિકને) ાધારાધેયપણું નથી.

વળી વિશેષ સમજાવવામાં આવે છેઃ—જ્યારે એક જ આકાશને પોતાની દ્ધિમાં સ્થાપીને (આકાશનો) આધારાધેયભાવ વિચારવામાં આવે ત્યારે આકાશને કીનાં અન્ય દ્રવ્યોમાં આરોપવાનો નિરોધ જ હોવાથી (અર્થાત્ અન્ય દ્રવ્યોમાં ાપવાનું અશક્ય જ હોવાથી) બુદ્ધિમાં ભિન્ન આધારની અપેક્ષા પ્રભવતી નથી —રાવી શકાતી નથી, ફરી જાય છે, ઉદ્ભવતી નથી); અને તે નહિ પ્રભવતાં, 'એક

સ્વરૂપમાં નિશ્ચળ એવો આ ચૈતન્યપ્રકાશ નિજરસની અતિશયતાપૂર્વક [
ઉદય પામે છે.

ત્યાં (સંવર અધિકારની) શરૂઆતમાં જ, (ભગવાન કુંદકુંદાચાર્ય
કર્મનો સંવર કરવાનો ઉત્કૃષ્ટ ઉપાય જે ભેદવિજ્ઞાન તેની પ્રશંસા કરે છે:—

उवओगे उवओगो कोहादिसु णत्थि को वि उवओगो ।
कोहो कोहे चेव हि उवओगे णत्थि खलु कोहो ॥ १८
अट्ठवियप्पे कम्मे णोकम्मे चावि णत्थि उवओगो ।
उवओगम्मि य कम्मं णोकम्मं चावि णो अत्थि ॥ १८
एयं तु अविवरीदं णाणं जइया दु होदि जीवस्स ।
तइया ण किंचि कुव्वदि भावं उवओगसुद्धप्पा ॥ १८

उपयोगे उपयोगः क्रोधादिषु नास्ति कोऽप्युपयोगः ।
क्रोधः क्रोधे चैव हि उपयोगे नास्ति खलु क्रोधः ॥ १८१
अष्टविकल्पे कर्मणि नोकर्मणि चापि नास्त्युपयोगः ।
उपयोगे च कर्म नोकर्म चापि नो अस्ति ॥ १८२ ॥
एतत्त्वविपरीतं ज्ञानं यदा तु भवति जीवस्य ।
तदा न किंचित्करोति भावमुपयोगशुद्धात्मा ॥ १८३ ॥

અન્વયાર્થ:—[उपयोगः] ઉપયોગ [उपयोगे] ઉપયોગમાં છે, [
ક્રોધાદિકમાં [कोऽपि उपयोगः] કોઈ ઉપયોગ [नास्ति] નથી; [च] વળી
ક્રોધ [क्रोधे एव हि] ક્રોધમાં જ છે, [उपयोगे] ઉપયોગમાં [खलु]
[क्रोधः] ક્રોધ [नास्ति] નથી. [अष्टविकल्पे कर्मणि] આઠ પ્રકારનાં કર્મ [

ઉપયોગમાં ઉપયોગ, કો ઉપયોગ નહિ ક્રોધાદિમાં,
છે ક્રોધ ક્રોધ મહીં જ, નિશ્ચય ક્રોધ નહિ ઉપયોગમાં.
ઉપયોગ છે નહિ અષ્ટવિધ કર્મો અને નોકર્મમાં,
કર્મો અને નોકર્મ કંઈ પણ છે નહિ ઉપયોગમાં.
આવું અવિપરીત જ્ઞાન જ્યારે ઉદ્ભવે છે જીવને,
ત્યારે ન કંઈ પણ ભાવ તે ઉપયોગશુદ્ધાત્મા કરે.

ને રાગાદિના ભેદ પાડવાનો તીવ્ર અભ્યાસ કરવાથી ભેદજ્ઞાન પ્રગટ થાય છે મ જણાય છે કે જ્ઞાનનો સ્વભાવ તો માત્ર જાણવાનો જ છે, જ્ઞાનમાં જે રાગા-નુભવ—આકુળતારૂપ સંકલ્પવિકલ્પ—ભાસે છે તે સર્વે પુદ્ગલવિકાર છે, જડ મ જ્ઞાન અને રાગાદિના ભેદનો સ્વાદ આવે છે અર્થાત્ અનુભવ થાય છે. નાનું ભેદજ્ઞાન થાય ત્યારે આત્મા આનંદિત થાય છે કારણ કે તેને જણાય છે ને સદા જ્ઞાનસ્વરૂપ જ રહ્યો છે, રાગાદિરૂપ કદી થયો નથી." માટે આચાર્ય કહ્યું છે કે "હે સત્પુરુષો! હવે તમે મુદિત થાઓ."

ટીકાઃ—આ રીતે આ ભેદવિજ્ઞાન જ્યારે જ્ઞાનને અણુમાત્ર પણ (રાગાદિ-રૂપ) વિપરીતતા નહિ પમાડતું થકું અવિચળપણે રહે છે, ત્યારે શુદ્ધ-ઉપયોગ-મયાત્મપણા વડે જ્ઞાન કેવળ જ્ઞાનરૂપ જ રહેતું થકું જરા પણ રાગદ્વેષમોહરૂપ ભાવને કરતું નથી; તેથી (એમ સિદ્ધ થયું કે) ભેદવિજ્ઞાનથી શુદ્ધ આત્માની ઉપલબ્ધિ (અનુભવ) થાય છે અને શુદ્ધ આત્માની ઉપલબ્ધિથી રાગદ્વેષમોહનો (અર્થાત્ આ-સ્રવનો) અભાવ જેનું લક્ષણ છે એવો સંવર થાય છે. ૧૮૧—૧૮૩.

હવે પૂછે છે કે ભેદવિજ્ઞાનથી જ શુદ્ધ આત્માની ઉપલબ્ધિ (અનુભવ) કઈ રીતે થાય છે? તેના ઉત્તરરૂપ ગાથા કહે છેઃ—

जह कणयमग्गितवियं पि कणयभावं ण तं परिच्चयदि ।
तह कम्मोदयतविदो ण जहदि णाणी दु णाणित्तं ॥ १८४ ॥
एवं जाणदि णाणी अण्णाणी मुणदि रायमेवादं ।
अण्णाणतमोच्छण्णो आदसहावं अयाणंतो ॥ १८५ ॥

यथा कनकमग्नितप्तमपि कनकभावं न तं परित्यजति ।
तथा कर्मोदयतप्तो न जहाति ज्ञानी तु ज्ञानित्वम् ॥ १८४ ॥
एवं जानाति ज्ञानी अज्ञानी मनुते रागमेवात्मानम् ।
अज्ञानतमोऽवच्छन्नः आत्मस्वभावमजानन् ॥ १८५ ॥

જ્યમ અગ્નિતપ્ત સુવર્ણ પણ નિજ સ્વર્ણભાવ નહિ તજે,
ત્યમ કર્મઉદયે તપ્ત પણ જ્ઞાની ન જ્ઞાનીપણું તજે. ૧૮૪.
જીવ જ્ઞાની જાણે આમ, પણ અજ્ઞાની રાગ જ જીવ ગણે,
આત્મસ્વભાવ-અજાણ જે અજ્ઞાનતમ-આચ્છાદને. ૧૮૫.

આકાશ જ એક આકાશમાં જ પ્રતિષ્ઠિત છે' એમ બરાબર સમજી જવાય છે અ
એવું સમજી જનારને પર-આધારાધેયપણું ભાસતું નથી. એવી રીતે જ્યારે એક
પોતાની બુદ્ધિમાં સ્થાપીને (જ્ઞાનનો) આધારાધેયભાવ વિચારવામાં આવે ત્યારે
બાકીનાં અન્ય દ્રવ્યોમાં આરોપવાનો નિરોધ જ હોવાથી બુદ્ધિમાં ભિન્ન આધાર
પ્રભવતી નથી; અને તે નહિ પ્રભવતાં, 'એક જ્ઞાન જ એક જ્ઞાનમાં જ પ્રતિ
એમ બરાબર સમજી જવાય છે અને તેથી એવું સમજી જનારને પર-આધાર
ભાસતું નથી. માટે જ્ઞાન જ જ્ઞાનમાં જ છે, ક્રોધાદિક જ ક્રોધાદિકમાં જ છે

આ પ્રમાણે (જ્ઞાનનું અને ક્રોધાદિક તેમ જ કર્મ-નોકર્મનું) ભેદ
ભલી રીતે સિદ્ધ થયું.

ભાવાર્થ:—ઉપયોગ તો ચૈતન્યનું પરિણમન હોવાથી જ્ઞાનસ્વરૂપ છે
ક્રોધાદિ ભાવકર્મ, જ્ઞાનાવરણાદિ દ્રવ્યકર્મ, શરીરાદિ નોકર્મ—એ બધાંય પુદ્ગલ
પરિણામ હોવાથી જડ છે; તેમને અને જ્ઞાનને પ્રદેશભેદ હોવાથી અત્યંત ભેદ છે
ઉપયોગમાં ક્રોધાદિક, કર્મ તથા નોકર્મ નથી અને ક્રોધાદિકમાં, કર્મમાં તથા નો
ઉપયોગ નથી. આ રીતે તેમને પારમાર્થિક આધારાધેયસંબંધ નથી; દરેક
પોતપોતાનું આધારાધેયપણું પોતપોતામાં જ છે. માટે ઉપયોગ ઉપયોગમાં જ છે
ક્રોધમાં જ છે. આ રીતે ભેદવિજ્ઞાન બરાબર સિદ્ધ થયું. (ભાવકર્મ વગેરે
ઉપયોગનો ભેદ જાણવો તે ભેદવિજ્ઞાન છે.)

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

चैद्रूप्यं जडरूपतां च दधतोः कृत्वा विभागं द्वयो-
रन्तर्दारुणदारणेन परितो ज्ञानस्य रागस्य च ।
भेदज्ञानमुदेति निर्मलमिदं मोदध्वमध्यासिताः
शुद्धज्ञानघनौघमेकमधुना संतो द्वितीयच्युताः ॥ १२६ ॥

અર્થ:—ચિદ્રૂપતા (ચૈતન્યરૂપતા) ધરતું જ્ઞાન અને જડરૂપતા ધરતો
એ બન્નેનો, અંતરંગમાં દારુણ વિદારણ વડે (અર્થાત્ ભેદ પાડવાના ઉગ્ર
વડે), ચોતરફથી વિભાગ કરીને (—સમસ્ત પ્રકારે બન્નેને જુદાં કરીને—), આ
ભેદજ્ઞાન ઉદય પામ્યું છે; માટે હવે એક શુદ્ધ વિજ્ઞાનઘનના પુંજમાં સ્થિત
બીજાથી એટલે રાગથી રહિત એવા હે સત્પુરુષો! તમે મુદિત થાઓ.

ભાવાર્થ:—જ્ઞાન તો ચેતનાસ્વરૂપ છે અને રાગાદિક પુદ્ગલવિકાર છે
જડ છે; પરંતુ અજ્ઞાનથી, જાણે કે જ્ઞાન પણ રાગાદિરૂપ થઈ ગયું હોય એમ
છે અર્થાત્ જ્ઞાન અને રાગાદિ બન્ને એકરૂપ—જડરૂપ—ભાસે છે. માટે અં

सुद्धं तु वियाणंतो सुद्धं चेवप्पयं लहइ जीवो ।
जाणंतो दु असुद्धं असुद्धमेवप्पयं लहइ ॥ १८६ ॥

शुद्धं तु विजानन् शुद्धं चैवात्मानं लभते जीवः ।
जानंस्त्वशुद्धमशुद्धमेवात्मानं लभते ॥ १८६ ॥

અન્વયાર્થ:—[शुद्धं तु] શુદ્ધ આત્માને [विजानन्] જાણતો—અનુભવતો
[जीवः] જીવ [शुद्धं च एव आत्मानं] શુદ્ધ આત્માને જ [लभते] પામે છે [तु]
[अशुद्धं] અશુદ્ધ [आत्मानं] આત્માને [जानन्] જાણતો—અનુભવતો જીવ
[अशुद्धं एव] અશુદ્ધ આત્માને જ [लभते] પામે છે.

ટીકા:—જે સદાય અચ્છિન્નધારાવાહી જ્ઞાનથી શુદ્ધ આત્માને અનુભવ્યા કરે
, 'જ્ઞાનમય ભાવમાંથી જ્ઞાનમય ભાવ જ થાય છે' એ ન્યાયે આગામી કર્મના
[આસ્]રવણનું નિમિત્ત જે રાગદ્વેષમોહની સંતતિ (પરંપરા) તેનો નિરોધ થવાથી, શુદ્ધ
[આત્]માને જ પામે છે; અને જે સદાય અજ્ઞાનથી અશુદ્ધ આત્માને અનુભવ્યા કરે છે
'અજ્ઞાનમય ભાવમાંથી અજ્ઞાનમય ભાવ જ થાય છે' એ ન્યાયે આગામી કર્મના
[આસ્]રવણનું નિમિત્ત જે રાગદ્વેષમોહની સંતતિ તેનો નિરોધ નહિ થવાથી, અશુદ્ધ આ-
[ત્મા]ને જ પામે છે. માટે શુદ્ધ આત્માની ઉપલબ્ધિથી (અનુભવથી) જ સંવર થાય છે.

ભાવાર્થ:—જે જીવ અખંડધારાવાહી જ્ઞાનથી આત્માને નિરંતર શુદ્ધ અનુ-
[ભવ્યા] કરે છે તેને રાગદ્વેષમોહરૂપી ભાવાસ્રવો રોકાય છે તેથી તે શુદ્ધ આત્માને પામે
અને જે જીવ અજ્ઞાનથી આત્માને અશુદ્ધ અનુભવે છે તેને રાગદ્વેષમોહરૂપી ભાવા-
[સ્રવો] રોકાતા નથી તેથી તે અશુદ્ધ આત્માને જ પામે છે. આ રીતે સિદ્ધ થયું કે શુદ્ધ
[આત્]માની ઉપલબ્ધિથી (અનુભવથી) જ સંવર થાય છે.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(માલિની)

यदि कथमपि धारावाहिना बोधनेन
ध्रुवमुपलभमानः शुद्धमात्मानमास्ते ।
तदयमुदयदात्मारामात्मानमात्मा
परपरिणतिरोधाच्छुद्धमेवाभ्युपैति ॥ १२७ ॥

જે શુદ્ધ જાણે આત્મને તે શુદ્ધ આત્મ જ મેળવે;
અણશુદ્ધ જાણે આત્મને અણશુદ્ધ આત્મ જ તે લહે. ૧૮૬.

અન્વયાર્થઃ—[यथा] જેમ [कनकं] સુવર્ણ [अग्नितप्तं अपि] તપ્ત થયું થકું પણ [तं] તેના [कनकभावं] સુવર્ણપણાને [न ... નથી [तथा] તેમ [ज्ञानी] જ્ઞાની [कर्मोदयतप्तः तु] કર્મના ઉદયથી તપ્ત થકો પણ [ज्ञानित्वं] જ્ઞાનીપણાને [न जहाति] છોડતો નથી.—[... [ज्ञानी] જ્ઞાની [जानाति] જાણે છે, [अज्ञानी] અને અજ્ઞાની [... અજ્ઞાન-અંધકારથી આચ્છાદિત હોવાથી [आत्मस्वभावं] આત્માના ... [अजानन्] નહિ જાણતો થકો [रागं एव] રાગને જ [आत्मानं] આત્મા ... માને છે.

ટીકાઃ—જેને ઉપર કહ્યું તેવું ભેદવિજ્ઞાન છે તે જ તેના (ભે... સદ્‌ભાવથી જ્ઞાની થયો થકો આ પ્રમાણે જાણે છેઃ—જેમ પ્રચંડ અગ્નિ વડે તપ્ત થયું પણ સુવર્ણ સુવર્ણત્વ છોડતું નથી તેમ પ્રચંડ કર્મોદય વડે ઘેરાયું થ... (અર્થાત્ વિઘ્ન કરવામાં આવતાં છતાં પણ) જ્ઞાન જ્ઞાનત્વ છોડતું નથી, કેમ... કારણો ભેગા થવા છતાં સ્વભાવને છોડવો અશક્ય છે; કારણ કે તેને છોડતાં સ્... માત્ર વસ્તુનો જ ઉચ્છેદ થાય, અને વસ્તુનો ઉચ્છેદ તો થતો નથી કારણ કે... નાશનો અસંભવ છે. આવું જાણતો થકો જ્ઞાની કર્મથી આક્રાંત (ઘેરાયેલો, આ... પામેલો) હોવા છતાં પણ રાગી થતો નથી, દ્વેષી થતો નથી, મોહી થતો નથી... શુદ્ધ આત્માને જ અનુભવે છે. અને જેને ઉપર કહ્યું તેવું ભેદવિજ્ઞાન નથી તે તેના... ભાવથી અજ્ઞાની થયો થકો, અજ્ઞાન-અંધકાર વડે આચ્છાદિત હોવાથી ચૈતન્યસ્... માત્ર આત્મસ્વભાવને નહિ જાણતો થકો, રાગને જ આત્મા માનતો થકો, રા... છે, દ્વેષી થાય છે, મોહી થાય છે, પરંતુ શુદ્ધ આત્માને બિલકુલ અનુભવતો... માટે એમ સિદ્ધ થયું કે ભેદવિજ્ઞાનથી જ શુદ્ધ આત્માની ઉપલબ્ધિ (અનુભવ)...

ભાવાર્થઃ—જેને ભેદવિજ્ઞાન થયું છે તે આત્મા જાણે છે કે 'આ... જ્ઞાનસ્વભાવથી છૂટતો નથી.' આવું જાણતો હોવાથી તે, કર્મના ઉદય વડે ત... થકો પણ, રાગી, દ્વેષી, મોહી થતો નથી પરંતુ નિરંતર શુદ્ધ આત્માને અનુ... જેને ભેદવિજ્ઞાન નથી તે આત્મા, આત્માના જ્ઞાનસ્વભાવને નહિ જાણતો થકો... જ આત્મા માને છે તેથી તે રાગી, દ્વેષી, મોહી થાય છે પરંતુ કદી શુદ્ધ આ... અનુભવતો નથી. માટે એ નક્કી થયું કે ભેદવિજ્ઞાનથી જ શુદ્ધ આત્માની ઉ... થાય છે. ૧૮૪—૧૮૫

હવે પૂછે છે કે શુદ્ધ આત્માની ઉપલબ્ધિથી જ સંવર કઈ રીતે ... તેનો ઉત્તર કહે છેઃ—

आत्मानमात्मना रुन्ध्वा द्विपुण्यपापयोगयोः ।
दर्शनज्ञाने स्थितः इच्छाविरतश्चान्यस्मिन् ॥ १८७ ॥

यः सर्वसंगमुक्तो ध्यायत्यात्मानमात्मनात्मा ।
नापि कर्म नोकर्म चेतयिता चिंतयत्येकत्वम् ॥ १८८ ॥

आत्मानं ध्यायन् दर्शनज्ञानमयोऽनन्यमयः ।
लभतेऽचिरेणात्मानमेव स कर्मप्रविमुक्तम् ॥ १८९ ॥

અન્વયાર્થ:—[आत्मानं] આત્માને [आत्मना] આત્મા વડે [द्विपुण्य- ...गयोः] બે પુણ્ય-પાપરૂપ શુભાશુભયોગોથી [रुन्ध्वा] રોકીને [दर्शनज्ञाने] ...જ્ઞાનમાં [स्थितः] સ્થિત થયો થકો [च] અને [अन्यस्मिन्] અન્ય (વસ્તુ)ની ...छाविरतः] ઇચ્છાથી વિરમ્યો થકો, [यः आत्मा] જે આત્મા, [सर्वसंगमुक्तः] ...રહિત થવાથી) સર્વ સંગથી રહિત થયો થકો, [आत्मानं] (પોતાના) આત્માને ...त्मना] આત્મા વડે [ध्यायति] ધ્યાવે છે—[कर्म नोकर्म] કર્મ અને નોકર્મને ...अपि] ધ્યાતો નથી, [चेतयिता] (પોતે) *ચેતયિતા (હોવાથી) [एकत्वं] ...ને જ [चिंतयति] ચિંતવે છે—ચેતે છે—અનુભવે છે, [सः] તે (આત્મા), ...त्मानं ध्यायन्] આત્માને ધ્યાતો, [दर्शनज्ञानमयः] દર્શનજ્ઞાનમય [अनन्यमयः] અનન્યમય થયો થકો [अचिरेण एव] અલ્પ કાળમાં જ [कर्मप्रविमुक्तं] કર્મથી ... [आत्मानं] આત્માને [लभते] પામે છે.

ટીકા:—રાગદ્વેષમોહ જેનું મૂળ છે એવા શુભાશુભ યોગમાં વર્તતો જે જીવ, ...ર (ગાથા ૬૬) ભેદવિજ્ઞાનના અવલંબનથી આત્માને આત્મા વડે જ અત્યંત ...ને, શુદ્ધદર્શનજ્ઞાનરૂપ આત્મદ્રવ્યમાં સારી રીતે પ્રતિષ્ઠિત (સ્થિર) કરીને, સમસ્ત ...દ્રવ્યની ઇચ્છાના ત્યાગ વડે સર્વ સંગથી રહિત થઈને, નિરંતર અતિ નિષ્કંપ વર્તતો ...ક કર્મ-નોકર્મનો જરા પણ સ્પર્શ કર્યા વિના પોતાના આત્માને જ આત્મા વડે ...તો થકો, પોતાને સહજ ચેતયિતાપણું હોવાથી એકત્વને જ ચેતે છે (-જ્ઞાનચેતના- ...રે છે), તે જીવ ખરેખર, એકત્વ-ચેતન વડે અર્થાત્ એકત્વના અનુભવન વડે ...દ્રવ્યથી) અત્યંત ભિન્ન ચૈતન્યચમત્કારમાત્ર આત્માને ધ્યાતો, શુદ્ધદર્શનજ્ઞાનમય

ચેતયિતા = ચેતનાર; દેખનાર-જાણનાર.

અનન્યમય = અન્યમય નહિ એવો

ચેતવું = અનુભવવું; દેખવું-જાણવું

અર્થ:—જો કોઈ પણ રીતે (તીવ્ર પુરુષાર્થ કરીને)
આત્માને નિશ્ચળપણે અનુભવ્યા કરે તો આ આત્મા, જેનો
જાય છે (અર્થાત્ જેની આત્મસ્થિરતા વધતી જાય છે) એવા
નિરોધથી શુદ્ધ જ પ્રાપ્ત કરે છે.

ભાવાર્થ:—ધારાવાહી જ્ઞાન વડે શુદ્ધ આત્માને અનુ
પરપરિણતિનો (ભાવાસ્રવોનો) નિરોધ થાય છે અને તેથી શુદ્ધ આ

ધારાવાહી જ્ઞાન એટલે પ્રવાહરૂપ જ્ઞાન—અતૂટક જ્ઞાન
છે:—એક તો, જેમાં વચ્ચે મિથ્યાજ્ઞાન ન આવે એવું સમ્યગ્જ્ઞા
બીજું, એક જ જ્ઞેયમાં ઉપયોગના ઉપયુક્ત રહેવાની અપેક્ષાએ
કહેવામાં આવે છે, અર્થાત્ જ્યાંસુધી ઉપયોગ એક જ્ઞેયમાં ઉપ
ધારાવાહી જ્ઞાન કહેવાય છે; આની સ્થિતિ (છદ્મસ્થને) અંતર્મુ
ખંડિત થાય છે. આ બે અર્થમાંથી જ્યાં જેવી વિવક્ષા હોય
અવિરતસમ્યગ્દૃષ્ટિ વગેરે નીચેનાં ગુણસ્થાનવાળા જીવોને મુખ્યત્વે
પડે. શ્રેણી ચડનાર જીવને મુખ્યત્વે બીજી અપેક્ષા લાગુ પડે કા
શુદ્ધ આત્મામાં જ ઉપયુક્ત છે. ૧૮૬.

હવે પૂછે છે કે સંવર કયા પ્રકારે થાય છે? તેનો ઉત્તર

अप्पाणमप्पणा रुंधिऊण दोपुण्णपावजोएसु ।
दंसणणाणह्मि ठिदो इच्छाविरदो य अण्णह्मि
जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणा अ
णवि कम्मं णोकम्मं चेदा चिंतेदि एयत्तं ॥
अप्पाणं झायंतो दंसणणाणमओ अणण्णमओ
लहइ अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मपविमुक्कं

પુણ્યપાપયોગથી રોકીને નિજ આત્મને આત્મા
દર્શન અને જ્ઞાને ઠરી, પરદ્રવ્યઇચ્છા પરિ
જે સર્વસંગવિમુક્ત, ધ્યાવે આત્મને આત્મા વ
—નહિ કર્મ કે નોકર્મ, ચેતક ચેતનો એકત્વ
ને આત્મ ધ્યાનો, જ્ઞાનદર્શનમય, અનન્યમયી
બસ અલ્પ કાળે કર્મથી પ્રવિમુક્ત આત્માને

हेउअभावे णियमा जायइ णाणिस्स आसवणिरोहो ।
आसवभावेण विणा जायइ कम्मस्स वि णिरोहो ॥ १९१ ॥

कम्मस्स अभावेण य णोकम्माणं पि जायइ णिरोहो ।
णोकम्मणिरोहेण य संसारणिरोहणं होइ ॥ १९२ ॥

तेषां हेतवो भणिता अध्यवसानानि सर्वदर्शिभिः ।
मिथ्यात्वमज्ञानमविरतभावश्च योगश्च ॥ १९० ॥
हेत्वभावे नियमाज्जायते ज्ञानिन आस्रवनिरोधः ।
आस्रवभावेन विना जायते कर्मणोऽपि निरोधः ॥ १९१ ॥
कर्मणोऽभावेन च नोकर्मणामपि जायते निरोधः ।
नोकर्मनिरोधेन च संसारनिरोधनं भवति ॥ १९२ ॥

અન્વયાર્થઃ—[तेषां] તેમના (પૂર્વે કહેલા રાગદ્વેષમોહરૂપ આસ્રવોના) [हेतवः] હેતુઓ [सर्वदर्शिभिः] સર્વદર્શીઓએ [मिथ्यात्वं] મિથ્યાત્વ, [अज्ञानं] અજ્ઞાન, [अविरतभावः च] અવિરતભાવ [योगः च] અને યોગ—[अध्यवसानानि] (એ ચાર) અધ્યવસાન [भणिताः] કહ્યા છે. [ज्ञानिनः] જ્ઞાનીને [हेत्वभावे] હેતુઓના અભાવે [नियमात्] નિયમથી [आस्रवनिरोधः] આસ્રવનો નિરોધ [जायते] થાય છે, [आस्रवभावेन विना] આસ્રવભાવ વિના [कर्मणः अपि] કર્મનો પણ [निरोधः] નિરોધ [जायते] થાય છે, [च] વળી [कर्मणः अभावेन] કર્મના અભાવથી [नोकर्मणाम् अपि] નોકર્મોનો પણ [निरोधः] નિરોધ [जायते] થાય છે [च] અને [नोकर्मनिरोधेन] નોકર્મના નિરોધથી [संसारनिरोधनं] સંસારનો નિરોધ [भवति] થાય છે.

ટીકાઃ—પ્રથમ તો જીવને, આત્મા અને કર્મના એકત્વનો અધ્યાસ (અભ્યાસ) જેનું મૂળ છે એવાં મિથ્યાત્વ-અજ્ઞાન-અવિરતિ-યોગસ્વરૂપ અધ્યવસાનો

હેતુઅભાવે જરૂર આસ્રવરોધ જ્ઞાની થાય છે,
આસ્રવભાવ વિના વળી રોધન કરમનું થાય છે;
કર્મોતણા ય અભાવથી નોકર્મનું રોધન અને,
નોકર્મના રોધન થકી સંસારસંરોધન બને.

આત્મદ્રવ્યને પ્રાપ્ત થયો થકો, શુદ્ધ આત્માની ઉપલબ્ધિ (પ્રાપ્તિ) થ
દ્રવ્યમયપણાથી અતિક્રાંત થયો થકો, અલ્પ કાળમાં જ સર્વ કર્મથી
પામે છે. આ સંવરનો પ્રકાર (રીત) છે.

ભાવાર્થ:—જે જીવ પ્રથમ તો રાગદ્વેષમોહ સાથે મળેલા
શુભાશુભ યોગોથી પોતાના આત્માને ભેદજ્ઞાનના બળ વડે ચળવા ન
શુદ્ધદર્શનજ્ઞાનમય આત્મસ્વરૂપમાં નિશ્ચળ કરે અને સમસ્ત બાહ્ય-અભ્યં
રહિત થઈને કર્મ-નોકર્મથી ભિન્ન પોતાના સ્વરૂપમાં એકાગ્ર થઈ તેને
કરે અર્થાત્ તેના જ ધ્યાનમાં રહે, તે જીવ આત્માને ધ્યાવાથી દર્શનજ્ઞા
અને પરદ્રવ્યમયપણાને ઓળંગી ગયો થકો અલ્પ કાળમાં જ સમસ્ત
થાય છે. આ સંવર થવાની રીત છે.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(માલિની)

निजमहिमरतानां भेदविज्ञानशक्त्या
भवति नियतमेषां शुद्धतत्त्वोपलम्भः ।
अचलितमखिलान्यद्रव्यदूरेस्थितानां
भवति सति च तस्मिन्नक्षयः कर्ममोक्षः ॥ १२८

અર્થ:—જેઓ ભેદવિજ્ઞાનની શક્તિ વડે નિજ (સ્વરૂપના)
રહે છે તેમને નિયમથી (ચોક્કસ) શુદ્ધ તત્ત્વની ઉપલબ્ધિ થાય છે;
ઉપલબ્ધિ થતાં, અચલિતપણે સમસ્ત અન્યદ્રવ્યોથી દૂર વર્તતા એવા
કર્મનાશ થાય છે (અર્થાત્ ફરીને કદી કર્મબંધ ન થાય એવો
થાય છે). ૧૮૭—૧૮૯.

હવે પૂછે છે કે સંવર કયા ક્રમે થાય છે? તેનો ઉત્તર કહે છે:—

तेसिं हेऊ भणिया अज्झवसाणाणि सव्वदरसीहिं
मिच्छत्तं अण्णाणं अविरयभावो य जोगो य ॥

રાગાદિના હેતુ કહે સર્વજ્ઞ અધ્યવસાનને,
—મિથ્યાત્વ ને અજ્ઞાન, અવિરતભાવ તેમ જ યોગને

ભાવાર્થ:—જીવને જ્યારે ભેદવિજ્ઞાન થાય છે અર્થાત્ જીવ જ્યારે આત્માને અને કર્મને યથાર્થપણે ભિન્ન જાણે છે ત્યારે તે શુદ્ધ આત્માને અનુભવે છે, શુદ્ધ આત્માના અનુભવથી આસ્રવભાવ રોકાય છે અને અનુક્રમે સર્વ પ્રકારે સંવર થાય છે. માટે ભેદવિજ્ઞાનને અત્યંત ભાવવાનો ઉપદેશ કર્યો છે.

હવે, ભેદવિજ્ઞાન ક્યાં સુધી ભાવવું તે કાવ્યદ્વારા કહે છે:—

(અનુષ્ટુપ્)

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया ।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते ॥ १३० ॥

અર્થ:—આ ભેદવિજ્ઞાન અચ્છિન્ન-ધારાથી (અર્થાત્ જેમાં વિચ્છેદ ન પડે એવા અખંડ પ્રવાહરૂપે) ત્યાંસુધી ભાવવું કે જ્યાંસુધી પરભાવોથી છૂટી જ્ઞાન જ્ઞાનમાં જ (પોતાના સ્વરૂપમાં જ) ઠરી જાય.

ભાવાર્થ:—અહીં જ્ઞાનનું જ્ઞાનમાં ઠરવું બે પ્રકારે જાણવું. એક તો, મિથ્યાત્વનો અભાવ થઈ સમ્યગ્જ્ઞાન થાય અને ફરી મિથ્યાત્વ ન આવે ત્યારે જ્ઞાન જ્ઞાનમાં ઠર્યું કહેવાય; બીજું, જ્યારે જ્ઞાન શુદ્ધોપયોગરૂપે સ્થિર થઈ જાય અને ફરી અન્યવિકારરૂપે ન પરિણમે ત્યારે તે જ્ઞાનમાં ઠરી ગયું કહેવાય. જ્યાંસુધી બન્ને પ્રકારે જ્ઞાન જ્ઞાનમાં ન ઠરી જાય ત્યાંસુધી ભેદવિજ્ઞાન ભાવ્યા કરવું.

ફરીને ભેદવિજ્ઞાનનો મહિમા કહે છે:—

(અનુષ્ટુપ્)

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन ।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ॥ १३१ ॥

અર્થ:—જે કોઈ સિદ્ધ થયા છે તે ભેદવિજ્ઞાનથી સિદ્ધ થયા છે; જે કોઈ બંધાયા છે તે તેના જ (ભેદવિજ્ઞાનના જ) અભાવથી બંધાયા છે.

ભાવાર્થ:—અનાદિ કાળથી માંડીને જ્યાંસુધી જીવને ભેદવિજ્ઞાન નથી ત્યાંસુધી તે કર્મથી બંધાયા જ કરે છે—સંસારમાં રઝળ્યા જ કરે છે; જે જીવને ભેદવિજ્ઞાન થાય છે તે કર્મથી છૂટે જ છે—મોક્ષ પામે જ છે. માટે કર્મબંધનું—સંસારનું—મૂળ ભેદવિજ્ઞાનનો અભાવ જ છે અને મોક્ષનું પ્રથમ કારણ ભેદવિજ્ઞાન જ છે. ભેદવિજ્ઞાન વિના કોઈ સિદ્ધિ પામી શકતું નથી.

અહીં આમ પણ જાણવું કે—વિજ્ઞાનાદ્વૈતવાદી બૌદ્ધો અને વેદાન્તીઓ કે જેઓ વસ્તુને અદ્વૈત કહે છે અને અદ્વૈતના અનુભવથી જ સિદ્ધિ કહે છે તેમનો, ભેદવિજ્ઞાનથી જ સિદ્ધિ કહેવાથી, નિષેધ થયો; કારણ કે સર્વથા અદ્વૈત વસ્તુનું સ્વરૂપ

વિદ્યમાન છે, તેઓ રાગદ્વેષમોહસ્વરૂપ આસ્રવભાવનાં કારણ છે; આસ્રવભાવ કર્મ-
કારણ છે; કર્મ નોકર્મનું કારણ છે; અને નોકર્મ સંસારનું કારણ છે. માટે—સદા-
આત્મા, આત્મા ને કર્મના એકપણાના અધ્યાસથી મિથ્યાત્વ-અજ્ઞાન-અવિરતિ-યો-
આત્માને માને છે (અર્થાત્ મિથ્યાત્વાદિ અધ્યવસાન કરે છે); તેથી રાગદ્વેષમોહ-
આસ્રવભાવને ભાવે છે; તેથી કર્મ આસ્રવે છે; તેથી નોકર્મ થાય છે; અને તેથી
ઉત્પન્ન થાય છે. પરંતુ જ્યારે (તે આત્મા), આત્મા ને કર્મના ભેદવિજ્ઞાન વડે
ચૈતન્યચમત્કારમાત્ર આત્માને ઉપલબ્ધ કરે છે—અનુભવે છે ત્યારે મિથ્યાત્વ, અ-
અવિરતિ અને યોગસ્વરૂપ અધ્યવસાનો કે જે આસ્રવભાવનાં કારણો છે તેમનો અ-
થાય છે; અધ્યવસાનોનો અભાવ થતાં રાગદ્વેષમોહરૂપ આસ્રવભાવનો અભાવ થા-
આસ્રવભાવનો અભાવ થતાં કર્મનો અભાવ થાય છે; કર્મનો અભાવ થતાં -
અભાવ થાય છે; અને નોકર્મનો અભાવ થતાં સંસારનો અભાવ થાય છે. આ પ્ર-
આ સંવરનો ક્રમ છે.

ભાવાર્થ:—જીવને જ્યાંસુધી આત્મા ને કર્મના એકપણાનો આશ-
ભેદવિજ્ઞાન નથી ત્યાંસુધી મિથ્યાત્વ, અજ્ઞાન, અવિરતિ અને યોગસ્વરૂપ અધ્ય-
વર્તે છે, અધ્યવસાનથી રાગદ્વેષમોહરૂપ આસ્રવભાવ થાય છે, આસ્રવભાવથી
બંધાય છે, કર્મથી શરીરાદિ નોકર્મ ઉત્પન્ન થાય છે અને નોકર્મથી સંસાર છે.
જ્યારે તેને આત્મા ને કર્મનું ભેદવિજ્ઞાન થાય છે ત્યારે શુદ્ધ આત્માની ઉપ-
થવાથી મિથ્યાત્વાદિ અધ્યવસાનોનો અભાવ થાય છે, અધ્યવસાનના અભાવથી રા-
દ્વેષમોહરૂપ આસ્રવનો અભાવ થાય છે, આસ્રવના અભાવથી કર્મ બંધાતાં નથી,
અભાવથી શરીરાદિ નોકર્મ ઉત્પન્ન થતાં નથી અને નોકર્મના અભાવથી સં-
અભાવ થાય છે.—આ પ્રમાણે સંવરનો અનુક્રમ જાણવો.

સંવર થવાના ક્રમમાં સંવરનું પહેલું જ કારણ ભેદવિજ્ઞાન કહ્યું છે
ભાવનાના ઉપદેશનું કાવ્ય હવે કહે છે:—

(ઉપજાતિ)

संपद्यते संवर एष साक्षा-
च्छुद्धात्मतत्त्वस्य किलोपलंभात् ।
स भेदविज्ञानत एव तस्मात्
तद्भेदविज्ञानमतीव भाव्यम् ॥ १२९ ॥

અર્થ:—આ સાક્ષાત્ (સર્વ પ્રકારે) સંવર ખરેખર શુદ્ધ આત્મતત્ત્-
ઉપલબ્ધિથી થાય છે; અને તે શુદ્ધ આત્મતત્ત્વની ઉપલબ્ધિ ભેદવિજ્ઞાનથી જ થા-
માટે તે ભેદવિજ્ઞાન અત્યંત ભાવવાયોગ્ય છે.

— ૬ —

નિર્જરા અધિકાર

રાગાદિકના રોધથી, નવો બંધ હણી સંત;
પૂર્વ ઉદયમાં સમ રહે, નમું નિર્જરાવંત.

પ્રથમ ટીકાકાર આચાર્યમહારાજ કહે છે કે "હવે નિર્જરા પ્રવેશ કરે છે." હીં તત્ત્વોનું નૃત્ય છે; તેથી જેમ નૃત્યના અખાડામાં નૃત્ય કરનાર સ્વાંગ ધારણ કરીને વેશ કરે છે તેમ અહીં રંગભૂમિમાં નિર્જરાનો સ્વાંગ પ્રવેશ કરે છે.

હવે, સર્વ સ્વાંગને યથાર્થ જાણનારું જે સમ્યગ્જ્ઞાન છે તેને મંગળરૂપ જાણીને ાચાર્યદેવ મંગળ અર્થે પ્રથમ તેને જ—નિર્મળ જ્ઞાનજ્યોતિને જ—પ્રગટ કરે છેઃ—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

रागाद्यास्रवरोधतो निजधुरां धृत्वा परः संवरः
कर्मागामि समस्तमेव भरतो दूरान्निरुंधन् स्थितः ।
प्राग्बद्धं तु तदेव दग्धुमधुना व्याजृम्भते निर्जरा
ज्ञानज्योतिरपावृतं न हि यतो रागादिभिर्मूर्छति ॥ १३३ ॥

અર્થઃ—પરમ સંવર, રાગાદિ આસ્રવોને રોકવાથી પોતાની કાર્ય-ધુરાને ધારણ ીને (પોતાના કાર્યને બરાબર સંભાળીને), સમસ્ત આગામી કર્મને અત્યંતપણે થી જ રોકતો ઊભો છે; અને જે પૂર્વે (સંવર થયા પહેલાં) બંધાયેલું કર્મ છે તેને ાળવાને હવે નિર્જરા (–નિર્જરારૂપી અગ્નિ–) ફેલાય છે કે જેથી જ્ઞાનજ્યોતિ નિરા-ણ થઈ થકી (ફરીને) રાગાદિભાવો વડે મૂર્છિત થતી નથી—સદા અમૂર્છિત રહે છે.

ભાવાર્થઃ—સંવર થયા પછી નવાં કર્મ તો બંધાતાં નથી. જે પૂર્વે બંધાયાં ાં તે કર્મો જ્યારે નિર્જરે છે ત્યારે જ્ઞાનનું આવરણ દૂર થવાથી જ્ઞાન એવું થાય છે ફરીને રાગાદિરૂપે પરિણમતું નથી—સદા પ્રકાશરૂપ જ રહે છે.

નહિ હોવા છતાં જેઓ સર્વથા અદ્વૈત માને છે તેમને ભેદવિજ્ઞાન કોઈ રીતે [illegible] જ નથી; જ્યાં દ્વૈત જ—બે વસ્તુઓ જ—માનતા નથી ત્યાં ભેદવિજ્ઞાન [illegible] દ્રવ્ય અને અદ્રવ્ય—બે વસ્તુઓ માનવામાં આવે અને તેમનો સંયોગ [illegible] તો જ ભેદવિજ્ઞાન બની શકે અને સિદ્ધિ થઈ શકે. માટે સ્યાદ્વાદીઓને [illegible] નિર્બાધપણે સિદ્ધ થાય છે.

હવે, સંવર અધિકાર પૂર્ણ કરતાં, સંવર થવાથી જે જ્ઞાન થયું [illegible] મહિમાનું કાવ્ય કહે છે:—

(મંદાક્રાંતા)

भेदज्ञानोच्छलनकलनाच्छुद्धतत्त्वोपलम्भा-
द्रागग्रामप्रलयकरणात्कर्मणां संवरेण ।
बिभ्रत्तोषं परमममलालोकमम्लानमेकं
ज्ञानं ज्ञाने नियतमुदितं शाश्वतोद्योतमेतत् ॥ १३२ ॥

અર્થઃ—ભેદજ્ઞાન પ્રગટ કરવાના અભ્યાસથી શુદ્ધ તત્ત્વની [illegible] શુદ્ધ તત્ત્વની ઉપલબ્ધિથી રાગના સમૂહનો વિલય થયો, રાગના સમૂહના વિલય [illegible] કર્મોનો સંવર થયો અને કર્મોનો સંવર થવાથી, જ્ઞાનમાં જ નિશ્ચળ થયેલું [illegible] ઉદય પામ્યું—કે જે જ્ઞાન પરમ સંતોષને (અર્થાત્ પરમ અતીંદ્રિય [illegible]) ધારણ કરે છે, જેનો પ્રકાશ નિર્મળ છે (અર્થાત્ રાગાદિકને લીધે મલિનતા [illegible]), જે અમ્લાન છે (અર્થાત્ ક્ષાયોપશમિક જ્ઞાનની માફક કરમાયેલું [illegible] લોકાલોકને જાણનારું છે), જે એક છે (અર્થાત્ ક્ષયોપશમથી [illegible]) અને જેનો ઉદ્યોત શાશ્વત છે (અર્થાત્ જેનો પ્રકાશ અવિનાશી [illegible]).

ટીકાઃ—આ રીતે સંવર (રંગભૂમિમાંથી) બહાર નીકળી ગયો.

ભાવાર્થઃ—રંગભૂમિમાં સંવરનો વેશ આવ્યો હતો તેને [illegible] બહાર નીકળી ગયો. ૧૨૮—૧૩૧.

[illegible]

[illegible]

ભાવાર્થ:—જેમ વૈદ્ય મંત્ર, તંત્ર, ઔષધ આદિ પોતાની વિદ્યાના સામર્થ્યથી ી મરણ કરવાની શક્તિનો અભાવ કરે છે તેથી વિષ ખાવા છતાં તેનું મરણ થતું , તેમ જ્ઞાનીને જ્ઞાનનું સામર્થ્ય એવું છે કે કર્મોદયની બંધ કરવાની શક્તિનો વ કરે છે અને તેથી કર્મના ઉદયને ભોગવવા છતાં જ્ઞાનીને આગામી કર્મબંધ નથી. આ પ્રમાણે સમ્યગ્જ્ઞાનનું સામર્થ્ય કહ્યું. ૧૯૫.

હવે વૈરાગ્યનું સામર્થ્ય બતાવે છે:—

जह मज्जं पिबमाणो अरदिभावेण मज्जदि ण पुरिसो ।
दव्वुवभोगे अरदो णाणी वि ण बज्झदि तहेव ॥ १९६ ॥

यथा मद्यं पिबन् अरतिभावेन माद्यति न पुरुषः ।
द्रव्योपभोगेऽरतो ज्ञान्यपि न बध्यते तथैव ॥ १९६ ॥

અન્વયાર્થ:—[यथा] જેમ [पुरुषः] કોઈ પુરુષ [मद्यं] મદિરાને [अरतिभावेन] અરતિભાવે (અપ્રીતિથી) [पिबन्] પીતો થકો [न माद्यति] મત્ત થતો ી, [तथा एव] તેવી જ રીતે [ज्ञानी अपि] જ્ઞાની પણ [द्रव्योपभोगे] દ્રવ્યના ભોગ પ્રત્યે [अरतः] અરત (અર્થાત્ વૈરાગ્યભાવે) વર્તતો થકો [न बध्यते] થી) બંધાતો નથી.

ટીકા:—જેમ કોઈ પુરુષ, મદિરા પ્રત્યે જેને તીવ્ર અરતિભાવ પ્રવર્ત્યો છે વો વર્તતો થકો, મદિરાને પીતાં છતાં પણ, તીવ્ર અરતિભાવના સામર્થ્યને લીધે ત થતો નથી, તેમ જ્ઞાની પણ, રાગાદિભાવોના અભાવથી સર્વ દ્રવ્યોના ઉપભોગ ત્યે જેને તીવ્ર વૈરાગ્યભાવ પ્રવર્ત્યો છે એવો વર્તતો થકો, વિષયોને ભોગવતાં છતાં ણ, તીવ્ર વૈરાગ્યભાવના સામર્થ્યને લીધે (કર્મથી) બંધાતો નથી.

ભાવાર્થ:—એ વૈરાગ્યનું સામર્થ્ય છે કે જ્ઞાની વિષયોને સેવતો છતો પણ કર્મથી બંધાતો નથી.

હવે આ અર્થનું અને આગળની ગાથાના અર્થની સૂચનાનું કાવ્ય કહે છે—

(રથોદ્ધતા)

नाश्नुते विषयसेवनेऽपि यत्
स्वं फलं विषयसेवनस्य ना ।

જ્યમ અરતિભાવે મદ્ય પીતાં મત્ત જન બનતો નથી,
દ્રવ્યોપભોગ વિષે અરત જ્ઞાનીય બંધાતો નથી. ૧૯૬.

બંધ કર્યા વિના જ તે ભાવ નિર્જરી જાય છે તેથી તેને નિર્જરા કહી; માટે સમ્યગ્દૃષ્ટિને પરદ્રવ્ય ભોગવતાં નિર્જરા જ થાય છે. આ રીતે નિર્જરા થાય છે.

હવે આગળની ગાથાઓની સૂચનારૂપ શ્લોક કહે છે:—

(અનુષ્ટુપ્)

तज्ज्ञानस्यैव सामर्थ्यं विरागस्य च वा किल।
यत्कोऽपि कर्मभिः कर्म भुंजानोऽपि न बध्यते ॥१३४॥

અર્થ:—ખરેખર તે (આશ્ચર્યકારક) સામર્થ્ય જ્ઞાનનું જ છે અથવા વિરાગનું જ છે કે કોઈ (સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવ) કર્મને ભોગવતો છતો કર્મોથી બંધાતો નથી. (અજ્ઞાનીને તે આશ્ચર્ય ઉપજાવે છે અને જ્ઞાની તેને યથાર્થ જાણે છે.) ૧૩૪

હવે જ્ઞાનનું સામર્થ્ય બતાવે છે:—

जह विसमुवभुंजंतो वेज्जो पुरिसो ण मरणमुवयादि।
पुग्गलकम्मस्सुदयं तह भुंजदि णेव बज्झए णाणी ॥१९५॥

यथा विषमुपभुंजानो वैद्यः पुरुषो न मरणमुपयाति।
पुद्गलकर्मण उदयं तथा भुंक्ते नैव बध्यते ज्ञानी ॥१९५॥

અન્વયાર્થ:—[यथा] જેમ [वैद्यः पुरुषः] વૈદ્ય પુરુષ [विषम्] વિષને [उपभुंजानः] ભોગવતો અર્થાત્ ખાતો છતો [मरणं न उपयाति] મરણ પામતો નથી, તેમ [ज्ञानी] જ્ઞાની [पुद्गलकर्मणः] પુદ્ગલકર્મના [उदयं] ઉદયને [भुंक्ते] ભોગવે છે તોપણ [न एव बध्यते] બંધાતો નથી.

ટીકા:—જેમ કોઈ વિષવૈદ્ય, બીજાઓના મરણનું કારણ જે વિષ તેને ભોગવતો છતો પણ, અમોઘ (રામબાણ) વિદ્યાના સામર્થ્ય વડે વિષની શક્તિ રોકાઈ ગઈ હોવાથી, મરતો નથી, તેમ અજ્ઞાનીઓને રાગાદિભાવોના સદ્ભાવથી બંધનું કારણ જે પુદ્ગલકર્મનો ઉદય તેને જ્ઞાની ભોગવતો છતો પણ, અમોઘ જ્ઞાનના સામર્થ્ય દ્વારા રાગાદિભાવોનો અભાવ હોતાં (-હોઈને) કર્મોદયની શક્તિ રોકાઈ ગઈ હોવાથી, બંધાતો નથી.

જ્યમ ઝેરના ઉપભોગથી પણ વૈદ્ય જન મરતો નથી,
ત્યમ કર્મઉદયો ભોગવે પણ જ્ઞાની બંધાતો નથી. ૧૯૫

વને લીધે વિષયસેવનના ફળનું સ્વામીપણું નહિ હોવાથી અસેવક જ છે (અર્થાત્ નથી) અને મિથ્યાદૃષ્ટિ વિષયોને નહિ સેવતો હોવા છતાં રાગાદિભાવોના ર લીધે વિષયસેવનના ફળનું સ્વામીપણું હોવાથી સેવક જ છે.

ભાવાર્થઃ—કોઈ શેઠે પોતાની દુકાન પર કોઈને નોકર રાખ્યો. દુકાનનો બધો કાજ—ખરીદવું, વેચવું વગેરે સર્વ કામકાજ—નોકર કરે છે તોપણ તે વેપારી રસ્તુ કે તે વેપારનો અને વેપારના લાભ-નુકસાનનો સ્વામી નથી; તે તો માત્ર , શેઠનો કરાવ્યો બધું કામકાજ કરે છે. જે શેઠ છે તે વેપાર સંબંધી કાંઈ કરતો નથી, ઘેર બેસી રહે છે તોપણ તે વેપારનો અને વેપારના લાભ-નુક-ધણી હોવાથી તે જ વેપારી છે. આ દૃષ્ટાંત સમ્યગ્દૃષ્ટિ અને મિથ્યાદૃષ્ટિ પર લેવું. જેમ નોકર વેપાર કરનારો નથી તેમ સમ્યગ્દૃષ્ટિ વિષય સેવનારો નથી, મ શેઠ વેપાર કરનારો છે તેમ મિથ્યાદૃષ્ટિ વિષય સેવનારો છે.

હવે આગળની ગાથાઓની સૂચનાનું કાવ્ય કહે છેઃ—

(મંદાક્રાંતા)

सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः
स्वं वस्तुत्वं कलयितुमयं स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या ।
यस्माज्ज्ञात्वा व्यतिकरमिदं तत्त्वतः स्वं परं च
स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात्सर्वतो रागयोगात् ॥ १३६ ॥

અર્થઃ—સમ્યગ્દૃષ્ટિને નિયમથી જ્ઞાન અને વૈરાગ્યની શક્તિ હોય છે; કારણ (સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવ) સ્વરૂપનું ગ્રહણ અને પરનો ત્યાગ કરવાની વિધિ વડે પોતાના ત્વનો (યથાર્થ સ્વરૂપનો) અભ્યાસ કરવા માટે, 'આ સ્વ છે (અર્થાત્ આત્મ-પ છે) અને આ પર છે' એવો ભેદ પરમાર્થે જાણીને સ્વમાં રહે છે (-ટકે છે) પરથી—રાગના યોગથી—સર્વ પ્રકારે વિરમે છે. (આ રીત જ્ઞાનવૈરાગ્યની શક્તિ । હોઈ શકે નહિ). ૧૯૭.

હવે પ્રથમ, સમ્યગ્દૃષ્ટિ સામાન્યપણે સ્વને અને પરને આ પ્રમાણે જાણે છે— ગાથામાં કહે છેઃ—

उदयविवागो विविहो कम्माणं वण्णिओ जिणवरेहिं ।
ण दु ते मज्झ सहावा जाणगभावो दु अहमिक्को ॥ १९८ ॥

કર્મોતણો જે વિવિધ ઉદયવિપાક જિનવર વર્ણવ્યો,
તે મુજ સ્વભાવો છે નહિ, હું એક જ્ઞાયકભાવ છું. ૧૯૮.

ज्ञानवैभवविरागताबलात्
सेवकोऽपि तदसावसेवकः ॥ १३५ ॥

અર્થ:—કારણ કે આ (જ્ઞાની) પુરુષ વિષયોને સેવતો છતો જ્ઞાનવૈભવના અને વિરાગતાના બળથી વિષયસેવનના નિજફળને (-રંજિત પરિણામને) ભોગવતો નથી—પામતો નથી, તેથી આ (પુરુષ) સેવક છતાં અસેવક છે (અર્થાત્ વિષયોને સેવતાં છતાં નથી સેવતો).

ભાવાર્થ:—જ્ઞાન અને વિરાગતાનું એવું કોઈ અચિંત્ય સામર્થ્ય છે કે જ્ઞાની ઇંદ્રિયોના વિષયોને સેવતો હોવા છતાં તેને સેવનારો કહી શકાતો નથી, કારણ કે વિષયસેવનનું ફળ જે રંજિત પરિણામ તેને જ્ઞાની ભોગવતો નથી—પામતો નથી.

હવે આ જ વાતને પ્રગટ દૃષ્ટાંતથી બતાવે છે:—

सेवंतो वि ण सेवइ असेवमाणोवि सेवगो कोई।
पगरणचेट्ठा कस्स वि ण य पायरणोत्ति सो होई॥

सेवमानोऽपि न सेवते असेवमानोऽपि सेवकः कश्चित्।
प्रकरणचेष्टा कस्यापि न च प्राकरण इति स भवति॥

અન્વયાર્થ:—[कश्चित्] કોઈ તો [सेवमानः अपि] વિષયોને સેવતો છતાં [न सेवते] નથી સેવતો [असेवमानः अपि] અને કોઈ નહિ સેવતો છતાં સેવનારો છે—[कस्यापि] જેમ કોઈ પુરુષને [प्रकरणचेष्टा] *પ્રકરણની ચેષ્ટા (કોઈ કાર્ય સંબંધી ક્રિયા) વર્તે છે [न च सः प्राकरणः इति भवति] તોપણ તે [1]પ્રાકરણિક નથી.

ટીકા:—જેમ કોઈ પુરુષ કોઈ પ્રકરણની ક્રિયામાં પ્રવર્તતો હોવા છતાં પ્રકરણનું સ્વામીપણું નહિ હોવાથી પ્રાકરણિક નથી અને બીજો પુરુષ પ્રકરણની ક્રિયામાં નહિ પ્રવર્તતો હોવા છતાં પ્રકરણનું સ્વામીપણું હોવાથી પ્રાકરણિક છે, તેવી રીતે સમ્યગ્દૃષ્ટિ પૂર્વસંચિત કર્મના ઉદયથી પ્રાપ્ત થયેલા વિષયોને સેવતો હોવા છતાં રાગાદિ...

* પ્રકરણ = કાર્ય
[1] પ્રાકરણિક = કાર્ય કરનાર.

સેવે છતાં નહિ સેવતો, અણસેવતો સેવક બને,
પ્રકરણતણી ચેષ્ટા કરે પણ પ્રાકરણ જ્યમ નહિ ઠરે. ૧૯૭.

તો હોય છે, તેમને સમ્યક્ત્વ કેમ છે?" તેનું સમાધાનઃ—અહીં મિથ્યાત્વ સહિત ાનુબંધી રાગ પ્રધાનપણે કહ્યો છે. જેને એવો રાગ હોય છે અર્થાત્ જેને પર- ાં તથા પરદ્રવ્યથી થતા ભાવોમાં આત્મબુદ્ધિપૂર્વક પ્રીતિ–અપ્રીતિ થાય છે, તેને રનું જ્ઞાનશ્રદ્ધાન નથી—ભેદજ્ઞાન નથી એમ સમજવું. જીવ મુનિપદ લઈ વ્રત- તે પાળે તોપણ જ્યાંસુધી (વ્રત-સમિતિ પાળતાં) પર જીવોની રક્ષા, શરીર સંબંધી ાથી પ્રવર્તવું ઇત્યાદિ પરદ્રવ્યની ક્રિયાથી તથા પરદ્રવ્યના નિમિત્તે થતા પોતાના ભાવોથી પોતાનો મોક્ષ માને છે અને પર જીવોનો ઘાત થવો, અયત્નાચારરૂપે ર્તવું ઇત્યાદિ પરદ્રવ્યની ક્રિયાથી તથા પરદ્રવ્યના નિમિત્તે થતા પોતાના અશુભ ાથી જ પોતાને બંધ થતો માને છે ત્યાંસુધી તેને સ્વપરનું જ્ઞાન થયું નથી એમ ણવું; કારણ કે બંધ-મોક્ષ તો પોતાના અશુદ્ધ તથા શુદ્ધ ભાવોથી જ થતા હતા, શુભ ભાવો તો બંધનાં જ કારણ હતા અને પરદ્રવ્ય તો નિમિત્તમાત્ર જ હતું, તેણે વિપર્યયરૂપ માન્યું. આ રીતે જ્યાંસુધી જીવ પરદ્રવ્યથી જ ભલુંબૂરું માની દ્વેષ કરે છે ત્યાંસુધી તે સમ્યગ્દૃષ્ટિ નથી. સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવ તો જ્યાંસુધી પોતાને ચારિત્ર- સંબંધી રાગાદિક રહે છે ત્યાંસુધી તે રાગાદિક વિષે તથા રાગાદિકની પ્રેરણાથી રદ્રવ્યસંબંધી શુભાશુભ ક્રિયામાં તે પ્રવર્તે છે તે પ્રવૃત્તિઓ વિષે એમ માને છે કે— કર્મનું જોર છે; તેનાથી નિવૃત્ત થયે જ મારું ભલું છે. તે તેમને રોગવત્ જાણે છે. સહી શકાતી નથી તેથી તેમનો ઇલાજ કરવારૂપે પ્રવર્તે છે તોપણ તેને તેમના રાગ કહી શકાતો નથી; કારણ કે જેને રોગ માને તેના પ્રત્યે રાગ કેવો? તે તેને ાડવાનો જ ઉપાય કરે છે અને તે મટવું પણ પોતાના જ જ્ઞાનપરિણામરૂપ પરિણ- ાથી માને છે. આ રીતે સમ્યગ્દૃષ્ટિને રાગ નથી. આ પ્રમાણે પરમાર્થ અધ્યાત્મદૃષ્ટિથી ી વ્યાખ્યાન જાણવું. અહીં મિથ્યાત્વ સહિત રાગને જ રાગ કહ્યો છે, મિથ્યાત્વ ના ચારિત્રમોહસંબંધી ઉદયના પરિણામને રાગ કહ્યો નથી; માટે સમ્યગ્દૃષ્ટિને જ્ઞાન- ાગ્યશક્તિ અવશ્ય હોય જ છે. મિથ્યાત્વ સહિત રાગ સમ્યગ્દૃષ્ટિને હોતો નથી અને થ્યાત્વ સહિત રાગ હોય તે સમ્યગ્દૃષ્ટિ નથી. આવા (મિથ્યાદૃષ્ટિના અને સમ્યગ્દૃષ્ટિના ભાવોના) તફાવતને સમ્યગ્દૃષ્ટિ જ જાણે છે. મિથ્યાદૃષ્ટિનો અધ્યાત્મશાસ્ત્રમાં પ્રથમ તો વેશ નથી અને જો પ્રવેશ કરે તો વિપરીત સમજે છે—વ્યવહારને સર્વથા છોડી ભ્રષ્ટ ય છે અથવા તો નિશ્ચયને સારી રીતે જાણ્યા વિના વ્યવહારથી જ મોક્ષ માને છે, રમાર્થ તત્ત્વમાં મૂઢ રહે છે. જો કોઈ વિરલ જીવ યથાર્થ સ્યાદ્વાદન્યાયથી સત્યાર્થ મજી જાય તો તેને અવશ્ય સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિ થાય જ છે—તે અવશ્ય સમ્યગ્દૃષ્ટિ ની જાય છે. ૨૦૦.

હવે પૂછે છે કે રાગી (જીવ) કેમ સમ્યગ્દૃષ્ટિ ન હોય? તેનો ઉત્તર કહે છેઃ—

(મંદાક્રાંતા)

सम्यग्दृष्टिः स्वयमयमहं जातु बंधो न मे स्या-
दित्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोऽप्याचरंतु ।
आलंबंतां समितिपरतां ते यतोऽद्यापि पापा
आत्मानात्मावगमविरहात्संति सम्यक्त्वरिक्ताः ॥ १३७॥

અર્થ:—“આ હું પોતે સમ્યગ્દૃષ્ટિ છું, મને કદી બંધ થતો નથી (શાસ્ત્રમાં સમ્યગ્દૃષ્ટિને બંધ કહ્યો નથી)” એમ માનીને જેમનું મુખ ગર્વથી ઊંચું તથા પુલકિત (રોમાંચિત) થયું છે એવા રાગી જીવો (–પરદ્રવ્ય પ્રત્યે રાગદ્વેષ ભાવવાળા જીવો–) ભલે મહાવ્રતાદિનું આચરણ કરો તથા *સમિતિની ઉત્કૃષ્ટતાનું આલંબન કરો તોપણ તેઓ પાપી (મિથ્યાદૃષ્ટિ) જ છે, કારણ કે આત્મા અને અનાત્માના જ્ઞાનથી રહિત હોવાથી તેઓ સમ્યક્ત્વથી રહિત છે.

ભાવાર્થ:—પરદ્રવ્ય પ્રત્યે રાગ હોવા છતાં જે જીવ ‘હું સમ્યગ્દૃષ્ટિ છું, મને બંધ થતો નથી’ એમ માને છે તેને સમ્યક્ત્વ કેવું? તે વ્રત-સમિતિ પાળે તોપણ સ્વપરનું જ્ઞાન નહિ હોવાથી તે પાપી જ છે. પોતાને બંધ નથી થતો એમ માનીને સ્વચ્છંદે પ્રવર્તે તે વળી સમ્યગ્દૃષ્ટિ કેવો? કારણ કે જ્યાંસુધી યથાખ્યાત ચારિત્ર ન થાય ત્યાંસુધી ચારિત્રમોહના રાગથી બંધ તો થાય જ છે અને જ્યાંસુધી રાગ રહે છે ત્યાંસુધી સમ્યગ્દૃષ્ટિ તો પોતાની નિંદા-ગર્હા કરતો જ રહે છે. જ્ઞાન થવામાત્રથી બંધથી છુટાતું નથી, જ્ઞાન થયા પછી તેમાં જ લીનતારૂપ—શુદ્ધોપયોગરૂપ—ચારિત્રથી બંધ કપાય છે. માટે રાગ હોવા છતાં, ‘બંધ થતો નથી’ એમ માનીને સ્વચ્છંદે પ્રવર્તનાર જીવ મિથ્યાદૃષ્ટિ જ છે.

અહીં કોઈ પૂછે કે “વ્રત-સમિતિ તો શુભ કાર્ય છે, તો પછી વ્રત-સમિતિ પાળતાં છતાં તે જીવને પાપી કેમ કહ્યો?” તેનું સમાધાન:—સિદ્ધાંતમાં પાપ મિથ્યાત્વને જ કહ્યું છે; જ્યાંસુધી મિથ્યાત્વ રહે ત્યાંસુધી શુભ-અશુભ સર્વ ક્રિયાને અધ્યાત્મમાં પરમાર્થે પાપ જ કહેવાય છે. વળી વ્યવહારનયની પ્રધાનતામાં, વ્યવહારી જીવોને અશુભ છોડાવી શુભમાં લગાડવા શુભ ક્રિયાને કથંચિત્ પુણ્ય પણ કહેવામાં આવે છે. એમ કહેવાથી સ્યાદ્વાદ મતમાં કાંઈ વિરોધ નથી.

વળી કોઈ પૂછે છે કે—“પરદ્રવ્યમાં રાગ રહે ત્યાંસુધી જીવને મિથ્યાદૃષ્ટિ કહ્યો તે વાતમાં અમે સમજ્યા નહિ. અવિરતસમ્યગ્દૃષ્ટિ વગેરેને ચારિત્રમોહના ઉદયથી

* સમિતિ = વચન, વિહાર અને આહારની ક્રિયામાં યત્નાચારથી પ્રવર્તવું.

તો હોય છે, તેમને સમ્યક્ત્વ કેમ છે?" તેનું સમાધાન:—અહીં મિથ્યાત્વ સહિત ાનુબંધી રાગ પ્રધાનપણે કહ્યો છે. જેને એવો રાગ હોય છે અર્થાત્ જેને પર- ાં તથા પરદ્રવ્યથી થતા ભાવોમાં આત્મબુદ્ધિપૂર્વક પ્રીતિ–અપ્રીતિ થાય છે, તેને નું જ્ઞાનશ્રદ્ધાન નથી—ભેદજ્ઞાન નથી એમ સમજવું. જીવ મુનિપદ લઈ વ્રત- તે પાળે તોપણ જ્યાંસુધી (વ્રત-સમિતિ પાળતાં) પર જીવોની રક્ષા, શરીર સંબંધી ાથી પ્રવર્તવું ઇત્યાદિ પરદ્રવ્યની ક્રિયાથી તથા પરદ્રવ્યના નિમિત્તે થતા પોતાના ભાવોથી પોતાનો મોક્ષ માને છે અને પર જીવોનો ઘાત થવો, અયત્નાચારરૂપે વું ઇત્યાદિ પરદ્રવ્યની ક્રિયાથી તથા પરદ્રવ્યના નિમિત્તે થતા પોતાના અશુભ થી જ પોતાને બંધ થતો માને છે ત્યાંસુધી તેને સ્વપરનું જ્ઞાન થયું નથી એમ વું; કારણ કે બંધ-મોક્ષ તો પોતાના અશુદ્ધ તથા શુદ્ધ ભાવોથી જ થતા હતા, શુભ ભાવો તો બંધનાં જ કારણ હતા અને પરદ્રવ્ય તો નિમિત્તમાત્ર જ હતું, તેણે વિપર્યયરૂપ માન્યું. આ રીતે જ્યાંસુધી જીવ પરદ્રવ્યથી જ ભલુંબૂરું માની દ્વેષ કરે છે ત્યાંસુધી તે સમ્યગ્દૃષ્ટિ નથી. સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવ તો જ્યાંસુધી પોતાને ચારિત્ર- સંબંધી રાગાદિક રહે છે ત્યાંસુધી તે રાગાદિક વિષે તથા રાગાદિકની પ્રેરણાથી રદ્રવ્યસંબંધી શુભાશુભ ક્રિયામાં તે પ્રવર્તે છે તે પ્રવૃત્તિઓ વિષે એમ માને છે કે— કર્મનું જોર છે; તેનાથી નિવૃત્ત થયે જ મારું ભલું છે. તે તેમને રોગવત્ જાણે છે. ા સહી શકાતી નથી તેથી તેમનો ઇલાજ કરવારૂપે પ્રવર્તે છે તોપણ તેને તેમના ી રાગ કહી શકાતો નથી; કારણ કે જેને રોગ માને તેના પ્રત્યે રાગ કેવો? તે તેને ડવાનો જ ઉપાય કરે છે અને તે મટવું પણ પોતાના જ જ્ઞાનપરિણામરૂપ પરિણ- થી માને છે. આ રીતે સમ્યગ્દૃષ્ટિને રાગ નથી. આ પ્રમાણે પરમાર્થ અધ્યાત્મદૃષ્ટિથી ીં વ્યાખ્યાન જાણવું. અહીં મિથ્યાત્વ સહિત રાગને જ રાગ કહ્યો છે, મિથ્યાત્વ ના ચારિત્રમોહસંબંધી ઉદયના પરિણામને રાગ કહ્યો નથી; માટે સમ્યગ્દૃષ્ટિને જ્ઞાન- ગ્યશક્તિ અવશ્ય હોય જ છે. મિથ્યાત્વ સહિત રાગ સમ્યગ્દૃષ્ટિને હોતો નથી અને થ્યાત્વ સહિત રાગ હોય તે સમ્યગ્દૃષ્ટિ નથી. આવા (મિથ્યાદૃષ્ટિના અને સમ્યગ્દૃષ્ટિના વોના) તફાવતને સમ્યગ્દૃષ્ટિ જ જાણે છે. મિથ્યાદૃષ્ટિનો અધ્યાત્મશાસ્ત્રમાં પ્રથમ તો રેગ નથી અને જો પ્રવેશ કરે તો વિપરીત સમજે છે—વ્યવહારને સર્વથા છોડી ભ્રષ્ટ ય છે અથવા તો નિશ્ચયને સારી રીતે જાણ્યા વિના વ્યવહારથી જ મોક્ષ માને છે, માર્થ તત્ત્વમાં મૂઢ રહે છે. જો કોઈ વિરલ જીવ યથાર્થ સ્યાદ્વાદન્યાયથી સત્યાર્થ મજી જાય તો તેને અવશ્ય સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિ થાય જ છે—તે અવશ્ય સમ્યગ્દૃષ્ટિ ની જાય છે. ૨૦૦.

હવે પૂછે છે કે રાગી (જીવ) કેમ સમ્યગ્દૃષ્ટિ ન હોય? તેનો ઉત્તર કહે છે:—

परमाणुमित्तयंपि हु रायादीणं तु विज्जदे जस्स।
ण वि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागमधरो वि॥
अप्पाणमयाणंतो अणप्पयं चावि सो अयाणंतो।
कह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे अयाणंतो॥ २०२॥

परमाणुमात्रमपि खलु रागादीनां तु विद्यते यस्य।
नापि स जानात्यात्मानं तु सर्वागमधरोऽपि॥ २०१॥
आत्मानमजानन् अनात्मानं चापि सोऽजानन्।
कथं भवति सम्यग्दृष्टिर्जीवाजीवावजानन्॥ २०२॥

અન્વયાર્થઃ—[खलु] ખરેખર [यस्य] જે જીવને [रागादीनां तु] [परमाणुमात्रं अपि] પરમાણુમાત્ર—લેશમાત્ર—પણ રાગાદિક [विद्यते] વર્તે છે [सः] [सर्वागमधरः अपि] ભલે સર્વ આગમ ભણેલો હોય તોપણ [आत्मानं तु] [न अपि जानाति] નથી જાણતો; [च] અને [आत्मानं] આત્માને [નહિ જાણતો થકો [सः] તે [अनात्मानं अपि] અનાત્માને (પરને) પણ [નથી જાણતો; [जीवाजीवौ] એ રીતે જે જીવ અને અજીવને [अजानन्] તે [सम्यग्दृष्टिः] સમ્યગ્દૃષ્ટિ [कथं भवति] કેમ હોઈ શકે?

ટીકાઃ—જેને રાગાદિ અજ્ઞાનમય ભાવોના લેશમાત્રનો પણ સદ્ભાવ છે શ્રુતકેવળી જેવો હો તોપણ જ્ઞાનમય ભાવોના અભાવને લીધે આત્માને નથી અને જે આત્માને નથી જાણતો તે અનાત્માને પણ નથી જાણતો કારણ સત્તા અને પરરૂપે અસત્તા—એ બન્ને વડે એક વસ્તુનો નિશ્ચય થાય છે; (નાત્માનો—રાગનો—નિશ્ચય થયો હોય તેને અનાત્મા અને આત્મા—બંનેનો હોવો જોઈએ). એ રીતે જે આત્મા અને અનાત્માને નથી જાણતો તે જી અજીવને નથી જાણતો; અને જે જીવ-અજીવને નથી જાણતો તે સમ્યગ્દૃષ્ટિ માટે રાગી (જીવ) જ્ઞાનના અભાવને લીધે સમ્યગ્દૃષ્ટિ હોતો નથી.

અણુમાત્ર પણ રાગાદિનો સદ્ભાવ વર્તે જેહને, ૨૦૧
તે સર્વઆગમધર ભલે પણ જાણતો નહિ આત્મને;
નહિ જાણતો જ્યાં આત્મને જ, અનાત્મ પણ નહિ જાણતો,
તે કેમ હોય સુદૃષ્ટિ જે જીવ-અજીવને નહિ જાણતો! ૨

ભાવાર્થ:—અહીં 'રાગ' શબ્દથી અજ્ઞાનમય રાગદ્વેષમોહ કહેવામાં આવ્યા 'અજ્ઞાનમય' કહેવાથી મિથ્યાત્વ-અનંતાનુબંધીથી થયેલા રાગાદિક સમજવા, ત વિના ચારિત્રમોહના ઉદયનો રાગ ન લેવો; કારણ કે અવિરતસમ્યગ્દષ્ટિ વગેરેને ાહના ઉદય સંબંધી રાગ છે તે જ્ઞાનસહિત છે; તે રાગને સમ્યગ્દૃષ્ટિ કર્મોદયથી રોગ જાણે છે અને તેને મટાડવા જ ઇચ્છે છે; તે રાગ પ્રત્યે તેને રાગ નથી. મ્યગ્દૃષ્ટિને રાગનો લેશમાત્ર સદ્ભાવ નથી એમ કહ્યું છે તેનું કારણ આ પ્રમાણે મ્યગ્દૃષ્ટિને અશુભ રાગ તો અત્યંત ગૌણ છે અને જે શુભ રાગ થાય છે તેને ય ભલો (સારો) સમજતો નથી—તેના પ્રત્યે લેશમાત્ર રાગ કરતો નથી. વળી થી તો તેને રાગનું સ્વામિત્વ જ નથી. માટે તેને લેશમાત્ર રાગ નથી.

જો કોઈ જીવ રાગને ભલો જાણી તેના પ્રત્યે લેશમાત્ર રાગ કરે તો—ભલે શાસ્ત્રો ભણી ચૂકયો હોય, મુનિ હોય, વ્યવહારચારિત્ર પણ પાળતો હોય —એમ સમજવું કે તેણે પોતાના આત્માનું પરમાર્થસ્વરૂપ નથી જાણ્યું, કર્મો-નિત રાગને જ સારો માન્યો છે, અને તેનાથી જ પોતાનો મોક્ષ માન્યો છે. આ ોતાના અને પરના પરમાર્થ સ્વરૂપને નહિ જાણતો હોવાથી જીવ-અજીવના ર્થ સ્વરૂપને જાણતો નથી. અને જ્યાં જીવ અને અજીવ—બે પદાર્થોને જ જાણતો યાં સમ્યગ્દૃષ્ટિ કેવો? માટે રાગી જીવ સમ્યગ્દૃષ્ટિ હોઈ શકે નહિ.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે, જે કાવ્યદ્વારા આચાર્યદેવ અના-રાગાદિકને પોતાનું પદ જાણી સૂતેલા રાગી પ્રાણીઓને ઉપદેશ કરે છે:—

(મંદાક્રાંતા)

आसंसारात्प्रतिपदममी रागिणो नित्यमत्ताः
सुप्ता यस्मिन्नपदमपदं तद्विबुध्यध्वमंधाः ।
एतैतेतः पदमिदमिदं यत्र चैतन्यधातुः
शुद्धः शुद्धः स्वरसभरतः स्थायिभावत्वमेति ॥ १३८ ॥

અર્થ:—(શ્રી ગુરુ સંસારી ભવ્ય જીવોને સંબોધે છે કે:) હે અંધ પ્રા-! અનાદિ સંસારથી માંડીને પર્યાયે પર્યાયે આ રાગી જીવો સદાય મત્ત વર્તતા જે પદમાં સૂતા છે—ઊંઘે છે તે પદ અર્થાત્ સ્થાન અપદ છે—અપદ છે, (તમારું નથી,) એમ તમે સમજો. (બે વાર કહેવાથી અતિ કરુણાભાવ સૂચિત થાય છે.) તરફ આવો—આ તરફ આવો, (અહીં નિવાસ કરો,) તમારું પદ આ છે—આ ાં શુદ્ધ—શુદ્ધ ચૈતન્યધાતુ નિજ રસની અતિશયતાને લીધે સ્થાયીભાવપણાને છે અર્થાત્ સ્થિર છે—અવિનાશી છે. (અહીં 'શુદ્ધ' શબ્દ બે વાર કહ્યો છે તે અને ભાવ બન્નેની શુદ્ધતા સૂચવે છે. સર્વ અન્યદ્રવ્યોથી જુદો હોવાને લીધે

ક, વ્યભિચારી ભાવો છે, તે બધાય પોતે અસ્થાયી હોવાને લીધે સ્થાતાનું સ્થાન ર્ રહેનારનું રહેઠાણ નહિ થઈ શકવા યોગ્ય હોવાથી અપદભૂત છે; અને જે ભાવે (અર્થાત્ આત્માના સ્વભાવરૂપે) અનુભવાતો, નિયત અવસ્થાવાળો, એક, ય, અવ્યભિચારી ભાવ (ચૈતન્યમાત્ર જ્ઞાનભાવ) છે, તે એક જ પોતે સ્થાયી વાને લીધે સ્થાતાનું સ્થાન અર્થાત્ રહેનારનું રહેઠાણ થઈ શકવા યોગ્ય હોવાથી ભૂત છે. તેથી સમસ્ત અસ્થાયી ભાવોને છોડી, જે સ્થાયીભાવરૂપ છે એવું પરમાર્થ-પણે સ્વાદમાં આવતું આ જ્ઞાન એક જ આસ્વાદવાયોગ્ય છે.

ભાવાર્થ:—પૂર્વે વર્ણાદિક ગુણસ્થાનપર્યંત ભાવો કહ્યા હતા તે બધાય, ત્માામાં અનિયત, અનેક, ક્ષણિક, વ્યભિચારી ભાવો છે. આત્મા સ્થાયી છે (-સદા માન છે) અને તે બધા ભાવો અસ્થાયી છે (-નિત્ય ટકતા નથી), તેથી તેઓ ત્માનું સ્થાન-રહેઠાણ-થઈ શકતા નથી અર્થાત્ તેઓ આત્માનું પદ નથી. જે આ સંવેદનરૂપ જ્ઞાન છે તે નિયત છે, એક છે, નિત્ય છે, અવ્યભિચારી છે. આત્મા યી છે અને આ જ્ઞાન પણ સ્થાયી ભાવ છે તેથી તે આત્માનું પદ છે. તે એક જ નીઓ વડે આસ્વાદ લેવા યોગ્ય છે.

હવે આ અર્થનો કળશરૂપ શ્લોક કહે છે:—

(અનુષ્ટુપ)

एकमेव हि तत्स्वाद्यं विपदामपदं पदम् ।
अपदान्येव भासंते पदान्यन्यानि यत्पुरः ॥ १३९ ॥

અર્થ:—તે એક જ પદ આસ્વાદવાયોગ્ય છે કે જે વિપત્તિઓનું અપદ છે (અર્થાત્ જેમાં આપદાઓ સ્થાન પામી શકતી નથી) અને જેની આગળ અન્ય (સર્વ) પદો અપદ જ ભાસે છે.

ભાવાર્થ:—એક જ્ઞાન જ આત્માનું પદ છે. તેમાં કોઈ પણ આપદા પ્રવેશી શકતી નથી અને તેની આગળ અન્ય સર્વ પદો અપદસ્વરૂપ ભાસે છે (કારણ કે તેઓ આકુળતામય છે—આપત્તિરૂપ છે.)

વળી કહે છે કે આત્મા જ્ઞાનનો અનુભવ કરે છે ત્યારે આમ કરે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

एकज्ञायकभावनिर्भरमहास्वादं समासादयन्

आत्मात्मानुभवानुभावविवशो भ्रश्यद्विशेषोदयं
सामान्यं कलयन् किलैष सकलं ज्ञानं नयत्येकताम्॥

અર્થ:—એક જ્ઞાયકભાવથી ભરેલા મહાસ્વાદને લેતો, (એ રીતે એકાગ્ર થતાં બીજો સ્વાદ આવતો નથી માટે) દ્વંદ્વમય સ્વાદને લેવા અસમર્થ વર્ણાદિક, રાગાદિક તથા ક્ષાયોપશમિક જ્ઞાનના ભેદોનો સ્વાદ લેવાને આત્માના અનુભવના—સ્વાદના—પ્રભાવને આધીન થયો હોવાથી નિજ (આત્માની શુદ્ધ પરિણતિને) જાણતો—આસ્વાદતો (અર્થાત્ આત્માના સ્વાદના અનુભવનમાંથી બહાર નહિ આવતો) આ આત્મા જ્ઞાનના વિશેષોને ગૌણ કરતો, સામાન્યમાત્ર જ્ઞાનને અભ્યાસતો, સકળ જ્ઞાનને એકપણામાં એકરૂપે પ્રાપ્ત કરે છે.

ભાવાર્થ:—આ એક સ્વરૂપજ્ઞાનના રસીલા સ્વાદ આગળ ... છે. વળી સ્વરૂપજ્ઞાનને અનુભવતાં સર્વ ભેદભાવો મટી જાય છે. જ્ઞાનના વિ... નિમિત્તે થાય છે. જ્યારે જ્ઞાનસામાન્યનો સ્વાદ લેવામાં આવે ત્યારે જ્ઞાનના ... પણ ગૌણ થઈ જાય છે, એક જ્ઞાન જ જ્ઞેયરૂપ થાય છે.

અહીં પ્રશ્ન થાય છે કે છદ્મસ્થને પૂર્ણરૂપ કેવળજ્ઞાનનો સ્વાદ ક્યાં ... આ પ્રશ્નનો ઉત્તર પહેલાં શુદ્ધનયનું કથન કરતાં દેવાઈ ગયો છે કે શુદ્ધનય ... શુદ્ધ પૂર્ણ સ્વરૂપ જણાવતો હોવાથી શુદ્ધનય દ્વારા પૂર્ણરૂપ કેવળજ્ઞાનનો ... આવે છે. ૨૦૩.

હવે, 'કર્મના ક્ષયોપશમના નિમિત્તે જ્ઞાનમાં ભેદ હોવા છતાં ... વિચારવામાં આવે તો જ્ઞાન એક જ છે અને તે જ્ઞાન જ મોક્ષનો ઉપાય ... અર્થની ગાથા કહે છે:—

आभिणिबोहियसुदोधिमणकेवलं च तं होदि एक्कमेव पदं।
सो एसो परमट्ठो जं लहिदुं णिव्वुदिं जादि॥ २०४॥

आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलं च तद्भवत्येकमेव पदम्।
स एष परमार्थो यं लब्ध्वा निर्वृतिं याति॥ २०४॥

મતિ, શ્રુત, અવધિ, મનઃ, કેવલ તેહ પદ એક જ ખરે,
આ જ્ઞાનપદ પરમાર્થ છે જે પામી જીવ મુક્તિ લહે.

અન્વયાર્થ:—[आभिनिवोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलं च] મતિજ્ઞાન,
, અવધિજ્ઞાન, મનઃપર્યયજ્ઞાન અને કેવળજ્ઞાન—[तत्] તે [एकं एव] એક
मयति] પદ છે (કારણ કે જ્ઞાનના સર્વ ભેદો જ્ઞાન જ છે); [सः एषः परमार्थः
મા પરમાર્થ છે (—શુદ્ધનયના વિષયભૂત જ્ઞાનસામાન્ય જ આ પરમાર્થ છે—
लब्ध्वा] કે જેને પામીને [निर्वृतिं याति] આત્મા નિર્વાણને પ્રાપ્ત થાય છે.

ટીકા:—આત્મા ખરેખર પરમાર્થ (પરમ પદાર્થ) છે અને તે (આત્મા)
; વળી આત્મા એક જ પદાર્થ છે; તેથી જ્ઞાન પણ એક જ પદ છે. જે આ
મનું એક પદ છે તે આ પરમાર્થસ્વરૂપ સાક્ષાત્ મોક્ષ-ઉપાય છે. અહીં, મતિ-
દિ (જ્ઞાનના) ભેદો આ એક પદને ભેદતા નથી પરંતુ તેઓ પણ આ જ
ને અભિનંદે છે (—ટેકો આપે છે). તે દૃષ્ટાંતથી સમજાવવામાં આવે છે:—
આ જગતમાં વાદળાંના પટલથી ઢંકાયેલો સૂર્ય કે જે વાદળાંના *વિઘટન
પ્રકાર પ્રગટપણું પામે છે, તેના (અર્થાત્ સૂર્યના) પ્રકાશનની (પ્રકાશવાની)
નાધિકતારૂપ ભેદો તેના (સામાન્ય) પ્રકાશસ્વભાવને ભેદતા નથી, તેવી રીતે કર્મ-
ટલના ઉદયથી ઢંકાયેલો આત્મા કે જે કર્મના વિઘટન (ક્ષયોપશમ) અનુસારે પ્રગટ-
ણું પામે છે, તેના જ્ઞાનની હીનાધિકતારૂપ ભેદો તેના (સામાન્ય) જ્ઞાનસ્વભાવને
દતા નથી પરંતુ ઊલટા અભિનંદે છે. માટે જેમાં સમસ્ત ભેદ દૂર થયા છે એવા
આત્મસ્વભાવભૂત જ્ઞાનનું જ એકનું આલંબન કરવું. તેના આલંબનથી જ (નિજ)
પદની પ્રાપ્તિ થાય છે, ભ્રાંતિનો નાશ થાય છે, આત્માનો લાભ થાય છે, અનાત્માનો
પરિહાર સિદ્ધ થાય છે, (એમ થવાથી) કર્મ જોરાવર થઈ શકતું નથી, રાગદ્વેષમોહ
ઉત્પન્ન થતા નથી, (રાગદ્વેષમોહ વિના) ફરી કર્મ આસ્રવતું નથી, (આસ્રવ વિના)
ફરી કર્મ બંધાતું નથી, પૂર્વે બંધાયેલું કર્મ ભોગવાયું થકું નિર્જરી જાય છે,
સમસ્ત કર્મનો અભાવ થવાથી સાક્ષાત્ મોક્ષ થાય છે. (આવું જ્ઞાનના આલંબનનું
માહાત્મ્ય છે).

ભાવાર્થ:—કર્મના ક્ષયોપશમ અનુસાર જ્ઞાનમાં જે ભેદો થયા છે તે ક
જ્ઞાનને અજ્ઞાનરૂપ નથી કરતા, ઊલટા જ્ઞાનને પ્રગટ કરે છે. માટે ભેદોને ગૌણ
જ્ઞાનસામાન્યનું આલંબન લઈ આત્માનું ધ્યાન ધરવું; તેનાથી સર્વ સિદ્ધ

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

---

*વિઘટન = છૂટું પડવું તે, વિખરાઈ જવું તે, નાશ

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

अच्छाच्छाः स्वयमुच्छलंति यदिमाः संवेदनव्यक्तयो
निष्पीताखिलभावमंडलरसप्राग्भारमत्ता इव ।
यस्याभिन्नरसः स एष भगवानेकोऽप्यनेकीभवन्
वल्गत्युत्कलिकाभिरद्भुतनिधिश्चैतन्यरत्नाकरः ॥ १४१ ॥

અર્થઃ—પી જવામાં આવેલો જે સમસ્ત પદાર્થોનો સમૂહરૂપ રસ તેની અતિશયતાથી જાણે કે મત્ત થઈ ગઈ હોય એવી જેની આ નિર્મળથી પણ નિર્મળ સંવેદનવ્યક્તિઓ (-જ્ઞાનપર્યાયો, અનુભવમાં આવતા જ્ઞાનના ભેદો) આપોઆપ ઊછળે છે, તે આ ભગવાન અદ્‌ભુત નિધિવાળો ચૈતન્યરત્નાકર, જ્ઞાનપર્યાયોરૂપ તરંગો સાથે જેનો રસ અભિન્ન છે એવો, એક હોવા છતાં અનેક થતો, જ્ઞાનપર્યાયોરૂપ તરંગો વડે દોલાયમાન થાય છે—ઊછળે છે.

ભાવાર્થઃ—જેમ ઘણા રત્નોવાળો સમુદ્ર એક જળથી જ ભરેલો છે અને તેમાં નાના મોટા અનેક તરંગો ઊછળે છે તે એક જળરૂપ જ છે, તેમ ઘણા ગુણોના ભંડાર આ જ્ઞાનસમુદ્ર આત્મા એક જ્ઞાનજળથી જ ભરેલો છે અને કર્મના નિમિત્તથી જ્ઞાનના અનેક ભેદો—વ્યક્તિઓ આપોઆપ પ્રગટ થાય છે તે વ્યક્તિઓને એક જ્ઞાનરૂપ જ જાણવી, ખંડખંડરૂપ ન અનુભવવી.

હવે વળી વિશેષ કહે છેઃ—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

क्लिश्यंतां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभिः
क्लिश्यंतां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरम् ।
साक्षान्मोक्ष इदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं
ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमंते न हि ॥ १४२ ॥

અર્થઃ—કોઈ જીવો તો દુષ્કર (દુઃખે કરી સાધ્ય એવા) અને મોક્ષ પ્રત્યે ઉન્મુખ એવા કર્મો વડે સ્વયમેવ (અર્થાત્ જિનાજ્ઞા વિના) ક્લેશ પામે તો પામો અને બીજા કોઈ જીવો (મોક્ષની સન્મુખ અર્થાત્ કથંચિત્ જિનાજ્ઞામાં કહેલાં) મહાવ્રત અને તપના ભારથી ઘણા વખત સુધી ભગ્ન થયા થકા (તૂટી મરતા થકા) ક્લેશ પામે તો પામો; (પરંતુ) જે સાક્ષાત્ મોક્ષસ્વરૂપ છે, નિરામય (રોગાદિ સમસ્ત ક્લેશ વિનાનું) પદ છે અને સ્વયં સંવેદ્યમાન છે (અર્થાત્ પોતાની મેળે પોતે

ાવે છે) એવું આ જ્ઞાન તો જ્ઞાનગુણ વિના કોઈ પણ રીતે તેઓ પ્રાપ્ત
ક્તા જ નથી.

ભાવાર્થ:—જ્ઞાન છે તે સાક્ષાત્ મોક્ષ છે; તે જ્ઞાનથી જ મળે છે, અન્ય કો
ાંડથી તેની પ્રાપ્તિ થતી નથી. ૨૦૪.

હવે આ જ ઉપદેશ ગાથામાં કહે છે:—

णाणगुणेण विहीणा एयं तु पयं बहू वि ण लहंते ।
तं गिण्ह णियदमेदं जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्खं ॥ २०५ ॥

ज्ञानगुणेन विहीना एतत्तु पदं बहवोऽपि न लभंते ।
तद् गृहाण नियतमेतद् यदीच्छसि कर्मपरिमोक्षम् ॥ २०५ ॥

અન્વયાર્થ:—[ज्ञानगुणेन विहीनाः] જ્ઞાનગુણથી રહિત [बहवः अपि]
ઘણાય લોકો (ઘણા પ્રકારનાં કર્મ કરવા છતાં) [एतत् पदं तु] આ જ્ઞાનસ્વરૂપ પદને
[न लभंते] પામતા નથી; [तद्] માટે હે ભવ્ય! [यदि] જો તું [कर્मपरिमोक्षं]
કર્મથી સર્વથા મુક્ત થવા [इच्छसि] ઇચ્છતો હો તો [नियतं एतत्] નિયત એવા
આ (જ્ઞાનને) [गृहाण] ગ્રહણ કર.

ટીકા:—કર્મમાં (કર્મકાંડમાં) જ્ઞાનનું પ્રકાશવું નહિ હોવાથી સઘળાંય
કર્મોથી જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થતી નથી; જ્ઞાનમાં જ જ્ઞાનનું પ્રકાશવું હોવાથી કેવળ (એક)
જ્ઞાનથી જ જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થાય છે. માટે જ્ઞાનશૂન્ય ઘણાય જીવો, પુષ્કળ (ઘણા પ્રકારનાં)
કર્મ કરવાથી પણ આ જ્ઞાનપદને પામતા નથી અને આ પદને નહિ પામતા થકા તેઓ
કર્મોથી મુક્ત થતા નથી; માટે કર્મથી મુક્ત થવા ઇચ્છનારે કેવળ (એક) જ્ઞાનના
અવલંબનથી, નિયત જ એવું આ એક પદ પ્રાપ્ત કરવાયોગ્ય છે.

ભાવાર્થ:—જ્ઞાનથી જ મોક્ષ થાય છે, કર્મથી નહિ; માટે મોક્ષાર્થીએ જ્ઞાનનું
ગ્રહણ કરવું એમ ઉપદેશ છે.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

લોક જ્ઞાનગુણે રહિત આ પદ નહિ પામી શકે;
ગ્રહણ કર તું નિયત આ, જો કર્મમોક્ષેચ્છા તને. ૨૦૫.

(દ્રુતવિલંબિત)

पदमिदं ननु कर्मदुरासदं
सहजबोधकलासुलभं किल ।
तत इदं निजबोधकलाबलात्
कलयितुं यततां सततं जगत् ॥ १४३ ॥

અર્થ:—આ (જ્ઞાનસ્વરૂપ) પદ કર્મથી ખરેખર *દુરાસદ છે
જ્ઞાનની કળા વડે ખરેખર સુલભ છે; માટે નિજજ્ઞાનની કળાના બળથી
અભ્યાસવાને જગત સતત પ્રયત્ન કરો.

ભાવાર્થ:—સર્વ કર્મને છોડાવીને જ્ઞાનકળાના બળ વડે જ જ્ઞાનનો
કરવાનો આચાર્યદેવે ઉપદેશ કર્યો છે. જ્ઞાનની 'કળા' કહેવાથી એમ સૂ
કે:—જ્યાંસુધી પૂર્ણ કળા (કેવળજ્ઞાન) પ્રગટ ન થાય ત્યાંસુધી જ્ઞાન હીનકળ
મતિજ્ઞાનાદિરૂપ છે; જ્ઞાનની તે કળાના આલંબન વડે જ્ઞાનનો અભ્યાસ કરવાથી
જ્ઞાન અર્થાત્ પૂર્ણ કળા પ્રગટે છે. ૨૦૫.

હવેની ગાથામાં આ જ ઉપદેશ વિશેષ કરે છે:—

एदह्मि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदह्मि ।
एदेण होहि तित्तो होहदि तुह उत्तमं सोक्खं ॥ २०६ ॥

एतस्मिन् रतो नित्यं संतुष्टो भव नित्यमेतस्मिन् ।
एतेन भव तृप्तो भविष्यति तवोत्तमं सौख्यम् ॥ २०६ ॥

અન્વયાર્થ:—(હે ભવ્ય પ્રાણી!) તું [एतस्मिन्] આમાં (જ્ઞાન
[नित्यं] નિત્ય [रतः] રત અર્થાત્ પ્રીતિવાળો થા, [एतस्मिन्] આમાં [नि
નિત્ય [संतुष्टः भव] સંતુષ્ટ થા અને [एतेन] આનાથી [तृप्तः भव] તૃપ્ત
આમ કરવાથી) [तव] તને [उत्तमं सौख्यं] ઉત્તમ સુખ [भविष्यति] થશે

*દુરાસદ = દુષ્પ્રાપ્ય; અપ્રાપ્ય; ન જીતી શકાય એવું.
અહીં 'અભ્યાસવાને' એવા અર્થને બદલે 'અનુભવવાને', 'પ્રાપ્ત કરવાને' એમ
પણ થાય છે.

આમાં સદા પ્રીતિવંત બન, આમાં સદા સંતુષ્ટ ને
આનાથી બન તું તૃપ્ત, તુજને સુખ અહો! ઉત્તમ થશે. ૨૦૬

ટીકા:—(હે ભવ્ય!) એટલો જ સત્ય (પરમાર્થસ્વરૂપ) આત્મા છે જેટલું જ્ઞાન છે—એમ નિશ્ચય કરીને જ્ઞાનમાત્રમાં જ સદાય રતિ (-પ્રીતિ, રુચિ) પામ; ...ં જ સત્ય કલ્યાણ છે જેટલું આ જ્ઞાન છે—એમ નિશ્ચય કરીને જ્ઞાનમાત્રથી જ ...ઃ સંતોષ પામ; એટલું જ સત્ય અનુભવનીય (અનુભવ કરવાયોગ્ય) છે જેટલું ... જ્ઞાન છે—એમ નિશ્ચય કરીને જ્ઞાનમાત્રથી જ સદાય તૃપ્તિ પામ. એમ સદાય ...મામાં રત, આત્માથી સંતુષ્ટ અને આત્માથી તૃપ્ત એવા તને વચનથી અગોચર ... સુખ થશે; અને તે સુખ તે ક્ષણે જ તું જ સ્વયમેવ દેખશે, બીજાઓને ન ... (તે સુખ પોતાને જ અનુભવગોચર છે, બીજાને શા માટે પૂછવું પડે?)

ભાવાર્થ:—જ્ઞાનમાત્ર આત્મામાં લીન થવું, તેનાથી જ સંતુષ્ટ થવું અને ...થી જ તૃપ્ત થવું—એ પરમ ધ્યાન છે. તેનાથી વર્તમાન આનંદ અનુભવાય છે ...; થોડા જ કાળમાં જ્ઞાનાનંદસ્વરૂપ કેવળજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થાય છે. આવું કરનાર ...ે જ તે સુખને જાણે છે, બીજાનો એમાં પ્રવેશ નથી.

હવે જ્ઞાનાનુભવના મહિમાનું અને આગળની ગાથાની સૂચનાનું કાવ્ય કહે છે:—

(ઉપજાતિ)

अचिंत्यशक्तिः स्वयमेव देव-
श्चिन्मात्रचिंतामणिरेष यस्मात् ।
सर्वार्थसिद्धात्मतया विधत्ते
ज्ञानी किमन्यस्य परिग्रहेण ॥ १४४ ॥

અર્થ:—કારણ કે આ (જ્ઞાની) પોતે જ અચિંત્ય શક્તિવાળો દેવ છે અને ...માત્ર ચિંતામણિ છે (અર્થાત્ ચૈતન્યરૂપ ચિંતામણિ રત્ન છે), માટે જેના સર્વ અર્થ (...યોજન) સિદ્ધ છે એવા સ્વરૂપે હોવાથી જ્ઞાની અન્યના પરિગ્રહથી શું કરે? (...ઈ જ કરવાનું નથી).

ભાવાર્થ:—આ જ્ઞાનમૂર્તિ આત્મા પોતે જ અનંત શક્તિનો ધારક દેવ છે ... પોતે જ ચૈતન્યરૂપી ચિંતામણિ હોવાથી વાંછિત કાર્યની સિદ્ધિ કરનારો છે; માટે ...ની સર્વ પ્રયોજન સિદ્ધ હોવાથી તેને અન્ય પરિગ્રહનું સેવન કરવાથી શું સાધ્ય ... અર્થાત્ કાંઈ જ સાધ્ય નથી. આમ નિશ્ચયનયનો ઉપદેશ છે. ૨૦૬.

હવે પૂછે છે કે જ્ઞાની પરને કેમ ગ્રહતો નથી? તેનો ઉત્તર કહે છે:—

(દ્રુતવિલમ્બિત)

पदमिदं ननु कर्मदुरासदं
सहजबोधकलासुलभं किल ।
तत इदं निजबोधकलाबलात्
कलयितुं यततां सततं जगत् ॥ १४३ ॥

અર્થઃ—આ (જ્ઞાનસ્વરૂપ) પદ કર્મથી ખરેખર *દુરાસદ છે અને સહજ જ્ઞાનની કળા વડે ખરેખર સુલભ છે; માટે નિજજ્ઞાનની કળાના બળથી આ પદને [1]અભ્યાસવાને જગત સતત પ્રયત્ન કરો.

ભાવાર્થઃ—સર્વ કર્મને છોડાવીને જ્ઞાનકળાના બળ વડે જ જ્ઞાનનો અભ્યાસ કરવાનો આચાર્યદેવે ઉપદેશ કર્યો છે. જ્ઞાનની ' કળા ' કહેવાથી એમ સૂચન થાય છે કેઃ—જ્યાંસુધી પૂર્ણ કળા (કેવળજ્ઞાન) પ્રગટ ન થાય ત્યાંસુધી જ્ઞાન હીનકળાસ્વરૂપ—મતિજ્ઞાનાદિરૂપ છે; જ્ઞાનની તે કળાના આલંબન વડે જ્ઞાનનો અભ્યાસ કરવાથી કેવળજ્ઞાન અર્થાત્ પૂર્ણ કળા પ્રગટે છે. ૨૦૫.

હવેની ગાથામાં આ જ ઉપદેશ વિશેષ કરે છેઃ—

एदह्मि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदह्मि ।
एदेण होहि तित्तो होहदि तुह उत्तमं सोक्खं ॥ २०६ ॥

एतस्मिन् रतो नित्यं संतुष्टो भव नित्यमेतस्मिन् ।
एतेन भव तृप्तो भविष्यति तवोत्तमं सौख्यम् ॥ २०६ ॥

અન્વયાર્થઃ—(હે ભવ્ય પ્રાણી!) તું [एतस्मिन्] આમાં (-જ્ઞાનમાં) [नित्यं] નિત્ય [रतः] રત અર્થાત્ પ્રીતિવાળો થા, [एतस्मिन्] આમાં [नित्यं] નિત્ય [संतुष्टः भव] સંતુષ્ટ થા અને [एतेन] આનાથી [तृप्तः भव] તૃપ્ત થા; (આમ કરવાથી) [तव] તને [उत्तमं सौख्यं] ઉત્તમ સુખ [भविष्यति] થશે.

---

* દુરાસદ = દુષ્પ્રાપ્ય; અપ્રાપ્ય; ન જીતી શકાય એવું.

૧ અહીં ' અભ્યાસવાને ' એવા અર્થને બદલે ' અનુભવવાને ', ' પ્રાપ્ત કરવાને ' એમ અર્થ પણ થાય છે.

આમાં સદા પ્રીતિવંત બન, આમાં સદા સંતુષ્ટ ને
આનાથી બન તું તૃપ્ત, તુજને સુખ અહો! ઉત્તમ થશે. ૨૦૬.

ટીકા:—(હે ભવ્ય!) એટલો જ સત્ય (પરમાર્થસ્વરૂપ) આત્મા છે જેટલું આ જ્ઞાન છે—એમ નિશ્ચય કરીને જ્ઞાનમાત્રમાં જ સદાય રતિ (-પ્રીતિ, રુચિ) પામ; એટલું જ સત્ય કલ્યાણ છે જેટલું આ જ્ઞાન છે—એમ નિશ્ચય કરીને જ્ઞાનમાત્રથી જ સદાય સંતોષ પામ; એટલું જ સત્ય અનુભવનીય (અનુભવ કરવાયોગ્ય) છે જેટલું આ જ્ઞાન છે—એમ નિશ્ચય કરીને જ્ઞાનમાત્રથી જ સદાય તૃપ્તિ પામ. એમ સદાય આત્મામાં રત, આત્માથી સંતુષ્ટ અને આત્માથી તૃપ્ત એવા તને વચનથી અગોચર એવું સુખ થશે; અને તે સુખ તે ક્ષણે જ તું જ સ્વયમેવ દેખશે, બીજાઓને ન પૂછ. (તે સુખ પોતાને જ અનુભવગોચર છે, બીજાને શા માટે પૂછવું પડે?)

ભાવાર્થ:—જ્ઞાનમાત્ર આત્મામાં લીન થવું, તેનાથી જ સંતુષ્ટ થવું અને નાથી જ તૃપ્ત થવું—એ પરમ ધ્યાન છે. તેનાથી વર્તમાન આનંદ અનુભવાય છે ને થોડા જ કાળમાં જ્ઞાનાનંદસ્વરૂપ કેવળજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થાય છે. આવું કરનાર જ તે સુખને જાણે છે, બીજાનો એમાં પ્રવેશ નથી.

હવે જ્ઞાનાનુભવના મહિમાનું અને આગળની ગાથાની સૂચનાનું કાવ્ય કહે છે:—

(ઉપજાતિ)

अचिन्त्यशक्तिः स्वयमेव देव-
श्चिन्मात्रचिंतामणिरेष यस्मात् ।
सर्वार्थसिद्धात्मतया विधत्ते
ज्ञानी किमन्यस्य परिग्रहेण ॥ १४४ ॥

અર્થ:—કારણ કે આ (જ્ઞાની) પોતે જ અચિંત્ય શક્તિવાળો દેવ છે અને ચિન્માત્ર ચિંતામણિ છે (અર્થાત્ ચૈતન્યરૂપ ચિંતામણિ રત્ન છે), માટે જેના સર્વ અર્થ (પ્રયોજન) સિદ્ધ છે એવા સ્વરૂપે હોવાથી જ્ઞાની અન્યના પરિગ્રહથી શું કરે? (કાંઈ જ કરવાનું નથી).

ભાવાર્થ:—આ જ્ઞાનમૂર્તિ આત્મા પોતે જ અનંત શક્તિનો ધારક દેવ છે અને પોતે જ ચૈતન્યરૂપી ચિંતામણિ હોવાથી વાંછિત કાર્યની સિદ્ધિ કરનારો છે; માટે જ્ઞાનીને સર્વ પ્રયોજન સિદ્ધ હોવાથી તેને અન્ય પરિગ્રહનું સેવન કરવાથી શું સાધ્ય છે? અર્થાત્ કાંઈ જ સાધ્ય નથી. આમ નિશ્ચયનયનો ઉપદેશ છે. ૨૦૬.

હવે પૂછે છે કે જ્ઞાની પરને કેમ ગ્રહતો નથી? તેનો ઉત્તર કહે છે:—

को णाम भणिज्ज बुहो परदव्वं मम इमं हवदि दव्वं ।
अप्पाणमप्पणो परिग्गहं तु णियदं वियाणंतो ॥ २०७ ॥

को नाम भणेद् बुधः परद्रव्यं ममेदं भवति द्रव्यम् ।
आत्मानमात्मनः परिग्रहं तु नियतं विजानन् ॥ २०७ ॥

અન્વયાર્થઃ—[आत्मानं तु] પોતાના આત્માને જ [नियतं] નિયમથી [आत्मनः परिग्रहं] પોતાનો પરિગ્રહ [विजानन्] જાણતો થકો [कः नाम बुधः] કયો જ્ઞાની [भणेत्] એમ કહે કે [इदं परद्रव्यं] આ પરદ્રવ્ય [मम द्रव्यं] મારું દ્રવ્ય [भवति] છે?

ટીકાઃ—જે જેનો સ્વ ભાવ છે તે તેનું '*સ્વ' છે અને તે તેનો (સ્વ ભાવનો) સ્વામી છે—એમ સૂક્ષ્મ તીક્ષ્ણ તત્ત્વદૃષ્ટિના આલંબનથી જ્ઞાની (પોતાના) આત્માને જ આત્માનો પરિગ્રહ નિયમથી જાણે છે, તેથી "આ મારું 'સ્વ' નથી, હું આનો સ્વામી નથી" એમ જાણતો થકો પરદ્રવ્યને પરિગ્રહતો નથી (અર્થાત્ પરદ્રવ્યને પોતાનો પરિગ્રહ કરતો નથી).

ભાવાર્થઃ—લોકમાં એવી રીત છે કે સમજદાર ડાહ્યો માણસ પરની વસ્તુને પોતાની જાણતો નથી, તેને ગ્રહણ કરતો નથી. તેવી જ રીતે પરમાર્થજ્ઞાની પોતાના સ્વભાવને જ પોતાનું ધન જાણે છે, પરના ભાવને પોતાનો જાણતો નથી, તેને ગ્રહણ કરતો નથી. આ રીતે જ્ઞાની પરનું ગ્રહણ—સેવન કરતો નથી. ૨૦૭.

"માટે હું પણ પરદ્રવ્યને નહિ પરિગ્રહું" એમ હવે (મોક્ષાભિલાષી જીવ) કહે છેઃ—

मज्झं परिग्गहो जइ तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज ।
णादेव अहं जह्मा तह्मा ण परिग्गहो मज्झ ॥ २०८ ॥

* સ્વ = ધન; મિલકત; માલિકીની ચીજ.

'પરદ્રવ્ય આ મુજ દ્રવ્ય' એવું કોણ જ્ઞાની કહે અરે!
નિજ આત્મને નિજનો પરિગ્રહ જાણતો જે નિશ્ચયે? ૨૦૭.

પરિગ્રહ કદી મારો બને તો હું અજીવ બનું ખરે,
હું તો ખરે જ્ઞાતા જ, તેથી નહિ પરિગ્રહ મુજ બને. ૨૦૮.

मम परिग्रहो यदि ततोऽहमजीवतां तु गच्छेयम् ।
ज्ञातैवाहं यस्मात्तस्मान्न परिग्रहो मम ॥ २०८ ॥

અન્વયાર્થ:—[यदि] જો [परिग्रहः] પરદ્રવ્ય-પરિગ્રહ [मम] મારો હોય [ततः] તો [अहम्] હું [अजीवतां तु] અજીવપણાને [गच्छेयं] પામું. [यस्मात्] કારણ કે [अहं] હું તો [ज्ञाता एव] જ્ઞાતા જ છું [तस्मात्] તેથી [परिग्रहः] (પરદ્રવ્યરૂપ) પરિગ્રહ [मम न] મારો નથી.

ટીકા:—જો અજીવ પરદ્રવ્યને હું પરિગ્રહું તો અવશ્યમેવ તે અજીવ મારું 'સ્વ' થાય, હું પણ અવશ્યમેવ તે અજીવનો સ્વામી થાઉં; અને અજીવનો જે સ્વામી તે ખરેખર અજીવ જ હોય. એ રીતે અવશે (લાચારીથી) પણ મને અજીવપણું આવી પડે. મારું તો એક જ્ઞાયક ભાવ જ જે 'સ્વ' છે, તેનો જ હું સ્વામી છું; માટે મને અજીવપણું ન હો, હું તો જ્ઞાતા જ રહીશ, પરદ્રવ્યને નહિ પરિગ્રહું.

ભાવાર્થ:—નિશ્ચયનયથી એ સિદ્ધાંત છે કે જીવનો ભાવ જીવ જ છે, તેની સાથે જીવને સ્વ-સ્વામી સંબંધ છે; અને અજીવનો ભાવ અજીવ જ છે, તેની સાથે અજીવને સ્વ-સ્વામી સંબંધ છે. જો જીવને અજીવનો પરિગ્રહ માનવામાં આવે તો જીવ અજીવપણાને પામે; માટે જીવને અજીવનો પરિગ્રહ પરમાર્થે માનવો તે મિથ્યાબુદ્ધિ છે. જ્ઞાનીને એવી મિથ્યાબુદ્ધિ હોય નહિ. જ્ઞાની તો એમ માને છે કે પરદ્રવ્ય મારો પરિગ્રહ નથી, હું તો જ્ઞાતા છું. ૨૦૮.

'વળી આ (નીચે પ્રમાણે) મારો નિશ્ચય છે' એમ હવે કહે છે:—

छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं ।
जम्हा तम्हा गच्छदु तहवि हु ण परिग्गहो मज्झ ॥ २०९ ॥

छिद्यतां वा भिद्यतां वा नीयतां वाथवा यातु विप्रलयम् ।
यस्मात्तस्माद् गच्छतु तथापि खलु न परिग्रहो मम ॥ २०९ ॥

અન્વયાર્થ:—[छिद्यतां वा] છેદાઈ જાઓ, [भिद्यतां वा] અથવા ભેદાઈ જાઓ, [नीयतां वा] અથવા કોઈ લઈ જાઓ, [अथवा विप्रलयं यातु] અથવા નષ્ટ થઈ જાઓ, [यस्मात् तस्मात् गच्छतु] અથવા તો ગમે તે રીતે જાઓ, [तथापि]

છેદાવ, વા ભેદાવ, કો લઈ જાવ, નષ્ટ બનો ભલે,
વા અન્ય કો રીત જાવ, પણ પરિગ્રહ નથી મારો ખરે. ૨૦૯.

तोपण [नतु] खरेखर [परिग्रहः] परिग्रह [मम न] मारो नथी.

टीकाः—परद्रव्य छेदाओ, अथवा भेदाओ, अथवा कोई तेने लई जाओ, अथवा नष्ट थई जाओ, अथवा गमे ते रीते जाओ, तोपण हुं परद्रव्यने नहि परिग्रहुं; कारण के 'परद्रव्य मारुं स्व नथी,—हुं परद्रव्यनो स्वामी नथी, परद्रव्य ज परद्रव्यनुं स्व छे,—परद्रव्य ज परद्रव्यनो स्वामी छे, हुं ज मारुं स्व छुं,—हुं ज मारो स्वामी छुं'—एम हुं जाणुं छुं.

भावार्थः—ज्ञानीने परद्रव्यना बगडवा-सुधरवानो हर्षविषाद होतो नथी.

हवे आ अर्थना कळशरूप अने आगळना कथननी सूचनारूप काव्य कहे छेः—

(वसंततिलका)

इत्थं परिग्रहमपास्य समस्तमेव
सामान्यतः स्वपरयोरविवेकहेतुम् ।
अज्ञानमुज्झितुमना अधुना विशेषाद्
भूयस्तमेव परिहर्तुमयं प्रवृत्तः ॥ १४५ ॥

*अर्थः—आ रीते समस्त परिग्रहने सामान्यतः छोडीने हवे स्व-परना अविवेकना कारणरूप अज्ञानने छोडवानुं जेनुं मन छे एवो आ फरीने तेने ज (-परिग्रहने ज-) विशेषतः छोडवाने प्रवृत्त थयो छे.

भावार्थः—स्वपरने एकरूप जाणवानुं कारण अज्ञान छे. ते अज्ञानने समस्तपणे छोडवा इच्छता जीवे प्रथम तो परिग्रहनो सामान्यतः त्याग कर्यो अने हवे (हवेनी गाथाओमां) ते परिग्रहने विशेषतः (जुदां जुदां नाम लईने) छोडे छे. २०९.

ज्ञानीने धर्मनो (पुण्यनो) परिग्रह नथी एम प्रथम कहे छेः—

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे धम्मं ।
अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ॥ २१० ॥

* आ कळशनो अर्थ आ प्रमाणे पण थाय छेः—आ रीते स्व-परना अविवेकना कारणरूप समस्त परिग्रहने सामान्यतः छोडीने हवे, अज्ञानने छोडवानुं जेनुं मन छे एवो आ, फरीने तेने ज विशेषतः छोडवाने प्रवृत्त थयो छे.

અનિચ્છક કહ્યો અપરિગ્રહી, જ્ઞાની ન ઇચ્છે પુણ્યને,
તેથી ન પરિગ્રહી પુણ્યનો તે, પુણ્યનો જ્ઞાયક રહે. ૨૧૦.

अपरिग्रहोऽनिच्छो भणितो ज्ञानी च नेच्छति धर्मम् ।
अपरिग्रहस्तु धर्मस्य ज्ञायकस्तेन स भवति ॥ २१० ॥

અન્વયાર્થઃ—[अनिच्छः] અનિચ્છકને [अपरिग्रहः] અપરિગ્રહી [भणितः] કહ્યો છે [च] અને [ज्ञानी] જ્ઞાની [धर्मं] ધર્મને (પુણ્યને) [न इच्छति] ઇચ્છતો નથી, [तेन] તેથી [सः] તે [धर्मस्य] ધર્મનો [अपरिग्रहः तु] પરિગ્રહી નથી, [ज्ञायकः] (ધર્મનો) જ્ઞાયક જ [भवति] છે.

ટીકાઃ—ઇચ્છા પરિગ્રહ છે. તેને પરિગ્રહ નથી—જેને ઇચ્છા નથી. ઇચ્છા તો અજ્ઞાનમય ભાવ છે અને અજ્ઞાનમય ભાવ જ્ઞાનીને હોતો નથી, જ્ઞાનીને જ્ઞાનમય જ ભાવ હોય છે; તેથી અજ્ઞાનમય ભાવ જે ઇચ્છા તેના અભાવને લીધે જ્ઞાની ધર્મને ઇચ્છતો નથી; માટે જ્ઞાનીને ધર્મનો પરિગ્રહ નથી. જ્ઞાનમય એવા એક જ્ઞાયકભાવના સદ્ભાવને લીધે આ (જ્ઞાની) ધર્મનો કેવળ જ્ઞાયક જ છે. ૨૧૦.

હવે, જ્ઞાનીને અધર્મનો (પાપનો) પરિગ્રહ નથી એમ કહે છેઃ—

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदि अधम्मं ।
अपरिग्गहो अधम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ॥ २११ ॥

अपरिग्रहोऽनिच्छो भणितो ज्ञानी च नेच्छत्यधर्मम् ।
अपरिग्रहोऽधर्मस्य ज्ञायकस्तेन स भवति ॥ २११ ॥

અન્વયાર્થઃ—[अनिच्छः] અનિચ્છકને [अपरिग्रहः] અપરિગ્રહી [भणितः] કહ્યો છે [च] અને [ज्ञानी] જ્ઞાની [अधर्मं] અધર્મને (પાપને) [न इच्छति] ઇચ્છતો નથી, [तेन] તેથી [सः] તે [अधर्मस्य] અધર્મનો [अपरिग्रहः] પરિગ્રહી નથી, [ज्ञायकः] (અધર્મનો) જ્ઞાયક જ [भवति] છે.

ટીકાઃ—ઇચ્છા પરિગ્રહ છે. તેને પરિગ્રહ નથી—જેને ઇચ્છા નથી. ઇચ્છા તો અજ્ઞાનમય ભાવ છે અને અજ્ઞાનમય ભાવ જ્ઞાનીને હોતો નથી, જ્ઞાનીને જ્ઞાનમય જ ભાવ હોય છે; તેથી અજ્ઞાનમય ભાવ જે ઇચ્છા તેના અભાવને લીધે જ્ઞાની અધર્મને ઇચ્છતો નથી; માટે જ્ઞાનીને અધર્મનો પરિગ્રહ નથી. જ્ઞાનમય એવા એક જ્ઞાયકભાવના

અનિચ્છક કહ્યો અપરિગ્રહી, જ્ઞાની ન ઇચ્છે પાપને,
તેથી ન પરિગ્રહી પાપનો તે, પાપનો જ્ઞાયક રહે. ૨૧૧.

સદ્ભાવને લીધે આ (જ્ઞાની) અધર્મનો કેવળ જ્ઞાયક જ છે. એ જ પ્રમાણે ગાથામાં 'અધર્મ' શબ્દ પલટીને તેની જગ્યાએ રાગ, દ્વેષ, ક્રોધ, માન, માયા, લોભ, કર્મ, નોકર્મ, મન, વચન, કાય, શ્રોત્ર, ચક્ષુ, ઘ્રાણ, રસન અને સ્પર્શન—એ સોળ શબ્દો મૂકી, સોળ ગાથાસૂત્રો વ્યાખ્યાનરૂપ કરવાં અને આ ઉપદેશથી બીજાં પણ વિચારવાં. ૨૧૧.

હવે, જ્ઞાનીને આહારનો પણ પરિગ્રહ નથી એમ કહે છે:—

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे असणं।
अपरिग्गहो दु असणस्स जाणगो तेण सो होदि ॥ २१२ ॥

अपरिग्रहोऽनिच्छो भणितो ज्ञानी च नेच्छत्यशनम् ।
अपरिग्रहस्त्वशनस्य ज्ञायकस्तेन स भवति ॥ २१२ ॥

અન્વયાર્થઃ—[अनिच्छः] અનિચ્છકને [अपरिग्रहः] અપરિગ્રહી [भणितः] કહ્યો છે [च] અને [ज्ञानी] જ્ઞાની [अशनं] અશનને (ભોજનને) [न इच्छति] ઇચ્છતો નથી, [तेन] તેથી [सः] તે [अशनस्य] અશનનો [अपरिग्रहः तु] પરિગ્રહી નથી, [ज्ञायकः] (અશનનો) જ્ઞાયક જ [भवति] છે.

ટીકાઃ—ઇચ્છા પરિગ્રહ છે. તેને પરિગ્રહ નથી—જેને ઇચ્છા નથી. ઇચ્છા તો અજ્ઞાનમય ભાવ છે અને અજ્ઞાનમય ભાવ જ્ઞાનીને હોતો નથી, જ્ઞાનીને જ્ઞાનમય જ ભાવ હોય છે; તેથી અજ્ઞાનમય ભાવ જે ઇચ્છા તેના અભાવને લીધે જ્ઞાની અશનને ઇચ્છતો નથી; માટે જ્ઞાનીને અશનનો પરિગ્રહ નથી. જ્ઞાનમય એવા એક જ્ઞાયકભાવના સદ્ભાવને લીધે આ (જ્ઞાની) અશનનો કેવળ જ્ઞાયક જ છે.

ભાવાર્થઃ—જ્ઞાનીને આહારની પણ ઇચ્છા નથી તેથી જ્ઞાનીને આહાર કરવો તે પણ પરિગ્રહ નથી. અહીં પ્રશ્ન થાય છે કે—આહાર તો મુનિ પણ કરે છે, તેમને ઇચ્છા છે કે નહિ? ઇચ્છા વિના આહાર કેમ કરે? તેનું સમાધાનઃ—અશાતાવેદનીય કર્મના ઉદયથી જઠરાગ્નિરૂપ ક્ષુધા ઉપજે છે, વીર્યાંતરાયના ઉદયથી તેની વેદના સહી શકાતી નથી અને ચારિત્રમોહના ઉદયથી આહારગ્રહણની ઇચ્છા ઉત્પન્ન થાય છે. તે ઇચ્છાને જ્ઞાની કર્મના ઉદયનું કાર્ય જાણે છે, રોગ સમાન જાણી તેને મટાડવા ચાહે છે. ઇચ્છા પ્રત્યે અનુરાગરૂપ ઇચ્છા જ્ઞાનીને નથી અર્થાત્ તેને એમ ઇચ્છા નથી કે મારી આ ઇચ્છા સદા રહો. માટે તેને અજ્ઞાનમય ઇચ્છાનો અભાવ છે. પરજન્ય ઇચ્છાનું

અનિચ્છક કહ્યો અપરિગ્રહી, જ્ઞાની ન ઇચ્છે અશનને,
તેથી ન પરિગ્રહી અશનનો તે, અશનનો જ્ઞાયક રહે. ૨૧૨.

સ્વામીપણું જ્ઞાનીને નથી માટે જ્ઞાની ઇચ્છાનો પણ જ્ઞાયક જ છે. આ પ્રમાણે શુદ્ધનયની પ્રધાનતાથી કથન જાણવું. ૨૧૨.

હવે, જ્ઞાનીને પાનનો (પાણી વગેરે પીવાનો) પણ પરિગ્રહ નથી એમ કહે છે:—

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे पाणं ।
अपरिग्गहो दु पाणस्स जाणगो तेण सो होदि ॥ २१३ ॥

अपरिग्रहोऽनिच्छो भणितो ज्ञानी च नेच्छति पानम् ।
अपरिग्रहस्तु पानस्य ज्ञायकस्तेन स भवति ॥ २१३ ॥

અન્વયાર્થ:—[अनिच्छः] અનિચ્છકને [अपरिग्रहः] અપરિગ્રહી [भणितः] કહ્યો છે [च] અને [ज्ञानी] જ્ઞાની [पानं] પાનને [न इच्छति] ઇચ્છતો નથી, [तेन] તેથી [सः] તે [पानस्य] પાનનો [अपरिग्रहः तु] પરિગ્રહી નથી, [ज्ञायकः] (પાનનો) જ્ઞાયક જ [भवति] છે.

ટીકા:—ઇચ્છા પરિગ્રહ છે. તેને પરિગ્રહ નથી—જેને ઇચ્છા નથી. ઇચ્છા તો અજ્ઞાનમય ભાવ છે અને અજ્ઞાનમય ભાવ જ્ઞાનીને હોતો નથી, જ્ઞાનીને જ્ઞાનમય જ ભાવ હોય છે; તેથી અજ્ઞાનમય ભાવ જે ઇચ્છા તેના અભાવને લીધે જ્ઞાની પાનને ઇચ્છતો નથી; માટે જ્ઞાનીને પાનનો પરિગ્રહ નથી. જ્ઞાનમય એવા એક જ્ઞાયકભાવના સદ્ભાવને લીધે આ (જ્ઞાની) પાનનો કેવળ જ્ઞાયક જ છે.

ભાવાર્થ:—આહારની ગાથાના ભાવાર્થ પ્રમાણે અહીં પણ સમજવું. ૨૧૩.

એ રીતે બીજા પણ અનેક પ્રકારના પરજન્ય ભાવોને જ્ઞાની ઇચ્છતો નથી એમ હવે કહે છે:—

एमादिए दु विविहे सव्वे भावे य णिच्छदे णाणी ।
जाणगभावो णियदो णीरालंबो दु सव्वत्थ ॥ २१४ ॥

અનિચ્છક કહ્યો અપરિગ્રહી, જ્ઞાની ન ઇચ્છે પાનને,
તેથી ન પરિગ્રહી પાનનો તે, પાનનો જ્ઞાયક રહે. ૨૧૩.
એ આદિ વિધવિધ ભાવ બહુ જ્ઞાની ન ઇચ્છે સર્વને;
સર્વત્ર આલંબન રહિત બસ નિયત જ્ઞાયકભાવ તે. ૨૧૪.

एवमादिकांस्तु विविधान् सर्वान् भावांश्च नेच्छति ज्ञानी ।
ज्ञायकभावो नियतो निरालंबस्तु सर्वत्र ॥ २१४ ॥

અન્વયાર્થઃ—[एवमादिकान् तु] ઇત્યાદિક [विविधान्] અનેક પ્રકારના [सर्वान् भावान् च] સર્વ ભાવોને [ज्ञानी] જ્ઞાની [न इच्छति] ઇચ્છતો નથી; [सर्वत्र निरालंबः तु] સર્વત્ર (બધામાં) નિરાલંબ એવો તે [नियतः ज्ञायकभावः] નિશ્ચિત જ્ઞાયકભાવ જ છે.

ટીકાઃ—ઇત્યાદિક બીજા પણ ઘણા પ્રકારના જે પરદ્રવ્યના ભાવો છે તે બધાયને જ્ઞાની ઇચ્છતો નથી તેથી જ્ઞાનીને સમસ્ત પરદ્રવ્યના ભાવોનો પરિગ્રહ નથી. એ રીતે જ્ઞાનીને અત્યંત નિષ્પરિગ્રહપણું સિદ્ધ થયું.

હવે એ પ્રમાણે આ, સમસ્ત અન્યભાવોના પરિગ્રહથી શૂન્યપણાને લીધે જેણે સમસ્ત અજ્ઞાન વમી નાખ્યું છે એવો, સર્વત્ર અત્યંત નિરાલંબ થઈને, નિયત ટંકોત્કીર્ણ એક જ્ઞાયકભાવ રહેતો, સાક્ષાત્ વિજ્ઞાનઘન આત્માને અનુભવે છે.

ભાવાર્થઃ—પુણ્ય, પાપ, અશન, પાન વગેરે સર્વ અન્યભાવોનો જ્ઞાનીને પરિગ્રહ નથી કારણ કે સર્વ પરભાવોને હેય જાણે ત્યારે તેની પ્રાપ્તિની ઇચ્છા થતી નથી.*

હવે આગળની ગાથાની સૂચનારૂપ કાવ્ય કહે છેઃ—

(સ્વાગતા)

पूर्वबद्धनिजकर्मविपाकात्
ज्ञानिनो यदि भवत्युपभोगः ।
तद्भवत्वथ च रागवियोगात्
नूनमेति न परिग्रहभावम् ॥ १४६ ॥

અર્થઃ—પૂર્વે બંધાયેલા પોતાના કર્મના વિપાકને લીધે જ્ઞાનીને જો ઉપભોગ હોય તો હો, પરંતુ રાગના વિયોગને લીધે (-અભાવને લીધે) ખરેખર તે ઉપભોગ પરિગ્રહભાવને પામતો નથી.

ભાવાર્થઃ—પૂર્વે બંધાયેલા કર્મનો ઉદય આવતાં ઉપભોગસામગ્રી પ્રાપ્ત થાય તેને જો અજ્ઞાનમય રાગભાવે ભોગવવામાં આવે તો તે ઉપભોગ પરિગ્રહપણાને

---

* પ્રથમ, મોક્ષાભિલાષી સર્વ પરિગ્રહને છોડવા પ્રવર્ત થયો હતો, તેણે આ ગાથા સુધીમાં સમસ્ત પરિગ્રહભાવને છોડ્યો, એ રીતે સમસ્ત અજ્ઞાનને દૂર કર્યું અને જ્ઞાનસ્વરૂપ આત્માને અનુભવ્યો.

પામે. પરંતુ જ્ઞાનીને અજ્ઞાનમય રાગભાવ નથી. તે જાણે છે કે જે પૂર્વે બાંધ્યું હતું તે ઉદયમાં આવી ગયું અને છૂટી ગયું; હવે હું તેને ભવિષ્યમાં વાંછતો નથી. આ રીતે જ્ઞાનીને રાગરૂપ ઇચ્છા નથી તેથી તેનો ઉપભોગ પરિગ્રહપણાને પામતો નથી. ૨૧૪.

હવે, જ્ઞાનીને ત્રણે કાળ સંબંધી પરિગ્રહ નથી એમ કહે છેઃ—

उप्पण्णोदयभोगो वियोगबुद्धिए तस्स सो णिच्चं ।
कंखामणागयस्स य उदयस्स ण कुव्वए णाणी ॥ २१५ ॥

उत्पन्नोदयभोगो वियोगबुद्‌ध्या तस्य स नित्यम् ।
कांक्षामनागतस्य च उदयस्य न करोति ज्ञानी ॥ २१५ ॥

અન્વયાર્થઃ—[उत्पन्नोदयभोगः] જે ઉત્પન્ન (અર્થાત્ વર્તમાન કાળના) ઉદયનો ભોગ [सः] તે, [तस्य] જ્ઞાનીને [नित्यं] સદા [वियोगबुद्‌ध्या] વિયોગબુદ્ધિએ હોય છે [च] અને [अनागतस्य उदयस्य] આગામી (અર્થાત્ ભવિષ્ય કાળના) ઉદયની [ज्ञानी] જ્ઞાની [कांक्षां] વાંછા [न करोति] કરતો નથી.

ટીકાઃ—કર્મના ઉદયનો ઉપભોગ ત્રણ પ્રકારનો હોય—અતીત (ગયા કાળનો), પ્રત્યુત્પન્ન (વર્તમાન કાળનો) અને અનાગત (ભવિષ્ય કાળનો). તેમાં પ્રથમ, જે અતીત ઉપભોગ તે અતીતપણાને લીધે જ (અર્થાત્ વીતી ગયો હોવાને લીધે જ) પરિગ્રહભાવને ધારતો નથી. અનાગત ઉપભોગ જો વાંછવામાં આવતો હોય તો જ પરિગ્રહભાવને (પરિગ્રહપણાને) ધારે; અને જે પ્રત્યુત્પન્ન ઉપભોગ તે રાગબુદ્ધિએ પ્રવર્તતો હોય તો જ પરિગ્રહભાવને ધારે.

પ્રત્યુત્પન્ન ઉપભોગ જ્ઞાનીને રાગબુદ્ધિએ પ્રવર્તતો જોવામાં આવતો નથી કારણ કે જ્ઞાનીને અજ્ઞાનમય ભાવ જે રાગબુદ્ધિ તેનો અભાવ છે; અને કેવળ વિયોગબુદ્ધિએ જ (હેયબુદ્ધિએ જ) પ્રવર્તતો તે ખરેખર પરિગ્રહ નથી. માટે પ્રત્યુત્પન્ન કર્મોદય-ઉપભોગ જ્ઞાનીને પરિગ્રહ નથી (-પરિગ્રહરૂપ નથી).

જે અનાગત ઉપભોગ તે તો ખરેખર જ્ઞાનીને વાંછિત જ નથી (અર્થાત્ જ્ઞાનીને તેની વાંછા જ નથી) કારણ કે જ્ઞાનીને અજ્ઞાનમય ભાવ જે વાંછા તેનો અભાવ છે. માટે અનાગત કર્મોદય-ઉપભોગ જ્ઞાનીને પરિગ્રહ નથી (-પરિગ્રહરૂપ નથી)

ઉત્પન્ન ઉદયનો ભોગ નિત્ય વિયોગભાવે જ્ઞાનીને,
ને ભાવી કર્મોદયતણી કાંક્ષા નહિ જ્ઞાની કરે. ૨૧૫.

ભાવાર્થઃ—અતીત કર્મોદય-ઉપભોગ તો વીતી જ ગયો છે. અનાગત ઉપભોગની વાંછા નથી; કારણ કે જે કર્મને જ્ઞાની અહિતરૂપ જાણે છે તેના આગામી ઉદયના ભોગની વાંછા તે કેમ કરે? વર્તમાન ઉપભોગ પ્રત્યે રાગ નથી; કારણ કે જેને હેય જાણે છે તેના પ્રત્યે રાગ કેમ હોય? આ રીતે જ્ઞાનીને જે ત્રણે કાળ સંબંધી કર્મોદયનો ઉપભોગ તે પરિગ્રહ નથી. જ્ઞાની જે વર્તમાનમાં ઉપભોગનાં સાધનો ભેગાં કરે છે તે તો પીડા સહી શકાતી નથી તેનો ઇલાજ કરે છે—રોગી જેમ રોગનો ઇલાજ કરે તેમ. આ, નબળાઈનો દોષ છે. ૨૧૫.

હવે પૂછે છે કે અનાગત કર્મોદય-ઉપભોગને જ્ઞાની કેમ વાંછતો નથી? તેનો ઉત્તર કહે છેઃ—

जो वेददि वेदिज्जदि समए समए विणस्सदे उभयं।
तं जाणगो दु णाणी उभयंपि ण कंखइ कयांवि ॥ २१६ ॥

यो वेदयते वेद्यते समये समये विनश्यत्युभयम् ।
तद्ज्ञायकस्तु ज्ञानी उभयमपि न कांक्षति कदापि ॥ २१६ ॥

અન્વયાર્થઃ—[यः वेदयते] જે ભાવ વેદે છે (અર્થાત્ વેદકભાવ) અને [वेद्यते] જે ભાવ વેદાય છે (અર્થાત્ વેદ્યભાવ) [उभयं] તે બન્ને ભાવો [समये समये] સમયે સમયે [विनश्यति] વિનાશ પામે છે—[तद्ज्ञायकः तु] એવું જાણનાર [ज्ञानी] જ્ઞાની [उभयं अपि] તે બન્ને ભાવોને [कदापि] કદાપિ [न कांक्षति] વાંછતો નથી.

ટીકાઃ—જ્ઞાની તો, સ્વભાવભાવનું ધ્રુવપણું હોવાથી, ટંકોત્કીર્ણ એક જ્ઞાયકભાવસ્વરૂપ નિત્ય છે; અને જે *વેદ્ય-વેદક (બે) ભાવો છે તેઓ, વિભાવભાવોનું ઉત્પન્ન થવાપણું અને વિનાશ થવાપણું હોવાથી, ક્ષણિક છે. ત્યાં, જે ભાવ કાંક્ષમાણ (અર્થાત્ વાંછા કરનારો) એવા વેદ્યભાવને વેદે છે અર્થાત્ વેદ્યભાવને અનુભવનાર છે તે (વેદક ભાવ) જ્યાંસુધીમાં ઉત્પન્ન થાય ત્યાંસુધીમાં કાંક્ષમાણ (અર્થાત્ વાંછા કરનારો) વેદ્ય ભાવ વિનાશ પામી જાય છે; તે વિનાશ પામી જતાં, વેદક ભાવ શું વેદે? જો એમ કહેવામાં આવે કે કાંક્ષમાણ વેદ્યભાવની પછી ઉત્પન્ન થતા બીજા વેદ્યભાવને તે

* વેદ્ય = વેદાવાને યોગ્ય. વેદક = વેદનાર, અનુભવનાર.

રે! વેદ્ય વેદક ભાવ બન્ને સમય સમયે વિણસે,
—એ જાણતો જ્ઞાની કદાપિ ન ઉભયની કાંક્ષા કરે. ૨૧૬.

તો (ત્યાં એમ છે કે) તે બીજો વેદ્યભાવ ઉત્પન્ન થયા પહેલાં જ તે વેદકભાવ નાશ પામી જાય છે; પછી તે બીજા વેદ્યભાવને કોણ વેદે? જો એમ કહેવામાં આવે કે વેદકભાવની પછી ઉત્પન્ન થતો બીજો વેદકભાવ તેને વેદે છે, તો (ત્યાં એમ છે કે) તે બીજો વેદકભાવ ઉત્પન્ન થયા પહેલાં જ તે વેદ્યભાવ વિણસી જાય છે; પછી તે બીજો વેદકભાવ શું વેદે? આ રીતે કાંક્ષમાણ ભાવના વેદનની અનવસ્થા છે. તે અનવસ્થાને જાણતો જ્ઞાની કાંઈ પણ વાંછતો નથી.

ભાવાર્થઃ—વેદકભાવ અને વેદ્યભાવને કાળભેદ છે. જ્યારે વેદકભાવ હોય છે ત્યારે વેદ્યભાવ હોતો નથી અને જ્યારે વેદ્યભાવ હોય છે ત્યારે વેદકભાવ હોતો નથી. જ્યારે વેદકભાવ આવે છે ત્યારે વેદ્યભાવ વિણસી ગયો હોય છે; પછી વેદકભાવ કોને વેદે? અને જ્યારે વેદ્યભાવ આવે છે ત્યારે વેદકભાવ વિણસી ગયો હોય છે; પછી વેદકભાવ વિના વેદ્યને કોણ વેદે? આવી અવ્યવસ્થા જાણીને જ્ઞાની પોતે જાણનાર જ રહે છે, વાંછા કરતો નથી. અહીં પ્રશ્ન થાય છે કે—આત્મા તો નિત્ય છે તેથી તે બન્ને ભાવોને વેદી શકે છે; તો પછી જ્ઞાની વાંછા કેમ ન કરે? તેનું સમાધાનઃ—વેદ્ય-વેદક ભાવો વિભાવભાવો છે, સ્વભાવભાવ નથી, તેથી તેઓ વિનાશિક છે; માટે વાંછા કરનારો એવો વેદ્યભાવ જ્યાં આવે ત્યાંસુધીમાં વેદકભાવ (ભોગવનારો ભાવ) નાશ પામી જાય છે; એ રીતે વાંછિત ભોગ તો થતો નથી. તેથી જ્ઞાની નિષ્ફળ વાંછા કેમ કરે? જ્યાં મનોવાંછિત વેદાતું નથી ત્યાં વાંછા કરવી તે અજ્ઞાન છે.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છેઃ—

(સ્વાગતા)

वेद्यवेदकविभावचलत्वाद्
वेद्यते न खलु कांक्षितमेव ।
तेन कांक्षति न किंचन विद्वान्
सर्वतोऽप्यतिविरक्तिमुपैति ॥ १४७ ॥

અર્થઃ—વેદ્ય-વેદકરૂપ વિભાવભાવોનું ચળપણું (અસ્થિરપણું) હોવાથી ખરેખર વાંછિત વેદાતું નથી; માટે જ્ઞાની કાંઈ પણ વાંછતો નથી, સર્વ પ્રત્યે અતિ વિરક્તપણાને (વૈરાગ્યભાવને) પામે છે.

ભાવાર્થઃ—અનુભવગોચર જે વેદ્ય-વેદક વિભાવો તેમને કાળભેદ છે, તેમનો મેળાપ નથી (કારણ કે તેઓ કર્મના નિમિત્તે થતા હોવાથી અસ્થિર છે); માટે જ્ઞાની આગામી કાળ સંબંધી વાંછા શા માટે કરે? ૨૧૬.

એ રીતે જ્ઞાનીને સર્વ ઉપભોગ પ્રત્યે વૈરાગ્ય છે એમ હવે કહે છે:—

बंधुवभोगणिमित्ते अज्झवसाणोदएसु णाणिस्स ।
संसारदेहविसएसु णेव उप्पज्जदे रागो ॥ २१७ ॥

बंधोपभोगनिमित्तेषु अध्यवसानोदयेषु ज्ञानिनः ।
संसारदेहविषयेषु नैवोत्पद्यते रागः ॥ २१७ ॥

અન્વયાર્થ:—[बंधोपभोगनिमित्तेषु] બંધ અને ઉપભોગનાં નિમિત્ત એવા [संसारदेहविषयेषु] સંસારસંબંધી અને દેહસંબંધી [अध्यवसानोदयेषु] અધ્યવસાનના ઉદયોમાં [ज्ञानिनः] જ્ઞાનીને [रागः] રાગ [न एव उत्पद्यते] ઉપજતો જ નથી.

ટીકા:—આ લોકમાં જે અધ્યવસાનના ઉદયો છે તેઓ કેટલાક તો સંસારસંબંધી છે અને કેટલાક શરીરસંબંધી છે. તેમાં, જેટલા સંસારસંબંધી છે તેટલા બંધનનાં નિમિત્ત છે અને જેટલા શરીરસંબંધી છે તેટલા ઉપભોગનાં નિમિત્ત છે. જેટલા બંધનનાં નિમિત્ત છે તેટલા તો રાગદ્વેષમોહાદિક છે અને જેટલા ઉપભોગનાં નિમિત્ત છે તેટલા સુખદુઃખાદિક છે. આ બધાયમાં જ્ઞાનીને રાગ નથી; કારણ કે તેઓ બધાય નાના દ્રવ્યોના સ્વભાવ હોવાથી, ટંકોત્કીર્ણ એક જ્ઞાયકભાવ જેનો સ્વભાવ છે એવા જ્ઞાનીને તેમનો નિષેધ છે.

ભાવાર્થ:—જે અધ્યવસાનના ઉદયો સંસાર સંબંધી છે અને બંધનનાં નિમિત્ત છે તેઓ તો રાગ, દ્વેષ, મોહ ઇત્યાદિ છે તથા જે અધ્યવસાનના ઉદયો દેહ સંબંધી છે અને ઉપભોગનાં નિમિત્ત છે તેઓ સુખ, દુઃખ ઇત્યાદિ છે. તે બધાય (અધ્યવસાનના ઉદયો), નાના દ્રવ્યોના (અર્થાત્ પુદ્ગલદ્રવ્ય અને જીવદ્રવ્ય કે જેઓ સંયોગરૂપે છે તેમના) સ્વભાવ છે; જ્ઞાનીનો તો એક જ્ઞાયકસ્વભાવ છે. માટે જ્ઞાનીને તેમનો નિષેધ છે; તેથી જ્ઞાનીને તેમના પ્રત્યે રાગ-પ્રીતિ નથી. પરદ્રવ્ય, પરભાવ સંસારમાં ભ્રમણનાં કારણ છે; તેમના પ્રત્યે પ્રીતિ કરે તો જ્ઞાની શાનો?

હવે આ અર્થના કળશરૂપે તથા આગળના કથનની સૂચનારૂપે શ્લોક કહે છે:—

(સ્વાગતા)

ज्ञानिनो न हि परिग्रहभावं
कर्म रागरसरिक्ततयैति ।

સંસારદેહસંબંધી ને બંધોપભોગનિમિત્ત જે,
તે સર્વ અધ્યવસાનઉદયે રાગ થાય ન જ્ઞાનીને. ૨૧૭.

रंगयुक्तिरकषायितवस्त्रे
स्वीकृतैव हि बहिर्लुठतीह ॥ १४८ ॥

અર્થ:—જેમ લોધર, ફટકડી વગેરેથી જે કષાયિત કરવામાં ન આવ્યું હોય એવા વસ્ત્રમાં રંગનો સંયોગ, વસ્ત્ર વડે અંગીકાર નહિ કરાયો થકો, બહાર જ લોટે છે—અંદર પ્રવેશ કરતો નથી, તેમ જ્ઞાની રાગરૂપી રસથી રહિત હોવાથી તેને કર્મ પરિગ્રહપણાને ધારતું નથી.

ભાવાર્થ:—જેમ લોધર, ફટકડી વગેરે લગાડ્યા વિના વસ્ત્ર પર રંગ ચડતો નથી તેમ રાગભાવ વિના જ્ઞાનીને કર્મના ઉદયનો ભોગ પરિગ્રહપણાને પામતો નથી.

ફરી કહે છે કે:—

(સ્વાગતા)

ज्ञानवान् स्वरसतोऽपि यतः स्यात्
सर्वरागरसवर्जनशीलः ।
लिप्यते सकलकर्मभिरेषः
कर्ममध्यपतितोऽपि ततो न ॥ १४९ ॥

અર્થ:—કારણ કે જ્ઞાની નિજ રસથી જ સર્વ રાગરસના ત્યાગરૂપ સ્વભાવવાળો છે તેથી તે કર્મ મધ્યે પડ્યો હોવા છતાં પણ સર્વ કર્મોથી લેપાતો નથી. ૧૪૯.

હવે આ જ અર્થનું વ્યાખ્યાન ગાથામાં કરે છે:—

णाणी रागप्पजहो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो ।
णो लिप्पदि रजएण दु कद्दममज्झे जहा कणयं ॥ २१८ ॥
अण्णाणी पुण रत्तो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो ।
लिप्पदि कम्मरएण दु कद्दममज्झे जहा लोहं ॥ २१९ ॥

હો સર્વ દ્રવ્યે રાગવર્જક જ્ઞાની કર્મની મધ્યમાં,
પણ રજ થકી લેપાય નહિ, જ્યમ કનક કર્દમમધ્યમાં. ૨૧૮.
પણ સર્વ દ્રવ્યે રાગશીલ અજ્ઞાની કર્મની મધ્યમાં,
તે કર્મરજ લેપાય છે, જ્યમ લોહ કર્દમમધ્યમાં. ૨૧૯.

ज्ञानी रागप्रहायकः सर्वद्रव्येषु कर्ममध्यगतः ।
नो लिप्यते रजसा तु कर्दममध्ये यथा कनकम् ॥ २१८ ॥
अज्ञानी पुना रक्तः सर्वद्रव्येषु कर्ममध्यगतः ।
लिप्यते कर्मरजसा तु कर्दममध्ये यथा लोहम् ॥ २१९ ॥

અન્વયાર્થઃ—[ज्ञानी] જ્ઞાની [सर्वद्रव्येषु] કે જે સર્વ દ્રવ્યો પ્રત્યે [राग-प्रहायकः] રાગ છોડનારો છે તે [कर्ममध्यगतः] કર્મ મધ્યે રહેલો હોય [तु] તોપણ [रजसा] કર્મરૂપી રજથી [नो लिप्यते] લેપાતો નથી—[यथा] જેમ [कनकं] સોનું [कर्दममध्ये] કાદવ મધ્યે રહેલું હોય તોપણ લેપાતું નથી તેમ. [पुनः] અને [अज्ञानी] અજ્ઞાની [सर्वद्रव्येषु] કે જે સર્વ દ્રવ્યો પ્રત્યે [रक्तः] રાગી છે તે [कर्म-मध्यगतः] કર્મ મધ્યે રહ્યો થકો [कर्मरजसा] કર્મરજથી [लिप्यते तु] લેપાય છે—[यथा] જેમ [लोहं] લોખંડ [कर्दममध्ये] કાદવ મધ્યે રહ્યું થકું લેપાય છે (અર્થાત્ તેને કાટ લાગે છે) તેમ.

ટીકાઃ—જેમ ખરેખર સુવર્ણ કાદવ મધ્યે પડયું હોય તોપણ કાદવથી લેપાતું નથી (અર્થાત્ તેને કાટ લાગતો નથી) કારણ કે તે અલિપ્ત રહેવાના સ્વભાવવાળું છે, તેવી રીતે ખરેખર જ્ઞાની કર્મ મધ્યે રહ્યો હોય તોપણ કર્મથી લેપાતો નથી કારણ કે સર્વ પરદ્રવ્ય પ્રત્યે કરવામાં આવતા જે રાગ તેના ત્યાગરૂપ સ્વભાવપણું હોવાથી જ્ઞાની અલિપ્ત રહેવાના સ્વભાવવાળો છે. જેમ લોખંડ કાદવ મધ્યે પડયું થકું કાદવથી લેપાય છે (અર્થાત્ તેને કાટ લાગે છે) કારણ કે તે લેપાવાના સ્વભાવવાળું છે, તેવી રીતે ખરેખર અજ્ઞાની કર્મ મધ્યે રહ્યો થકો કર્મથી લેપાય છે કારણ કે સર્વ પરદ્રવ્ય પ્રત્યે કરવામાં આવતો જે રાગ તેના ગ્રહણરૂપ સ્વભાવપણું હોવાથી અજ્ઞાની લેપાવાના સ્વભાવવાળો છે.

ભાવાર્થઃ—જેમ કાદવમાં પડેલા સુવર્ણને કાટ લાગતો નથી અને લોખંડને કાટ લાગે છે, તેમ કર્મ મધ્યે રહેલો જ્ઞાની કર્મથી બંધાતો નથી અને અજ્ઞાની કર્મથી બંધાય છે. આ જ્ઞાન-અજ્ઞાનનો મહિમા છે.

હવે આ અર્થનું અને આગળના કથનની સૂચનાનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

याद्दक् ताद्दगिहास्ति तस्य वशतो यस्य स्वभावो हि यः
कर्तुं नैष कथंचनापि हि परैरन्याद्दशः शक्यते ।
अज्ञानं न कदाचनापि हि भवेज्ज्ञानं भवत्संततं
ज्ञानिन् भुंक्ष्व परापराधजनितो नास्तीह बंधस्तव ॥ १५० ॥

અર્થ:—આ લોકમાં જે વસ્તુનો જેવો સ્વભાવ હોય છે તેનો તેવો સ્વભાવ તે વસ્તુના પોતાના વશથી જ (અર્થાત્ પોતાને આધીન જ) હોય છે. એવો વસ્તુનો જે સ્વભાવ તે, પરવસ્તુઓ વડે કોઈ પણ રીતે બીજા જેવો કરી શકાતો નથી. માટે જે નિરંતર જ્ઞાનપણે પરિણમે છે તે કદી પણ અજ્ઞાન થતું નથી; તેથી હે જ્ઞાની! તું (કર્મોદયજનિત) ઉપભોગને ભોગવ, આ જગતમાં પરના અપરાધથી ઉપજતો બંધ તને નથી (અર્થાત્ પરના અપરાધથી તને બંધ થતો નથી).

ભાવાર્થ:—વસ્તુનો સ્વભાવ વસ્તુને પોતાને આધીન જ છે. માટે જે આત્મા પોતે જ્ઞાનરૂપે પરિણમે છે તેને પરદ્રવ્ય અજ્ઞાનરૂપે કદી પરિણમાવી શકે નહિ. આમ હોવાથી અહીં જ્ઞાનીને કહ્યું છે કે—તને પરના અપરાધથી બંધ થતો નથી તેથી તું ઉપભોગને ભોગવ. ઉપભોગ ભોગવવાથી મને બંધ થશે એવી શંકા ન કર. જો એવી શંકા કરીશ તો 'પરદ્રવ્ય વડે આત્માનું બૂરું થાય છે' એવું માનવાનો પ્રસંગ આવે છે. આ રીતે અહીં જીવને પરદ્રવ્યથી પોતાનું બૂરું થતું માનવાની શંકા મટાડી છે; ભોગ ભોગવવાની પ્રેરણા કરી સ્વચ્છંદી કર્યો છે એમ ન સમજવું. સ્વેચ્છાચારી થવું તે તો અજ્ઞાનભાવ છે એમ આગળ કહેશે. ૨૧૮—૨૧૯.

હવે આ જ અર્થને દૃષ્ટાંતથી દૃઢ કરે છે:—

भुंजंतस्स वि विविहे सच्चित्ताचित्तमिस्सिए दव्वे ।
संखस्स सेदभावो णवि सक्कदि किण्हगो काउं ॥ २२० ॥
तह णाणिस्स वि विविहे सच्चित्ताचित्तमिस्सिए दव्वे ।
भुंजंतस्स वि णाणं ण सक्कमण्णाणदं णेदुं ॥ २२१ ॥
जइया स एव संखो सेदसहावं तयं पजहिदूण ।
गच्छेज्ज किण्हभावं तइया सुक्कत्तणं पजहे ॥ २२२ ॥

જ્યમ શંખ વિવિધ સચિત્ત, મિશ્ર, અચિત્ત દ્રવ્યો ભોગવે,
પણ શંખના શુક્લત્વને નહિ કૃષ્ણ કોઈ કરી શકે; ૨૨૦.
ત્યમ જ્ઞાની વિવિધ સચિત્ત, મિશ્ર, અચિત્ત દ્રવ્યો ભોગવે,
પણ જ્ઞાન જ્ઞાનીતણું નહિ અજ્ઞાન કોઈ કરી શકે. ૨૨૧.
જ્યારે સ્વયં તે શંખ શ્વેતસ્વભાવ નિજનો છોડીને
પામે સ્વયં કૃષ્ણત્વ, ત્યારે છોડતો શુક્લત્વને; ૨૨૨.

तह णाणी वि हु जइया णाणसहावं तयं पजहिदूण।
अण्णाणेण परिणदो तइया अण्णाणदं गच्छे ॥ २२३ ॥

भुंजानस्यापि विविधानि सचित्ताचित्तमिश्रितानि द्रव्याणि ।
शंखस्य श्वेतभावो नापि शक्यते कृष्णकः कर्तुम् ॥ २२० ॥
तथा ज्ञानिनोऽपि विविधानि सचित्ताचित्तमिश्रितानि द्रव्याणि ।
भुंजानस्यापि ज्ञानं न शक्यमज्ञानतां नेतुम् ॥ २२१ ॥
यदा स एव शंखः श्वेतस्वभावं तकं प्रहाय ।
गच्छेत् कृष्णभावं तदा शुक्लत्वं प्रजह्यात् ॥ २२२ ॥
तथा ज्ञान्यपि खलु यदा ज्ञानस्वभावं तकं प्रहाय ।
अज्ञानेन परिणतस्तदा अज्ञानतां गच्छेत् ॥ २२३ ॥

અન્વયાર્થઃ—[शंखस्य] જેમ શંખ [विविधानि] અનેક પ્રકારનાં [स-चित्ताचित्तमिश्रितानि] સચિત્ત, અચિત્ત અને મિશ્ર [द्रव्याणि] દ્રવ્યોને [भुंजानस्य अपि] ભોગવે છે—ખાય છે તોપણ [श्वेतभावः] તેનું શ્વેતપણું [कृष्णकः कर्तुं न अपि शक्यते] (કોઈથી) કૃષ્ણ કરી શકાતું નથી, [तथा] તેમ [ज्ञानिनः अपि] જ્ઞાની પણ [विविधानि] અનેક પ્રકારનાં [सचित्ताचित्तमिश्रितानि] સચિત્ત, અચિત્ત અને મિશ્ર [द्रव्याणि] દ્રવ્યોને [भुंजानस्य अपि] ભોગવે તોપણ [ज्ञानं] તેનું જ્ઞાન [अज्ञानतां नेतुं न शक्यं] (કોઈથી) અજ્ઞાન કરી શકાતું નથી.

[यदा] જ્યારે [सः एव शंखः] તે જ શંખ (પોતે) [तकं श्वेतस्वभावं] તે શ્વેત સ્વભાવને [प्रहाय] છોડીને [कृष्णभावं गच्छेत्] કૃષ્ણભાવને પામે (અર્થાત્ કૃષ્ણભાવે પરિણમે) [तदा] ત્યારે [शुक्लत्वं प्रजह्यात्] શ્વેતપણાને છોડે (અર્થાત્ કાળો બને), [तथा] તેવી રીતે [खलु] ખરેખર [ज्ञानी अपि] જ્ઞાની પણ (પોતે) [यदा] જ્યારે [तकं ज्ञानस्वभावं] તે જ્ઞાનસ્વભાવને [प्रहाय] છોડીને [अज्ञानेन] અજ્ઞાનરૂપે [परिणतः] પરિણમે [तदा] ત્યારે [अज्ञानतां] અજ્ઞાનપણાને [गच्छेत्] પા

ટીકાઃ—જેમ શંખ પરદ્રવ્યને ભોગવે-ખાય તોપણ તેનું શ્વેતપણું પર ° કૃષ્ણ કરી શકાતું નથી કારણ કે પર અર્થાત્ પરદ્રવ્ય કોઈ દ્રવ્યને પરભાવસ્વરૂપ કરવા

ત્યમ જ્ઞાની પણ જ્યારે સ્વયં નિજ છોડી જ્ઞાનસ્વભાવને
અજ્ઞાનભાવે પરિણમે, અજ્ઞાનતા ત્યારે લહે. ૨૨૩.

નિમિત્ત (અર્થાત્ કારણ) બની શકતું નથી, તેવી રીતે જ્ઞાની પરદ્રવ્યને ભોગવે તોપણ તેનું જ્ઞાન પર વડે અજ્ઞાન કરી શકાતું નથી કારણ કે પર અર્થાત્ પરદ્રવ્ય કોઈ દ્રવ્યને પરભાવસ્વરૂપ કરવાનું નિમિત્ત બની શકતું નથી. માટે જ્ઞાનીને પરના અપરાધના નિમિત્તે બંધ થતો નથી.

વળી જ્યારે તે જ શંખ, પરદ્રવ્યને ભોગવતો અથવા નહિ ભોગવતો થકો, શ્વેતભાવને છોડીને સ્વયમેવ કૃષ્ણભાવે પરિણમે ત્યારે તેનો શ્વેતભાવ સ્વયંકૃત કૃષ્ણભાવ થાય (અર્થાત્ પોતાથી જ કરવામાં આવેલા કૃષ્ણભાવરૂપ થાય), તેવી રીતે જ્યારે તે જ જ્ઞાની, પરદ્રવ્યને ભોગવતો અથવા નહિ ભોગવતો થકો, જ્ઞાનને છોડીને સ્વયમેવ અજ્ઞાનરૂપે પરિણમે ત્યારે તેનું જ્ઞાન સ્વયંકૃત અજ્ઞાન થાય. માટે જ્ઞાનીને જો (બંધ) થાય તો પોતાના જ અપરાધના નિમિત્તે (અર્થાત્ પોતે જ અજ્ઞાનપણે પરિણમે ત્યારે) બંધ થાય છે.

ભાવાર્થઃ—જેમ શંખ કે જે શ્વેત છે તે પરના ભક્ષણથી કાળો થતો નથી પરંતુ જ્યારે પોતે જ કાલિમારૂપે પરિણમે ત્યારે કાળો થાય છે, તેવી રીતે જ્ઞાની પરના ઉપભોગથી અજ્ઞાની થતો નથી પરંતુ જ્યારે પોતે જ અજ્ઞાનરૂપે પરિણમે ત્યારે અજ્ઞાની થાય છે અને ત્યારે બંધ કરે છે.

હવે આનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છેઃ—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

ज्ञानिन् कर्म न जातु कर्तुमुचितं किंचित्तथाप्युच्यते
भुंक्षे हंत न जातु मे यदि परं दुर्भुक्त एवासि भोः ।
बंधः स्यादुपभोगतो यदि न तत्किं कामचारोऽस्ति ते
ज्ञानं सन्वस बंधमेष्यपरथा स्वस्यापराधाद्ध्रुवम् ॥ १५१ ॥

અર્થઃ—હે જ્ઞાની, તારે કદી કાંઈ પણ કર્મ કરવું યોગ્ય નથી તોપણ જો તું એમ કહે છે કે "પરદ્રવ્ય મારું તો કદી નથી અને હું તેને ભોગવું છું," તો તને કહેવામાં આવે છે (અર્થાત્ અમે કહીએ છીએ) કે હે ભાઈ, તું ખોટી (-ખરાબ) રીતે ભોગવનાર છે; જે તારું નથી તેને તું ભોગવે છે એ મહા ખેદ છે! જો તું કહે કે "પરદ્રવ્યના ઉપભોગથી બંધ થતો નથી એમ સિદ્ધાંતમાં કહ્યું છે માટે ભોગવું છું," તો શું તને ભોગવવાની ઇચ્છા છે? જ્ઞાનરૂપ થઈને વસ (-શુદ્ધ સ્વરૂપમાં નિવાસ કર), નહિ તો (અર્થાત્ જો ભોગવવાની ઇચ્છા કરીશ—અજ્ઞાનરૂપે પરિણમીશ તો) તું ચોક્કસ પોતાના અપરાધથી બંધને પામીશ.

ભાવાર્થ:—જ્ઞાનીને કર્મ તો કરવું જ ઉચિત નથી. જો પરદ્રવ્ય જાણીને પણ તેને ભોગવે તો એ યોગ્ય નથી. પરદ્રવ્યના ભોગવનારને તો જગતમાં ચોર કહેવામાં આવે છે, અન્યાયી કહેવામાં આવે છે. વળી ઉપભોગથી બંધ કહ્યો નથી તે તો જ્ઞાની ઇચ્છા વિના પરની બળજોરીથી ઉદયમાં આવેલાને ભોગવે ત્યાં તેને બંધ કહ્યો નથી. જો પોતે ઇચ્છાથી ભોગવે તો તો પોતે અપરાધી થયો, ત્યાં બંધ કેમ ન થાય?

હવે આગળની ગાથાની સૂચનારૂપે કાવ્ય કહે છે:—

(शार्दूलविक्रीडित)

कर्तारं स्वफलेन यत्किल बलात्कर्मैव नो योजयेत्
कुर्वाणः फललिप्सुरेव हि फलं प्राप्नोति यत्कर्मणः ।
ज्ञानं संस्तदपास्तरागरचनो नो बध्यते कर्मणा
कुर्वाणोऽपि हि कर्म तत्फलपरित्यागैकशीलो मुनिः ॥ १५२ ॥

અર્થ:—કર્મ જ તેના કર્તાને પોતાના ફળ સાથે બળજોરીથી જોડતું નથી (કે તું મારા ફળને ભોગવ), *ફળની ઇચ્છાવાળો જ કર્મ કરતો થકો કર્મના ફળને પામે છે; માટે જ્ઞાનરૂપે રહેતો અને જેણે કર્મ પ્રત્યે રાગની રચના દૂર કરી છે એવો મુનિ, કર્મના ફળના પરિત્યાગરૂપ જ જેનો એક સ્વભાવ છે એવો હોવાથી, કર્મ કરતો છતો પણ કર્મથી બંધાતો નથી.

ભાવાર્થ:—કર્મ તો કર્તાને જબરદસ્તીથી પોતાના ફળ સાથે જોડતું નથી પરંતુ જે કર્મને કરતો થકો તેના ફળની ઇચ્છા કરે તે જ તેનું ફળ પામે છે. આ જે જ્ઞાનરૂપે વર્તે છે અને રાગ વિના કર્મ કરે છે એવો મુનિ કર્મથી બંધાતો નથી કારણ કે તેને કર્મના ફળની ઇચ્છા નથી. ૨૨૦—૨૨૩.

હવે આ અર્થને દૃષ્ટાંતથી દૃઢ કરે છે:—

पुरिसो जह कोवि इह वित्तिणिमित्तं तु सेवए रायं ।
तो सोवि देइ राया विविहे भोए सुहुप्पाए ॥ २२४ ॥

* કર્મનું ફળ એટલે (૧) રંજિત પરિણામ, અથવા તો (૨) સુખ (-રંજિત પરિણામ) ઉત્પન્ન કરનારા આગામી ભોગો.

જ્યમ જગતમાં કો પુરુષ વૃત્તિનિમિત્ત સેવે ભૂપને,
તો ભૂપ પણ સુખજનક વિધવિધ ભોગ આપે પુરુષને; ૨૨૪.

एमेव जीवपुरिसो कम्मरयं सेवए सुहणिमित्तं ।
तो सोवि देइ कम्मो विविहे भोए सुहुप्पाए ॥ २२५ ॥

जह पुण सो च्चिय पुरिसो वित्तिणिमित्तं ण सेवए रायं ।
तो सो ण देइ राया विविहे भोए सुहुप्पाए ॥ २२६ ॥

एमेव सम्मदिट्ठी विसयत्थं सेवए ण कम्मरयं ।
तो सो ण देइ कम्मो विविहे भोए सुहुप्पाए ॥ २२७ ॥

पुरुषो यथा कोऽपीह वृत्तिनिमित्तं तु सेवते राजानम् ।
तत्सोऽपि ददाति राजा विविधान् भोगान् सुखोत्पादकान् ॥ २२४ ॥
एवमेव जीवपुरुषः कर्मरजः सेवते सुखनिमित्तम् ।
तत्तदपि ददाति कर्म विविधान् भोगान् सुखोत्पादकान् ॥ २२५ ॥
यथा पुनः स एव पुरुषो वृत्तिनिमित्तं न सेवते राजानम् ।
तत्सोऽपि न ददाति राजा विविधान् भोगान् सुखोत्पादकान् ॥ २२६ ॥
एवमेव सम्यग्दृष्टिः विषयार्थं सेवते न कर्मरजः ।
तत्तन्न ददाति कर्म विविधान् भोगान् सुखोत्पादकान् ॥ २२७ ॥

અન્વયાર્થઃ—[यथा] જેમ [इह] આ જગતમાં [कोऽपि पुरुषः] કોઈ પુરુષ [वृत्तिनिमित्तं तु] આજીવિકા અર્થે [राजानं] રાજાને [सेवते] સેવે છે [तद्] તો [सः राजा अपि] તે રાજા પણ તેને [सुखोत्पादकान्] સુખ ઉત્પન્ન કરનારા [विविधान्] અનેક પ્રકારના [भोगान्] ભોગો [ददाति] આપે છે, [एवम् एव]

ત્યમ જીવપુરુષ પણ કર્મરજનું સુખઅરથ સેવન કરે,
તો કર્મ પણ સુખજનક વિધવિધ ભોગ આપે જીવને. ૨૨૫.

વળી તે જ નર જ્યમ વૃત્તિ અર્થે ભૂપને સેવે નહિ,
તો ભૂપ પણ સુખજનક વિધવિધ ભોગને આપે નહિ; ૨૨૬.

સુદૃષ્ટિને ત્યમ વિષય અર્થે કર્મરજસેવન નથી,
તો કર્મ પણ સુખજનક વિધવિધ ભોગને દેતાં નથી. ૨૨૭.

તેવી જ રીતે [जीवपुरुषः] જીવપુરુષ [सुखनिमित्तं] સુખ અર્થે [कर्मरजः] કર્મ-
રજને [सेवते] સેવે છે [तद्] તો [तद् कर्म अपि] તે કર્મ પણ તેને [सुखोत्पादकान्] સુખ ઉત્પન્ન કરનારા [विविधान्] અનેક પ્રકારના [भोगान्] ભોગો [ददाति] આપે છે.

[पुनः] વળી [यथा] જેમ [सः एव पुरुषः] તે જ પુરુષ [वृत्तिनिमित्तं] આજીવિકા અર્થે [राजानं] રાજાને [न सेवते] નથી સેવતો [तद्] તો [सः राजा अपि] તે રાજા પણ તેને [सुखोत्पादकान्] સુખ ઉત્પન્ન કરનારા [विविधान्] અનેક પ્રકારના [भोगान्] ભોગો [न ददाति] નથી આપતો, [एवम् एव] તેવી જ રીતે [सम्यग्दृष्टिः] સમ્યગ્દૃષ્ટિ [विषयार्थं] વિષય અર્થે [कर्मरजः] કર્મરજને [न सेवते] નથી સેવતો [तद्] તો (અર્થાત્ તેથી) [तद् कर्म] તે કર્મ પણ તેને [सुखोत्पादकान्] સુખ ઉત્પન્ન કરનારા [विविधान्] અનેક પ્રકારના [भोगान्] ભોગો [न ददाति] નથી આપતું.

ટીકા:—જેમ કોઈ પુરુષ ફળ અર્થે રાજાને સેવે છે તો તે રાજા તેને ફળ આપે છે, તેમ જીવ ફળ અર્થે કર્મને સેવે છે તો તે કર્મ તેને ફળ આપે છે. વળી જેમ તે જ પુરુષ ફળ અર્થે રાજાને નથી સેવતો તો તે રાજા તેને ફળ નથી આપતો, તેમ સમ્યગ્દૃષ્ટિ ફળ અર્થે કર્મને નથી સેવતો તો (અર્થાત્ તેથી) તે કર્મ તેને ફળ નથી આપતું. એમ તાત્પર્ય (અર્થાત્ કહેવાનો આશય) છે.

ભાવાર્થ:—અહીં એક આશય તો આ પ્રમાણે છે:—અજ્ઞાની વિષયસુખ અર્થે અર્થાત્ રંજિત પરિણામ અર્થે ઉદયાગત કર્મને સેવે છે તેથી તે કર્મ તેને (વર્તમાનમાં) રંજિત પરિણામ આપે છે. જ્ઞાની વિષયસુખ અર્થે અર્થાત્ રંજિત પરિણામ અર્થે ઉદયાગત કર્મને સેવતો નથી તેથી તે કર્મ તેને રંજિત પરિણામ ઉત્પન્ન કરતું નથી.

બીજો આશય આ પ્રમાણે છે:—અજ્ઞાની સુખ (-રાગાદિપરિણામ) ઉત્પન્ન કરનારા આગામી ભોગોની અભિલાષાથી વ્રત, તપ વગેરે શુભ કર્મ કરે છે તેથી તે કર્મ તેને રાગાદિપરિણામ ઉત્પન્ન કરનારા આગામી ભોગો આપે છે. જ્ઞાનીની બાબત આથી વિપરીત સમજવું.

આ રીતે અજ્ઞાની ફળની વાંછાથી કર્મ કરે છે તેથી તે ફળને પામે છે અને જ્ઞાની ફળની વાંછા વિના કર્મ કરે છે તેથી તે ફળને પામતો નથી.

હવે, "જેને ફળની વાંછા નથી તે કર્મ શા માટે કરે?" એવી આશંકા દૂર કરવાને કાવ્ય કહે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

त्यक्तं येन फलं स कर्म कुरुते नेति प्रतीमो वयं
किंत्वस्यापि कुतोऽपि किंचिदपि तत्कर्मावशेनापतेत् ।
तस्मिन्नापतिते त्वकंपपरमज्ञानस्वभावे स्थितो
ज्ञानी किं कुरुतेऽथ किं न कुरुते कर्मेति जानाति कः ॥ १५३ ॥

અર્થઃ—જેણે કર્મનું ફળ છોડયું છે તે કર્મ કરે એમ તો અમે પ્રતીતિ કરી શકતા નથી. પરંતુ ત્યાં એટલું વિશેષ છે કે—તેને (જ્ઞાનીને) પણ કોઈ કારણે કાંઈક એવું કર્મ અવશપણે (-તેના વશ વિના) આવી પડે છે. તે આવી પડતાં પણ, જે અકંપ પરમજ્ઞાનસ્વભાવમાં સ્થિત છે એવો જ્ઞાની કર્મ કરે છે કે નથી કરતો તે કોણ જાણે?

ભાવાર્થઃ—જ્ઞાનીને પરવશે કર્મ આવી પડે છે તોપણ જ્ઞાની જ્ઞાનથી ચલાયમાન થતો નથી. માટે જ્ઞાનથી અચલાયમાન તે જ્ઞાની કર્મ કરે છે કે નથી કરતો તે કોણ જાણે? જ્ઞાનીની વાત જ્ઞાની જ જાણે. જ્ઞાનીનાં પરિણામ જાણવાનું સામર્થ્ય અજ્ઞાનીનું નથી.

અવિરત સમ્યગ્દૃષ્ટિથી માંડીને ઉપરના બધાય જ્ઞાની જ સમજવા. તેમાં, અવિરત સમ્યગ્દૃષ્ટિ, દેશવિરત સમ્યગ્દૃષ્ટિ અને આહારવિહાર કરતા મુનિઓને બાહ્યક્રિયાકર્મ પ્રવર્તે છે, તોપણ જ્ઞાનસ્વભાવથી અચલિત હોવાને લીધે નિશ્ચયથી તેઓ બાહ્યક્રિયાકર્મના કર્તા નથી, જ્ઞાનના જ કર્તા છે. અંતરંગ મિથ્યાત્વના અભાવથી તથા યથાસંભવ કષાયના અભાવથી તેમનાં પરિણામ ઉજ્જ્વળ છે. તે ઉજ્જ્વળતાને તેઓ જ (-જ્ઞાનીઓ જ-) જાણે છે, મિથ્યાદૃષ્ટિઓ તે ઉજ્જ્વળતાને જાણતા નથી. મિથ્યાદૃષ્ટિ તો બહિરાત્મા છે, બહારથી જ ભલું બૂરું માને છે; અંતરાત્માની ગતિ બહિરાત્મા શું જાણે?

હવે, આ જ અર્થના સમર્થનરૂપે અને આગળની ગાથાની સૂચનારૂપે કાવ્ય કહે છેઃ—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

सम्यग्दृष्टय एव साहसमिदं कर्तुं क्षमंते परं
यद्वज्रेऽपि पतत्यमी भयचलत्त्रैलोक्यमुक्ताध्वनि ।
सर्वामेव निसर्गनिर्भयतया शंकां विहाय स्वयं
जानंतः स्वमवध्यबोधवपुषं बोधाच्च्यवंते न हि ॥ १५४ ॥

અર્થઃ—જેના ભયથી ચલાયમાન થતા—ખળભળી જતા—ત્રણે લોક પોતાને માર્ગ છોડી દે છે એવો વજ્રપાત થવા છતાં, આ સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવો, સ્વભાવથી જ નિર્ભય હોવાને લીધે, સમસ્ત શંકા છોડીને, પોતે પોતાને (અર્થાત્ આત્માને) જેનું જ્ઞાનરૂપી શરીર અવધ્ય (અર્થાત્ કોઈથી હણી શકાય નહિ એવું) છે એવો જાણતા થકા, જ્ઞાનથી ચ્યુત થતા નથી. આવું પરમ સાહસ કરવાને માત્ર સમ્યગ્દૃષ્ટિઓ જ સમર્થ છે.

ભાવાર્થઃ—સમ્યગ્દૃષ્ટિ નિઃશંકિતગુણ સહિત હોય છે તેથી ગમે તેવા શુભાશુભ કર્મના ઉદય વખતે પણ તેઓ જ્ઞાનરૂપે જ પરિણમે છે. જેના ભયથી ત્રણ લોકના જીવો કંપી ઊઠે છે—ખળભળી જાય છે અને પોતાનો માર્ગ છોડી દે છે એવો વજ્રપાત થવા છતાં સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવ પોતાના સ્વરૂપને જ્ઞાનશરીરવાળું માનતો થકો જ્ઞાનથી ચલાયમાન થતો નથી. તેને એમ શંકા નથી થતી કે આ વજ્રપાતથી મારો નાશ થઈ જશે; પર્યાયનો વિનાશ થાય તો ઠીક જ છે કારણ કે તેનો તો વિનાશિક સ્વભાવ જ છે. ૧૫૪.

હવે આ અર્થને ગાથા દ્વારા કહે છેઃ—

सम्मद्दिट्ठी जीवा णिस्संका होंति णिब्भया तेण ।
सत्तभयविप्पमुक्का जह्मा तह्मा दु णिस्संका ॥ २२८ ॥

सम्यग्दृष्टयो जीवा निश्शंका भवंति निर्भयास्तेन ।
सप्तभयविप्रमुक्ता यस्मात्तस्मात्तु निश्शंकाः ॥ २२८ ॥

અન્વયાર્થઃ—[सम्यग्दृष्टयः जीवाः] સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવો [निश्शंकाः भवंति] નિઃશંક હોય છે [तेन] તેથી [निर्भयाः] નિર્ભય હોય છે; [तु] અને [यस्मात्] કારણ કે [सप्तभयविप्रमुक्ताः] સપ્ત ભયથી રહિત હોય છે [तस्मात्] તેથી [निश्शंकाः] નિઃશંક હોય છે (—અડોલ હોય છે).

ટીકાઃ—કારણ કે સમ્યગ્દૃષ્ટિઓ સદાય સર્વ કર્મોનાં ફળ પ્રત્યે નિરભિલાષ હોવાથી કર્મ પ્રત્યે અત્યંત નિરપેક્ષપણે વર્તે છે, તેથી ખરેખર તેઓ અત્યંત નિઃશંક દારુણ (દૃઢ) નિશ્ચયવાળા હોવાથી અત્યંત નિર્ભય છે એમ સંભાવના કરવામાં આવે છે (અર્થાત્ એમ નિશ્ચયપણે ગણવામાં આવે છે).

સમ્યક્ત્વવંત જીવો નિઃશંકિત, તેથી છે નિર્ભય અને
છે સપ્તભયપ્રવિમુક્ત જેથી, તેથી તે નિઃશંક છે. ૨૨૮.

હવે સાત ભયનાં કળશરૂપ કાવ્યો કહેવામાં આવે છે, તેમાં પ્રથમ આ લોકના તથા પરલોકના એમ બે ભયનું એક કાવ્ય કહે છેઃ—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

लोकः शाश्वत एक एव सकलव्यक्तो विविक्तात्मन-
श्चिल्लोकं स्वयमेव केवलमयं यल्लोकयत्येककः ।
लोकोऽयं न तवापरस्तदपरस्तस्यास्ति तद्भीः कुतो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति ॥ १५५ ॥

અર્થઃ—આ ચિત્સ્વરૂપ લોક જ ભિન્ન આત્માનો (અર્થાત્ પરથી ભિન્નપણે પરિણમતા આત્માનો) શાશ્વત, એક અને સકલવ્યક્ત (-સર્વ કાળે પ્રગટ એવો) લોક છે; કારણ કે માત્ર ચિત્સ્વરૂપ લોકને આ જ્ઞાની આત્મા સ્વયમેવ એકલો અવલોકે છે—અનુભવે છે. આ ચિત્સ્વરૂપ લોક જ તારો છે, તેનાથી બીજો કોઈ લોક—આ લોક કે પરલોક—તારો નથી એમ જ્ઞાની વિચારે છે, જાણે છે, તેથી જ્ઞાનીને આ લોકનો તથા પરલોકનો ભય ક્યાંથી હોય? તે તો પોતે નિરંતર નિઃશંક વર્તતો થકો સહજ જ્ઞાનને (પોતાના જ્ઞાનસ્વભાવને) સદા અનુભવે છે.

ભાવાર્થઃ—'આ ભવમાં જીવન પર્યંત અનુકૂળ સામગ્રી રહેશે કે નહિ?' એવી ચિંતા રહે તે આ લોકનો ભય છે. 'પરભવમાં મારું શું થશે?' એવી ચિંતા રહે તે પરલોકનો ભય છે. જ્ઞાની જાણે છે કે—આ ચૈતન્ય જ મારો એક, નિત્ય લોક છે કે જે સર્વ કાળે પ્રગટ છે. આ સિવાયનો બીજો કોઈ લોક મારો નથી. આ મારો ચૈતન્યસ્વરૂપ લોક તો કોઈથી બગાડ્યો બગડતો નથી. આવું જાણતા જ્ઞાનીને આ લોકનો કે પરલોકનો ભય ક્યાંથી હોય? કદી ન હોય. તે તો પોતાને સ્વાભાવિક જ્ઞાનરૂપ જ અનુભવે છે.

હવે વેદનાભયનું કાવ્ય કહે છેઃ—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

एषैकैव हि वेदना यदचलं ज्ञानं स्वयं वेद्यते
निर्भेदोदितवेद्यवेदकबलादेकं सदानाकुलैः ।
नैवान्यागतवेदनैव हि भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति ॥ १५६ ॥

અર્થઃ—અભેદસ્વરૂપ વર્તતા વેદ્ય-વેદકના બળથી (અર્થાત્ વેદ્ય અને વેદક અભેદ જ હોય છે એવી વસ્તુસ્થિતિના બળથી) એક અચળ જ્ઞાન જ સ્વયં નિરાકુળ પુરુષો વડે (-જ્ઞાનીઓ વડે) સદા વેદાય છે, તે આ એક જ વેદના (જ્ઞાનવેદન) જ્ઞાનીઓને છે. (આત્મા વેદનાર છે અને જ્ઞાન વેદાવાયોગ્ય છે). જ્ઞાનીને બીજી કોઈ આવેલી (-પુદ્ગલથી થયેલી) વેદના હોતી જ નથી, તેથી તેને વેદનાનો ભય ક્યાંથી હોય? તે તો પોતે નિરંતર નિઃશંક વર્તતો થકો સહજ જ્ઞાનને સદા અનુભવે છે.

ભાવાર્થઃ—સુખદુઃખને ભોગવવું તે વેદના છે. જ્ઞાનીને પોતાના એક જ્ઞાનમાત્ર સ્વરૂપનો જ ભોગવટો છે. તે પુદ્ગલથી થયેલી વેદનાને વેદના જ જાણતો નથી. માટે જ્ઞાનીને વેદનાભય નથી. તે તો સદા નિર્ભય વર્તતો થકો જ્ઞાનને અનુભવે છે.

હવે અરક્ષાભયનું કાવ્ય કહે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

यत्सन्नाशमुपैति तन्न नियतं व्यक्तेति वस्तुस्थिति-
र्ज्ञानं सत्स्वयमेव तत्किल ततस्त्रातं किमस्यापरैः ।
अस्यात्राणमतो न किंचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति ॥ १५७ ॥

અર્થઃ—જે સત્ છે તે નાશ પામતું નથી એવી વસ્તુસ્થિતિ નિયમરૂપે પ્રગટ છે. આ જ્ઞાન પણ સ્વયમેવ સત્ (અર્થાત્ સત્સ્વરૂપ વસ્તુ) છે (માટે નાશ પામતું નથી), તેથી વળી પર વડે તેનું રક્ષણ શું? આ રીતે (જ્ઞાન પોતાથી જ રક્ષિત હોવાથી) તેનું જરા પણ અરક્ષણ થઈ શકતું નથી માટે (આવું જાણતા) જ્ઞાનીને અરક્ષાનો ભય ક્યાંથી હોય? તે તો પોતે નિરંતર નિઃશંક વર્તતો થકો સહજ જ્ઞાનને સદા અનુભવે છે.

ભાવાર્થઃ—સત્તાસ્વરૂપ વસ્તુનો કદી નાશ થતો નથી. જ્ઞાન પણ પોતે સત્તાસ્વરૂપ વસ્તુ છે; તેથી તે એવું નથી કે જેની બીજાઓ વડે રક્ષા કરવામાં આવે તો ટકે, નહિ તો નષ્ટ થઈ જાય. જ્ઞાની આમ જાણતો હોવાથી તેને અરક્ષાનો ભય નથી; તે તો નિઃશંક વર્તતો થકો પોતે પોતાના સ્વાભાવિક જ્ઞાનને સદા અનુભવે છે.

હવે અગુપ્તિભયનું કાવ્ય કહે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

स्वं रूपं किल वस्तुनोऽस्ति परमा गुप्तिः स्वरूपे न य-
च्छक्तः कोऽपि परः प्रवेष्टुमकृतं ज्ञानं स्वरूपं च नुः ।

अस्यागुप्तिरतो न काचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति ॥ १५८ ॥

અર્થઃ—ખરેખર વસ્તુનું સ્વ-રૂપ જ (અર્થાત્ નિજ રૂપ જ) વસ્તુની પરમ 'ગુપ્તિ' છે કારણ કે સ્વરૂપમાં કોઈ બીજું પ્રવેશ કરી શકતું નથી; અને અકૃત જ્ઞાન (-જે કોઈથી કરવામાં આવ્યું નથી એવું સ્વાભાવિક જ્ઞાન-) પુરુષનું અર્થાત્ આત્માનું સ્વરૂપ છે; (તેથી જ્ઞાન આત્માની પરમ ગુપ્તિ છે.) માટે આત્માનું જરા પણ અગુપ્તપણું નહિ હોવાથી જ્ઞાનીને અગુપ્તિનો ભય ક્યાંથી હોય? તે તો પોતે નિરંતર નિઃશંક વર્તતો થકો સહજ જ્ઞાનને સદા અનુભવે છે.

ભાવાર્થઃ—'ગુપ્તિ' એટલે જેમાં કોઈ ચોર વગેરે પ્રવેશ ન કરી શકે એવો કિલ્લો, ભોંયરું વગેરે; તેમાં પ્રાણી નિર્ભયપણે વસી શકે છે. એવો ગુપ્ત પ્રદેશ ન હોય પણ ખુલ્લો પ્રદેશ હોય તો તેમાં રહેનાર પ્રાણીને અગુપ્તપણાને લીધે ભય રહે છે. જ્ઞાની જાણે છે કે—વસ્તુના નિજ સ્વરૂપમાં કોઈ બીજું પ્રવેશ કરી શકતું નથી માટે વસ્તુનું સ્વરૂપ જ વસ્તુની પરમ ગુપ્તિ અર્થાત્ અભેદ્ય કિલ્લો છે. પુરુષનું અર્થાત્ આત્માનું સ્વરૂપ જ્ઞાન છે; તે જ્ઞાનસ્વરૂપમાં રહેલો આત્મા ગુપ્ત છે કારણ કે જ્ઞાનસ્વરૂપમાં બીજું કોઈ પ્રવેશી શકતું નથી. આવું જાણતા જ્ઞાનીને અગુપ્તપણાનો ભય ક્યાંથી હોય? તે તો નિઃશંક વર્તતો થકો પોતાના સ્વાભાવિક જ્ઞાનસ્વરૂપને નિરંતર અનુભવે છે.

હવે મરણભયનું કાવ્ય કહે છેઃ—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

प्राणोच्छेदमुदाहरंति मरणं प्राणाः किलास्यात्मनो
ज्ञानं तत्स्वयमेव शाश्वततया नोच्छिद्यते जातुचित् ।
तस्यातो मरणं न किंचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति ॥ १५९ ॥

અર્થઃ—પ્રાણોના નાશને (લોકો) મરણ કહે છે. આત્માના પ્રાણ તો નિશ્ચયથી જ્ઞાન છે. તે (જ્ઞાન) સ્વયમેવ શાશ્વત હોવાથી તેનો કદાપિ નાશ થતો નથી; માટે આત્માનું મરણ બિલકુલ થતું નથી. તેથી (આવું જાણતા) [illegible]નો ભય ક્યાંથી હોય? તે તો પોતે નિરંતર નિઃશંક વર્તતો થકો [illegible] સદા અનુભવે છે.

ભાવાર્થ:—ઇંદ્રિયાદિ પ્રાણો નાશ પામે તેને લોકો મરણ કહે છે. પરંતુ આત્માને પરમાર્થે ઇંદ્રિયાદિ પ્રાણ નથી, તેને તો જ્ઞાન પ્રાણ છે. જ્ઞાન અવિનાશી છે—તેનો નાશ થતો નથી; તેથી આત્માને મરણ નથી. જ્ઞાની આમ જાણતો હોવાથી તેને મરણનો ભય નથી; તે તો નિઃશંક વર્તતો થકો પોતાના જ્ઞાનસ્વરૂપને નિરંતર અનુભવે છે.

હવે આકસ્મિકભયનું કાવ્ય કહે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

एकं ज्ञानमनाद्यनंतमचलं सिद्धं किलैतत्स्वतो
यावत्तावदिदं सदैव हि भवेन्नात्र द्वितीयोदयः ।
तन्नाकस्मिकमत्र किंचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति ॥ १६० ॥

અર્થ:—આ સ્વતઃ સિદ્ધ જ્ઞાન એક છે, અનાદિ છે, અનંત છે, અચળ છે. તે જ્યાંસુધી છે ત્યાંસુધી સદાય તે જ છે, તેમાં બીજાનો ઉદય નથી. માટે આ જ્ઞાનમાં આકસ્મિક (અણધાર્યું, એકાએક) કાંઈ પણ થતું નથી. આવું જાણતા જ્ઞાનીને અકસ્માતનો ભય ક્યાંથી હોય? તે તો પોતે નિરંતર નિઃશંક વર્તતો થકો સહજ જ્ઞાનને સદા અનુભવે છે.

ભાવાર્થ:—'કાંઈ અણધાર્યું અનિષ્ટ એકાએક ઉત્પન્ન થશે તો?' એવો ભય રહે તે આકસ્મિકભય છે. જ્ઞાની જાણે છે કે—આત્માનું જ્ઞાન પોતાથી જ સિદ્ધ, અનાદિ, અનંત, અચળ, એક છે. તેમાં બીજું કાંઈ ઉત્પન્ન થઈ શકતું નથી; માટે તેમાં અણધાર્યું કાંઈ પણ ક્યાંથી થાય અર્થાત્ અકસ્માત ક્યાંથી બને? આવું જાણતા જ્ઞાનીને અકસ્માતનો ભય હોતો નથી, તે તો નિઃશંક વર્તતો થકો પોતાના જ્ઞાનભાવને નિરંતર અનુભવે છે.

આ રીતે જ્ઞાનીને સાત ભય હોતા નથી.

પ્રશ્ન:—અવિરતસમ્યગ્દૃષ્ટિ આદિને પણ જ્ઞાની કહ્યા છે અને તેમને તો ભયપ્રકૃતિનો ઉદય હોય છે તથા તેના નિમિત્તે તેમને ભય થતો પણ જોવામાં આવે છે, તો પછી જ્ઞાની નિર્ભય કઈ રીતે છે?

સમાધાન:—ભયપ્રકૃતિના ઉદયના નિમિત્તથી જ્ઞાનીને ભય ઉપજે છે. વળી અંતરાયના પ્રબળ ઉદયથી નિર્બળ હોવાને લીધે તે ભયની પીડા નહિ સહી શકવાથી

જ્ઞાની તે ભયનો ઇલાજ પણ કરે છે. પરંતુ તેને એવો ભય હોતો નથી કે જેથી જીવ સ્વરૂપના જ્ઞાનશ્રદ્ધાનથી ચ્યુત થાય. વળી જે ભય ઉપજે છે તે મોહકર્મની ભય નામની પ્રકૃતિનો દોષ છે; તેનો પોતે સ્વામી થઈને કર્તા થતો નથી, જ્ઞાતા જ રહે છે. માટે જ્ઞાનીને ભય નથી.

હવે આગળની (સમ્યગ્દૃષ્ટિના નિઃશંકિત[1] આદિ ચિહ્નો વિષેની) ગાથાઓની સૂચનારૂપે કાવ્ય કહે છે:—

(મંદાક્રાંતા)

टंकोत्कीर्णस्वरसनिचितज्ञानसर्वस्वभाजः
सम्यग्दृष्टेर्यदिह सकलं घ्नंति लक्ष्माणि कर्म ।
तत्तस्यास्मिन्पुनरपि मनाक्कर्मणो नास्ति बंधः
पूर्वोपात्तं तदनुभवतो निश्चितं निर्जरैव ॥ १६१ ॥

અર્થ:—ટંકોત્કીર્ણ એવું જે નિજ રસથી ભરપૂર જ્ઞાન તેના સર્વસ્વને ભોગવનાર સમ્યગ્દૃષ્ટિને જે નિઃશંકિત આદિ ચિહ્નો છે તે સમસ્ત કર્મને હણે છે; માટે, કર્મનો ઉદય વર્તતાં છતાં, સમ્યગ્દૃષ્ટિને ફરીને કર્મનો બંધ જરા પણ થતો નથી, પરંતુ જે કર્મ પૂર્વે બંધાયું હતું તેના ઉદયને ભોગવતાં તેને નિયમથી તે કર્મની નિર્જરા જ થાય છે.

ભાવાર્થ:—સમ્યગ્દૃષ્ટિ પૂર્વે બંધાયેલી ભય આદિ પ્રકૃતિઓના ઉદયને ભોગવે છે તોપણ નિઃશંકિત આદિ ગુણો વર્તતા હોવાથી તેને શંકાકૃત[2] (શંકાદિના નિમિત્તે થતો) બંધ થતો નથી પરંતુ પૂર્વકર્મની નિર્જરા જ થાય છે. ૨૨૮.

હવે આ કથનને ગાથાઓ દ્વારા કહે છે, તેમાં પ્રથમ નિઃશંકિત અંગની (અથવા નિઃશંકિત ગુણની–ચિહ્નની) ગાથા કહે છે:—

जो चत्तारि वि पाए छिंददि ते कम्मबंधमोहकरे ।
सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ २२९ ॥

---

1 નિઃશંકિત = સંદેહ અથવા ભય રહિત.

2 શંકા = સંદેહ; કલ્પિત ભય.

જે કર્મબંધનમોહકર્તા પાદ ચારે છેદતો,
ચિન્મૂર્તિ તે શંકારહિત સમકિતદૃષ્ટિ જાણવો. ૨૨૯.

यश्चतुरोऽपि पादान् छिनत्ति तान् कर्मबंधमोहकरान् ।
स निश्शंकश्चेतयिता सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥ २२९ ॥

અન્વયાર્થઃ—[यः चेतयिता] જે ચેતયિતા, [कर्मबंधमोहकरान्] કર્મબંધ સંબંધી મોહ કરનારા (અર્થાત્ જીવ નિશ્ચયથી કર્મ વડે બંધાયો છે એવો ભ્રમ કરનારા) [तान् चतुरः अपि पादान्] મિથ્યાત્વાદિ ભાવોરૂપ ચારે પાયાને [छिनत्ति] છેદે છે, [सः] તે [निश्शंकः] નિઃશંક [सम्यग्दृष्टिः] સમ્યગ્દૃષ્ટિ [ज्ञातव्यः] ...

ટીકાઃ—કારણ કે સમ્યગ્દૃષ્ટિ, ટંકોત્કીર્ણ એવા એક જ્ઞાયકભાવમયપણાને લીધે કર્મબંધ સંબંધી શંકા કરનારા (અર્થાત્ જીવ નિશ્ચયથી કર્મ વડે બંધાયો છે એવો સંદેહ અથવા ભય કરનારા) મિથ્યાત્વાદિ ભાવોના (તેને) અભાવ હોવાથી, નિઃશંક છે તેથી તેને શંકાકૃત બંધ નથી પરંતુ નિર્જરા જ છે.

ભાવાર્થઃ—સમ્યગ્દૃષ્ટિને જે કર્મનો ઉદય આવે છે તેનો તે, સ્વામિત્વના અભાવને લીધે, કર્તા થતો નથી. માટે ભયપ્રકૃતિનો ઉદય આવતાં છતાં પણ સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવ નિઃશંક રહે છે, સ્વરૂપથી ચ્યુત થતો નથી. આમ હોવાથી તેને શંકાકૃત બંધ થતો નથી, કર્મ રસ આપીને ખરી જાય છે. ૨૨૯.

હવે નિઃકાંક્ષિત ગુણની ગાથા કહે છેઃ—

जो दु ण करेदि कंखं कम्मफलेसु तह सव्वधम्मेसु ।
सो णिक्कंखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ २३० ॥

यस्तु न करोति कांक्षां कर्मफलेषु तथा सर्वधर्मेषु ।
स निष्कांक्षश्चेतयिता सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥ २३० ॥

અન્વયાર્થઃ—[यः चेतयिता] જે [1]ચેતયિતા [कर्मफलेषु] કર્મોનાં ફળો પ્રત્યે [तथा] તથા [सर्वधर्मेषु] સર્વ ધર્મો પ્રત્યે [कांक्षां] કાંક્ષા [न तु करोति] કરતો નથી [सः] તે [निष्कांक्षः सम्यग्दृष्टिः] નિષ્કાંક્ષ સમ્યગ્દૃષ્ટિ [ज्ञातव्यः] જાણવો.

[1] ચેતયિતા = ચેતનાર; જાણનાર-દેખનાર; આત્મા.

જે કર્મફળ ને સર્વ ધર્મ તણી ન કાંક્ષા રાખતો,
ચિન્મૂર્તિ તે કાંક્ષારહિત સમકિતદૃષ્ટિ જાણવો. ૨૩૦.

ટીકા:—કારણ કે સમ્યગ્દષ્ટિ, ટંકોત્કીર્ણ એક જ્ઞાયકભાવમયપણાને લીધે બધાય કર્મફળો પ્રત્યે તથા બધા વસ્તુધર્મો પ્રત્યે કાંક્ષાનો (તેને) અભાવ હોવાથી, નિષ્કાંક્ષ (નિર્વાંછક) છે, તેથી તેને કાંક્ષાકૃત બંધ નથી પરંતુ નિર્જરા જ છે.

ભાવાર્થ:—સમ્યગ્દષ્ટિને સમસ્ત કર્મના ફળોની વાંછા નથી; વળી તેને સર્વ ધર્મોની વાંછા નથી, એટલે કે કનકપણું, પાષાણપણું વગેરે તેમ જ નિંદા, પ્રશંસા આદિનાં વચન વગેરે વસ્તુધર્મોની અર્થાત્ પુદ્ગલસ્વભાવોની તેને વાંછા નથી—તેમના પ્રત્યે સમભાવ છે, અથવા તો અન્યમતીઓએ માનેલા અનેક પ્રકારના સર્વથા એકાંતપક્ષી વ્યવહારધર્મોની તેને વાંછા નથી—તે ધર્મોનો આદર નથી. આ રીતે સમ્યગ્દષ્ટિ વાંછારહિત હોવાથી તેને વાંછાથી થતો બંધ નથી. વર્તમાન પીડા સહી શકાતી નથી તેથી તેને મટાડવાના ઇલાજની વાંછા સમ્યગ્દષ્ટિને ચારિત્રમોહના ઉદયને લીધે હોય છે, પરંતુ તે વાંછાનો કર્તા પોતે થતો નથી, કર્મનો ઉદય જાણી તેનો જ્ઞાતા જ રહે છે; માટે વાંછાકૃત બંધ તેને નથી. ૨૩૦.

હવે નિર્વિચિકિત્સા ગુણની ગાથા કહે છેઃ—

जो ण करेदि जुगुप्पं चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं ।
सो खलु णिव्विदिगिच्छो सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥२३१॥

यो न करोति जुगुप्सां चेतयिता सर्वेषामेव धर्माणाम् ।
स खलु निर्विचिकित्सः सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥ २३१ ॥

અન્વયાર્થ:—[यः चेतयिता] જે ચેતયિતા [सर्वेषां एव] બધાય [धर्माणां] ધર્મો (વસ્તુના સ્વભાવો) પ્રત્યે [जुगुप्सां] જુગુપ્સા (ગ્લાનિ) [न करोति] કરતો નથી [सः] તે [खलु] નિશ્ચયથી [निर्विचिकित्सः] નિર્વિચિકિત્સ (-વિચિકિત્સાદોષ રહિત) [सम्यग्दृष्टिः] સમ્યગ્દષ્ટિ [ज्ञातव्यः] જાણવો.

ટીકા:—કારણ કે સમ્યગ્દષ્ટિ, ટંકોત્કીર્ણ એક જ્ઞાયકસ્વભાવમયપણાને લીધે બધાય વસ્તુધર્મો પ્રત્યે જુગુપ્સાનો (તેને) અભાવ હોવાથી, નિર્વિચિકિત્સ (-જુગુપ્સા રહિત) છે, તેથી તેને વિચિકિત્સાકૃત બંધ નથી પરંતુ નિર્જરા જ છે.

ભાવાર્થ:—સમ્યગ્દષ્ટિ વસ્તુના ધર્મો પ્રત્યે (અર્થાત્ ક્ષુધા, તૃષા, શીત, ઉષ્ણ

સૌ કોઈ ધર્મ વિષે જુગુપ્સાભાવ જે નહિ ધારતો,
ચિન્મૂર્તિ નિર્વિચિકિત્સ સમકિતદૃષ્ટિ નિશ્ચય જાણવો. ૨૩૧.

આદિ ભાવો પ્રત્યે તથા વિષ્ટા આદિ મલિન દ્રવ્યો પ્રત્યે) જુગુપ્સા કરતો નથી. જુગુપ્સા નામની કર્મપ્રકૃતિનો ઉદય આવે છે તોપણ પોતે તેનો કર્તા થતો નથી તેથી જુગુપ્સાકૃત બંધ તેને થતો નથી, પરંતુ પ્રકૃતિ રસ દઈને ખરી જાય છે તેથી નિર્જરા થાય છે. ૨૩૧.

હવે અમૂઢદૃષ્ટિ અંગની ગાથા કહે છેઃ—

जो हवइ असम्मूढो चेदा सद्दिट्ठि सव्वभावेसु ।
सो खलु अमूढदिट्ठी सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ २३२ ॥

यो भवति असंमूढः चेतयिता सद्दृष्टिः सर्वभावेषु ।
स खलु अमूढदृष्टिः सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥ २३२ ॥

અન્વયાર્થઃ—[यः चेतयिता] જે ચેતયિતા [सर्वभावेषु] સર્વ ભાવોમાં [असंमूढः] અમૂઢ છે—[सद्दृष्टिः] યથાર્થ દૃષ્ટિવાળો [भवति] છે, [सः] તે [खलु] ખરેખર [अमूढदृष्टिः] અમૂઢદૃષ્ટિ [सम्यग्दृष्टिः] સમ્યગ્દૃષ્ટિ [ज्ञातव्यः] જાણવો.

ટીકાઃ—કારણ કે સમ્યગ્દૃષ્ટિ, ટંકોત્કીર્ણ એક જ્ઞાયકભાવમયપણાને લીધે બધાય ભાવોમાં મોહનો (તેને) અભાવ હોવાથી, અમૂઢદૃષ્ટિ છે, તેથી તેને મૂઢદૃષ્ટિકૃત બંધ નથી પરંતુ નિર્જરા જ છે.

ભાવાર્થઃ—સમ્યગ્દૃષ્ટિ સર્વ પદાર્થોના સ્વરૂપને યથાર્થ જાણે છે; તેને રાગદ્વેષમોહનો અભાવ હોવાથી તેની કોઈ પદાર્થ પર અયથાર્થ દૃષ્ટિ પડતી નથી. ચારિત્રમોહના ઉદયથી ઇષ્ટાનિષ્ટ ભાવો ઉપજે તોપણ તેને ઉદયનું બળવાનપણું જાણીને તે ભાવોનો પોતે કર્તા થતો નથી તેથી તેને મૂઢદૃષ્ટિકૃત બંધ થતો નથી પરંતુ પ્રકૃતિ રસ દઈને ખરી જતી હોવાથી નિર્જરા જ થાય છે. ૨૩૨.

હવે ઉપગૂહન ગુણની ગાથા કહે છેઃ—

जो सिद्धभत्तिजुत्तो उपगूहणगो दु सव्वधम्माणं ।
सो उवगूहणकारी सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ २३३ ॥

સંમૂઢ નહિ જે સર્વ ભાવે,—સત્ય દૃષ્ટિ ધારતો,
તે મૂઢદૃષ્ટિરહિત સમકિતદૃષ્ટિ નિશ્ચય જાણવો. ૨૩૨.
જે સિદ્ધભક્તિસહિત છે, ઉપગૂહક છે સૌ ધર્મનો,
ચિન્મૂર્તિ તે ઉપગૂહનકર સમકિતદૃષ્ટિ જાણવો. ૨૩૩.

यः सिद्धभक्तियुक्तः उपगूहनकस्तु सर्वधर्माणाम् ।
स उपगूहनकारी सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥ २३३ ॥

અન્વયાર્થ:—[यः] જે (ચેતયિતા) [सिद्धभक्तियुक्तः] સિદ્ધની (શુદ્ધાત્માની) ભક્તિ સહિત છે [तु] અને [सर्वधर्माणां उपगूहनकः] પર વસ્તુના સર્વ ધર્મોને ગોપવનાર છે (અર્થાત્ રાગાદિ પરભાવોમાં જોડાતો નથી) [सः] તે [उपगूहनकारी] ઉપગૂહનકારી [सम्यग्दृष्टिः] સમ્યગ્દૃષ્ટિ [ज्ञातव्यः] જાણવો.

ટીકા:—કારણ કે સમ્યગ્દૃષ્ટિ, ટંકોત્કીર્ણ એક જ્ઞાયકભાવમયપણાને લીધે સમસ્ત આત્મશક્તિઓની વૃદ્ધિ કરતો હોવાથી, ઉપબૃંહક અર્થાત્ આત્મશક્તિનો વધારનાર છે, તેથી તેને જીવની શક્તિની દુર્બળતાથી (અર્થાત્ મંદતાથી) થતો બંધ નથી પરંતુ નિર્જરા જ છે.

ભાવાર્થ:—સમ્યગ્દૃષ્ટિ ઉપગૂહનગુણ સહિત છે. ઉપગૂહન એટલે ગોપવવું તે. અહીં નિશ્ચયનયને પ્રધાન કરીને કહ્યું છે કે સમ્યગ્દૃષ્ટિએ પોતાનો ઉપયોગ સિદ્ધભક્તિમાં જોડેલો છે, અને જ્યાં ઉપયોગ સિદ્ધભક્તિમાં જોડ્યો ત્યાં અન્ય ધર્મો પર દૃષ્ટિ જ ન રહી તેથી તે સર્વ અન્ય ધર્મોનો ગોપવનાર છે અને આત્મશક્તિનો વધારનાર છે.

આ ગુણનું બીજું નામ 'ઉપબૃંહણ' પણ છે. ઉપબૃંહણ એટલે વધારવું તે. સમ્યગ્દૃષ્ટિએ પોતાનો ઉપયોગ સિદ્ધના સ્વરૂપમાં જોડેલો હોવાથી તેના આત્માની સર્વ શક્તિઓ વધે છે—આત્મા પુષ્ટ થાય છે માટે તે ઉપબૃંહણગુણવાળો છે.

આ રીતે સમ્યગ્દૃષ્ટિને આત્મશક્તિની વૃદ્ધિ થતી હોવાથી તેને દુર્બળતાથી જે બંધ થતો હતો તે થતો નથી, નિર્જરા જ થાય છે. જોકે જ્યાંસુધી અંતરાયનો ઉદય છે ત્યાંસુધી નિર્બળતા છે તોપણ તેના અભિપ્રાયમાં નિર્બળતા નથી, પોતાની શક્તિ અનુસાર કર્મના ઉદયને જીતવાનો મહાન ઉદ્યમ વર્તે છે. ૨૩૩.

હવે સ્થિતિકરણ ગુણની ગાથા કહે છે:—

उम्मग्गं गच्छंतं सगं पि मग्गे ठवेदि जो चेदा ।
सो ठिदिकरणाजुत्तो सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ २३४ ॥

उन्मार्गं गच्छंतं स्वकमपि मार्गे स्थापयति यश्चेतयिता ।
स स्थितिकरणयुक्तः सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥ २३४ ॥

ઉન્માર્ગગમને સ્વાત્મને પણ માર્ગમાં જે સ્થાપતો,
ચિન્મૂર્તિ તે સ્થિતિકરણયુત સમકિતદૃષ્ટિ જાણવો. ૨૩૪.

અન્વયાર્થઃ—[यः चेतयिता] જે ચેતયિતા [उन्मार्गं गच्छंतं] ઉ
જતા [स्वकं अपि] પોતાના આત્માને પણ [मार्गे] માર્ગમાં [स्थापयति]
છે, [सः] તે [स्थितीकरणयुक्तः] સ્થિતીકરણયુક્ત (સ્થિતીકરણગુણ
[सम्यग्दृष्टिः] સમ્યગ્દ્રષ્ટિ [ज्ञातव्यः] જાણવો.

ટીકાઃ—કારણ કે સમ્યગ્દ્રષ્ટિ, ટંકોત્કીર્ણ એક જ્ઞાયકભાવમયપણાને
જો પોતાનો આત્મા માર્ગથી (અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રરૂપ
ચ્યુત થાય તો તેને માર્ગમાં જ સ્થિત કરતો હોવાથી, સ્થિતિકારી છે, તેથી તેને
ચ્યુત થવાના કારણે થતો બંધ નથી પરંતુ નિર્જરા જ છે.

ભાવાર્થઃ—જે, પોતાના સ્વરૂપરૂપી મોક્ષમાર્ગથી ચ્યુત થતા પો.
આત્માને માર્ગમાં (મોક્ષમાર્ગમાં) સ્થિત કરે તે સ્થિતીકરણગુણયુક્ત છે. તેને માર્ગ
ચ્યુત થવાના કારણે થતો બંધ નથી પરંતુ ઉદય આવેલાં કર્મ રસ દઈને ખરી
હોવાથી નિર્જરા જ છે. ૨૩૪.

હવે વાત્સલ્ય ગુણની ગાથા કહે છેઃ—

जो कुणदि वच्छलत्तं तियेह साहूण मोक्खमग्गम्मि ।
सो वच्छलभावजुदो सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ २३५ ॥

यः करोति वत्सलत्वं त्रयाणां साधूनां मोक्षमार्गे ।
स वत्सलभावयुतः सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥ २३५ ॥

અન્વયાર્થઃ—[यः] જે (ચેતયિતા) [मोक्षमार्गे] મોક્ષમાર્ગમાં સ્થિત
[त्रयाणां साधूनां] સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રરૂપી ત્રણ સાધકો—સાધનો પ્રત્યે (અથવા
વ્યવહારે આચાર્ય, ઉપાધ્યાય અને મુનિ—એ ત્રણ સાધુઓ પ્રત્યે) [वत्सलत्वं करोति]
વાત્સલ્ય કરે છે, [सः] તે [वत्सलभावयुतः] વત્સલભાવયુક્ત (વત્સલભાવ સહિત)
[सम्यग्दृष्टिः] સમ્યગ્દ્રષ્ટિ [ज्ञातव्यः] જાણવો.

ટીકાઃ—કારણ કે સમ્યગ્દ્રષ્ટિ, ટંકોત્કીર્ણ એક જ્ઞાયકભાવમયપણાને લીધે
સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રને પોતાથી અભેદબુદ્ધિએ સમ્યક્પણે દેખતો (-અનુભવતો)
હોવાથી, માર્ગવત્સલ અર્થાત્ મોક્ષમાર્ગ પ્રત્યે અતિ પ્રીતિવાળો છે, તેથી તેને માર્ગનો

જે મોક્ષમાર્ગે 'સાધુ'ત્રયનું વત્સલત્વ કરે અહો!
ચિન્મૂર્તિ તે વાત્સલ્યયુત સમકિતદ્રષ્ટિ જાણવો. ૨૩૫.

—*અનુપલબ્ધિથી થતો બંધ નથી પરંતુ નિર્જરા જ છે.

ભાવાર્થ:—વત્સલપણું એટલે પ્રીતિભાવ. જે જીવ મોક્ષમાર્ગરૂપી પોતાના સ્વરૂપ પ્રત્યે પ્રીતિવાળો—અનુરાગવાળો હોય તેને માર્ગની અપ્રાપ્તિથી થતો બંધ નથી, કર્મ રસ દઈને ખરી જતાં હોવાથી નિર્જરા જ છે. ૨૩૫.

હવે પ્રભાવના ગુણની ગાથા કહે છે:—

विज्जारहमारूढो मणोरहपहेसु भमइ जो चेदा ।
सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ २३६ ॥

विद्यारथमारूढः मनोरथपथेषु भ्रमति यश्चेतयिता ।
स जिनज्ञानप्रभावी सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥ २३६ ॥

અન્વયાર્થ:—[यः चेतयिता] જે ચેતયિતા [विद्यारथं आरूढः] વિદ્યારૂપી રથમાં આરૂઢ થયો થકો (—ચઢ્યો થકો) [मनोरथपथेषु] મનરૂપી રથ-પંથમાં (અર્થાત્ જ્ઞાનરૂપી જે રથને ચાલવાનો માર્ગ તેમાં) [भ्रमति] ભ્રમણ કરે છે, [सः] તે [जिनज्ञानप्रभावी] જિનેશ્વરના જ્ઞાનની પ્રભાવના કરનારો [सम्यग्दृष्टिः] સમ્યગ્દૃષ્ટિ [ज्ञातव्यः] જાણવો.

ટીકા:—કારણ કે સમ્યગ્દૃષ્ટિ, ટંકોત્કીર્ણ એક જ્ઞાયકભાવમયપણાને લીધે જ્ઞાનની સમસ્ત શક્તિને પ્રગટ કરવા—વિકસાવવા—ફેલાવવા વડે પ્રભાવ ઉત્પન્ન કરતો હોવાથી, પ્રભાવના કરનાર છે, તેથી તેને જ્ઞાનની પ્રભાવનાના અપ્રકર્ષથી (અર્થાત્ જ્ઞાનની પ્રભાવના નહિ વધારવાથી) થતો બંધ નથી પરંતુ નિર્જરા જ છે.

ભાવાર્થ:—પ્રભાવના એટલે પ્રગટ કરવું, ઉદ્યોત કરવો વગેરે; માટે જે પોતાના જ્ઞાનને નિરંતર અભ્યાસથી પ્રગટ કરે છે—વધારે છે, તેને પ્રભાવના અંગ હોય છે. તેને અપ્રભાવનાકૃત કર્મબંધ નથી, કર્મ રસ દઈને ખરી જાય છે તેથી નિર્જરા જ છે.

આ ગાથામાં નિશ્ચયપ્રભાવનાનું સ્વરૂપ કહ્યું છે. જેમ જિનબિંબને રથમાં સ્થાપીને નગર, વન વગેરેમાં ફેરવી વ્યવહારપ્રભાવના કરવામાં આવે છે, તેમ જે વિદ્યા-

* અનુપલબ્ધિ = પ્રત્યક્ષ ન હોવું તે, અજ્ઞાન; અપ્રાપ્તિ.

ચિન્મૂર્તિ મન-રથપંથમાં વિદ્યારથારૂઢ ઘૂમતો,
તે જિનજ્ઞાનપ્રભાવકર સમકિતદૃષ્ટિ જાણવો. ૨૩૬.

આવ્યા છે. પરંતુ સિદ્ધાંતમાં ગુણસ્થાનોની પરિપાટીમાં અવિરત સમ્યગ્[illegible]
કહેવામાં આવ્યો છે. વળી ઘાતિકર્મોનું કાર્ય આત્માના ગુણોનો ઘાત કર[illegible]
દર્શન, જ્ઞાન, સુખ, વીર્ય—એ ગુણોનો ઘાત પણ વિદ્યમાન છે. ચારિત્રમો[illegible]
નવીન બંધ પણ કરે છે. જો મોહના ઉદયમાં પણ બંધ ન માનવામાં આવે તો [illegible]
દૃષ્ટિને મિથ્યાત્વ-અનંતાનુબંધીનો ઉદય હોવા છતાં બંધ નથી એમ પણ કેમ ન [illegible]

સમાધાન:—બંધ થવામાં મુખ્ય કારણ મિથ્યાત્વ-અનંતાનુબંધીનો [illegible]
છે; અને સમ્યગ્દૃષ્ટિને તો તેમના ઉદયનો અભાવ છે. ચારિત્રમોહના [illegible]
સુખગુણનો ઘાત છે તથા મિથ્યાત્વ-અનંતાનુબંધી સિવાય અને તેમની સા[illegible]
અન્ય પ્રકૃતિઓ સિવાય બાકીની ઘાતિકર્મોની પ્રકૃતિઓનો અલ્પ સ્થિતિ-અનુ[illegible]
બંધ તેમ જ બાકીની અઘાતિકર્મોની પ્રકૃતિઓનો બંધ થાય છે, તોપણ જેવો [illegible]
અનંતાનુબંધી સહિત થાય છે તેવો નથી થતો. અનંત સંસારનું કારણ તો [illegible]
અનંતાનુબંધી જ છે; તેમનો અભાવ થયા પછી તેમનો બંધ થતો નથી; [illegible]
આત્મા જ્ઞાની થયો ત્યાં અન્ય બંધની કોણ ગણતરી કરે? વૃક્ષની જડ [illegible]
લીલાં પાંદડાં રહેવાની અવધિ કેટલી? માટે આ અધ્યાત્મશાસ્ત્રમાં સામાન્યપ[illegible]
અજ્ઞાની હોવા વિષે જ પ્રધાન કથન છે. જ્ઞાની થયા પછી જે કાંઈ કર્મ રહ[illegible]
સહજ જ મટતાં જવાનાં. નીચેના દૃષ્ટાંત પ્રમાણે જ્ઞાનીનું સમજવું. કોઈ પુ[illegible]
ગેલામાંથી ઝૂંપડીમાં રહેતો હતો. તેને ભાગ્યના ઉદયથી ધન સહિત મોટા મહે[illegible]
થઈ તેથી તે મહેલમાં રહેવા ગયો. જોકે તે મહેલમાં ઘણા દિવસનો કચરો [illegible]
તોપણ જે દિવસે તેણે આવીને મહેલમાં પ્રવેશ કર્યો તે દિવસથી જ તે મહે[illegible]
બની ગયો, સંપત્તિવાન થઈ ગયો. હવે કચરો કાઢવાનો છે તે અનુક્રમે પોતા[illegible]
અનુસાર કાઢે છે. જ્યારે બધો કચરો કાઢી નાખી મહેલ ઉજ્જ્વળ [illegible]
[illegible] આનંદ [illegible]. આવી જ રીતે જ્ઞાનીનું જાણવું.

ટીકા:—આ પ્રમાણે નિર્જરા (રંગભૂમિમાંથી) બહાર નીકળી [illegible]

ભાવાર્થ:—એ રીતે, નિર્જરા કે જેણે રંગભૂમિમાં પ્રવેશ કર્યો [illegible]
[illegible] આવીને બહાર નીકળી ગઈ. ૨૩૬.

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible] નિર્જરા અધિકાર [illegible]

— ૭ —

બંધ અધિકાર

રાગાદિકથી કર્મનો, બંધ જાણી મુનિરાય,
તજે તેહ સમભાવથી, નમું સદા તસુ પાય.

પ્રથમ ટીકાકાર કહે છે કે 'હવે બંધ પ્રવેશ કરે છે.' જેમ નૃત્યના અખાડામાં સ્વાંગ પ્રવેશ કરે તેમ રંગભૂમિમાં બંધતત્ત્વનો સ્વાંગ પ્રવેશ કરે છે.

ત્યાં પ્રથમ જ, સર્વ તત્ત્વોને યથાર્થ જાણનારું જે સમ્યગ્જ્ઞાન છે તે બંધને દૂર કરતું પ્રગટ થાય છે એવા અર્થનું મંગળરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

रागोद्गारमहारसेन सकलं कृत्वा प्रमत्तं जगत्
क्रीडन्तं रसभावनिर्भरमहानाट्येन बन्धं धुनत् ।
आनन्दामृतनित्यभोजि सहजावस्थां स्फुटं नाटयद्-
धीरोदारमनाकुलं निरुपधि ज्ञानं समुन्मज्जति ॥ १६३ ॥

અર્થ:—જે (બંધ) રાગના ઉદયરૂપી મહા રસ (દારૂ) વડે સમસ્ત જગતને પ્રમત્ત (-મતવાળું, ગાફેલ) કરીને, રસના ભાવથી (અર્થાત્ રાગરૂપી મતવાળાપણાથી) ભરેલા મહા નૃત્ય વડે ખેલી (નાચી) રહ્યો છે એવા બંધને ઉડાડી દેતું—દૂર કરતું, જ્ઞાન ઉદય પામે છે. કેવું છે જ્ઞાન? આનંદરૂપી અમૃતનું નિત્ય ભોજન કરનારું છે, પોતાની જાણનક્રિયારૂપ સહજ અવસ્થાને પ્રગટ નચાવી રહ્યું છે, ધીર છે, ઉદાર (અર્થાત્ મહા વિસ્તારવાળું, નિશ્ચળ) છે, અનાકુળ (અર્થાત્ જેમાં કાંઈ આકુળતાનું કારણ નથી એવું) છે, નિરુપધિ (અર્થાત્ પરિગ્રહ રહિત, જેમાં કાંઈ પરદ્રવ્ય સંબંધી ગ્રહણત્યાગ નથી એવું) છે.

ભાવાર્થઃ—બંધતત્ત્વે રંગભૂમિમાં પ્રવેશ કર્યો છે, તેને દૂર કરીને જે પોતે પ્રગટ થઈ નૃત્ય કરશે તે જ્ઞાનનો મહિમા આ કાવ્યમાં પ્રગટ કર્યો છે. અનંત જ્ઞાનસ્વરૂપ જે આત્મા તે સદા પ્રગટ રહો.

હવે બંધતત્ત્વનું સ્વરૂપ વિચારે છે; તેમાં પ્રથમ, બંધના કારણને રીત કહે છે:—

जह णाम को वि पुरिसो णेहभत्तो दु रेणुबहुलम्मि ।
ठाणम्मि ठाइदूण य करेइ सत्थेहिं वायामं ॥ २३७ ॥
छिंददि भिंददि य तहा तालीतलकयलिवंसपिंडीओ ।
सच्चित्ताचित्ताणं करेइ दव्वाणमुवघायं ॥ २३८ ॥
उवघायं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं ।
णिच्छयदो चिंतिज्ज हु किंपच्चयगो दु रयबंधो ॥ २३९ ॥
जो सो दु णेहभावो तह्मि णरे तेण तस्स रयबंधो ।
णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहिं सेसाहिं ॥ २४० ॥
एवं मिच्छादिट्ठी वट्टंतो बहुविहासु चिट्ठासु ।
रायाई उवओगे कुव्वंतो लिप्पइ रयेण ॥ २४१ ॥

જેવી રીતે કો પુરુષ પોતે તેલનું મર્દન કરી,
વ્યાયામ કરતો શસ્ત્રથી બહુ રજભર્યા સ્થાને રહી; ૨૩૭
વળી તાડ, કદળી, વાંસ આદિ છિન્નભિન્ન કરે અને
ઉપઘાત તેહ સચિત્ત તેમ અચિત્ત દ્રવ્ય તણો કરે. ૨૩૮
બહુ જાતનાં કરણો વડે ઉપઘાત કરતા તેહને,
નિશ્ચય થકી ચિંતન કરો, રજબંધ થાય શું કારણે? ૨૩૯
એમ જાણવું નિશ્ચય થકી—ચીકણાઈ જે તે નર વિષે
રજબંધકારણ તે જ છે, નહિ કાયચેષ્ટા શેષ જે. ૨૪૦
ચેષ્ટા વિવિધમાં વર્તતો એ રીત મિથ્યાદૃષ્ટિ જે,
ઉપયોગમાં રાગાદિ કરતો રજ થકી લેપાય તે. ૨૪૧

यथा नाम कोऽपि पुरुषः स्नेहाभ्यक्तस्तु रेणुबहुले ।
स्थाने स्थित्वा च करोति शस्त्रैर्व्यायामम् ॥ २३७ ॥
छिनत्ति भिनत्ति च तथा तालीतलकदलीवंशपिंडीः ।
सचित्ताचित्तानां करोति द्रव्याणामुपघातम् ॥ २३८ ॥
उपघातं कुर्वतस्तस्य नानाविधैः करणैः ।
निश्चयतश्चिन्त्यतां खलु किंप्रत्ययिकस्तु रजोबंधः ॥ २३९ ॥
यः स तु स्नेहभावस्तस्मिन्नरे तेन तस्य रजोबंधः ।
निश्चयतो विज्ञेयं न कायचेष्टाभिः शेषाभिः ॥ २४० ॥
एवं मिथ्यादृष्टिर्वर्तमानो बहुविधासु चेष्टासु ।
रागादीनुपयोगे कुर्वाणो लिप्यते रजसा ॥ २४१ ॥

અન્વયાર્થઃ—[यथा नाम] જેવી રીતે—[कोऽपि पुरुषः] કોઈ પુરુષ [स्नेहाभ्यक्तः तु] (પોતાના પર અર્થાત્ પોતાના શરીર પર) તેલ આદિ સ્નિગ્ધ પદાર્થ લગાવીને [च] અને [रेणुबहुले] બહુ રજવાળી (ધૂળવાળી) [स्थाने] જગ્યામાં [स्थित्वा] રહીને [शस्त्रैः] શસ્ત્રો વડે [व्यायामं करोति] વ્યાયામ કરે છે, [तथा] અને [तालीतलकदलीवंशपिंडीः] તાડ, તમાલ, કેળ, વાંસ, અશોક વગેરે વૃક્ષોને [छिनत्ति] છેદે છે, [भिनत्ति च] ભેદે છે, [सचित्ताचित्तानां] સચિત્ત તથા અચિત્ત [द्रव्याणां] દ્રવ્યોનો [उपघातं] ઉપઘાત (નાશ) [करोति] કરે છે; [नानाविधैः करणैः] એ રીતે નાના પ્રકારનાં કરણો વડે [उपघातं कुर्वतः] ઉપઘાત કરતા [तस्य] તે પુરુષને [रजोबंधः तु] રજનો બંધ (ધૂળનું ચોંટવું) [खलु] ખરેખર [किंप्रत्ययिकः] કયા કારણે થાય છે [निश्चयतः] તે નિશ્ચયથી [चिंत्यतां] વિચારો. [तस्मिन् नरे] તે પુરુષમાં [यः सः स्नेहभावः तु] જે તેલ આદિનો ચીકાશભાવ છે [तेन] તેનાથી [तस्य] તેને [रजोबंधः] રજનો બંધ થાય છે [निश्चयतः विज्ञेयं] એમ નિશ્ચયથી જાણવું, [शेषाभिः कायचेष्टाभिः] શેષ કાયાની ચેષ્ટાઓથી [न] નથી થતો. [एवं] એવી રીતે—[बहुविधासु चेष्टासु] બહુ પ્રકારની ચેષ્ટાઓમાં [वर्तमानः] વર્તતો [मिथ्यादृष्टिः] મિથ્યાદૃષ્ટિ [उपयोगे] (પોતાના) ઉપયોગમાં [रागादीन् कुर्वाणः] રાગાદિ ભાવોને કરતો થકો [रजसा] કર્મરૂપી રજથી [लि...] લેપાય છે—બંધાય છે.

ટીકાઃ—જેવી રીતે—આ જગતમાં ખરેખર કોઈ પુરુષ ... તેલ આદિ ચીકણા પદાર્થના) મર્દનયુક્ત થયેલો, સ્વભાવ... ...ી

છે (અર્થાત્ બહુ રજવાળી છે) એવી ભૂમિમાં રહેલો, શસ્ત્રોના વ્યાયામરૂપી
(અર્થાત્ શસ્ત્રોના અભ્યાસરૂપી ક્રિયા) કરતો, અનેક પ્રકારનાં કરણો વડે સ
અચિત્ત વસ્તુઓનો ઘાત કરતો, (તે ભૂમિની) રજથી બંધાય છે—લેપાય છે. (
વિચારો કે) તેમાંથી તે પુરુષને બંધનું કારણ કયું છે? પ્રથમ, સ્વભાવથી જ જે
રજથી ભરેલી છે એવી ભૂમિ રજબંધનું કારણ નથી; કારણ કે જો એમ હોય
જેમણે તેલ આદિનું મર્દન નથી કર્યું એવા પુરુષો કે જેઓ તે ભૂમિમાં રહેલા છે
તેમને પણ રજબંધનો પ્રસંગ આવે. શસ્ત્રોના વ્યાયામરૂપી કર્મ પણ રજબંધનું
નથી; કારણ કે જો એમ હોય તો જેમણે તેલ આદિનું મર્દન નથી કર્યું તેમને
શસ્ત્રવ્યાયામરૂપી ક્રિયા કરવાથી રજબંધનો પ્રસંગ આવે. અનેક પ્રકારનાં કરણો
રજબંધનું કારણ નથી; કારણ કે જો એમ હોય તો જેમણે તેલ આદિનું મર્દન
કર્યું તેમને પણ અનેક પ્રકારનાં કરણોથી રજબંધનો પ્રસંગ આવે. સચિત્ત તથા અ
વસ્તુઓનો ઘાત પણ રજબંધનું કારણ નથી; કારણ કે જો એમ હોય તો
આદિનું મર્દન નથી કર્યું તેમને પણ સચિત્ત તથા અચિત્ત વસ્તુઓનો ઘાત
રજબંધનો પ્રસંગ આવે. માટે ન્યાયના બળથી જ આ ફલિત થયું (—સિદ્ધ થયું)
જે તે પુરુષમાં સ્નેહમર્દનકરણ (અર્થાત્ તે પુરુષમાં જે તેલ આદિના મર્દનનું કરવું
તે બંધનું કારણ છે. તેવી રીતે—મિથ્યાદૃષ્ટિ પોતામાં રાગાદિક (-રાગાદિભાવો-)
સ્વભાવથી જ જે બહુ કર્મયોગ્ય પુદ્ગલોથી ભરેલો છે એવા લોકમાં કા.
કર્મ (અર્થાત્ કાય-વચન-મનની ક્રિયા) કરતો, અનેક પ્રકારનાં કરણો વડે
તથા અચિત્ત વસ્તુઓનો ઘાત કરતો, કર્મરૂપી રજથી બંધાય છે. (ત્યાં વિચારો
તેમાંથી તે પુરુષને બંધનું કારણ કયું છે? પ્રથમ, સ્વભાવથી જ જે બહુ કર્મ
પુદ્ગલોથી ભરેલો છે એવો લોક બંધનું કારણ નથી; કારણ કે જો એમ હોય તો સિ
કે જેઓ લોકમાં રહેલા છે તેમને પણ બંધનો પ્રસંગ આવે. કાય-વચન-મનનું
(અર્થાત્ કાય-વચન-મનની ક્રિયાસ્વરૂપ યોગ) પણ બંધનું કારણ નથી; કારણ કે
એમ હોય તો યથાખ્યાત-સંયમીઓને પણ (કાય-વચન-મનની ક્રિયા હોવાથી) બંધ
પ્રસંગ આવે. અનેક પ્રકારનાં કરણો પણ બંધનું કારણ નથી; કારણ કે જો એમ હો
તો કેવળજ્ઞાનીઓને પણ (તે કરણોથી) બંધનો પ્રસંગ આવે. સચિત્ત તથા અચિ
વસ્તુઓનો ઘાત પણ બંધનું કારણ નથી; કારણ કે જો એમ હોય તો જેઓ
તત્પર છે તેમને (અર્થાત્ જેઓ યત્નપૂર્વક પ્રવર્તે છે એવા સાધુઓને) પણ (સચિત્ત
તથા અચિત્ત વસ્તુઓના ઘાતથી) બંધનો પ્રસંગ આવે. માટે ન્યાયબળથી જ આ
ફલિત થયું કે, જે ઉપયોગમાં રાગાદિકરણ (અર્થાત્ ઉપયોગમાં જે રાગાદિકનું કરવું)
તે બંધનું કારણ છે.

ભાવાર્થ:—અહીં નિશ્ચયનય પ્રધાન કરીને કથન છે. જ્યાં નિર્બાધ હેતુ

સિદ્ધિ થાય તે જ નિશ્ચય છે. બંધનું કારણ વિચારતાં નિર્બાધપણે એ જ સિદ્ધ થયું કે—મિથ્યાદૃષ્ટિ પુરુષ જે રાગદ્વેષમોહભાવોને પોતાના ઉપયોગમાં કરે છે તે રાગાદિક જ બંધનું કારણ છે. તે સિવાય બીજાં—બહુ કર્મયોગ્ય પુદ્ગલોથી ભરેલો લોક, મન-વચન-કાયના યોગ, અનેક કરણો તથા ચેતન-અચેતનનો ઘાત—બંધનાં કારણ નથી; જો તેમનાથી બંધ થતો હોય તો સિદ્ધોને, યથાખ્યાત ચારિત્રવાળાઓને, કેવળજ્ઞાનીઓને અને સમિતિરૂપે પ્રવર્તનારા મુનિઓને બંધનો પ્રસંગ આવે છે. પરંતુ તેમને તો બંધ થતો નથી. તેથી આ હેતુઓમાં (-કારણોમાં) વ્યભિચાર આવ્યો. માટે બંધનું કારણ રાગાદિક જ છે એ નિશ્ચય છે.

અહીં સમિતિરૂપે પ્રવર્તનારા મુનિઓનું નામ લીધું અને અવિરત, દેશ-વિરતનું નામ ન લીધું તેનું કારણ એ છે કે—અવિરત તથા દેશવિરતને બાહ્યસમિતિરૂપ પ્રવૃત્તિ નથી તેથી ચારિત્રમોહ સંબંધી રાગથી કિંચિત્ બંધ થાય છે; માટે સર્વથા બંધના અભાવની અપેક્ષામાં તેમનું નામ ન લીધું. બાકી અંતરંગની અપેક્ષાએ તો તેઓ પણ નિર્બંધ જ જાણવા.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છેઃ—

(પૃથ્વી)

न कर्मबहुलं जगन्न चलनात्मकं कर्म वा
न नैककरणानि वा न चिदचिद्वधो बंधकृत् ।
यदैक्यमुपयोगभूः समुपयाति रागादिभिः
स एव किल केवलं भवति बंधहेतुर्नृणाम् ॥ १६४ ॥

અર્થઃ—કર્મબંધ કરનારું કારણ, નથી બહુ કર્મયોગ્ય પુદ્ગલોથી ભરેલો લોક, નથી ચલનસ્વરૂપ કર્મ (અર્થાત્ કાય-વચન-મનની ક્રિયારૂપ યોગ), નથી અનેક પ્રકારનાં કરણો કે નથી ચેતન-અચેતનનો ઘાત. 'ઉપયોગભૂ' અર્થાત્ આત્મા રાગાદિક સાથે જે ઐક્ય પામે છે તે જ એક (-માત્ર રાગાદિક સાથે એકપણું પામવું તે જ—) ખરેખર પુરુષોને બંધનું કારણ છે.

ભાવાર્થઃ—અહીં નિશ્ચયનયથી એક રાગાદિકને જ બંધનું કારણ કહ્યું છે. ૨૩૭-૨૪૧.

સમ્યગ્દૃષ્ટિ ઉપયોગમાં રાગાદિક કરતો નથી, ઉપયોગનો અને રાગાદિકનો ભેદ જાણી રાગાદિકનો સ્વામી થતો નથી, તેથી તેને પૂર્વોક્ત ચેષ્ટાથી બંધ થતો નથી—એમ હવે કહે છેઃ—

પ્રકારનાં કરણો વડે તે જ સચિત્ત-અચિત્ત વસ્તુઓનો ઘાત કરતો, કર્મરૂપી રજથી બંધા નથી, કારણ કે તેને બંધનું કારણ જે રાગનો યોગ (-રાગમાં જોડાણ) તેનો અભાવ છે.

ભાવાર્થ:—સમ્યગ્દૃષ્ટિને પૂર્વોક્ત સર્વ સંબંધો હોવા છતાં પણ રાગના સંબંધનો અભાવ હોવાથી કર્મબંધ થતો નથી. આના સમર્થનમાં પૂર્વે કહેવાઈ ગયું

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

लोकः कर्म ततोऽस्तु सोऽस्तु च परिस्पन्दात्मकं कर्म तत्
तान्यस्मिन्करणानि संतु चिदचिद्व्यापादनं चास्तु तत् ।
रागादीनुपयोगभूमिमनयन् ज्ञानं भवन्केवलं
बंधं नैव कुतोऽप्युपैत्ययमहो सम्यग्दगात्मा ध्रुवम् ॥ १६५ ॥

અર્થ:—માટે તે (પૂર્વોક્ત) બહુ કર્મથી (કર્મયોગ્ય પુદ્ગલોથી) ભરેલો લોક છે તે ભલે હો, તે મન-વચન-કાયાના ચલનસ્વરૂપ કર્મ (અર્થાત્ યોગ) છે તે પણ ભલે હો, તે (પૂર્વોક્ત) કરણો પણ તેને ભલે હો અને તે ચેતન-અચેતનનો ઘાત પણ ભલે હો, પરંતુ અહો! આ સમ્યગ્દૃષ્ટિ આત્મા, રાગાદિકને ઉપયોગભૂમિમાં નહિ લાવતો થકો, કેવળ (એક) જ્ઞાનરૂપે થતો-પરિણમતો થકો, કોઈ પણ કારણથી બંધને ચોક્કસ નથી જ પામતો. (અહો! દેખો! આ સમ્યગ્દર્શનનો અદ્ભુત મહિમા છે.)

ભાવાર્થ:—અહીં સમ્યગ્દૃષ્ટિનું અદ્ભુત માહાત્મ્ય કહ્યું છે અને લોક, યોગ, કરણ, ચૈતન્ય-અચૈતન્યનો ઘાત—એ બંધનાં કારણ નથી એમ કહ્યું છે. આથી એમ ન સમજવું કે પરજીવની હિંસાથી બંધ કહ્યો નથી માટે સ્વચ્છંદી થઈ હિંસા કરવી. અહીં તો એમ આશય છે કે અબુદ્ધિપૂર્વક કદાચિત્ પરજીવનો [illegible] પણ થઈ જાય તો તેનાથી બંધ થતો નથી. પરંતુ જ્યાં બુદ્ધિપૂર્વક જીવ [illegible] મરે ત્યાં તો પોતાના ઉપયોગમાં રાગાદિકનો સદ્ભાવ આવશે [illegible] જ. જ્યાં જીવને જિવાડવાનો અભિપ્રાય હોય ત્યાં પ[illegible] નિશ્ચયનયમાં મિથ્યાત્વ કહ્યું છે તો મારવાનો [illegible] જ. માટે કથનને નયવિભાગથી [illegible]ર્થ સમજી શ્રદ્ધા[illegible] તે તો મિથ્યાત્વ છે.

હવે ઉપરના ભા[illegible] કરવાને, કાવ્ય કહે છે:—

(પૃથ્વી)

तथापि न निरर्गलं चरितुमिष्यते ज्ञानिनां
तदायतनमेव सा किल निरर्गला व्यापृतिः ।
अकामकृतकर्म तन्मतमकारणं ज्ञानिनां
द्वयं न हि विरुध्यते किमु करोति जानाति च ॥ १६६ ॥

અર્થઃ—તથાપિ (અર્થાત્ લોક આદિ કારણોથી બંધ કહ્યો નથી અને રાગાદિકથી જ બંધ કહ્યો છે તોપણ) જ્ઞાનીઓને નિરર્ગલ (-મર્યાદારહિત, સ્વચ્છંદપણે) પ્રવર્તવું યોગ્ય નથી કહ્યું, કારણ કે તે નિરર્ગલ પ્રવર્તન ખરેખર બંધનું જ ઠેકાણું છે. જ્ઞાનીઓને વાંછા વિના કર્મ (કાર્ય) હોય છે તે બંધનું કારણ કહ્યું નથી, કેમકે જાણે પણ છે અને (કર્મને) કરે પણ છે—એ બન્ને ક્રિયા શું વિરોધરૂપ નથી? (કરવું અને જાણવું નિશ્ચયથી વિરોધરૂપ જ છે.)

ભાવાર્થઃ—પહેલા કાવ્યમાં લોક આદિને બંધનાં કારણ ન કહ્યાં ત્યાં એમ ન સમજવું કે બાહ્યવ્યવહારપ્રવૃત્તિને બંધનાં કારણોમાં સર્વથા જ નિષેધી છે; બાહ્યવ્યવહારપ્રવૃત્તિ રાગાદિ પરિણામને—બંધના કારણ—નેનિમિત્તભૂત છે, તે નિમિત્તપણાનો અહીં નિષેધ ન સમજવો. જ્ઞાનીઓને અબુદ્ધિપૂર્વક—વાંછા વિના—પ્રવૃત્તિ થાય છે તેથી બંધ કહ્યો નથી, તેમને કાંઈ સ્વચ્છંદે પ્રવર્તવાનું કહ્યું નથી; કારણ કે મર્યાદા રહિત (અંકુશ વિના) પ્રવર્તવું તે તો બંધનું જ ઠેકાણું છે. જાણવામાં અને કરવામાં તો પરસ્પર વિરોધ છે; જ્ઞાતા રહેશે તો બંધ નહિ થાય, કર્તા થશે તો અવશ્ય બંધ થશે.

"જે જાણે છે તે કરતો નથી અને જે કરે છે તે જાણતો નથી; કરવું તે તો કર્મનો રાગ છે, રાગ છે તે અજ્ઞાન છે અને અજ્ઞાન છે તે બંધનું કારણ છે." આવા અર્થનું કાવ્ય હવે કહે છેઃ—

(વસંતતિલકા)

जानाति यः स न करोति करोति यस्तु
जानात्ययं न खलु तत्किल कर्मरागः ।
रागं त्वबोधमयमध्यवसायमाहु-
र्मिथ्यादृशः स नियतं स च बंधहेतुः ॥ १६७ ॥

અર્થઃ—જે જાણે છે તે કરતો નથી અને જે કરે છે તે જાણતો

કરવું તે તો ખરેખર કર્મરાગ છે અને રાગને (મુનિઓએ) અજ્ઞાનમય અ[illegible]
કહ્યો છે; તે (અજ્ઞાનમય અધ્યવસાય) નિયમથી મિથ્યાદૃષ્ટિને હોય છે અને
કારણ છે. ૨૪૨—૨૪૬.

હવે મિથ્યાદૃષ્ટિના આશયને ગાથામાં સ્પષ્ટ રીતે કહે છે—

जो मण्णदि हिंसामि य हिंसिज्जामि य परेहिं सत्तेहिं।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥ २४७ ॥

यो मन्यते हिनस्मि च हिंस्ये च परैः सत्त्वैः
स मूढोऽज्ञानी ज्ञान्यतस्तु विपरीतः ॥ २४७ ॥

અન્વયાર્થઃ—[यः] જે [मन्यते] એમ માને છે કે [हिनस्मि च] [illegible]
જીવોને મારું છું (-હણું છું) [परैः सत्त्वैः हिंस्ये च] અને પર જીવો મને [illegible]
[सः] તે [मूढः] મૂઢ (-મોહી) છે, [अज्ञानी] અજ્ઞાની છે, [तु] અને [illegible]
विपरीतः] આનાથી વિપરીત (અર્થાત્ આવું નથી માનતો) તે [ज्ञानी] [illegible]

ટીકાઃ—'પરજીવોને હું હણું છું અને પરજીવો મને [illegible]
ધ્રુવપણે (-નિશ્ચિતપણે, નિયમથી) અજ્ઞાન છે. તે
અજ્ઞાનીપણાને લીધે મિથ્યાદૃષ્ટિ છે; અને જેને તે અધ્યવસ
લીધે સમ્યગ્દૃષ્ટિ છે.

आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं ।
आउं ण हरेसि तुमं कह ते मरणं कयं तेसिं ॥ २४८ ॥
आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं ।
आउं ण हरंति तुहं कह ते मरणं कयं तेहिं ॥ २४९ ॥

आयुःक्षयेण मरणं जीवानां जिनवरैः प्रज्ञप्तम् ।
आयुर्न हरसि त्वं कथं त्वया मरणं कृतं तेषाम् ॥ २४८ ॥
आयुःक्षयेण मरणं जीवानां जिनवरैः प्रज्ञप्तम् ।
आयुर्न हरंति तव कथं ते मरणं कृतं तैः ॥ २४९ ॥

અન્વયાર્થ:—(હે ભાઈ! 'હું પર જીવોને મારું છું' એમ જો તું માને છે, તે તારું અજ્ઞાન છે.) [जीवानां] જીવોનું [मरणं] મરણ [आयुःक्षयेण] આયુકર્મના ક્ષયથી થાય છે એમ [जिनवरैः] જિનવરોએ [प्रज्ञप्तं] કહ્યું છે; [त्वं] તું [आयुः] પર જીવોનું આયુકર્મ તો [न हरसि] હરતો નથી, [त्वया] તો તેં [तेषां मरणं] તેમનું મરણ [कथं] કઈ રીતે [कृतं] કર્યું?

(હે ભાઈ! 'પર જીવો મને મારે છે' એમ જો તું માને છે, તે તારું અજ્ઞાન છે.) [जीवानां] જીવોનું [मरणं] મરણ [आयुःक्षयेण] આયુકર્મના ક્ષયથી થાય છે એમ [जिनवरैः] જિનવરોએ [प्रज्ञप्तं] કહ્યું છે; પર જીવો [तव आयुः] તારું આયુકર્મ તો [न हरंति] હરતા નથી, [तैः] તો તેમણે [ते मरणं] તારું મરણ [कथं] કઈ રીતે [कृतं] કર્યું?

ટીકા:—પ્રથમ તો, જીવોને મરણ ખરેખર સ્વ-આયુકર્મના (પોતાના આયુકર્મના) ક્ષયથી જ થાય છે, કારણ કે સ્વ-આયુકર્મના ક્ષયના અભાવમાં (અર્થાત્ પોતાના આયુકર્મનો ક્ષય ન હોય તો) મરણ કરાવું (-થવું) અશક્ય છે; વળી સ્વ-આયુકર્મ બીજાથી બીજાનું હરી શકાતું નથી, કારણ કે તે (પોતાનું આયુકર્મ)

આયુક્ષયથી મરણ જીવનું એમ જિનદેવે કહ્યું,
આયુ નો હરતો નથી, તેં મરણ ક્યમ તેનુ કર્યું? ૨૪૮.
આયુક્ષયથી મરણ જીવનું એમ જિનદેવે કહ્યું,
આયુ તુજ હરતા નથી, તો મરણ ક્યમ તારું કર્યું? ૨૪૯.

પોતાના ઉપભોગથી જ ક્ષય પામે છે; માટે કોઈ પણ રીતે બીજો બીજાનું મરણ કરી શકે નહિ. તેથી 'હું પરજીવોને મારું છું' અને પરજીવો મને મારે છે' એવો અધ્યવસાય ધ્રુવપણે (-નિશ્ચિતપણે) અજ્ઞાન છે.

ભાવાર્થ:—જીવની જે માન્યતા હોય તે માન્યતા પ્રમાણે જગતમાં બનતું ન હોય, તો તે માન્યતા અજ્ઞાન છે. પોતાથી પરનું મરણ કરી શકાતું નથી અને પરથી પોતાનું મરણ કરી શકાતું નથી, છતાં આ પ્રાણી વૃથા એવું માને છે તે અજ્ઞાન છે. આ કથન નિશ્ચયનયની પ્રધાનતાથી છે.

વ્યવહાર આ પ્રમાણે છે:—પરસ્પર નિમિત્તનૈમિત્તિકભાવથી પર્યાયના ઉત્પાદ વ્યય થાય તેને જન્મ-મરણ કહેવામાં આવે છે; ત્યાં જેના નિમિત્તથી મરણ (-પર્યાયનો વ્યય) થાય તેના વિષે એમ કહેવામાં આવે છે કે "આણે આને માર્યો," તે વ્યવહાર છે.

અહીં એમ ન સમજવું કે વ્યવહારનો સર્વથા નિષેધ છે. જેઓ નિશ્ચયને નથી જાણતા, તેમનું અજ્ઞાન મટાડવા અહીં કથન કર્યું છે. તે જાણ્યા પછી બંને નયોને અવિરોધપણે જાણી યથાયોગ્ય નયો માનવા. ૨૪૮—૨૪૯.

ફરી પૂછે છે કે "(મરણનો અધ્યવસાય અજ્ઞાન છે એમ કહ્યું તે જાણ્યું; હવે) મરણના અધ્યવસાયનો પ્રતિપક્ષી જે જીવનનો અધ્યવસાય તેની શી હકીકત છે?" તેનો ઉત્તર કહે છે:—

जो मण्णदि जीवेमि य जीविज्जामि य परेहिं सत्तेहिं।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥ २५० ॥

यो मन्यते जीवयामि च जीव्ये च परैः सत्त्वैः।
स मूढोऽज्ञानी ज्ञान्यतस्तु विपरीतः ॥ २५० ॥

અન્વયાર્થ:—[यः] જે જીવ [मन्यते] એમ માને છે કે [जीवयामि] પર જીવોને જિવાડું છું [च] અને [परैः सत्त्वैः] પર જીવો [जीव्ये च] જિવાડે છે, [सः] તે [मूढः] મૂઢ (મોહી) છે, [अज्ञानी] અજ્ઞાની છે, [तु] અને [अतः विपरीतः] આનાથી વિપરીત (અર્થાત્ જે આવું નથી માનતો, આનાથી ઊલટું માને છે) તે [ज्ञानी] જ્ઞાની છે.

જે માનતો—હું જિવાડું ને પર જીવ જિવાડે મુજને,
તે મૂઢ છે, અજ્ઞાની છે, વિપરીત એથી જ્ઞાની છે. ૨૫૦.

ટીકા:—'પરજીવોને હું જિવાડું છું અને પરજીવો મને જિવાડે છે' એવો અધ્યવસાય ધ્રુવપણે (-અત્યંત નિશ્ચિતપણે) અજ્ઞાન છે. તે અધ્યવસાય જેને છે તે જીવ અજ્ઞાનીપણાને લીધે મિથ્યાદ્રષ્ટિ છે; અને જેને તે અધ્યવસાય નથી તે જીવ જ્ઞાનીપણાને લીધે સમ્યગ્દ્રષ્ટિ છે.

ભાવાર્થ:—'પર મને જિવાડે છે અને હું પરને જિવાડું છું' એમ માનવું તે અજ્ઞાન છે. જેને એ અજ્ઞાન છે તે મિથ્યાદ્રષ્ટિ છે; જેને એ અજ્ઞાન નથી તે સમ્યગ્દ્રષ્ટિ છે. ૨૫૦.

હવે પૂછે છે કે આ (જીવનનો) અધ્યવસાય અજ્ઞાન કઈ રીતે છે? તેનો ઉત્તર કહે છે:—

आउदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू ।
आउं च ण देसि तुमं कहं तए जीवियं कयं तेसिं ॥२५१॥
आउदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू ।
आउं च ण दिंति तुहं कहं णु ते जीवियं कयं तेहिं ॥२५२॥

आयुरुदयेन जीवति जीव एवं भणन्ति सर्वज्ञाः ।
आयुश्च न ददासि त्वं कथं त्वया जीवितं कृतं तेषाम् ॥ २५१ ॥
आयुरुदयेन जीवति जीव एवं भणन्ति सर्वज्ञाः ।
आयुश्च न ददति तव कथं नु ते जीवितं कृतं तैः ॥ २५२ ॥

અન્વયાર્થ:—[जीवः] જીવ [आयुरुदयेन] આયુકર્મના ઉદયથી [जीवति] જીવે છે [एवं] એમ [सर्वज्ञाः] સર્વજ્ઞદેવો [भणन्ति] કહે છે; [त्वं] તું [आयुः च] પર જીવોને આયુકર્મ તો [न ददासि] દેતો નથી [त्वया] તો (હે ભાઈ!) તેં [तेषां जीवितं] તેમનું જીવિત (જીવતર) [कथं कृतं] કઈ રીતે કર્યું?

છે આયુઉદયે જીવન જીવનું એમ સર્વજ્ઞે કહ્યું,
તું આયુ તો દેતો નથી, તેં જીવન ક્યમ તેનું કર્યું? ૨૫૧.
છે આયુઉદયે જીવન જીવનું એમ સર્વજ્ઞે કહ્યું,
તે આયુ તુજ દેતા નથી, તો જીવન ક્યમ તારું કર્યું? ૨૫૨.

[जीवाः] જીવ [आयुरुदयेन] આયુકર્મના ઉદયથી [जीवंति] જીવે [एवं] એમ [सर्वज्ञाः] સર્વજ્ઞદેવો [भणंति] કહે છે; પર જીવો [तव] તને [च] આયુકર્મ તો [न ददति] દેતા નથી [तैः] તો (હે ભાઈ!) તેમણે [ते] તારું જીવિત [कथं नु कृतं] કઈ રીતે કર્યું?

ટીકાઃ—પ્રથમ તો, જીવોને જીવિત ખરેખર પોતાના આયુકર્મના ઉ. છે, કારણ કે પોતાના આયુકર્મના ઉદયના અભાવમાં જીવિત કરવું (-થવું) છે; વળી પોતાનું આયુકર્મ બીજાથી બીજાને દઈ શકાતું નથી, કારણ કે તે (પોતાનું આયુકર્મ) પોતાના પરિણામથી જ ઉપાર્જિત થાય છે (-મેળવાય છે); માટે કોઈ રીતે બીજો બીજાનું જીવિત કરી શકે નહિ. તેથી 'હું પરને જિવાડું છું અને મને જિવાડે છે' એવો અધ્યવસાય ધ્રુવપણે (-નિયતપણે) અજ્ઞાન છે.

ભાવાર્થઃ—પૂર્વે મરણના અધ્યવસાય વિષે કહ્યું હતું તે પ્રમાણે અહીં જાણવું. ૨૫૧-૨૫૨.

દુઃખ-સુખ કરવાના અધ્યવસાયની પણ આ જ ગતિ છે એમ હવે કહે

जो अप्पणा दु मण्णदि दुक्खिदसुहिदे करेमि सत्तेति।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥ २५३ ॥

य आत्मना तु मन्यते दुःखितसुखितान् करोमि सत्त्वानिति।
स मूढोऽज्ञानी ज्ञान्यतस्तु विपरीतः ॥ २५३ ॥

અન્વયાર્થઃ—[यः] જે [इति मन्यते] એમ માને છે કે [आत्मना तु] મારા પોતાથી [सत्त्वान्] હું (પર) જીવોને [दुःखितसुखितान्] દુઃખી-સુખી [करोमि] કરું છું, [सः] તે [मूढः] મૂઢ (-મોહી) છે, [अज्ञानी] અજ્ઞાની છે, [तु] [अतः विपरीतः] આનાથી વિપરીત તે [ज्ञानी] જ્ઞાની છે.

ટીકાઃ—'પરજીવોને હું દુઃખી તથા સુખી કરું છું અને પરજીવો મને દુઃખી તથા સુખી કરે છે' એવો અધ્યવસાય ધ્રુવપણે અજ્ઞાન છે. તે અધ્યવસાય જેને છે તે જીવ અજ્ઞાનીપણાને લીધે મિથ્યાદૃષ્ટિ છે; અને જેને તે અધ્યવસાય નથી તે જ્ઞાનીપણાને લીધે સમ્યગ્દૃષ્ટિ છે.

જે માનતો—મુજથી દુઃખીસુખી હું કરું પર જીવને,
તે મૂઢ છે, અજ્ઞાની છે, વિપરીત એથી જ્ઞાની છે. ૨૫૩.

ભાવાર્થઃ—'હું પરજીવોને સુખી-દુઃખી કરું છું અને પરજીવો મને સુ
દુઃખી કરે છે' એમ માનવું તે અજ્ઞાન છે. જેને એ અજ્ઞાન છે તે મિથ્યાદૃષ્ટિ છે;
એ અજ્ઞાન નથી તે જ્ઞાની છે—સમ્યગ્દૃષ્ટિ છે. ૨૫૩.

હવે પૂછે છે કે આ અધ્યવસાય અજ્ઞાન કઈ રીતે છે? તેનો ઉત્તર કહે છેઃ—

कम्मोदएण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे ।
कम्मं च ण देसि तुमं दुक्खिदसुहिदा कहं कया ते ॥२५४॥
कम्मोदएण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे ।
कम्मं च ण दिंति तुहं कदोसि कहं दुक्खिदो तेहिं ॥२५५॥
कम्मोदएण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे ।
कम्मं च ण दिंति तुहं कह तं सुहिदो कदो तेहिं ॥२५६॥

कर्मोदयेन जीवा दुःखितसुखिता भवंति यदि सर्वे ।
कर्म च न ददासि त्वं दुःखितसुखिताः कथं कृतास्ते ॥ २५४ ॥
कर्मोदयेन जीवा दुःखितसुखिता भवंति यदि सर्वे ।
कर्म च न ददति तव कृतोऽसि कथं दुःखितस्तैः ॥ २५५ ॥
कर्मोदयेन जीवा दुःखितसुखिता भवंति यदि सर्वे ।
कर्म च न ददति तव कथं त्वं सुखितः कृतस्तैः ॥ २५६ ॥

અન્વયાર્થઃ—[यदि] જો [सर्वे जीवाः] સર્વ જીવો [कर्मोदयेन] કર્મના
ધી [दुःखितसुखिताः] દુઃખી-સુખી [भवंति] થાય છે, [च] અને [त्वं] તું
] તેમને કર્મ તો [न ददासि] દેતો નથી, તો (હે ભાઈ!) તેં [ते] તેમને

જ્યાં કર્મઉદયે જીવ સર્વે દુઃખિત તેમ સુખી બને,
તું કર્મ તો દેતો નથી, તેં કેમ દુઃખિત-સુખી કર્યાં? ૨૫૪.
જ્યાં કર્મઉદયે જીવ સર્વે દુઃખિત તેમ સુખી બને,
કર્મ તુજ દેતા નથી, તો દુઃખિત કેમ કર્યો તને? ૨૫૫.
ાં કર્મઉદયે જીવ સર્વે દુઃખિત તેમ સુખી બને,
કર્મ તુજ દેતા નથી, તો સુખિત કેમ કર્યો તને? ૨૫૬.

[दुःखितसुखिताः] દુઃખી-સુખી [कथं कृताः] કઈ રીતે કર્યા?

[यदि] જો [सर्वे जीवाः] સર્વ જીવો [कर्मोदयेन] કર્મના ઉદયથી [दुःखितसुखिताः] દુઃખી-સુખી [भवंति] થાય છે, [च] અને તેઓ [ते] તને [कर्म] કર્મ તો [न ददति] દેતા નથી, તો (હે ભાઈ!) [तैः] તેમણે [दुःखितः] તને દુઃખી [कथं कृतः असि] કઈ રીતે કર્યો?

[यदि] જો [सर्वे जीवाः] સર્વ જીવો [कर्मोदयेन] કર્મના ઉદયથી [दुःखितसुखिताः] દુઃખી-સુખી [भवंति] થાય છે, [च] અને તેઓ [ते] તને [कर्म] કર્મ તો [न ददति] દેતા નથી, તો (હે ભાઈ!) [तैः] તેમણે [त्वं] તને [सुखितः] સુખી [कथं कृतः] કઈ રીતે કર્યો?

ટીકાઃ—પ્રથમ તો, જીવોને સુખ-દુઃખ ખરેખર પોતાના કર્મના ઉદયથી જ થાય છે, કારણ કે પોતાના કર્મના ઉદયના અભાવમાં સુખ-દુઃખ થવાં અશક્ય છે; વળી પોતાનું કર્મ બીજાથી બીજાને દઈ શકાતું નથી, કારણ કે તે (પોતાનું કર્મ) પોતાના પરિણામથી જ ઉપાર્જિત થાય છે; માટે કોઈ પણ રીતે બીજો બીજાને સુખ-દુઃખ કરી શકે નહિ. તેથી 'હું પરજીવોને સુખી-દુઃખી કરું છું અને પરજીવો મને સુખી-દુઃખી કરે છે' એવો અધ્યવસાય ધ્રુવપણે અજ્ઞાન છે.

ભાવાર્થઃ—જીવનો જેવો આશય હોય તે આશય પ્રમાણે જગતમાં બનતું ન હોય તો તે આશય અજ્ઞાન છે. માટે, સર્વ જીવો પોતપોતાના કર્મના ઉદયથી સુખી દુઃખી થાય છે ત્યાં એમ માનવું કે 'હું પરને સુખી-દુઃખી કરું છું અને પર મને સુખી દુઃખી કરે છે,' તે અજ્ઞાન છે. નિમિત્તનૈમિત્તિકભાવના આશ્રયે (કોઈને કોઈના) સુખદુઃખનો કરનાર કહેવો તે વ્યવહાર છે; તે નિશ્ચયની દૃષ્ટિમાં ગૌણ છે.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છેઃ—

(વસંતતિલકા)

सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय-
कर्मोदयान्मरणजीवितदुःखसौख्यम् ।
अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य
कुर्यात्पुमान्मरणजीवितदुःखसौख्यम् ॥ १६८ ॥

અર્થઃ—આ જગતમાં જીવોને મરણ, જીવિત, દુઃખ, સુખ—બધુંય સદૈવ નિયમથી (-ચોક્કસ) પોતાના કર્મના ઉદયથી થાય છે; 'બીજો પુરુષ બીજાનાં મરણ, જીવન, દુઃખ, સુખ કરે છે' એમ જે માનવું તે તો અજ્ઞાન છે. ૧૬૮.

હવે આ જ અર્થને દૃઢ કરતું અને આગામી કથનની સૂચનારૂપ કાવ્ય કહે છેઃ—

(વસંતતિલકા)

अज्ञानमेतदधिगम्य परात्परस्य
पश्यन्ति ये मरणजीवितदुःखसौख्यम् ।
कर्माण्यहंकृतिरसेन चिकीर्षवस्ते
मिथ्यादृशो नियतमात्महनो भवन्ति ॥ १६९ ॥

અર્થ:—આ (પૂર્વે કહેલી માન્યતારૂપ) અજ્ઞાનને પામીને જે પુરુષો પર[...] પરનાં મરણ, જીવન, દુઃખ, સુખ દેખે છે અર્થાત્ માને છે, તે પુરુષો—કે જેઓ [...] રીતે અહંકાર-રસથી કર્મો કરવાના ઇચ્છક છે (અર્થાત્ 'હું આ કર્મોને કરું છું' એવ[...] અહંકારરૂપી રસથી જેઓ કર્મ કરવાની—મારવા-જિવાડવાની, સુખી-દુઃખી કરવાની—વાંછા કરનારા છે) તેઓ—નિયમથી મિથ્યાદ્રષ્ટિ છે, પોતાના આત્માનો ઘાત કરનારા છે.

ભાવાર્થ:—જેઓ પરને મારવા-જિવાડવાનો તથા સુખ-દુઃખ કરવાનો અભિપ્રાય કરે છે તેઓ મિથ્યાદ્રષ્ટિ છે. તેઓ પોતાના સ્વરૂપથી ચ્યુત થયા થકા રાગી, દ્વેષી, મોહી થઈને પોતાથી જ પોતાનો ઘાત કરે છે, તેથી હિંસક છે. ૨૫૪-૨૫૬.

હવે આ અર્થને ગાથાદ્વારા કહે છે:—

जो मरइ जो य दुहिदो जायदि कम्मोदयेण सो सव्वो ।
तह्मा दु मारिदो दे दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा ॥ २५७ ॥
जो ण मरदि ण य दुहिदो सोवि य कम्मोदयेण चेव खलु ।
तह्मा ण मारिदो णो दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा ॥ २५८ ॥

यो म्रियते यश्च दुःखितो जायते कर्मोदयेन स सर्वः ।
तस्मात्तु मारितस्ते दुःखितश्चेति न खलु मिथ्या ॥ २५७ ॥
यो न म्रियते न च दुःखितः सोऽपि च कर्मोदयेन चैव खलु ।
तस्मान्न मारितो नो दुःखितश्चेति न खलु मिथ्या ॥ २५८ ॥

મરતો અને જે દુઃખી થતો—સૌ કર્મના ઉદયે બને,
તેથી 'હણ્યો મેં, દુઃખી કર્યો'—તુજ મત શું નહિ મિથ્યા ખરે? ૨૫૭.
વળી નવ મરે, નવ દુઃખી બને, તે કર્મના ઉદયે ખરે,
'મેં નવ હણ્યો, નવ દુઃખી કર્યો'—તુજ મત શું નહિ મિથ્યા ખરે? ૨૫૮.

અન્વયાર્થ:—[यः म्रियते] જે મરે છે [च यः दुःखितः जायते] અને દુઃખી થાય છે [सः सर्वः] તે સૌ [कर्मोदयेन] કર્મના ઉદયથી થાય છે; [तु] તેથી [मारितः च दुःखितः] 'મેં માર્યો, મેં દુઃખી કર્યો' [इति ते] તારો અભિપ્રાય [न खलु मिथ्या] શું ખરેખર મિથ્યા નથી?

[च] વળી [यः न म्रियते] જે નથી મરતો [च न दुःखितः] અને દુઃખી થતો [सः अपि] તે પણ [खलु] ખરેખર [कर्मोदयेन च एव] કર્મના ઉદયથી જ થાય છે; [तस्मात्] તેથી [न मारितः च न दुःखितः] 'મેં ન માર્યો, મેં ન દુઃખી કર્યો' [इति] એવો તારો અભિપ્રાય [न खलु मिथ्या] શું ખરેખર મિથ્યા નથી?

ટીકા:—જે મરે છે અથવા જીવે છે, દુઃખી થાય છે અથવા સુખી થાય છે તે ખરેખર પોતાના કર્મના ઉદયથી જ થાય છે, કારણ કે પોતાના કર્મના અભાવમાં તેનું તે પ્રમાણે થવું (અર્થાત્ મરવું, જીવવું, દુઃખી થવું કે સુખી થવું) અશક્ય છે. માટે 'મેં આને માર્યો, આને જિવાડ્યો, આને દુઃખી કર્યો, આને સુખી કર્યો' એવું દેખનાર અર્થાત્ માનનાર મિથ્યાદૃષ્ટિ છે.

ભાવાર્થ:—કોઈ કોઈનું માર્યું મરતું નથી, જિવાડ્યું જીવતું નથી, સુખી-દુઃખી કર્યું સુખી-દુઃખી થતું નથી; તેથી જે મારવા, જિવાડવા આદિનો અભિપ્રાય કરે તે તો મિથ્યાદૃષ્ટિ જ હોય—એમ નિશ્ચયનું વચન છે. અહીં વ્યવહારનય ગૌણ

હવે આગળના કથનની સૂચનારૂપ શ્લોક કહે છે:—

(અનુષ્ટુપ્)

मिथ्यादृष्टेः स एवास्य बंधहेतुर्विपर्ययात् ।
य एवाध्यवसायोऽयमज्ञानात्माऽस्य दृश्यते ॥ १७० ॥

અર્થ:—મિથ્યાદૃષ્ટિને જે આ અજ્ઞાનસ્વરૂપ *અધ્યવસાય જોવામાં આવે છે તે અધ્યવસાય જ, વિપર્યયસ્વરૂપ (-વિપરીત, મિથ્યા) હોવાથી, તે મિથ્યાદૃષ્ટિને બંધનું કારણ છે.

ભાવાર્થ:—ખોટો અભિપ્રાય તે જ મિથ્યાત્વ, તે જ બંધનું કારણ—એમ જાણવું. ૨૪૭—૨૫૮.

---

* જે પરિણામ મિથ્યા અભિપ્રાય સહિત હોય (સ્વપરના એકત્વના અભિપ્રાય સહિત હોય) અથવા વૈભાવિક હોય તે પરિણામ માટે અધ્યવસાય શબ્દ વપરાય છે. (મિથ્યા) નિશ્ચય (કે મિથ્યા) અભિપ્રાય કરવો—એવા અર્થમાં પણ તે શબ્દ વપરાય છે.

હવે, આ અજ્ઞાનમય અધ્યવસાય જ બંધનું કારણ છે એમ ગાથામાં કહે છે:—

एसा दु जा मई दे दुक्खिदसुहिदे करेमि सत्तेति ।
एसा दे मूढमई सुहासुहं बंधए कम्मं ॥ २५९ ॥

एषा तु या मतिस्ते दुःखितसुखितान् करोमि सत्त्वानिति ।
एषा ते मूढमतिः शुभाशुभं बध्नाति कर्म ॥ २५९ ॥

અન્વયાર્થ:—[ते] તારી [एषा या मतिः तु] જે આ બુદ્ધિ છે કે હું [सत्त्वान्] જીવોને [दुःखितसुखितान्] દુઃખી-સુખી [करोमि इति] કરું છું, [एषा ते मूढमतिः] તે આ તારી મૂઢ બુદ્ધિ જ (મોહસ્વરૂપ બુદ્ધિ જ) [शुभाशुभं कर्म] શુભાશુભ કર્મને [बध्नाति] બાંધે છે.

ટીકા:—'પરજીવોને હું હણું છું, નથી હણતો, દુઃખી કરું છું, સુખી કરું છું' એવો જે આ અજ્ઞાનમય અધ્યવસાય મિથ્યાદ્રષ્ટિને છે, તે જ (અર્થાત્ તે અધ્યવસાય જ) પોતે રાગાદિરૂપ હોવાથી તેને (-મિથ્યાદ્રષ્ટિને) શુભાશુભ બંધનું કારણ છે.

ભાવાર્થ:—મિથ્યા અધ્યવસાય બંધનું કારણ છે. ૨૫૯.

હવે, અધ્યવસાયને બંધના કારણ તરીકે બરાબર નક્કી કરે છે—ઠરાવે છે (અર્થાત્ મિથ્યા અધ્યવસાય જ બંધનું કારણ છે એમ નિયમથી કહે છે):—

दुक्खिदसुहिदे सत्ते करेमि जं एवमज्झवसिदं ते ।
तं पावबंधगं वा पुण्णस्स व बंधगं होदि ॥ २६० ॥
मारेमि जीवावेमि य सत्ते जं एवमज्झवसिदं ते ।
तं पावबंधगं वा पुण्णस्स व बंधगं होदि ॥ २६१ ॥

આ બુદ્ધિ જે તુજ—'દુઃખિત તેમ સુખી કરું છું જીવને,'
તે મૂઢ મતિ તારી અરે! શુભ અશુભ બાંધે કર્મને. ૨૫૯.
કરતો તું અધ્યવસાન—'દુઃખિત-સુખી કરું છું જીવને,'
તે પાપનું બંધક અગર તો પુણ્યનું બંધક બને. ૨૬૦.
કરતો તું અધ્યવસાન—'મારું જિવાડું છું પર જીવને,'
તે પાપનું બંધક અગર તો પુણ્યનું બંધક બને. ૨૬૧.

दुःखितसुखितान् सत्त्वान् करोमि यदेवमध्यवसितं ते ।
तत्पापबंधकं वा पुण्यस्य वा बंधकं भवति ॥ २६० ॥
मारयामि जीवयामि वा सत्त्वान् यदेवमध्यवसितं ते ।
तत्पापबंधकं वा पुण्यस्य वा बंधकं भवति ॥ २६१ ॥

અન્વયાર્થ:—'[सत्त्वान्] હું જીવોને [दुःखितसुखितान्] દુ:ખી-સુ [करोमि] કરું છું' [एवं] આવું [यद् ते अध्यवसितं] જે તારું *અધ્યવ [तद्] તે જ [पापबंधकं वा] પાપનું બંધક [पुण्यस्य बंधकं वा] અથવા પુ બંધક [भवति] થાય છે.

'[सत्त्वान्] હું જીવોને [मारयामि वा जीवयामि] મારું છું અને જિ છું' [एवं] આવું [यद् ते अध्यवसितं] જે તારું અધ્યવસાન, [तद्] તે જ [बंधकं वा] પાપનું બંધક [पुण्यस्य बंधकं वा] અથવા પુણ્યનું બંધક [भवति] થા

ટીકા:—મિથ્યાદૃષ્ટિને જે આ અજ્ઞાનથી જન્મતો રાગમય અધ્યવસાય જ બંધનું કારણ છે એમ બરાબર નક્કી કરવું. અને પુણ્ય-પાપપણે (પુણ્ય-પાપ બંધનું બે-પણું હોવાથી બંધના કારણનો ભેદ ન શોધવો (અર્થાત્ એમ ન મા કે પુણ્યબંધનું કારણ બીજું છે અને પાપબંધનું કારણ કોઈ બીજું છે); કારણ કે જ આ અધ્યવસાય 'દુ:ખી કરું છું, મારું છું' એમ અને 'સુખી કરું છું, જિ છું' એમ બે પ્રકારે શુભ-અશુભ અહંકારરસથી ભરેલાપણા વડે પુણ્ય અને પા બંનેના બંધનું કારણ હોવામાં અવિરોધ છે (અર્થાત્ એક જ અધ્યવસાયથી અને પાપ—બંનેનો બંધ થવામાં કાંઈ વિરોધ નથી).

ભાવાર્થ:—આ અજ્ઞાનમય અધ્યવસાય જ બંધનું કારણ છે. તેમાં, 'જિ છું, સુખી કરું છું' એવા શુભ અહંકારથી ભરેલો તે શુભ અધ્યવસાય છે અને ' છું, દુ:ખી કરું છું' એવા અશુભ અહંકારથી ભરેલો તે અશુભ અધ્યવસા અહંકારરૂપ મિથ્યાભાવ તો બન્નેમાં છે; તેથી અજ્ઞાનમયપણે બન્ને અધ્યવસાય જ છે. માટે એમ ન માનવું કે પુણ્યનું કારણ બીજું છે અને પાપનું કારણ બીજું અજ્ઞાનમય અધ્યવસાય જ બન્નેનું કારણ છે. ૨૬૦—૨૬૧

'આ રીતે ખરેખર હિંસાનો અધ્યવસાય જ હિંસા છે એમ ફલિત થયું' એમ હવે કહે છે:—

* જે પરિણમન મિથ્યા અભિપ્રાય સહિત હોય (સ્વપરના એકત્વના અભિપ્રાય સહિત હો અથવા વૈભાવિક હોય તે પરિણમન માટે અધ્યવસાન શબ્દ વપરાય છે. (મિથ્યા) નિશ્ચ (નિશ્ચય) અભિપ્રાય કરવો—એવા અર્થમાં પણ તે શબ્દ વપરાય છે.

अज्झवसिदेण बंधो सत्त मारेउ मा व मारेउ ।
एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स ॥ २६२ ॥

अध्यवसितेन बंधः सत्त्वान् मारयतु मा वा मारयतु ।
एष बंधसमासो जीवानां निश्चयनयस्य ॥ २६२ ॥

અન્વયાર્થઃ—[सत्त्वान्] જીવોને [मारयतु] મારો [वा मा मारयतु] અથવા ન મારો—[बंधः] કર્મબંધ [अध्यवसितेन] અધ્યવસાનથી જ થાય છે. [एषः] આ, [निश्चयनयस्य] નિશ્ચયનયે, [जीवानां] જીવોના [बंधसमासः] બંધનો સંક્ષેપ છે.

ટીકાઃ—પરજીવોને પોતાના કર્મના ઉદયની વિચિત્રતાના વશે પ્રાણોનો વ્યપરોપ (-ઉચ્છેદ, વિયોગ) કદાચિત્ થાઓ, કદાચિત્ ન થાઓ,—'હું હણું છું' એવો જે અહંકારરસથી ભરેલો હિંસામાં અધ્યવસાય (અર્થાત્ હિંસાનો અધ્યવસાય) તે જ નિશ્ચયથી તેને (હિંસાનો અધ્યવસાય કરનારા જીવને) બંધનું કારણ છે, કેમકે નિશ્ચયથી પરનો ભાવ એવો જે પ્રાણોનો વ્યપરોપ તે પરથી કરાવો અશક્ય છે (અર્થાત્ તે પરથી કરી શકાતો નથી).

ભાવાર્થઃ—નિશ્ચયનયે બીજાના પ્રાણોનો વિયોગ બીજાથી કરી શકાતો નથી; તેના પોતાના કર્મના ઉદયની વિચિત્રતાવશ કદાચિત્ થાય છે, કદાચિત્ નથી થતો. માટે જે એમ માને છે—અહંકાર કરે છે કે 'હું પરજીવને મારું છું,' તેનો તે અહંકારરૂપ અધ્યવસાય અજ્ઞાનમય છે. તે અધ્યવસાય જ હિંસા છે—પોતાના વિશુદ્ધ ચૈતન્યપ્રાણનો ઘાત છે, અને તે જ બંધનું કારણ છે. આ નિશ્ચયનયનો મત છે.

અહીં વ્યવહારનયને ગૌણ કરીને કહ્યું છે એમ જાણવું. માટે તે કથન કથંચિત્ (અર્થાત્ અપેક્ષાપૂર્વક) છે એમ સમજવું; સર્વથા એકાંતપક્ષ તો મિથ્યાત્વ છે. ૨૬૨.

હવે, (હિંસા-અહિંસાની જેમ સર્વ કાર્યોમાં) અધ્યવસાયને જ પાપ-પુણ્યના બંધના કારણપણે દર્શાવે છેઃ—

મારો—ન મારો જીવને, છે બંધ અધ્યવસાનથી,
—આ જીવકેરા બંધનો સંક્ષેપ નિશ્ચયનય થકી. ૨૬૨.

एवमलिये अदत्त अबंभचेरे परिग्गहे चेव ।
कीरइ अज्झवसाणं जं तेण दु वज्झए पावं ॥ २६३ ॥
तह वि य सच्चे दत्ते बंभे अपरिग्गहत्तणे चेव ।
कीरइ अज्झवसाणं जं तेण दु वज्झए पुण्णं ॥ २६४ ॥

एवमलीकेऽदत्तेऽब्रह्मचर्ये परिग्रहे चैव ।
क्रियतेऽध्यवसानं यत्तेन तु बध्यते पापम् ॥ २६३ ॥
तथापि च सत्ये दत्ते ब्रह्मणि अपरिग्रहत्वे चैव ।
क्रियतेऽध्यवसानं यत्तेन तु बध्यते पुण्यम् ॥ २६४ ॥

અન્વયાર્થ:—[एवं] એ રીતે (અર્થાત્ પૂર્વે હિંસાના અધ્યવસાય [illegible] કહ્યું તેમ) [अलीके] અસત્યમાં, [अदत्ते] અદત્તમાં, [अब्रह्मचर्ये] અબ્રહ્મચર્ય[illegible] [च एव] અને [परिग्रहे] પરિગ્રહમાં [यद्] જે [अध्यवसानं] અધ્યવસાન [क्रि[illegible] કરવામાં આવે [तेन तु] તેનાથી [पापं बध्यते] પાપનો બંધ થાય છે; [तथापि [illegible] અને તેવી જ રીતે [सत्ये] સત્યમાં, [दत्ते] દત્તમાં, [ब्रह्मणि] બ્રહ્મચર્યમાં [च [illegible] અને [अपरिग्रहत्वे] અપરિગ્રહમાં [यद्] જે [अध्यवसानं] અધ્યવસાન [क्रि[illegible] કરવામાં આવે [तेन तु] તેનાથી [पुण्यं बध्यते] પુણ્યનો બંધ થાય છે.

ટીકા:—એ રીતે (-પૂર્વોક્ત રીતે) અજ્ઞાનથી આ જે હિંસામાં અધ્યવ[illegible] કરવામાં આવે છે તેમ અસત્ય, અદત્ત, અબ્રહ્મચર્ય અને પરિગ્રહમાં પણ જે (અધ્યવ[illegible] કરવામાં આવે, તે બધોય પાપના બંધનું એકમાત્ર (-એકનું એક) કારણ છે; [illegible] જે અહિંસામાં અધ્યવસાય કરવામાં આવે છે તેમ જે સત્ય, દત્ત, બ્રહ્મચર્ય [illegible] અપરિગ્રહમાં પણ (અધ્યવસાય) કરવામાં આવે, તે બધોય પુણ્યના બંધનું એ[illegible] કારણ છે.

ભાવાર્થ:—જેમ હિંસામાં અધ્યવસાય તે પાપબંધનું કારણ કહ્યું છે [illegible] અસત્ય, અદત્ત (વગર દીધેલું લેવું તે, ચોરી), અબ્રહ્મચર્ય અને પરિગ્રહ [illegible]

એમ અલીકમાંહી, અદત્તમાં, અબ્રહ્મ ને પરિગ્રહ વિષે
જે થાય અધ્યવસાન તેથી પાપબંધન થાય છે. ૨૬૩.
એ રીત સત્યે, દત્તમાં, વળી બ્રહ્મ ને અપરિગ્રહે
જે થાય અધ્યવસાન તેથી પુણ્યબંધન થાય છે. ૨૬૪.

અધ્યવસાય તે પણ પાપબંધનું કારણ છે. વળી જેમ અહિંસામાં અધ્યવસાય તે પુણ્ય-બંધનું કારણ છે તેમ સત્ય, દત્ત (દીધેલું લેવું તે), બ્રહ્મચર્ય અને અપરિગ્રહ—તેમનામાં અધ્યવસાય તે પણ પુણ્યબંધનું કારણ છે. આ રીતે, પાંચ પાપોમાં (અવ્રતોમાં) અધ્યવસાય કરવામાં આવે તે પાપબંધનું કારણ છે અને પાંચ (એકદેશ કે સર્વદેશ) વ્રતોમાં અધ્યવસાય કરવામાં આવે તે પુણ્યબંધનું કારણ છે. પાપ અને પુણ્ય બન્નેના બંધનમાં, અધ્યવસાય જ એકમાત્ર બંધ-કારણ છે. ૨૬૩-૨૬૪.

વળી એમ કહેવું શક્ય નથી કે બાહ્યવસ્તુ તે બીજું પણ બંધનું કારણ છે. (અધ્યવસાય તે બંધનું એક કારણ છે અને બાહ્યવસ્તુ તે બંધનું બીજું કારણ છે એમ પણ કહી શકાતું નથી; અધ્યવસાય જ એકનું એક બંધનું કારણ છે, બાહ્યવસ્તુ બંધનું કારણ નથી.) આવા અર્થની ગાથા હવે કહે છે:—

वत्थुं पडुच्च जं पुण अज्झवसाणं तु होइ जीवाणं।
ण य वत्थुदो दु बंधो अज्झवसाणेण बंधोत्थि ॥२६५॥

वस्तु प्रतीत्य यत्पुनरध्यवसानं तु भवति जीवानाम् ।
न च वस्तुतस्तु बंधोऽध्यवसानेन बंधोऽस्ति ॥ २६५ ॥

અન્વયાર્થ:—[पुनः] વળી, [जीवानां] જીવોને [यद्] જે [अध्यवसानं तु] અધ્યવસાન [भवति] થાય છે તે [वस्तु] વસ્તુને [प्रतीत्य] અવલંબીને થાય છે [च तु] તોપણ [वस्तुतः] વસ્તુથી [न बंधः] બંધ નથી, [अध्यवसानेन] અધ્યવસાનથી જ [बंधः अस्ति] બંધ છે.

ટીકા:—અધ્યવસાન જ બંધનું કારણ છે; બાહ્યવસ્તુ બંધનું કારણ નથી, કેમ કે બંધનું કારણ જે અધ્યવસાન તેના કારણપણાથી જ બાહ્યવસ્તુને ચરિતાર્થપણું છે (અર્થાત્ બંધનું કારણ જે અધ્યવસાન તેનું કારણ થવામાં જ બાહ્યવસ્તુનું કાર્ય-ક્ષેત્ર પૂરું થાય છે, તે કાંઈ બંધનું કારણ થતી નથી). અહીં પ્રશ્ન થાય છે કે—જો બાહ્યવસ્તુ બંધનું કારણ નથી તો ('બાહ્યવસ્તુનો પ્રસંગ ન કરો, ત્યાગ કરો' એમ) બાહ્યવસ્તુનો પ્રતિષેધ (નિષેધ) શા માટે કરવામાં આવે છે? તેનું સમાધાન:—અધ્યવસાનના પ્રતિષેધ અર્થે બાહ્યવસ્તુનો પ્રતિષેધ કરવામાં આવે છે. અધ્યવસાનને બાહ્યવસ્તુ આશ્રયભૂત છે; બાહ્યવસ્તુનો આશ્રય કર્યા વિના અધ્યવસાન પોતાના સ્વરૂપને

જે થાય અધ્યવસાન જીવને, વસ્તુઆશ્રિત તે બને,
પણ વસ્તુથી નથી બંધ, અધ્યવસાનમાત્રથી બંધ છે. ૨૬૫.

પામતું નથી અર્થાત્ ઉપજતું નથી. જો બાહ્યવસ્તુનો આશ્રય કર્યા વિના પણ અધ્યવસાન ઉપજતું હોય તો, જેમ આશ્રયભૂત એવા *વીરજનનીના પુત્રના સદ્‌ભાવમાં (કોઈને) એવો અધ્યવસાય ઉપજે છે કે 'હું વીરજનનીના પુત્રને હણું છું' તેવી આશ્રયભૂત એવા વંધ્યાપુત્રના અસદ્‌ભાવમાં પણ (કોઈને) એવો અધ્યવસાય ઉપજે (-ઉપજવો જોઈએ) કે 'હું વંધ્યાપુત્રને (વાંઝણીના પુત્રને) હણું છું.' પરંતુ એવો અધ્યવસાય તો (કોઈને) ઉપજતો નથી. (જ્યાં વંધ્યાનો પુત્ર જ નથી ત્યાં મારવાનો અધ્યવસાય ક્યાંથી ઉપજે?) માટે એવો નિયમ છે કે (બાહ્યવસ્તુરૂપ) આશ્રય વિના અધ્યવસાન હોતું નથી. અને તેથી જ અધ્યવસાનને આશ્રયભૂત એવી જે બાહ્યવસ્તુ તેનો અત્યંત પ્રતિષેધ છે, કેમ કે કારણના પ્રતિષેધથી જ કાર્યનો પ્રતિષેધ થાય છે. (બાહ્યવસ્તુ અધ્યવસાનનું કારણ છે તેથી તેના પ્રતિષેધથી અધ્યવસાનનો પ્રતિષેધ થાય છે). પરંતુ, જોકે બાહ્યવસ્તુ બંધના કારણનું (અર્થાત્ અધ્યવસાનનું) કારણ છે તોપણ તે (બાહ્યવસ્તુ) બંધનું કારણ નથી; કેમ કે ઈર્યાસમિતિમાં પરિણમેલા મુનીંદ્રના પગ વડે હણાઈ જતા એવા કોઈ ઝડપથી આવી પડતા કાળપ્રેરિત ઊડતા જીવડાની માફક, બાહ્યવસ્તુ—કે જે બંધના કારણનું કારણ છે તે—બંધનું કારણ નહિ થતી હોવાથી, બાહ્યવસ્તુને બંધનું કારણપણું માનવામાં અનૈકાંતિક હેત્વાભાસપણું છે—વ્યભિચાર આવે છે. (આમ નિશ્ચયથી બાહ્યવસ્તુને બંધનું કારણપણું નિર્બાધ રીતે સિદ્ધ થતું નથી.) માટે બાહ્યવસ્તુ કે જે જીવને અતદ્‌ભાવરૂપ છે તે બંધનું કારણ નથી; અધ્યવસાન કે જે જીવને તદ્‌ભાવરૂપ છે તે જ બંધનું કારણ છે.

ભાવાર્થ:—બંધનું કારણ નિશ્ચયથી અધ્યવસાન જ છે; અને જે બાહ્ય વસ્તુઓ છે તે અધ્યવસાનનું આલંબન છે—તેમને આલંબીને અધ્યવસાન ઉપજે છે, તેથી તેમને અધ્યવસાનનું કારણ કહેવામાં આવે છે. બાહ્યવસ્તુ વિના નિરાશ્રયે અધ્યવસાન ઉપજતાં નથી તેથી બાહ્યવસ્તુઓનો ત્યાગ કરાવવામાં આવે છે. જો બંધનું કારણ બાહ્યવસ્તુ કહેવામાં આવે તો તેમાં વ્યભિચાર આવે છે. (કારણ હોવા છતાં કોઈ સ્થળે કાર્ય દેખાય અને કોઈ સ્થળે કાર્ય ન દેખાય તેને વ્યભિચાર કહે છે અને એવા કારણને વ્યભિચારી—અનૈકાંતિક—કારણાભાસ કહે છે.) કોઈ મુનિ ઈર્યાસમિતિપૂર્વક યત્નાથી ગમન કરતા હોય તેમના પગ તળે કોઈ ઊડતું જીવડું વેગથી આવી પડીને મરી ગયું તો તેની હિંસા મુનિને લાગતી નથી. અહીં બાહ્ય દૃષ્ટિથી જોવામાં આવે તો હિંસા થઈ, પરંતુ મુનિને હિંસાનો અધ્યવસાય નહિ હોવાથી તેમને બંધ થતો નથી. જેમ તે પગ નીચે મરી જતું જીવડું મુનિને બંધનું કારણ નથી તેમ અન્ય બાહ્યવસ્તુઓ વિષે પણ સમજવું. આ રીતે બાહ્યવસ્તુને બંધનું કારણ માનવામાં

* વીરજનની = શૂરવીરને જન્મ આપનારી; શૂરવીરની માતા.

વ્યભિચાર આવતો હોવાથી બાહ્યવસ્તુ બંધનું કારણ નથી એમ સિદ્ધ થયું. વળી બાહ્યવસ્તુ વિના નિરાશ્રયે અધ્યવસાન થતાં નથી તેથી બાહ્યવસ્તુનો નિષેધ પણ છે જ. ૨૬૫.

આ રીતે બંધના કારણપણે (-કારણ તરીકે) નક્કી કરવામાં આવેલું જે અધ્યવસાન તે પોતાની અર્થક્રિયા કરનારું નહિ હોવાથી મિથ્યા છે—એમ હવે દર્શાવે છે:—

दुक्खिदसुहिदे जीवे करेमि बंधेमि तह विमोचेमि ।
जा एसा मूढमई णिरत्थया सा हु दे मिच्छा ॥ २६६ ॥

दुःखितसुखितान् जीवान् करोमि बन्धयामि तथा विमोचयामि ।
या एषा मूढमतिः निरर्थिका सा खलु ते मिथ्या ॥ २६६ ॥

અન્વયાર્થ:—હે ભાઈ! ' [जीवान्] હું જીવોને [दुःखितसुखितान्] દુઃખી-સુખી [करोमि] કરું છું, [बंधयामि] બંધાવું છું [तथा विमोचयामि] તથા મુકાવું છું ' [या एषा ते मूढमतिः] એવી જે આ તારી મૂઢ મતિ (-મોહિત બુદ્ધિ) છે [सा] તે [निरर्थिका] નિરર્થક હોવાથી [खलु] ખરેખર [मिथ्या] મિથ્યા (-ખોટી) છે.

ટીકા:—હું પરજીવોને દુઃખી કરું છું, સુખી કરું છું ઇત્યાદિ તથા બંધાવું છું, મુકાવું છું ઇત્યાદિ જે આ અધ્યવસાન છે તે બધુંય, પરભાવનો પરમાં વ્યાપાર નહિ હોવાને લીધે પોતાની અર્થક્રિયા કરનારું નહિ હોવાથી, 'હું આકાશના ફૂલને ચૂંટું છું' એવા અધ્યવસાનની માફક મિથ્યારૂપ છે, કેવળ પોતાના અનર્થને માટે જ છે (અર્થાત્ માત્ર પોતાને જ નુકસાનનું કારણ થાય છે, પરને તો કાંઈ કરી શકતું નથી).

ભાવાર્થ:—જે પોતાની અર્થક્રિયા (-પ્રયોજનભૂત ક્રિયા) કરી શકતું નથી તે નિરર્થક છે, અથવા જેનો વિષય નથી તે નિરર્થક છે. જીવ પરજીવોને દુઃખી-સુખી આદિ કરવાની બુદ્ધિ કરે છે, પરંતુ પરજીવો તો પોતાના કર્યા દુઃખી-સુખી થતા નથી; તેથી તે બુદ્ધિ નિરર્થક છે અને નિરર્થક હોવાથી મિથ્યા છે—ખોટી છે. ૨૬૬.

હવે પૂછે છે કે અધ્યવસાન પોતાની અર્થક્રિયા કરનારું કઈ રીતે નથી? તેનો ઉત્તર કહે છે:—

કરું છું દુઃખીસુખી જીવને, વળી બદ્ધ-મુક્ત કરું અરે!
આ મૂઢ મતિ તુજ છે નિરર્થક, તેથી છે મિથ્યા ખરે. ૨૬૬.

अज्झवसाणणिमित्तं जीवा वज्झंति कम्मणा जदि हि ।
मुच्चंति मोक्खमग्गे ठिदा य ता किं करेसि तुमं ॥२६७॥

अध्यवसाननिमित्तं जीवा बध्यंते कर्मणा यदि हि ।
मुच्यंते मोक्षमार्गे स्थिताश्च तत् किं करोषि त्वम् ॥ २६७ ॥

અન્વયાર્થઃ—હે ભાઈ! [यदि हि] જો ખરેખર [...] અધ્યવસાનના નિમિત્તે [जीवाः] જીવો [कर्मणा बध्यंते] કર્મથી બંધાય છે, અને [मोक्षमार्गे स्थिताः] મોક્ષમાર્ગમાં સ્થિત [मुच्यंते] મુકાય છે, [तत्] [त्वं किं करोषि] તું શું કરે છે? (તારો તો બાંધવા-છોડવાનો અભિપ્રાય વિફળ ...

ટીકાઃ—'હું બંધાવું છું, મુકાવું છું' એવું જે અધ્યવસાન છે તેની ... અર્થક્રિયા જીવોને બાંધવા, મૂકવા (-મુક્ત કરવા, છોડવા) તે છે. પરંતુ જીવ તે ... અધ્યવસાયનો સદ્ભાવ હોવા છતાં પણ, પોતાના સરાગ-વીતરાગ પરિ... અભાવથી નથી બંધાતો, નથી મુકાતો; અને પોતાના સરાગ-વીતરાગ ... સદ્ભાવથી, તે અધ્યવસાયનો અભાવ હોવા છતાં પણ, બંધાય છે, મુકાય છે. ... પરમાં અકિંચિત્કર હોવાથી (અર્થાત્ કાંઈ નહિ કરી શકતું હોવાથી) આ અ... પોતાની અર્થક્રિયા કરનારું નથી; અને તેથી મિથ્યા જ છે.—આવો ભાવ (આશય) ...

ભાવાર્થઃ—જે હેતુ કાંઈ પણ ન કરે તે અકિંચિત્કર કહેવાય છે. આ ... છોડવાનું અધ્યવસાન પણ પરમાં કાંઈ કરતું નથી; કારણ કે તે અધ્યવસાન ન હોય તોપણ જીવ પોતાનાં સરાગ-વીતરાગ પરિણામથી બંધ-મોક્ષને પામે છે, અને અધ્યવસાન હોય તોપણ પોતાનાં સરાગ-વીતરાગ પરિણામના અભાવથી બંધ-... નથી પામતો. આ રીતે અધ્યવસાન પરમાં અકિંચિત્કર હોવાથી સ્વ-અર્થક્રિયા ... નથી અને તેથી મિથ્યા છે.

હવે આ અર્થના કળશરૂપે અને આગળના કથનની સૂચનિકારૂપે શ્લોક કહે છે:—

(અનુષ્ટુપ્)

अनेनाध्यवसायेन निष्फलेन विमोहितः ।
तत्किंचनापि नैवास्ति नात्मात्मानं करोति यत् ॥ १७१ ॥

જો જીવ અધ્યવસાનકારણ કર્મથી બંધાય જ્યાં
ને મોક્ષમાર્ગે સ્થિત જીવો મુકાય, તું શું કરે ભલા? ૨૬૭.

અર્થ:—આ નિષ્ફળ (નિરર્થક) અધ્યવસાયથી મોહિત થયો થકો આત્મા પોતાને સર્વરૂપ કરે છે,—એવું કાંઈ પણ નથી કે જે-રૂપ પોતાને ન કરતો હોય.

ભાવાર્થ:—આ આત્મા મિથ્યા અભિપ્રાયથી ભૂલ્યો થકો ચતુર્ગતિ-સંસારમાં જેટલી અવસ્થાઓ છે, જેટલા પદાર્થો છે તે સર્વરૂપ પોતાને થયેલો માને છે; પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપને નથી ઓળખતો. ૨૬૭.

હવે આ અર્થને સ્પષ્ટ રીતે ગાથામાં કહે છે:—

सव्वे करेइ जीवो अज्झवसाणेण तिरियणेरयिए ।
देवमणुये य सव्वे पुण्णं पावं च णेयविहं ॥ २६८ ॥

धम्माधम्मं च तहा जीवाजीवे अलोयलोयं च ।
सव्वे करेइ जीवो अज्झवसाणेण अप्पाणं ॥ २६९ ॥

सर्वान् करोति जीवोऽध्यवसानेन तिर्यङ्नैरयिकान् ।
देवमनुजांश्च सर्वान् पुण्यं पापं च नैकविधम् ॥ २६८ ॥

धर्माधर्मं च तथा जीवाजीवौ अलोकलोकं च ।
सर्वान् करोति जीवः अध्यवसानेन आत्मानम् ॥ २६९ ॥

અન્વયાર્થ:—[जीवः] જીવ [अध्यवसानेन] અધ્યવસાનથી [तिर्यङ्नैरयिकान्] તિર્યંચ, નારક, [देवमनुजान् च] દેવ અને મનુષ્ય [सर्वान्] એ સર્વ પર્યાયો [च] તથા [नैकविधं] અનેક પ્રકારનાં [पुण्यं पापं] પુણ્ય અને પાપ—[सर्वान्] એ બધારૂપ [करोति] પોતાને કરે છે. [तथा च] વળી તેવી રીતે [जीवः] જીવ [अध्यवसानेन] અધ્યવસાનથી [धर्माधर्मं] ધર્મ-અધર્મ, [जीवाजीवौ] જીવ-અજીવ [च] અને [अलोकलोकं] લોક-અલોક—[सर्वान्] એ બધારૂપ [आत्मानं करोति] પોતાને કરે છે.

તિર્યંચ, નારક, દેવ, માનવ, પુણ્ય પાપ વિવિધ જે,
તે સર્વરૂપ નિજને કરે છે જીવ અધ્યવસાનથી. ૨૬૮.
વળી એમ ધર્મ અધર્મ, જીવ અજીવ, લોક અલોક જે,
તે સર્વરૂપ નિજને કરે છે જીવ અધ્યવસાનથી. ૨૬૯.

ટીકાઃ—જેવી રીતે આ આત્મા *ક્રિયા જેનો ગર્ભ છે એવા [હિંસાના]
અધ્યવસાનથી પોતાને હિંસક કરે છે, (અહિંસાના અધ્યવસાનથી પોતાને અ[હિંસક]
કરે છે) અને અન્ય અધ્યવસાનોથી પોતાને અન્ય કરે છે, તેવી જ રીતે ઉદયમાં [આવતા]
નારકના અધ્યવસાનથી પોતાને નારક (-નારકી) કરે છે, ઉદયમાં આવતા તિર્[યંચના]
અધ્યવસાનથી પોતાને તિર્યંચ કરે છે, ઉદયમાં આવતા મનુષ્યના અધ્યવસાનથી [પોતાને]
મનુષ્ય કરે છે, ઉદયમાં આવતા દેવના અધ્યવસાનથી પોતાને દેવ કરે છે, [ઉદયમાં]
આવતા સુખ આદિ પુણ્યના અધ્યવસાનથી પોતાને પુણ્યરૂપ કરે છે અને [ઉદયમાં]
આવતા દુઃખ આદિ પાપના અધ્યવસાનથી પોતાને પાપરૂપ કરે છે; વળી તેવી [જ રીતે]
જાણવામાં આવતો જે ધર્મ (અર્થાત્ ધર્માસ્તિકાય) તેના અધ્યવસાનથી પોતાને [ધર્મરૂપ]
કરે છે, જાણવામાં આવતા અધર્મના (અર્થાત્ અધર્માસ્તિકાયના) અધ્યવ[સાનથી]
પોતાને અધર્મરૂપ કરે છે, જાણવામાં આવતા અન્ય જીવના અધ્યવસાનથી [પોતાને]
અન્યજીવરૂપ કરે છે, જાણવામાં આવતા પુદ્ગલના અધ્યવસાનથી પોતાને પુદ્[ગલરૂપ]
કરે છે, જાણવામાં આવતા લોકાકાશના અધ્યવસાનથી પોતાને લોકાકાશરૂપ કરે [છે,]
જાણવામાં આવતા અલોકાકાશના અધ્યવસાનથી પોતાને અલોકાકાશરૂપ કરે છે. [(આ]
રીતે આત્મા અધ્યવસાનથી પોતાને સર્વરૂપ કરે છે.)

ભાવાર્થઃ—આ અધ્યવસાન અજ્ઞાનરૂપ છે તેથી તેને પોતાનું પરમાર્થ[સ્વરૂપ]
ન જાણવું. તે અધ્યવસાનથી જ આત્મા પોતાને અનેક અવસ્થારૂપ કરે છે [અને]
તેમનામાં પોતાપણું માની પ્રવર્તે છે.

હવે આ અર્થના કળશરૂપે તથા આગળના કથનની સૂચનિકારૂ[પે કાવ્ય]
કહે છેઃ—

(ઉપજાતિ)

विश्वाद्विभक्तोऽपि हि यत्प्रभावा-
दात्मानमात्मा विदधाति विश्वम् ।
मोहैककन्दोऽध्यवसाय एष
नास्तीह येषां यतयस्त एव ॥ १७२ ॥

અર્થઃ—વિશ્વથી (સમસ્ત દ્રવ્યોથી) ભિન્ન હોવા છતાં આત્મા
જેના પ્રભાવથી પોતાને વિશ્વરૂપ કરે છે એવો આ અધ્યવસાય—કે જેનું મૂળ જ મો[હ]

[illegible]
[illegible]

જેમને નથી તે જ મુનિઓ છે. ૨૬૮—૨૬૯.

આ અધ્યવસાય જેમને નથી તે મુનિઓ કર્મથી લેપાતા નથી—એમ હવે ાં કહે છે:—

एदाणि णत्थि जेसिं अज्झवसाणाणि एवमादीणि ।
ते असुहेण सुहेण व कम्मेण मुणी ण लिप्पंति ॥२७०॥

एतानि न संति येषामध्यवसानान्येवमादीनि ।
ते अशुभेन शुभेन वा कर्मणा मुनयो न लिप्यंते ॥ २७० ॥

અન્વયાર્થ:—[एतानि] આ (પૂર્વે કહેલાં) [एवमादीनि] તથા આવાં ં પણ [अध्यवसानानि] અધ્યવસાન [येषां] જેમને [न संति] નથી, [ते ઃ] તે મુનિઓ [अशुभेन] અશુભ [वा शुभेन] કે શુભ [कर्मणा] કર્મથી लिप्यंते] લેપાતા નથી.

ટીકા:—આ જે ત્રણ પ્રકારનાં અધ્યવસાનો છે તે બધાંય પોતે અજ્ઞાનાદિરૂપ ર્થાત્ અજ્ઞાન, મિથ્યાદર્શન અને અચારિત્રરૂપ) હોવાથી શુભાશુભ કર્મબંધનાં મિત્ત છે. તે વિશેષ સમજાવવામાં આવે છે:—'હું (પરજીવોને) હણું છું' ઇત્યાદિ આ અધ્યવસાન છે તે અજ્ઞાનમય છે; તેથી (તે અધ્યવસાનવાળા જીવને) સત્રૂપ[1] હેતુક[2] જ્ઞપ્તિ[3] જ જેની એક ક્રિયા છે એવા આત્માનો અને રાગદ્વેષના ઉદયમય એવી ન[4] આદિ ક્રિયાઓનો વિશેષ[5] નહિ જાણવાને લીધે ભિન્ન આત્માનું અજ્ઞાન હોવાથી અધ્યવસાન પ્રથમ તો અજ્ઞાન છે, ભિન્ન આત્માનું અદર્શન (અશ્રદ્ધાન) હોવાથી અધ્યવસાન) મિથ્યાદર્શન છે અને ભિન્ન આત્માનું અનાચરણ હોવાથી (તે

---

૧ સત્રૂપ = સત્તાસ્વરૂપ; અસ્તિત્વસ્વરૂપ.

૨ અહેતુક = જેનું કોઈ કારણ નથી એવી; અકારણ; સ્વયંસિદ્ધ; સહજ.

૩ જ્ઞપ્તિ = જાણવું તે; જાણનક્રિયા. (જ્ઞપ્તિક્રિયા સત્રૂપ છે, અને સત્રૂપ હોવાથી અહેતુક છે.)

૪ હનન = હણવું તે; હણવારૂપ ક્રિયા. (હણવું વગેરે ક્રિયાઓ રાગદ્વેષના ઉદયમય છે.)

૫ વિશેષ = તફાવત; ભિન્ન લક્ષણ.

એ આદિ અધ્યવસાન વિધવિધ વર્તતા નહિ જે
તે મુનિવરો લેપાય નહિ શુભ કે અશુભ કર્મે ૨૭૦.

અધ્યવસાન) અચારિત્ર છે. * * * * વળી 'આ ધર્મદ્રવ્ય જણાય છે' ઇત્યાદિ અધ્યવસાન છે તે પણ અજ્ઞાનમય છે; તેથી (તે અધ્યવસાનવાળા જીવને) સત્‌રૂપ અહેતુક જ્ઞાન જ જેનું એક રૂપ છે એવા આત્માનો અને જ્ઞેયમય એવાં ધર્માદિ દ્રવ્યોનો વિશેષ નહિ જાણવાને લીધે ભિન્ન આત્માનું અજ્ઞાન હોવાથી તે અધ્યવસાન પ્રથમ તો અજ્ઞાન છે, ભિન્ન આત્માનું અદર્શન હોવાથી (તે અધ્યવસાન) મિથ્યાદર્શન છે અને ભિન્ન આત્માનું અનાચરણ હોવાથી (તે અધ્યવસાન) અચારિત્ર છે. માટે આ અધ્યવસાનો બંધનાં જ નિમિત્ત છે.

માત્ર જેમને આ અધ્યવસાનો વિદ્યમાન નથી તે જ કોઈક (વિરલ) મુનિકુંજરો (મુનિવરો), સત્‌રૂપ અહેતુક જ્ઞપ્તિ જ જેની એક ક્રિયા છે, સત્‌રૂપ અહેતુક જ્ઞાયક જ જેનો એક ભાવ છે અને સત્‌રૂપ અહેતુક જ્ઞાન જ જેનું એક રૂપ છે એવા ભિન્ન આત્માને (—સર્વ અન્યદ્રવ્યભાવોથી જુદા આત્માને) જાણતા થકા, સમ્યક્ પ્રકારે દેખતા (શ્રદ્ધતા) થકા અને અનુસરતા થકા, સ્વચ્છ અને સ્વચ્છંદપણે ઉદયમાન (અત્યંત સ્વાધીનપણે પ્રકાશમાન) એવી અમંદ અંતર્જ્યોતિને અજ્ઞાનાદિરૂપપણાનો અત્યંત અભાવ હોવાથી (અર્થાત્ અંતરંગમાં પ્રકાશતી જ્ઞાનજ્યોતિ જરા પણ અજ્ઞાનરૂપ, મિથ્યાદર્શનરૂપ અને અચારિત્રરૂપ નહિ થતી હોવાથી), શુભ કે અશુભ કર્મથી ખરેખર લેપાતા નથી.

ભાવાર્થ:—આ જે અધ્યવસાનો છે તે 'હું પરને હણું છું' એ પ્રકારનાં છે, 'હું નારક છું' એ પ્રકારનાં છે તથા 'હું પરદ્રવ્યને જાણું છું' એ પ્રકારનાં છે. તે, જ્યાંસુધી આત્માનો ને રાગાદિકનો, આત્માનો ને નારકાદિ કર્મોદયજનિત ભાવોનો તથા આત્માનો ને જ્ઞેયરૂપ અન્યદ્રવ્યોનો ભેદ ન જાણ્યો હોય, ત્યાંસુધી પ્રવર્તે છે. એ ભેદજ્ઞાનના અભાવને લીધે મિથ્યાજ્ઞાનરૂપ છે, મિથ્યાદર્શનરૂપ છે અને મિથ્યાચારિત્રરૂપ છે; એમ ત્રણ પ્રકારે પ્રવર્તે છે. તે અધ્યવસાનો જેમને નથી તે મુનિકુંજરો છે. તેઓ આત્માને સમ્યક્ જાણે છે, સમ્યક્ શ્રદ્ધે છે અને સમ્યક્ આચરે છે, તેથી અજ્ઞાનના અભાવથી સમ્યગ્દર્શનજ્ઞાનચારિત્રરૂપ થયા થકા કર્મોથી લેપાતા નથી. ૨૭૦.

[illegible]

"અધ્યવસાન શબ્દ વારંવાર કહેતા આવ્યા છો, તે અધ્યવસાન શું છે? તેનું સ્વરૂપ બરાબર સમજવામાં નથી આવ્યું." આમ પૂછવામાં આવતાં, હવે અધ્યવસાનનું સ્વરૂપ ગાથામાં કહે છે:—

बुद्धी ववसाओ वि य अज्झवसाणं मई य विण्णाणं ।
एक्कट्ठमेव सव्वं चित्तं भावो य परिणामो ॥ २७१ ॥

बुद्धिर्व्यवसायोऽपि च अध्यवसानं मतिश्च विज्ञानम् ।
एकार्थमेव सर्वं चित्तं भावश्च परिणामः ॥ २७१ ॥

અન્વયાર્થ:—[बुद्धिः] બુદ્ધિ, [व्यवसायः अपि च] વ્યવસાય, [अध्यवसानं] અધ્યવસાન, [मतिः च] મતિ, [विज्ञानं] વિજ્ઞાન, [चित्तं] ચિત્ત, [भावः] ભાવ [च] અને [परिणामः] પરિણામ—[सर्वं] એ બધા [एकार्थं एव] એકાર્થ છે (—નામ જુદાં છે, અર્થ જુદા નથી).

ટીકા:—સ્વ-પરનો અવિવેક હોય (અર્થાત્ સ્વ-પરનું ભેદજ્ઞાન ન હોય) ...રે જીવની [1]અધ્યવસિતિમાત્ર તે અધ્યવસાન છે; અને તે જ (અર્થાત્ જેને અધ્યવસાન કહ્યું તે જ) બોધનમાત્રપણાથી બુદ્ધિ છે, [2]વ્યવસાનમાત્રપણાથી વ્યવસાય છે, ...નમાત્રપણાથી મતિ છે, વિજ્ઞપ્તિમાત્રપણાથી વિજ્ઞાન છે, ચેતનામાત્રપણાથી ચિત્ત છે, ...તના ભવનમાત્રપણાથી ભાવ છે, ચેતનના પરિણમનમાત્રપણાથી પરિણામ છે. ...રીતે આ બધાય શબ્દો એકાર્થ છે.)

ભાવાર્થ:—આ જે બુદ્ધિ આદિ આઠ નામોથી કહ્યાં તે બધાંય ચેતન...નાં પરિણામ છે. જ્યાંસુધી સ્વપરનું ભેદજ્ઞાન ન હોય ત્યાંસુધી જીવને જે પોતાના ...ના એકપણાના નિશ્ચયરૂપ પરિણતિ વર્તે છે તેને બુદ્ધિ આદિ આઠ નામોથી ...ાં આવે છે.

[1] અધ્યવસિતિ = (એકમાં બીજાની માન્યતાપૂર્વક) પરિણતિ; (મિથ્યા) નિશ્ચિતિ. (બે ર) ...નિશ્ચય હોવો તે.

[2] ...વસાન = કામમાં લાગ્યા રહેવું તે; ઉદ્યમી હોવું તે; નિશ્ચય હોવો તે.

...નન = માનવું તે; જાણવું તે.

બુદ્ધિ, મતિ, વ્યવસાય, અધ્યવસાન, વળી વિજ્ઞાન
પરિણામ, ચિત્ત ને ભાવ—શબ્દો સર્વ આ એ...

'અધ્યવસાન ત્યાગવાયોગ્ય કહ્યાં છે તેથી એમ સમજાય છે કે વ્યવહારનો ત્યાગ કરાવ્યો છે અને નિશ્ચયનું ગ્રહણ કરાવ્યું છે'—એવા અર્થનું, આગળના કથનની સૂચનારૂપ કાવ્ય હવે કહે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनै-
स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः ।
सम्यङ्निश्चयमेकमेव तदमी निष्कंपमाक्रम्य किं
शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नंति संतो धृतिम् ॥ १७३ ॥

અર્થ:—આચાર્યદેવ કહે છે કે:—સર્વ વસ્તુઓમાં જે અધ્યવસાન થાય છે તે બધાંય (અધ્યવસાન) જિન ભગવાનોએ પૂર્વોક્ત રીતે ત્યાગવાયોગ્ય કહ્યાં છે તેથી અમે એમ માનીએ છીએ કે 'પર જેનો આશ્રય છે એવો વ્યવહાર જ સઘળોય છોડાવ્યો છે.' તો પછી, આ સત્પુરુષો એક સમ્યક્ નિશ્ચયને જ નિષ્કંપપણે અંગીકાર કરીને શુદ્ધજ્ઞાનઘનસ્વરૂપ નિજ મહિમામાં (-આત્મસ્વરૂપમાં) સ્થિરતા કેમ ધરતા નથી!

ભાવાર્થ:—જિનેશ્વરદેવે અન્ય પદાર્થોમાં આત્મબુદ્ધિરૂપ અધ્યવસાન છોડાવ્યાં છે તેથી આ પરાશ્રિત વ્યવહાર જ બધોય છોડાવ્યો છે એમ જાણવું. માટે 'શુદ્ધજ્ઞાનસ્વરૂપ પોતાના આત્મામાં સ્થિરતા રાખો' એવો શુદ્ધનિશ્ચયના ગ્રહણનો ઉપદેશ આચાર્યદેવે કર્યો છે. વળી, "જો ભગવાને અધ્યવસાન છોડાવ્યાં છે તો હવે સત્પુરુષો નિશ્ચયને નિષ્કંપપણે અંગીકાર કરી સ્વરૂપમાં કેમ નથી કરતા—એ અમને આશ્ચર્ય છે" એમ કહીને આચાર્યદેવે આશ્ચર્ય બતાવ્યું છે. ૧૭૩.

હવે આ અર્થને ગાથામાં કહે છે:—

एवं ववहारणओ पडिसिद्धो जाण णिच्छयणयेण ।
णिच्छयणयासिदा पुण मुणिणो पावंति णिव्वाणं ॥ २७२ ॥

एवं व्यवहारनयः प्रतिषिद्धो जानीहि निश्चयनयेन ।
निश्चयनयाश्रिताः पुनर्मुनयः प्राप्नुवंति निर्वाणम् ॥ २७२ ॥

વ્યવહારનય એ રીત જાણ નિષિદ્ધ નિશ્ચયનય થકી;
નિશ્ચયનયાશ્રિત મુનિવરો પ્રાપ્તિ કરે નિર્વાણની. ૨૭૨.

અન્વયાર્થઃ—[एवं] એ રીતે (પૂર્વોક્ત રીતે) [व्यवहारनयः] (પરાશ્રિત એવો) વ્યવહારનય [निश्चयनयेन] નિશ્ચયનય વડે [प्रतिषिद्धः जानीहि] નિષિદ્ધ જાણ; [पुनः निश्चयनयाश्रिताः] નિશ્ચયનયને આશ્રિત [मुनयः] મુનિઓ [निर्वाणं] નિર્વાણને [प्राप्नुवंति] પામે છે.

ટીકાઃ—આત્માશ્રિત (અર્થાત્ સ્વ-આશ્રિત) નિશ્ચયનય છે, પરાશ્રિત (અર્થાત્ પરને આશ્રિત) વ્યવહારનય છે. ત્યાં, પૂર્વોક્ત રીતે પરાશ્રિત સમસ્ત અધ્યવસાન (અર્થાત્ પોતાના ને પરના એકપણાની માન્યતાપૂર્વક પરિણમન) બંધનું કારણ હોવાને લીધે મુમુક્ષુને તેનો (–અધ્યવસાનનો) નિષેધ કરતા એવા નિશ્ચયનય વડે ખરેખર વ્યવહારનયનો જ નિષેધ કરાયો છે, કારણ કે વ્યવહારનયને પણ પરાશ્રિતપણું સમાન જ છે (–જેમ અધ્યવસાન પરાશ્રિત છે તેમ વ્યવહારનય પણ પરાશ્રિત છે, તેમાં તફાવત નથી). અને આ વ્યવહારનય એ રીતે નિષેધવાયોગ્ય જ છે; કારણ કે આત્માશ્રિત નિશ્ચયનયનો આશ્રય કરનારાઓ જ (કર્મથી) મુક્ત થાય છે અને પરાશ્રિત વ્યવહારનયનો આશ્રય તો એકાંતે નહિ મુક્ત થતો એવો અભવ્ય પણ કરે છે.

ભાવાર્થઃ—આત્માને પરના નિમિત્તથી જે અનેક ભાવો થાય છે તે બધા વ્યવહારનયના વિષય હોવાથી વ્યવહારનય તો પરાશ્રિત છે, અને જે એક પોતાનો સ્વાભાવિક ભાવ છે તે જ નિશ્ચયનયનો વિષય હોવાથી નિશ્ચયનય આત્માશ્રિત છે. અધ્યવસાન પણ વ્યવહારનયનો જ વિષય છે તેથી અધ્યવસાનનો ત્યાગ તે વ્યવહારનયનો જ ત્યાગ છે, અને પહેલાંની ગાથાઓમાં અધ્યવસાનના ત્યાગનો ઉપદેશ છે તે વ્યવહારનયના જ ત્યાગનો ઉપદેશ છે. આ પ્રમાણે નિશ્ચયનયને પ્રધાન કરીને વ્યવહારનયના ત્યાગનો ઉપદેશ કર્યો છે તેનું કારણ એ છે કે—જેઓ નિશ્ચયના આશ્રયે પ્રવર્તે છે તેઓ જ કર્મથી છૂટે છે અને જેઓ એકાંતે વ્યવહારનયના જ આશ્રયે પ્રવર્તે છે તેઓ કર્મથી કદી છૂટતા નથી. ૨૭૨.

હવે પૂછે છે કે અભવ્ય જીવ વ્યવહારનયનો કઈ રીતે આશ્રય કરે છે? તેનો ઉત્તર કહે છેઃ—

वदसमिदीगुत्तीओ सीलतवं जिणवरेहि पण्णत्तं ।
कुव्वंतो वि अभव्वो अण्णाणी मिच्छदिट्ठी दु ॥ २७३ ॥

જિનવરકહેલાં વ્રત, સમિતિ, ગુપ્તિ વળી તપ-શીલને
કરતાં છતાંય અભવ્ય જીવ અજ્ઞાની મિથ્યાદૃષ્ટિ છે. ૨૭૩.

व्रतसमितिगुप्तयः शीलतपो जिनवरैः प्रज्ञप्तम् ।
कुर्वन्नप्यभव्योऽज्ञानी मिथ्यादृष्टिस्तु ॥ २७३ ॥

અન્વયાર્થ:—[जिनवरैः] જિનવરોએ [प्रज्ञप्तं] કહેલાં [व्रतसमितिगुप्तयः] વ્રત, સમિતિ, ગુપ્તિ, [शीलतपः] શીલ, તપ [कुर्वन् अपि] કરતાં છતાં પણ [अभव्यः] અભવ્ય જીવ [अज्ञानी] અજ્ઞાની [मिथ्यादृष्टिः तु] અને મિથ્યાદૃષ્ટિ છે.

ટીકા:—શીલ અને તપથી પરિપૂર્ણ, ત્રણ ગુપ્તિ અને પાંચ સમિતિ પ્રત્યે સાવધાનીભરેલું, અહિંસાદિ પાંચ મહાવ્રતરૂપ વ્યવહારચારિત્ર અભવ્ય પણ કરે અર્થાત્ પાળે છે; તોપણ તે (અભવ્ય) નિશ્ચારિત્ર (-ચારિત્રરહિત), અજ્ઞાની, મિથ્યાદૃષ્ટિ જ છે કારણ કે નિશ્ચયચારિત્રના કારણરૂપ જ્ઞાન-શ્રદ્ધાનથી શૂન્ય છે.

ભાવાર્થ:—અભવ્ય જીવ મહાવ્રત-સમિતિ-ગુપ્તિરૂપ ચારિત્ર પાળે તોપણ નિશ્ચય સમ્યગ્જ્ઞાનશ્રદ્ધાન વિના તે ચારિત્ર 'સમ્યક્ચારિત્ર' નામ પામતું નથી; તેથી તે અજ્ઞાની, મિથ્યાદૃષ્ટિ અને નિશ્ચારિત્ર જ છે. ૨૭૩.

હવે શિષ્ય પૂછે છે કે—તેને અગિયાર અંગનું જ્ઞાન તો હોય છે; છતાં અજ્ઞાની કેમ કહ્યો? તેનો ઉત્તર કહે છે:—

मोक्खं असद्दहंतो अभवियसत्तो दु जो अधीएज्ज ।
पाठो ण करेदि गुणं असद्दहंतस्स णाणं तु ॥ २७४ ॥

मोक्षमश्रद्दधानोऽभव्यसत्त्वस्तु योऽधीयीत ।
पाठो न करोति गुणमश्रद्दधानस्य ज्ञानं तु ॥ २७४ ॥

અન્વયાર્થ:—[मोक्षं अश्रद्दधानः] મોક્ષને નહિ શ્રદ્ધતો એવો [यः अभव्यसत्त्वः] જે અભવ્યજીવ છે તે [तु अधीयीत] શાસ્ત્રો તો ભણે છે, [तु] પરંતુ [ज्ञानं अश्रद्दधानस्य] જ્ઞાનને નહિ શ્રદ્ધતા એવા તેને [पाठो] શાસ્ત્રપઠન [गुणं न करोति] ગુણ કરતું નથી.

ટીકા:—પ્રથમ તો મોક્ષને જ અભવ્ય જીવ, (પોતે) શુદ્ધજ્ઞાનમય આત્માના જ્ઞાનથી શૂન્ય હોવાને લીધે, નથી શ્રદ્ધતો. તેથી જ્ઞાનને પણ તે નથી શ્રદ્ધતો.

મુક્તિ તણી શ્રદ્ધારહિત અભવ્ય જીવ શાસ્ત્રો ભણે,
પણ જ્ઞાનની શ્રદ્ધારહિતને પઠન એ નહિ ગુણ કરે. ૨૭૪.

જ્ઞાનને નહિ શ્રદ્ધતો તે, આચારાંગ આદિ અગિયાર અંગરૂપ શ્રુતને (શાસ્ત્રને) ભણતો હોવા છતાં, શાસ્ત્ર ભણવાનો જે ગુણ તેના અભાવને લીધે જ્ઞાની નથી. જે ભિન્નવસ્તુભૂત જ્ઞાનમય આત્માનું જ્ઞાન તે શાસ્ત્ર ભણવાનો ગુણ છે; અને તે તો (અર્થાત્ એવું શુદ્ધાત્મજ્ઞાન તો), ભિન્ન વસ્તુભૂત જ્ઞાનને નહિ શ્રદ્ધતા એવા અભવ્યને શાસ્ત્ર-ભણતર વડે કરી શકાતું નથી (અર્થાત્ શાસ્ત્ર-ભણતર તેને શુદ્ધાત્મજ્ઞાન કરી શકતું નથી); માટે તેને શાસ્ત્ર ભણવાના ગુણનો અભાવ છે; અને તેથી જ્ઞાન-શ્રદ્ધાનના અભાવને લીધે તે અજ્ઞાની ઠર્યો—નક્કી થયો.

ભાવાર્થ:—અભવ્ય જીવ અગિયાર અંગ ભણે તોપણ તેને શુદ્ધ આત્માનું જ્ઞાન-શ્રદ્ધાન થતું નથી; તેથી તેને શાસ્ત્રના ભણતરે ગુણ ન કર્યો; અને તેથી તે અજ્ઞાની જ છે. ૨૭૪.

ફરી શિષ્ય પૂછે છે કે—અભવ્યને ધર્મનું શ્રદ્ધાન તો હોય છે; છતાં 'તેને શ્રદ્ધાન નથી' એમ કેમ કહ્યું? તેનો ઉત્તર હવે કહે છે:—

सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो य फासेदि ।
धम्मं भोगणिमित्तं ण दु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥ २७५ ॥

श्रद्दधाति च प्रत्येति च रोचयति च तथा पुनश्च स्पृशति ।
धर्मं भोगनिमित्तं न तु स कर्मक्षयनिमित्तम् ॥ २७५ ॥

અન્વયાર્થ:—[सः] તે (અભવ્ય જીવ) [भोगनिमित्तं धर्मं] ભોગના નિમિત્તરૂપ ધર્મને જ [श्रद्दधाति च] શ્રદ્ધે છે, [प्रत्येति च] તેની જ પ્રતીત કરે છે, [रोचयति च] તેની જ રુચિ કરે છે [तथा पुनः स्पृशति च] અને તેને જ સ્પર્શે છે, [न तु कर्मक्षयनिमित्तं] પરંતુ કર્મક્ષયના નિમિત્તરૂપ ધર્મને નહિ. (કર્મક્ષયના નિમિત્તરૂપ ધર્મને નથી શ્રદ્ધતો, નથી તેની પ્રતીત કરતો, નથી તેની રુચિ કરતો અને નથી તેને સ્પર્શતો.)

ટીકા:—અભવ્ય જીવ નિત્યકર્મફળચેતનારૂપ વસ્તુને શ્રદ્ધે છે પરંતુ નિત્યજ્ઞાનચેતનામાત્ર વસ્તુને નથી શ્રદ્ધતો કારણ કે તે (અભવ્ય) સદાય (સ્વપરના) ભેદવિજ્ઞાનને અયોગ્ય છે. માટે તે (અભવ્ય જીવ) કર્મથી છૂટવાના નિમિત્તરૂપ, જ્ઞાનમાત્ર, ભૂતાર્થ (સત્યાર્થ) ધર્મને નથી શ્રદ્ધતો, ભોગના નિમિત્તરૂપ, શુભકર્મમાત્ર, અભૂતાર્થ ધર્મને જ શ્રદ્ધે છે; તેથી જ તે અભૂતાર્થ ધર્મનાં શ્રદ્ધાન, પ્રતીત, રુચિ

તે ધર્મને શ્રદ્ધે, પ્રતીત, રુચિ અને સ્પર્શન કરે,
તે ભોગહેતુ ધર્મને, નહિ કર્મક્ષયના હેતુને. ૨૭૫.

અને સ્પર્શનથી ઉપરના ગ્રૈવેયક સુધીના ભોગમાત્રને પામે છે પરંતુ કદાપિ કર્મથી છૂટતો નથી. તેથી તેને ભૂતાર્થ ધર્મના શ્રદ્ધાનના અભાવને લીધે (સાચું) શ્રદ્ધાન પણ નથી.

આમ હોવાથી નિશ્ચયનય વડે વ્યવહારનયનો નિષેધ યોગ્ય જ છે.

ભાવાર્થ:—અભવ્ય જીવને ભેદજ્ઞાન થવાની યોગ્યતા નહિ હોવાથી તે કર્મફળચેતનાને જાણે છે પરંતુ જ્ઞાનચેતનાને જાણતો નથી; તેથી શુદ્ધ આત્મિક ધર્મનું શ્રદ્ધાન તેને નથી. તે શુભ કર્મને જ ધર્મ સમજી શ્રદ્ધાન કરે છે તેથી તેના ફળ તરીકે ગ્રૈવેયક સુધીના ભોગને પામે છે પરંતુ કર્મનો ક્ષય થતો નથી. આ રીતે સત્યાર્થ ધર્મનું શ્રદ્ધાન નહિ હોવાથી તેને શ્રદ્ધાન જ કહી શકાતું નથી.

આ પ્રમાણે વ્યવહારનયને આશ્રિત અભવ્ય જીવને જ્ઞાન-શ્રદ્ધાન નહિ હોવાથી નિશ્ચયનય વડે કરવામાં આવતો વ્યવહારનો નિષેધ યોગ્ય જ છે.

અહીં એટલું વિશેષ જાણવું કે—આ હેતુવાદરૂપ અનુભવપ્રધાન ગ્રંથ છે તેથી તેમાં ભવ્ય-અભવ્યનો અનુભવની અપેક્ષાએ નિર્ણય છે. હવે જો આને અહેતુવાદ આગમ સાથે મેળવીએ તો—અભવ્યને વ્યવહારનયના પક્ષનો સૂક્ષ્મ, કેવળીગમ્ય આશય રહી જાય છે કે જે છદ્મસ્થને અનુભવગોચર નથી પણ હોતો, માત્ર સર્વજ્ઞદેવ જાણે છે; એ રીતે કેવળ વ્યવહારનો પક્ષ રહેવાથી તેને સર્વથા એકાંતરૂપ મિથ્યાત્વ રહે છે. અભવ્યને આ વ્યવહારનયના પક્ષનો આશય સર્વથા કદી પણ મટતો જ નથી.

હવે પૂછે છે કે "નિશ્ચયનય વડે નિષેધ્ય (અર્થાત્ નિષેધવાયોગ્ય) જે વ્યવહારનય, અને વ્યવહારનયનો નિષેધક જે નિશ્ચયનય—તે બન્ને નયો કેવા છે?" એવું પૂછવામાં આવતાં વ્યવહાર અને નિશ્ચયનું સ્વરૂપ કહે છે:—

आयारादी णाणं जीवादी दंसणं च विण्णेयं ।
छज्जीवणिकं च तहा भणइ चरित्तं तु ववहारो ॥ २७६ ॥
आदा खु मज्झ णाणं आदा मे दंसणं चरित्तं च ।
आदा पच्चक्खाणं आदा मे संवरो जोगो ॥ २७७ ॥

'આચાર' આદિ જ્ઞાન છે, જીવાદિ દર્શન જાણવું,
ષટ્જીવનિકાય ચરિત છે,—એ કથન નય વ્યવહારનું. ૨૭૬.
મુજ આત્મ નિશ્ચય જ્ઞાન છે, મુજ આત્મ દર્શન ચરિત છે,
મુજ આત્મ પ્રત્યાખ્યાન ને મુજ આત્મ સંવર યોગ છે. ૨૭૭.

आचारादि ज्ञानं जीवादि दर्शनं च विज्ञेयम् ।
षड्जीवनिकायं च तथा भणति चरित्रं तु व्यवहारः ॥ २७६ ॥
आत्मा खलु मम ज्ञानमात्मा मे दर्शनं चरित्रं च ।
आत्मा प्रत्याख्यानमात्मा मे संवरो योगः ॥ २७७ ॥

અન્વયાર્થ:—[आचारादि] આચારાંગ આદિ શાસ્ત્રો તે [ज्ञानं] જ્ઞાન છે, [जीवादि] જીવ આદિ તત્ત્વો તે [दर्शनं विज्ञेयं च] દર્શન જાણવું [च] અને [षड्जीवनिकायं] છ જીવ-નિકાય તે [चरित्रं] ચારિત્ર છે—[तथा तु] એમ તો [व्यवहारः भणति] વ્યવહારનય કહે છે.

[खलु] નિશ્ચયથી [मम आत्मा] મારો આત્મા જ [ज्ञानं] જ્ઞાન છે, [मे आत्मा] મારો આત્મા જ [दर्शनं चरित्रं च] દર્શન અને ચારિત્ર છે, [आत्मा] મારો આત્મા જ [प्रत्याख्यानं] પ્રત્યાખ્યાન છે, [मे आत्मा] મારો આત્મા જ [संवरः योगः] સંવર અને યોગ (-સમાધિ, ધ્યાન) છે.

ટીકા:—આચારાંગ આદિ શબ્દશ્રુત તે જ્ઞાન છે કારણ કે તે (શબ્દશ્રુત) જ્ઞાનનો આશ્રય છે, જીવ આદિ નવ પદાર્થો દર્શન છે કારણ કે તે (નવ પદાર્થો) દર્શનનો આશ્રય છે, અને છ જીવ-નિકાય ચારિત્ર છે કારણ કે તે (છ જીવ-નિકાય) ચારિત્રનો આશ્રય છે; એ પ્રમાણે વ્યવહાર છે. શુદ્ધ આત્મા જ્ઞાન છે કારણ કે તે (શુદ્ધ આત્મા) જ્ઞાનનો આશ્રય છે, શુદ્ધ આત્મા દર્શન છે કારણ કે તે દર્શનનો આશ્રય છે, અને શુદ્ધ આત્મા ચારિત્ર છે કારણ કે તે ચારિત્રનો આશ્રય છે; એ પ્રમાણે નિશ્ચય છે. તેમાં, વ્યવહારનય પ્રતિષેધ્ય અર્થાત્ નિષેધ્ય છે, કારણ કે આચારાંગ આદિને જ્ઞાનાદિનું આશ્રયપણું અનૈકાંતિક છે—વ્યભિચારયુક્ત છે; (શબ્દશ્રુત આદિને જ્ઞાન આદિના આશ્રયસ્વરૂપ માનવામાં વ્યભિચાર આવે છે કેમ કે શબ્દશ્રુત આદિ હોવા છતાં જ્ઞાન આદિ નથી પણ હોતાં, માટે વ્યવહારનય પ્રતિષેધ્ય છે); અને નિશ્ચયનય વ્યવહારનયનો પ્રતિષેધક છે, કારણ કે શુદ્ધ આત્માને જ્ઞાન આદિનું આશ્રયપણું ઐકાંતિક છે. (શુદ્ધ આત્માને જ્ઞાનાદિનો આશ્રય માનવામાં વ્યભિચાર નથી કેમકે જ્યાં શુદ્ધ આત્મા હોય ત્યાં જ્ઞાન-દર્શન-ચારિત્ર હોય જ છે.) આ વાત હેતુ સહિત સમજાવવામાં આવે છે:—

આચારાંગ આદિ શબ્દશ્રુત એકાંતે જ્ઞાનનો આશ્રય નથી, કારણ કે તેના (અર્થાત્ શબ્દશ્રુતના) સદ્ભાવમાં પણ અભવ્યોને શુદ્ધ આત્માના અભાવને લીધે જ્ઞાનનો અભાવ છે; જીવ આદિ નવ પદાર્થો દર્શનનો આશ્રય નથી, કારણ કે તેમના સદ્ભાવમાં પણ અભવ્યોને શુદ્ધ આત્માના અભાવને લીધે દર્શનનો અભાવ છે; છ જીવ-નિકાય ચારિત્રનો આશ્રય નથી, કારણ કે તેમના સદ્ભાવમાં પણ અભવ્યોને શુદ્ધ

આત્માના અભાવને લીધે ચારિત્રનો અભાવ છે. શુદ્ધ આત્મા જ જ્ઞાનનો [illegible] કારણ કે આચારાંગ આદિ શબ્દશ્રુતના સદ્‌ભાવમાં કે અસદ્‌ભાવમાં તેના (શુદ્ધ આત્માના) સદ્‌ભાવથી જ જ્ઞાનનો સદ્‌ભાવ છે; શુદ્ધ આત્મા જ દર્શન[illegible] છે, કારણ કે જીવ આદિ નવ પદાર્થોના સદ્‌ભાવમાં કે અસદ્‌ભાવમાં તેના (શુદ્ધ આત્માના) સદ્‌ભાવથી જ દર્શનનો સદ્‌ભાવ છે; શુદ્ધ આત્મા જ ચારિત્ર[illegible] છે, કારણ કે છ જીવ-નિકાયના સદ્‌ભાવમાં કે અસદ્‌ભાવમાં તેના (અ[illegible] આત્માના) સદ્‌ભાવથી જ ચારિત્રનો સદ્‌ભાવ છે.

ભાવાર્થઃ—આચારાંગ આદિ શબ્દશ્રુતનું જાણવું, જીવાદિ નવ [illegible] શ્રદ્ધાન કરવું તથા છ કાયના જીવોની રક્ષા—એ સર્વ હોવા છતાં અભવ્ય[illegible] દર્શન, ચારિત્ર નથી હોતાં, તેથી વ્યવહારનય તો નિષેધ્ય છે; અને શુદ્ધાત્મા [illegible] જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર હોય જ છે, તેથી નિશ્ચયનય વ્યવહારનો નિષેધક [illegible] શુદ્ધનય ઉપાદેય કહ્યો છે.

હવે આગળના કથનની સૂચનાનું કાવ્ય કહે છેઃ—

(ઉપજાતિ)

रागादयो बंधनिदानमुक्ता-
स्ते शुद्धचिन्मात्रमहोऽतिरिक्ताः ।
आत्मा परो वा किमु तन्निमित्त-
मिति प्रणुन्नाः पुनरेवमाहुः ॥ १७४ ॥

અર્થઃ—"રાગાદિકને બંધનાં કારણ કહ્યા અને વળી તેમને શુદ્ધચૈત[illegible] જ્યોતિથી (અર્થાત્ આત્માથી) ભિન્ન કહ્યા; ત્યારે તે રાગાદિકનું નિમિત્ત આ[illegible] કે બીજું કોઈ ?" એવા (શિષ્યના) પ્રશ્નથી પ્રેરિત થયા થકા આચાર્યભગવાન [illegible] આમ (નીચે પ્રમાણે) કહે છે. ૨૭૬—૨૭૭.

ઉપરના પ્રશ્નના ઉત્તરરૂપે આચાર્યભગવાન ગાથા કહે છેઃ—

जह फलिहमणी सुद्धो ण सयं परिणमइ रायमाईहिं ।
रंगिज्जदि अण्णेहिं दु सो रत्तादीहिं दव्वेहिं ॥ २७८ ॥

જ્યમ સ્ફટિકમણિ છે શુદ્ધ, રક્તરૂપે સ્વયં નહિ પરિણમે,
પણ અન્ય જે રક્તાદિ દ્રવ્યો તે વડે રાતો બને; ૨૭[illegible]

एवं णाणी सुद्धो ण सयं परिणमइ रायमाईहिं ।
राइज्जदि अण्णेहिं दु सो रागादीहिं दोसेहिं ॥ २७९ ॥

यथा स्फटिकमणिः शुद्धो न स्वयं परिणमते रागाद्यैः ।
रज्यतेऽन्यैस्तु स रक्तादिभिर्द्रव्यैः ॥ २७८ ॥
एवं ज्ञानी शुद्धो न स्वयं परिणमते रागाद्यैः ।
रज्यतेऽन्यैस्तु स रागादिभिर्दोषैः ॥ २७९ ॥

અન્વયાર્થઃ—[यथा] જેમ [स्फटिकमणिः] સ્ફટિકમણિ [शुद्धः] શુદ્ધ
ાવાથી [रागाद्यैः] રાગાદિરૂપે (રતાશ-આદિરૂપે) [स्वयं] પોતાની મેળે [न
રિણમતે] પરિણમતો નથી [तु] પરંતુ [अन्यैः रक्तादिभिः द्रव्यैः] અન્ય રક્ત આદિ
્યો વડે [सः] તે [रज्यते] રક્ત (-રાતો) આદિ કરાય છે, [एवं] તેમ [ज्ञानी]
ાની અર્થાત્ આત્મા [शुद्धः] શુદ્ધ હોવાથી [रागाद्यैः] રાગાદિરૂપે [स्वयं] પોતાની
ળે [न परिणमते] પરિણમતો નથી [तु] પરંતુ [अन्यैः रागादिभिः दोषैः] અન્ય
ગાદિ દોષો વડે [सः] તે [रज्यते] રાગી આદિ કરાય છે.

ટીકાઃ—જેવી રીતે ખરેખર કેવળ (-એકલો) સ્ફટિકમણિ, પોતે પરિણમન-
વભાવવાળો હોવા છતાં, પોતાને શુદ્ધસ્વભાવપણાને લીધે રાગાદિનું નિમિત્તપણું નહિ
ાવાથી (અર્થાત્ પોતે પોતાને લાલાશ-આદિરૂપ પરિણમનનું નિમિત્ત નહિ હોવાથી)
ાતાની મેળે રાગાદિરૂપે પરિણમતો નથી, પરંતુ જે પોતાની મેળે રાગાદિભાવને
ામતું હોવાથી સ્ફટિકમણિને રાગાદિનું નિમિત્ત થાય છે એવા પરદ્રવ્ય વડે જ, શુદ્ધ-
વભાવથી ચ્યુત થતો થકો જ, રાગાદિરૂપે પરિણમાવાય છે; તેવી રીતે ખરેખર કેવળ
(-એકલો) આત્મા, પોતે પરિણમન-સ્વભાવવાળો હોવા છતાં, પોતાને શુદ્ધસ્વભાવપણાને
લીધે રાગાદિનું નિમિત્તપણું નહિ હોવાથી (અર્થાત્ પોતે પોતાને રાગાદિરૂપ પરિણમનનું
નિમિત્ત નહિ હોવાથી) પોતાની મેળે રાગાદિરૂપે પરિણમતો નથી, પરંતુ જે પોતાની
મેળે રાગાદિભાવને પામતું હોવાથી આત્માને રાગાદિનું નિમિત્ત થાય છે એવા પરદ્રવ્ય
વડે જ, શુદ્ધસ્વભાવથી ચ્યુત થતો થકો જ, રાગાદિરૂપે પરિણમાવાય છે.—આવો
વસ્તુનો સ્વભાવ છે.

એમ 'જ્ઞાની' પણ છે શુદ્ધ, રાગરૂપે સ્વયં નહિ પરિણમે,
પણ અન્ય જે રાગાદિ દોષો તે વડે રાગી બને

ભાવાર્થ:—સ્ફટિકમણિ પોતે તો કેવળ એકાકાર શુદ્ધ જ છે; તે પરિણમ
સ્વભાવવાળો હોવા છતાં એકલો પોતાની મેળે લાલાશ-આદિરૂપે પરિણમતો ન
પરંતુ લાલ આદિ પરદ્રવ્યના નિમિત્તે (અર્થાત્ સ્વયં લાલાશ-આદિરૂપે પરિણ
એવા પરદ્રવ્યના નિમિત્તે) લાલાશ-આદિરૂપે પરિણમે છે. તેવી રીતે આત્મા પોતે
શુદ્ધ જ છે; તે પરિણમનસ્વભાવવાળો હોવા છતાં એકલો પોતાની મેળે રાગાદિ
પરિણમતો નથી પરંતુ રાગાદિરૂપ પરદ્રવ્યના નિમિત્તે (અર્થાત્ સ્વયં રાગા
પરિણમતા એવા પરદ્રવ્યના નિમિત્તે) રાગાદિરૂપે પરિણમે છે. આવો વસ્તુનો જ સ્વ
છે, તેમાં અન્ય કોઈ તર્કને અવકાશ નથી.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(ઉપજાતિ)

न जातु रागादिनिमित्तभाव-
मात्मात्मनो याति यथार्ककांतः ।
तस्मिन्निमित्तं परसंग एव
वस्तुस्वभावोऽयमुदेति तावत् ॥ १७५ ॥

અર્થ:—સૂર્યકાંતમણિની માફક (અર્થાત્ જેમ સૂર્યકાંતમણિ પોત
અગ્નિરૂપે પરિણમતો નથી, તેના અગ્નિરૂપ પરિણમનમાં સૂર્યનું બિંબ નિમિ
તેમ) આત્મા પોતાને રાગાદિકનું નિમિત્ત કદી પણ થતો નથી, તેમાં નિમિત્ત
જ (પરદ્રવ્યનો સંગ જ) છે.—આવો વસ્તુસ્વભાવ પ્રકાશમાન છે. (સદા
આવો જ સ્વભાવ છે, કોઈએ કરેલો નથી).

'આવા વસ્તુસ્વભાવને જાણતો જ્ઞાની રાગાદિકને પોતાના કરતો નથી
અર્થનું, આગળની ગાથાની સૂચનારૂપ શ્લોક હવે કહે છે:—

(અનુષ્ટુપ)

इति वस्तुस्वभावं स्वं ज्ञानी जानाति तेन सः ।
रागादीन्नात्मनः कुर्यान्नातो भवति कारकः ॥ १७६ ॥

અર્થ:—એવા પોતાના વસ્તુસ્વભાવને જ્ઞાની જાણે છે તેથી તે
પોતાના કરતો નથી, તેથી તે (રાગાદિકનો) કર્તા નથી. ૧૭૬.

હવે, એ વસ્તુ જ ગાથામાં કહે છે:—

ण य रायदोसमोहं कुव्वदि णाणी कसायभावं वा ।
सयमप्पणो ण सो तेण कारगो तेसिं भावाणं ॥ २८० ॥

न च रागद्वेषमोहं करोति ज्ञानी कषायभावं वा ।
स्वयमात्मनो न स तेन कारकस्तेषां भावानाम् ॥ २८० ॥

અન્વયાર્થઃ—[ज्ञानी] જ્ઞાની [रागद्वेषमोहं] રાગદ્વેષમોહને [वा कषायभावं] કષાયભાવને [स्वयं] પોતાની મેળે [आत्मनः] પોતામાં [न च करोति] કરતો ...થી [तेन] તેથી [सः] તે, [तेषां भावानां] તે ભાવોનો [कारकः न] કારક અર્થાત્ ...ર્તા નથી.

ટીકાઃ—યથોક્ત (અર્થાત્ જેવો કહ્યો તેવા) વસ્તુસ્વભાવને જાણતો જ્ઞાની પોતાના) શુદ્ધસ્વભાવથી જ ચ્યુત થતો નથી તેથી રાગ-દ્વેષ-મોહ આદિ ભાવોરૂપે ...ોતાની મેળે પરિણમતો નથી અને પર વડે પણ પરિણમાવાતો નથી, માટે ટંકોત્કીર્ણ ...એક જ્ઞાયકભાવસ્વરૂપ જ્ઞાની રાગ-દ્વેષ-મોહ આદિ ભાવોનો અકર્તા જ છે—એવો નિયમ છે.

ભાવાર્થઃ—આત્મા જ્ઞાની થયો ત્યારે વસ્તુનો એવો સ્વભાવ જાણ્યો કે આત્મા પોતે તો શુદ્ધ જ છે—દ્રવ્યદૃષ્ટિએ અપરિણમનસ્વરૂપ છે, પર્યાયદૃષ્ટિએ પર-...વ્યના નિમિત્તથી રાગાદિરૂપે પરિણમે છે;' માટે હવે જ્ઞાની પોતે તે ભાવોનો કર્તા ...તો નથી, ઉદયો આવે તેમનો જ્ઞાતા જ છે.

'આવા વસ્તુસ્વભાવને અજ્ઞાની જાણતો નથી તેથી તે રાગાદિક ભાવોનો ...ર્તા થાય છે' એવા અર્થનો, આગળની ગાથાની સૂચનિકારૂપ શ્લોક હવે કહે છેઃ—

(અનુષ્ટુપ્)

इति वस्तुस्वभावं स्वं नाज्ञानी वेत्ति तेन सः ।
रागादीनात्मनः कुर्यादतो भवति कारकः ॥ १७७ ॥

અર્થઃ—એવા પોતાના વસ્તુસ્વભાવને અજ્ઞાની જાણતો નથી તેથી તે ...ગાદિકને (-રાગાદિભાવોને) પોતાના કરે છે, તેથી (તેમનો) કર્તા થાય છે. ૧૭૭.

હવે આ અર્થની ગાથા કહે છેઃ—

કદી રાગદ્વેષવિમોહ અગર કષાયભાવો નિજ વિષે
જ્ઞાની સ્વયં કરતો નથી, તેથી ન તત્કારક ઠરે. ૨૮૦.

अप्रतिक्रमणं द्विविधमप्रत्याख्यानं तथैव विज्ञेयम् ।
एतेनोपदेशेन चाकारको वर्णितश्चेतयिता ॥ २८३ ॥
अप्रतिक्रमणं द्विविधं द्रव्ये भावे तथाऽप्रत्याख्यानम् ।
एतेनोपदेशेन चाकारको वर्णितश्चेतयिता ॥ २८४ ॥
यावदप्रतिक्रमणमप्रत्याख्यानं च द्रव्यभावयोः ।
करोत्यात्मा तावत्कर्ता स भवति ज्ञातव्यः ॥ २८५ ॥

અન્વયાર્થ:—[अप्रतिक्रमणं] અપ્રતિક્રમણ [द्विविधं] બે પ્રકારનું [तथा एव] તેમ જ [अप्रत्याख्यानं] અપ્રત્યાખ્યાન બે પ્રકારનું [विज्ञेयं] જાણવું;— [एतेन उपदेशेन च] આ ઉપદેશથી [चेतयिता] આત્મા [अकारकः वर्णितः] અકારક વર્ણવવામાં આવ્યો છે.

[अप्रतिक्रमणं] અપ્રતિક્રમણ [द्विविधं] બે પ્રકારનું છે—[द्रव्ये भावे] દ્રવ્ય સંબંધી અને ભાવ સંબંધી; [तथा अप्रत्याख्यानं] તેવી રીતે અપ્રત્યાખ્યાન પણ બે પ્રકારનું છે—દ્રવ્ય સંબંધી અને ભાવ સંબંધી;—[एतेन उपदेशेन च] આ ઉપદેશથી [चेतयिता] આત્મા [अकारकः वर्णितः] અકારક વર્ણવવામાં આવ્યો છે.

[यावत्] જ્યાંસુધી [आत्मा] આત્મા [द्रव्यभावयोः] દ્રવ્યનું અને ભાવનું [अप्रतिक्रमणं च अप्रत्याख्यानं] અપ્રતિક્રમણ તથા અપ્રત્યાખ્યાન [करोति] કરે છે [तावत्] ત્યાંસુધી [सः] તે [कर्ता भवति] કર્તા થાય છે [ज्ञातव्यः] એમ જાણવું.

ટીકા:—આત્મા પોતાથી રાગાદિકનો અકારક જ છે; કારણ કે, જો એમ ન હોય તો (અર્થાત્ જો આત્મા પોતાથી જ રાગાદિભાવોનો કારક હોય તો) અપ્રતિક્રમણ અને અપ્રત્યાખ્યાનના દ્વિવિધપણાનો ઉપદેશ બની શકે નહિ. અપ્રતિક્રમણ અને અપ્રત્યાખ્યાનનો જે ખરેખર દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદે દ્વિવિધ (બે પ્રકારનો) ઉપદેશ છે તે, દ્રવ્ય અને ભાવના નિમિત્ત-નૈમિત્તિકપણાને જાહેર કરતો થકો, આત્માના અકર્તાપણાને જ જણાવે છે. માટે એમ નક્કી થયું કે પરદ્રવ્ય નિમિત્ત છે અને આત્માના રાગાદિભાવો નૈમિત્તિક છે. જો એમ ન માનવામાં આવે તો [illegible] અને દ્રવ્ય અપ્રત્યાખ્યાનનો કર્તાપણાનાં નિમિત્ત તરીકેનો ઉપદેશ [illegible] તે નિરર્થક થતાં એક જ આત્માને રાગાદિભાવોનું નિમિત્તપણું [illegible] ાનો પ્રસંગ આવવાથી મોક્ષનો અભાવ [illegible] નિમિત્ત હો અને એમ હોતાં, આત્મા [illegible] રીતે જો આત્મા રાગાદિકનો અકારક

પ્રતિક્રમતો નથી તથા પચખતો નથી (અર્થાત્ જ્યાંસુધી નિમિત્તભૂત દ્રવ્યનું પ્રતિક્રમણ તથા પચખાણ કરતો નથી) ત્યાંસુધી નૈમિત્તિકભૂત ભાવને (-રાગાદિભાવને) પ્રતિક્રમતો નથી તથા પચખતો નથી, અને જ્યાંસુધી ભાવને પ્રતિક્રમતો નથી તથા પચખતો નથી ત્યાંસુધી કર્તા જ છે; જ્યારે નિમિત્તભૂત દ્રવ્યને પ્રતિક્રમે છે તથા પચખે છે ત્યારે જ નૈમિત્તિકભૂત ભાવને પ્રતિક્રમે છે તથા પચખે છે, અને જ્યારે ભાવને પ્રતિક્રમે છે તથા પચખે છે ત્યારે સાક્ષાત્ અકર્તા જ છે.

ભાવાર્થ:—અતીત કાળમાં જે પરદ્રવ્યોનું ગ્રહણ કર્યું હતું તેમને વર્તમાનમાં સારાં જાણવાં, તેમના સંસ્કાર રહેવા, તેમના પ્રત્યે મમત્વ રહેવું, તે દ્રવ્ય અપ્રતિક્રમણ છે અને તે પરદ્રવ્યોના નિમિત્તે જે રાગાદિભાવો થયા હતા તેમને વર્તમાનમાં ભલા જાણવા, તેમના સંસ્કાર રહેવા, તેમના પ્રત્યે મમત્વ રહેવું, તે ભાવ અપ્રતિક્રમણ છે. તેવી રીતે આગામી કાળ સંબંધી પરદ્રવ્યોની વાંછા રાખવી, મમત્વ રાખવું, તે દ્રવ્ય અપ્રત્યાખ્યાન છે અને તે પરદ્રવ્યોના નિમિત્તે આગામી કાળમાં થનારા જે રાગાદિભાવો તેમની વાંછા રાખવી, મમત્વ રાખવું, તે ભાવ અપ્રત્યાખ્યાન છે. આમ દ્રવ્ય અપ્રતિ-ક્રમણ ને ભાવ અપ્રતિક્રમણ તથા દ્રવ્ય અપ્રત્યાખ્યાન ને ભાવ અપ્રત્યાખ્યાન—એવો જે અપ્રતિક્રમણ અને અપ્રત્યાખ્યાનનો બે પ્રકારનો ઉપદેશ છે તે દ્રવ્ય-ભાવના નિમિત્ત-નૈમિત્તિકભાવને જણાવે છે. માટે એમ ઠર્યું કે પરદ્રવ્ય તો નિમિત્ત છે અને રાગાદિભાવો નૈમિત્તિક છે. આ રીતે આત્મા રાગાદિભાવોને સ્વયમેવ નહિ કરતો હોવાથી તે રાગાદિ-ભાવોનો અકર્તા જ છે એમ સિદ્ધ થયું. આ પ્રમાણે જોકે આ આત્મા રાગાદિભાવોનો અકર્તા જ છે તોપણ જ્યાંસુધી તેને નિમિત્તભૂત પરદ્રવ્યનાં અપ્રતિક્રમણ-અપ્રત્યાખ્યાન છે ત્યાંસુધી તેને રાગાદિભાવોનાં અપ્રતિક્રમણ-અપ્રત્યાખ્યાન છે, અને જ્યાંસુધી રાગાદિભાવોનાં અપ્રતિક્રમણ-અપ્રત્યાખ્યાન છે ત્યાંસુધી તે રાગાદિભાવોનો કર્તા જ છે; જ્યારે તે નિમિત્તભૂત પરદ્રવ્યનાં પ્રતિક્રમણ-પ્રત્યાખ્યાન કરે ત્યારે તેને નૈમિત્તિક રાગાદિભાવોનાં પણ પ્રતિક્રમણ-પ્રત્યાખ્યાન થઈ જાય છે, અને જ્યારે રાગાદિભાવોનાં પ્રતિક્રમણ-પ્રત્યાખ્યાન થઈ જાય છે ત્યારે તે સાક્ષાત્ અકર્તા જ છે. ૨૮૩-૨૮૫.

હવે દ્રવ્ય અને ભાવના નિમિત્ત-નૈમિત્તિકપણાનું ઉદાહરણ કહે છે:—

आधाकम्माईया पुग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा ।
कह ते कुव्वइ णाणी परदव्वगुणा उ जे णिच्चं ॥ २८६ ॥

આધાકરમ ઇત્યાદિ પુદ્ગલદ્રવ્યના આ દોષ છે,
તે કેમ 'જ્ઞાની' કરે સદા પરદ્રવ્યના જે ગુણ છે?

आधाकम्मं उद्देसियं च पुग्गलमयं इमं दव्वं ।
कह तं मम होइ कयं जं णिच्चमचेयणं उत्तं ॥ २८७ ॥

अधःकर्माद्याः पुद्गलद्रव्यस्य य इमे दोषाः ।
कथं तान् करोति ज्ञानी परद्रव्यगुणास्तु ये नित्यम् ॥ २८६ ॥

अधःकर्मोद्देशिकं च पुद्गलमयमिदं द्रव्यं ।
कथं तन्मम भवति कृतं यन्नित्यमचेतनमुक्तम् ॥ २८७ ॥

અન્વયાર્થઃ—[अधःकर्माद्याः ये इमे] અધઃકર્મ આદિ જે આ [पुद्गलद्रव्यस्य दोषाः] પુદ્ગલદ્રવ્યના દોષો છે (તેમને જ્ઞાની અર્થાત્ આત્મા કરતો નથી;) [तान्] તેમને [ज्ञानी] જ્ઞાની અર્થાત્ આત્મા [कथं करोति] કેમ કરે [ये तु] કે જે [नित्यं] સદા [परद्रव्यगुणाः] પરદ્રવ્યના ગુણો છે?

માટે [अधःकर्म उद्देशिकं च] અધઃકર્મ અને ઉદ્દેશિક [इदं] એવું [पुद्गलमयं द्रव्यं] પુદ્ગલમય દ્રવ્ય છે (તે મારું કર્યું થતું નથી;) [तद्] તે [मम कृतं] મારું કર્યું [कथं भवति] કેમ થાય [यद्] કે જે [नित्यं] સદા [अचेतनं उक्तं] અચેતન કહેવામાં આવ્યું છે?

ટીકાઃ—જેમ અધઃકર્મથી નીપજેલું અને ઉદ્દેશથી નીપજેલું એવું જે નિમિત્તભૂત (આહાર આદિ) પુદ્ગલદ્રવ્ય તેને નહિ પચખતો આત્મા (-મુનિ) નૈમિત્તિકભૂત બંધસાધક ભાવને પચખતો (ત્યાગતો) નથી, તેમ સમસ્ત પરદ્રવ્યને નહિ પચખતો (-નહિ ત્યાગતો) આત્મા તેના નિમિત્તે થતા ભાવને પચખતો (ત્યાગતો) નથી. વળી, "અધઃકર્મ આદિ જે પુદ્ગલદ્રવ્યના દોષો તેમને આત્મા ખરેખર કરતો નથી કારણ કે તેઓ પરદ્રવ્યનાં પરિણામ હોવાથી તેમને આત્માના કાર્યપણાનો અભાવ છે; માટે અધઃકર્મ અને ઉદ્દેશિક એવું જે પુદ્ગલદ્રવ્ય તે મારું કાર્ય નથી કારણ કે તે નિત્ય અચેતન હોવાથી તેને મારા કાર્યપણાનો અભાવ છે;"—એમ તત્ત્વજ્ઞાનપૂર્વક નિમિત્તભૂત પુદ્ગલદ્રવ્યને પચખતો આત્મા (-મુનિ) જેમ નૈમિત્તિકભૂત બંધસાધક ભાવને પચખે છે, તેમ સમસ્ત પરદ્રવ્યને પચખતો (ત્યાગતો) આત્મા તેના નિમિત્તે થતા ભાવને પચખે છે. આ પ્રમાણે દ્રવ્ય અને ભાવને નિમિત્ત-નૈમિત્તિકપણું છે.

ઉદ્દેશી તેમ જ અધઃકર્મી પૌદ્ગલિક આ દ્રવ્ય જો,
તે કેમ મુજકૃત હોય નિત્ય અજીવ ભાખ્યું જેહને? ૨૮૭.

ભાવાર્થઃ—અહીં અધઃકર્મ અને ઉદ્દેશિક આહારના દૃષ્ટાંતથી દ્રવ્ય અને ભાવનું નિમિત્ત-નૈમિત્તિકપણું દૃઢ કર્યું છે.

જે પાપકર્મથી આહાર નીપજે તે પાપકર્મને અધઃકર્મ કહેવામાં આવે છે, તેમ જ તે આહારને પણ અધઃકર્મ કહેવામાં આવે છે. જે આહાર, ગ્રહણ કરનારના નિમિત્તે જ બનાવવામાં આવ્યો હોય તેને ઉદ્દેશિક કહેવામાં આવે છે. આવા (અધઃકર્મ અને ઉદ્દેશિક) આહારને જેણે પચખ્યો નથી તેણે તેના નિમિત્તે થતા ભાવને પચખ્યો નથી અને જેણે તત્ત્વજ્ઞાનપૂર્વક તે આહારને પચખ્યો છે તેણે તેના નિમિત્તે થતા ભાવને પચખ્યો છે. આ રીતે સમસ્ત દ્રવ્યને અને ભાવને નિમિત્ત-નૈમિત્તિકભાવ જાણવો. જે પરદ્રવ્યને ગ્રહણ કરે છે તેને રાગાદિભાવો પણ થાય છે, તે તેમનો કર્તા પણ થાય છે અને તેથી કર્મનો બંધ પણ કરે છે; જ્યારે આત્મા જ્ઞાની થાય છે ત્યારે તેને કાંઈ ગ્રહણ કરવાનો રાગ નથી, તેથી રાગાદિરૂપ પરિણમન પણ નથી અને તેથી આગામી બંધ પણ નથી. એ રીતે જ્ઞાની પરદ્રવ્યનો કર્તા નથી.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે, જેમાં પરદ્રવ્યને ત્યાગવાનો ઉપદેશ કરે છેઃ—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

इत्यालोच्य विवेच्य तत्किल परद्रव्यं समग्रं बलात्
तन्मूलां बहुभावसन्ततिमिमामुद्धर्तुकामः समम् ।
आत्मानं समुपैति निर्भरवहत्पूर्णैकसंविद्युतं
येनोन्मूलितबन्ध एष भगवानात्मात्मनि स्फूर्जति ॥ १७८ ॥

અર્થઃ—આમ (પરદ્રવ્યનું અને પોતાના ભાવનું નિમિત્ત-નૈમિત્તિકપણું) વિચારીને, પરદ્રવ્ય જેનું મૂળ છે એવી આ બહુ ભાવોની સંતતિને એકીસાથે ઉખેડી નાખવાને ઇચ્છતો પુરુષ, તે સમસ્ત પરદ્રવ્યને બળથી (-ઉદ્યમથી, પરાક્રમથી) ભિન્ન કરીને (-ત્યાગીને), અતિશયપણે વહેતું (-ધારાવાહી) જે પૂર્ણ એક સંવેદન તેનાથી યુક્ત એવા પોતાના આત્માને પામે છે, કે જેથી જેણે કર્મબંધનને મૂળથી ઉખેડી નાખ્યું છે એવો આ ભગવાન આત્મા પોતામાં જ (-આત્મામાં જ) સ્ફુરાયમાન થાય છે.

ભાવાર્થઃ—પરદ્રવ્યનું અને પોતાના ભાવનું નિમિત્ત-નૈમિત્તિકપણું જાણી સમસ્ત પરદ્રવ્યને ભિન્ન કરવામાં—ત્યાગવામાં આવે ત્યારે સમસ્ત રાગાદિભાવોની સંતતિ કપાઈ જાય છે અને ત્યારે આત્મા પોતાનો જ અનુભવ કરતો થકો કર્મના બંધનને કાપી પોતામાં જ પ્રકાશે છે. માટે જે પોતાનું હિત ચાહે છે તે એમ કરે.

आधाकम्मं उद्देसियं च पुग्गलमयं इमं दव्वं ।
कह तं मम होइ कयं जं णिच्चमचेयणं उत्तं ॥ २८७ ॥

अधःकर्माद्याः पुद्गलद्रव्यस्य य इमे दोषाः ।
कथं तान् करोति ज्ञानी परद्रव्यगुणास्तु ये नित्यम् ॥ २८६ ॥

अधःकर्मोद्देशिकं च पुद्गलमयमिदं द्रव्यं ।
कथं तन्मम भवति कृतं यन्नित्यमचेतनमुक्तम् ॥ २८७ ॥

અન્વયાર્થઃ—[अधःकर्माद्याः ये इमे] અધઃકર્મ આદિ જે આ [पुद्गलद्रव्यस्य दोषाः] પુદ્‌ગલદ્રવ્યના દોષો છે (તેમને જ્ઞાની અર્થાત્ આત્મા કરતો નથી;) [तान्] તેમને [ज्ञानी] જ્ઞાની અર્થાત્ આત્મા [कथं करोति] કેમ કરે [ये तु] કે જે [नित्यं] સદા [परद्रव्यगुणाः] પરદ્રવ્યના ગુણો છે?

માટે [अधःकर्म उद्देशिकं च] અધઃકર્મ અને ઉદ્દેશિક [इदं] એવું [पुद्गलमयं द्रव्यं] પુદ્‌ગલમય દ્રવ્ય છે (તે મારું કર્યું થતું નથી;) [तद्] તે [मम कृतं] મારું કર્યું [कथं भवति] કેમ થાય [यद्] કે જે [नित्यं] સદા [अचेतनं उक्तं] અચેતન કહેવામાં આવ્યું છે?

ટીકાઃ—જેમ અધઃકર્મથી નીપજેલું અને ઉદ્દેશથી નીપજેલું એવું જે નિમિત્તભૂત (આહાર આદિ) પુદ્‌ગલદ્રવ્ય તેને નહિ પચખતો આત્મા (-મુનિ) નૈમિત્તિકભૂત બંધસાધક ભાવને પચખતો (ત્યાગતો) નથી, તેમ સમસ્ત પરદ્રવ્યને નહિ પચખતો (-નહિ ત્યાગતો) આત્મા તેના નિમિત્તે થતા ભાવને પચખતો (ત્યાગતો) નથી. વળી, "અધઃકર્મ આદિ જે પુદ્‌ગલદ્રવ્યના દોષો તેમને આત્મા ખરેખર કરતો નથી કારણ કે તેઓ પરદ્રવ્યનાં પરિણામ હોવાથી તેમને આત્માના કાર્યપણાનો અભાવ છે; માટે અધઃકર્મ અને ઉદ્દેશિક એવું જે પુદ્‌ગલદ્રવ્ય તે મારું કાર્ય નથી કારણ કે નિત્ય અચેતન હોવાથી તેને મારા કાર્યપણાનો અભાવ છે;"—એમ તત્ત્વજ્ઞાનપૂર્વક નિમિત્તભૂત પુદ્‌ગલદ્રવ્યને પચખતો આત્મા (-મુનિ) જેમ નૈમિત્તિકભૂત બંધસાધક ભાવને પચખે છે, તેમ સમસ્ત પરદ્રવ્યને પચખતો (ત્યાગતો) આત્મા તેના નિમિત્તે થતા ભાવને પચખે છે. આ પ્રમાણે દ્રવ્ય અને ભાવને નિમિત્ત-નૈમિત્તિકપણું છે.

ઉદ્દેશી તેમ જ અધઃકર્મી પૌદ્‌ગલિક આ દ્રવ્ય જે,
તે કેમ મુજકૃત હોય નિત્ય અજીવ ભાખ્યું જેહને? ૨૮૭.

ભાવાર્થ:—અહીં અધ:કર્મ અને ઉદ્દેશિક આહારના દૃષ્ટાંતથી દ્રવ્ય અને
ાવનું નિમિત્ત-નૈમિત્તિકપણું દૃઢ કર્યું છે.

જે પાપકર્મથી આહાર નીપજે તે પાપકર્મને અધ:કર્મ કહેવામાં આવે છે,
મ જ તે આહારને પણ અધ:કર્મ કહેવામાં આવે છે. જે આહાર, ગ્રહણ કરનારના
નિમિત્તે જ બનાવવામાં આવ્યો હોય તેને ઉદ્દેશિક કહેવામાં આવે છે. આવા (અધ:કર્મ
અને ઉદ્દેશિક) આહારને જેણે પચખ્યો નથી તેણે તેના નિમિત્તે થતા ભાવને પચખ્યો
થી અને જેણે તત્ત્વજ્ઞાનપૂર્વક તે આહારને પચખ્યો છે તેણે તેના નિમિત્તે થતા ભાવને
ચખ્યો છે. આ રીતે સમસ્ત દ્રવ્યને અને ભાવને નિમિત્ત-નૈમિત્તિકભાવ જાણવો. જે
રદ્રવ્યને ગ્રહણ કરે છે તેને રાગાદિભાવો પણ થાય છે, તે તેમનો કર્તા પણ થાય છે
અને તેથી કર્મનો બંધ પણ કરે છે; જ્યારે આત્મા જ્ઞાની થાય છે ત્યારે તેને કાંઈ ગ્રહણ
રવાનો રાગ નથી, તેથી રાગાદિરૂપ પરિણમન પણ નથી અને તેથી આગામી બંધ
ણ નથી. એ રીતે જ્ઞાની પરદ્રવ્યનો કર્તા નથી.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે, જેમાં પરદ્રવ્યને ત્યાગવાનો ઉપ-
દેશ કરે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

इत्यालोच्य विवेच्य तत्किल परद्रव्यं समग्रं बलात्
तन्मूलां बहुभावसंततिमिमामुद्धर्तुकामः समम् ।
आत्मानं समुपैति निर्भरवहत्पूर्णैकसंविद्युतं
येनोन्मूलितबंध एष भगवानात्मात्मनि स्फूर्जति ॥ १७८ ॥

અર્થ:—આમ (પરદ્રવ્યનું અને પોતાના ભાવનું નિમિત્ત-નૈમિત્તિકપણું)
વિચારીને, પરદ્રવ્ય જેનું મૂળ છે એવી આ બહુ ભાવોની સંતતિને [illegible]
નાખવાને ઇચ્છતો પુરુષ, તે સમસ્ત પરદ્રવ્યને બળથી (-ઉદ્યમથી, પરાક્રમથી) [illegible]
કરીને (-ત્યાગીને), અતિશયપણે વહેતું (-ધારાવાહી) જે પૂર્ણ [illegible]
યુક્ત એવા પોતાના આત્માને પામે છે, કે જેથી જેણે [illegible]
નાખ્યું છે એવો આ ભગવાન આત્મા પોતામાં જ (આત્મામાં જ) [illegible]
થાય છે.

ભાવાર્થ:—પરદ્રવ્યનું અને પોતાના [illegible] નિમિત્ત-નૈમિત્તિકપણું [illegible]
સમસ્ત પરદ્રવ્યને ભિન્ન કરવામાં— [illegible]
તિ કપાઈ જાય છે અને [illegible]
ને કાપી પોતામાં જ [illegible] તેવું છે.

ભાવાર્થઃ—જ્ઞાન બંધ-પુરુષને જુદા કરીને, પુરુષને મોક્ષ પમાડું
પોતાનું સંપૂર્ણ સ્વરૂપ પ્રગટ કરીને જયવંત પ્રવર્તે છે. આમ જ્ઞાનનું સર્વોત્
કહેવું તે જ મંગળવચન છે.

હવે, મોક્ષની પ્રાપ્તિ કઈ રીતે થાય છે તે કહે છે. તેમાં પ્રથમ તો, જે
બંધનો છેદ કરતો નથી પરંતુ માત્ર બંધના સ્વરૂપને જાણવાથી જ સંતુષ્ટ છે તે
પામતો નથી—એમ કહે છેઃ—

जह णाम कोवि पुरिसो बंधणयम्मि चिरकालपडिबद्धो ।
तिव्वं मंदसहावं कालं च वियाणए तस्स ॥ २८८ ॥
जइ णवि कुणइ च्छेदं ण मुच्चए तेण बंधणवसो सं ।
कालेण उ बहुएण वि ण सो णरो पावइ विमोक्खं ॥ २८९ ॥
इय कम्मबंधणाणं पएसठिइपयडिमेवमणुभावं ।
जाणंतो वि ण मुच्चइ मुच्चइ सो चेव जइ सुद्धो ॥ २९० ॥

यथा नाम कश्चित्पुरुषो बंधनके चिरकालप्रतिबद्धः ।
तीव्रमंदस्वभावं कालं च विजानाति तस्य ॥ २८८ ॥
यदि नापि करोति च्छेदं न मुच्यते तेन बंधनवशः सन् ।
कालेन तु बहुकेनापि न स नरः प्राप्नोति विमोक्षम् ॥ २८९ ॥
इति कर्मबंधनानां प्रदेशस्थितिप्रकृतिमेवमनुभागम् ।
जानन्नपि न मुच्यते मुच्यते स चैव यदि शुद्धः ॥ २९० ॥

જ્યમ પુરુષ કો બંધન મહીં પ્રતિબદ્ધ જે ચિરકાળનો,
તે તીવ્ર-મંદ સ્વભાવ તેમ જ કાળ જાણે બંધનો. ૨૮૮.
પણ જો કરે નહિ છેદ તો ન મુકાય, બંધનવશ રહે,
ને કાળ બહુયે જાય તોપણ મુક્ત તે નર નહિ બને; ૨૮૯.
ત્યમ કર્મબંધનના પ્રકૃતિ, પ્રદેશ, સ્થિતિ, અનુભાગને
જાણે છતાં ન મુકાય જીવ, જો શુદ્ધ તો જ મુકાય છે. ૨૯૦.

અન્વયાર્થઃ—[यथा नाम] જેવી રીતે [बंधनके] બંધનમાં [चिरकाल-
बद्धः] ઘણા કાળથી બંધાયેલો [कश्चित् पुरुषः] કોઈ પુરુષ [तस्य] તે બંધનના
तीव्रमंदस्वभावं] તીવ્ર-મંદ (આકરા–ઢીલા) સ્વભાવને [कालं च] અને કાળને
અર્થાત્ આ બંધન આટલા કાળથી છે એમ) [विजानाति] જાણે છે, [यदि] પરંતુ
[न अपि छेदं करोति] તે બંધનને પોતે કાપતો નથી [तेन न मुच्यते] તો તેનાથી
તો નથી [तु] અને [बंधनवशः सन्] બંધનવશ રહેતો થકો [बहुकेन अपि कालेन]
ા કાળે પણ [सः नरः] તે પુરુષ [विमोक्षं न प्राप्नोति] બંધનથી છૂટવારૂપ મોક્ષને
મતો નથી; [इति] તેવી રીતે જીવ [कर्मबंधनानां] કર્મ-બંધનોનાં [प्रदेशस्थिति-
तिं एवं अनुभागं] પ્રદેશ, સ્થિતિ, પ્રકૃતિ તેમ જ અનુભાગને [जानन् अपि]
ણતાં છતાં પણ [न मुच्यते] (કર્મબંધથી) છૂટતો નથી, [च यदि सः एव शुद्धः]
તુ જો પોતે (રાગાદિને દૂર કરી) શુદ્ધ થાય [मुच्यते] તો જ છૂટે છે.

ટીકાઃ—આત્મા અને બંધનું દ્વિધાકરણ (અર્થાત્ આત્મા અને બંધને જુદા
ા કરવા) તે મોક્ષ છે. 'બંધના સ્વરૂપનું જ્ઞાનમાત્ર મોક્ષનું કારણ છે (અર્થાત્
બંધના સ્વરૂપને જાણવામાત્રથી જ મોક્ષ થાય છે)' એમ કેટલાક કહે છે, તે અસત્
કર્મથી બંધાયેલાને બંધના સ્વરૂપનું જ્ઞાનમાત્ર મોક્ષનું કારણ નથી, કેમ કે જેમ
ી આદિથી બંધાયેલાને બંધના સ્વરૂપનું જ્ઞાનમાત્ર બંધથી છૂટવાનું કારણ નથી તેમ
ર્થી બંધાયેલાને કર્મબંધના સ્વરૂપનું જ્ઞાનમાત્ર કર્મબંધથી છૂટવાનું કારણ નથી.
ાથી (આ કથનથી), જેઓ કર્મબંધના પ્રપંચની (-વિસ્તારની) રચનાના જ્ઞાન-
ાત્રથી સંતુષ્ટ છે તેમને ઉત્થાપવામાં આવે છે.

ભાવાર્થઃ—બંધનું સ્વરૂપ જાણવાથી જ મોક્ષ છે એમ કોઈ અન્યમતી માને
. તેમની એ માન્યતાનું આ કથનથી નિરાકરણ જાણવું. જાણવામાત્રથી જ બંધ
ાથી કપાતો; બંધ તો કાપવાથી જ કપાય છે. ૨૮૮—૨૯૦.

બંધના વિચાર કર્યા કરવાથી પણ બંધ કપાતો નથી એમ હવે કહે છેઃ—

जह बंधे चिंतंतो बंधणबद्धो ण पावइ विमोक्खं ।
तह बंधे चिंतंतो जीवो वि ण पावइ विमोक्खं ॥ २९१ ॥

यथा बंधांश्चिन्तयन् बंधनबद्धो न प्राप्नोति विमोक्षम् ।
तथा बंधांश्चिन्तयन् जीवोऽपि न प्राप्नोति विमोक्षम् ॥ २९१ ॥

બંધન મહીં જે બદ્ધ તે નહિ બંધચિંતાથી છૂટે,
ત્યમ જીવ પણ બંધો તણી ચિંતા કર્યાથી નવ છૂટે. ૨૯૧.

અન્વયાર્થ:—[यथा] જેમ [बंधनबद्धः] બંધનથી બંધાયેલો પુ[રુષ] [बंधान्
चिंतयन्] બંધોના વિચાર કરવાથી [विमोक्षं न प्राप्नोति] મોક્ષ પામતો ન[થી (અર્થાત્
બંધથી છૂટતો નથી), [तथा] તેમ [जीवः अपि] જીવ પણ [बंधान्
બંધોના વિચાર કરવાથી [विमोक्षं न प्राप्नोति] મોક્ષ પામતો નથી.

ટીકા:—'બંધ સંબંધી વિચારશૃંખલા મોક્ષનું કારણ છે' —
કેટલાક કહે છે, તે પણ અસત્ છે; કર્મથી બંધાયેલાને બંધ સંબંધી વિચાર[શૃંખલા]
મોક્ષનું કારણ નથી, કેમ કે જેમ બેડી આદિથી બંધાયેલાને તે બંધ સંબંધી [વિચાર]
શૃંખલા (-વિચારની પરંપરા) બંધથી છૂટવાનું કારણ નથી તેમ કર્મથી બ[ંધાયેલાને]
કર્મબંધ સંબંધી વિચારશૃંખલા કર્મબંધથી છૂટવાનું કારણ નથી. આ[...]
કથનથી), કર્મબંધ સંબંધી વિચારશૃંખલાત્મક વિશુદ્ધ (-શુભ) ધર્મ[...]
જેમની બુદ્ધિ અંધ છે તેમને સમજાવવામાં આવે છે.

ભાવાર્થ:—કર્મબંધની ચિંતામાં મન લાગ્યું રહે તો પણ મોક્ષ [...]
એ તો ધર્મધ્યાનરૂપ શુભ પરિણામ છે. જેઓ કેવળ શુભ પરિણામથી જ મો[ક્ષ માને]
છે તેમને અહીં ઉપદેશ છે કે—શુભ પરિણામથી મોક્ષ થતો નથી. ૨૯૧.

"(જો બંધના સ્વરૂપના જ્ઞાનમાત્રથી પણ મોક્ષ નથી અને બંધના [...]
કરવાથી પણ મોક્ષ નથી) તો મોક્ષનું કારણ શું છે?" એમ પૂછવામાં આવ[તાં]
મોક્ષનો ઉપાય કહે છે:—

जह बंधे छित्तूण य बंधणबद्धो उ पावइ विमोक्खं।
तह बंधे छित्तूण य जीवो संपावइ विमोक्खं ॥ २९२॥

यथा बंधांश्छित्वा च बंधनबद्धस्तु प्राप्नोति विमोक्षम् ।
तथा बंधांश्छित्वा च जीवः संप्राप्नोति विमोक्षम् ॥ २९२ ॥

અન્વયાર્થ:—[यथा च] જેમ [बंधनबद्धः तु] બંધનથી બંધાયે[લો પુરુષ]
[बंधान् छित्वा] બંધોને છેદીને [विमोक्षं प्राप्नोति] મોક્ષ પામે છે, [तथा च]
[जीवः] જીવ [बंधान् छित्वा] બંધોને છેદીને [विमोक्षं संप्राप्नोति] મોક્ષ પા[મે છે.]

બંધન મહીં જે બદ્ધ તે નર બંધછેદનથી છૂટે,
ત્યમ જીવ પણ બંધો તણું છેદન કરી મુક્તિ લહે. ૨૯૨.

ટીકાઃ—કર્મથી બંધાયેલાને બંધનો છેદ મોક્ષનું કારણ છે, કેમ કે જેમ બે આદિથી બંધાયેલાને બંધનો છેદ બંધથી છૂટવાનું કારણ છે તેમ કર્મથી બંધાયેલા કર્મબંધનો છેદ કર્મબંધથી છૂટવાનું કારણ છે. આથી (-આ કથનથી), પૂર્વે કહેલ બન્નેને (-જેઓ બંધના સ્વરૂપના જ્ઞાનમાત્રથી સંતુષ્ટ છે તેમને અને જેઓ બંધન વિચાર કર્યા કરે છે તેમને-) આત્મા અને બંધના દ્વિધાકરણમાં વ્યાપાર કરાવવામાં આવે છે (અર્થાત્ આત્મા અને બંધને જુદા જુદા કરવા પ્રત્યે લગાડવામાં—જોડવામાં— ઉદ્યમ કરાવવામાં આવે છે). ૨૯૨.

'માત્ર આ જ (અર્થાત્ બંધનો છેદ જ) મોક્ષનું કારણ કેમ છે?' એમ પૂછવામાં આવતાં હવે તેનો ઉત્તર કહે છેઃ—

बंधाणं च सहावं वियाणिओ अप्पणो सहावं च ।
बंधेसु जो विरज्जदि सो कम्मविमोक्खणं कुणइ ॥ २९३ ॥

बंधानां च स्वभावं विज्ञायात्मनः स्वभावं च ।
बंधेषु यो विरज्यते स कर्मविमोक्षणं करोति ॥ २९३ ॥

અન્વયાર્થઃ—[बंधानां स्वभावं च] બંધોના સ્વભાવને [आत्मनः स्वभावं] અને આત્માના સ્વભાવને [विज्ञाय] જાણીને [बंधेषु] બંધો પ્રત્યે [यः] જે [विरज्यते] વિરક્ત થાય છે, [सः] તે [कर्मविमोक्षणं करोति] કર્મોથી મુકાય છે.

ટીકાઃ—જે, નિર્વિકારચૈતન્યચમત્કારમાત્ર આત્મસ્વભાવને (આત્માના સ્વ- ને) અને તેને (અર્થાત્ આત્માને) વિકાર કરનારા એવા બંધોના સ્વભાવને જાણીને, ધી વિરમે છે, તે જ સર્વ કર્મોથી મુકાય છે. આથી (-આ કથનથી), આ બંધનું દ્વિધાકરણ જ મોક્ષનું કારણ છે એવો નિયમ કરવામાં આવે છે (અર્થાત્ આ અને બંધને જુદા જુદા કરવા તે જ મોક્ષનું કારણ છે એમ નક્કી કરવામાં આવે છે). ૨૯૩.

'આત્મા અને બંધ શા વડે દ્વિધા કરાય છે (અર્થાત્ કયા સાધન વડે જુદા કરી શકાય છે)?' એમ પૂછવામાં આવતાં હવે તેનો ઉત્તર કહે છેઃ—

બંધો તણા જાણી સ્વભાવ, સ્વભાવ જાણી આત્મનો,
જે બંધ માંહી વિરક્ત થાયે, કર્મમોક્ષ કરે અહો! ૨૯૩.

અન્વયાર્થ:—[यथा] જેમ [बंधनबद्धः] બંધનથી બંધાયેલો પુરુષ [बंधान् चिंतयन्] બંધોના વિચાર કરવાથી [विमोक्षं न प्राप्नोति] મોક્ષ પામતો નથી (અર્થાત્ બંધથી છૂટતો નથી), [तथा] તેમ [जीवः अपि] જીવ પણ [बंधान् चिंतयन्] બંધોના વિચાર કરવાથી [विमोक्षं न प्राप्नोति] મોક્ષ પામતો નથી.

ટીકા:—'બંધ સંબંધી વિચારશૃંખલા મોક્ષનું કારણ છે' એમ બીજા કેટલાક કહે છે, તે પણ અસત્ છે; કર્મથી બંધાયેલાને બંધ સંબંધી વિચારની શૃંખલા મોક્ષનું કારણ નથી, કેમ કે જેમ બેડી આદિથી બંધાયેલાને તે બંધ સંબંધી વિચારશૃંખલા (-વિચારની પરંપરા) બંધથી છૂટવાનું કારણ નથી તેમ કર્મથી બંધાયેલાને કર્મબંધ સંબંધી વિચારશૃંખલા કર્મબંધથી છૂટવાનું કારણ નથી. આથી (-આ કથનથી), કર્મબંધ સંબંધી વિચારશૃંખલાત્મક વિશુદ્ધ (-શુભ) ધર્મધ્યાન વડે જેમની બુદ્ધિ અંધ છે તેમને સમજાવવામાં આવે છે.

ભાવાર્થ:—કર્મબંધની ચિંતામાં મન લાગ્યું રહે તો પણ મોક્ષ થતો નથી. એ તો ધર્મધ્યાનરૂપ શુભ પરિણામ છે. જેઓ કેવળ શુભ પરિણામથી જ મોક્ષ માને છે તેમને અહીં ઉપદેશ છે કે—શુભ પરિણામથી મોક્ષ થતો નથી. ૨૯૧.

"(જો બંધના સ્વરૂપના જ્ઞાનમાત્રથી પણ મોક્ષ નથી અને બંધના વિચાર કરવાથી પણ મોક્ષ નથી) તો મોક્ષનું કારણ શું છે?" એમ પૂછવામાં આવતાં હવે મોક્ષનો ઉપાય કહે છે:—

जह बंधे छित्तूण य बंधणबद्धो उ पावइ विमोक्खं ।
तह बंधे छित्तूण य जीवो संपावइ विमोक्खं ॥ २९२ ॥

यथा बंधांश्छित्त्वा च बंधनबद्धस्तु प्राप्नोति विमोक्षम् ।
तथा बंधांश्छित्त्वा च जीवः संप्राप्नोति विमोक्षम् ॥ २९२ ॥

અન્વયાર્થ:—[यथा च] જેમ [बंधनबद्धः तु] બંધનથી બંધાયેલો પુરુષ [बंधान् छित्त्वा] બંધોને છેદીને [विमोक्षं प्राप्नोति] મોક્ષ પામે છે, [तथा च] તેમ [जीवः] જીવ [बंधान् छित्त्वा] બંધોને છેદીને [विमोक्षं संप्राप्नोति] મોક્ષ પામે છે.

બંધન મહીં જે બદ્ધ તે નર બંધછેદનથી છૂટે,
ત્યમ જીવ પણ બંધો તણું છેદન કરી મુક્તિ લહે. ૨૯૨.

ટીકા:—કર્મથી બંધાયેલાને બંધનો છેદ મોક્ષનું કારણ છે, કેમ કે જેમ બેડી આદિથી બંધાયેલાને બંધનો છેદ બંધથી છૂટવાનું કારણ છે તેમ કર્મથી બંધાયેલાને કર્મબંધનો છેદ કર્મબંધથી છૂટવાનું કારણ છે. આથી (-આ કથનથી), પૂર્વે કહેલા બન્નેને (-જેઓ બંધના સ્વરૂપના જ્ઞાનમાત્રથી સંતુષ્ટ છે તેમને અને જેઓ બંધના વિચાર કર્યા કરે છે તેમને-) આત્મા અને બંધના દ્વિધાકરણમાં વ્યાપાર કરાવવામાં આવે છે (અર્થાત્ આત્મા અને બંધને જુદા જુદા કરવા પ્રત્યે લગાડવામાં—જોડવામાં—ઉદ્યમ કરાવવામાં આવે છે). ૨૯૨.

'માત્ર આ જ (અર્થાત્ બંધનો છેદ જ) મોક્ષનું કારણ કેમ છે?' એમ પૂછવામાં આવતાં હવે તેનો ઉત્તર કહે છે:—

बंधाणं च सहावं वियाणिओ अप्पणो सहावं च ।
बंधेसु जो विरज्जदि सो कम्मविमोक्खणं कुणइ ॥२९३॥

बंधानां च स्वभावं विज्ञायात्मनः स्वभावं च ।
बंधेषु यो विरज्यते स कर्मविमोक्षणं करोति ॥ २९३ ॥

અન્વયાર્થ:—[बंधानां स्वभावं च] બંધોના સ્વભાવને [आत्मनः स्वभावं च] અને આત્માના સ્વભાવને [विज्ञाय] જાણીને [बंधेषु] બંધો પ્રત્યે [यः] જે [विरज्यते] વિરક્ત થાય છે, [सः] તે [कर्मविमोक्षणं करोति] કર્મોથી મુકાય છે.

ટીકા:—જે, નિર્વિકારચૈતન્યચમત્કારમાત્ર આત્મસ્વભાવને (આત્માના સ્વભાવને) અને તેને (અર્થાત્ આત્માને) વિકાર કરનારા એવા બંધોના સ્વભાવને જાણીને, બંધોથી વિરમે છે, તે જ સર્વ કર્મોથી મુકાય છે. આથી (-આ કથનથી), આત્મા અને બંધનું દ્વિધાકરણ જ મોક્ષનું કારણ છે એવો નિયમ કરવામાં આવે છે (અર્થાત્ આત્મા અને બંધને જુદા જુદા કરવા તે જ મોક્ષનું કારણ છે એમ નક્કી કરવામાં આવે છે). ૨૯૩.

'આત્મા અને બંધ શા વડે દ્વિધા કરાય છે (અર્થાત્ કયા સાધન વડે જુદા કરી શકાય છે)?' એમ પૂછવામાં આવતાં હવે તેનો ઉત્તર કહે છે:—

બંધો તણો જાણી સ્વભાવ, સ્વભાવ જાણી આત્મનો,
જે બંધ માંહી વિરક્ત થાયે, કર્મમોક્ષ કરે અહો! ૨૯૩.

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं ।
पण्णाछेदणएण उ छिण्णा णाणत्तमावण्णा ॥ २९४ ॥

जीवो बंधश्च तथा छिद्येते स्वलक्षणाभ्यां नियताभ्याम् ।
प्रज्ञाछेदनकेन तु छिन्नौ नानात्वमापन्नौ ॥ २९४ ॥

અન્વયાર્થ:—[जीवः च तथा बंधः] જીવ તથા બંધ [नियताभ्यां स्वलक्षणाभ्यां] નિયત સ્વલક્ષણોથી (પોતપોતાના નિશ્ચિત લક્ષણોથી) [छिद्येते] છેદાય છે; [प्रज्ञाछेदनकेन] પ્રજ્ઞારૂપી છીણી વડે [छिन्नौ तु] છેદવામાં આવતાં [नानात्वं आपन्नौ] તેઓ નાનાપણાને પામે છે અર્થાત્ જુદા પડી જાય છે.

ટીકા:—આત્મા અને બંધને દ્વિધા કરવારૂપ કાર્યમાં કર્તા જે આત્મા તેના [1]કરણ સંબંધી [2]મીમાંસા કરવામાં આવતાં, નિશ્ચયે (નિશ્ચયનયે) પોતાથી ભિન્ન કરણનો અભાવ હોવાથી ભગવતી પ્રજ્ઞા જ (-જ્ઞાનસ્વરૂપ બુદ્ધિ જ) છેદનાત્મક (-છેદનના સ્વભાવવાળું) કરણ છે. તે પ્રજ્ઞા વડે તેમને છેદવામાં આવતાં તેઓ નાનાપણાને અવશ્ય પામે છે; માટે પ્રજ્ઞા વડે જ આત્મા અને બંધનું દ્વિધા કરવું છે (અર્થાત્ પ્રજ્ઞારૂપી કરણ વડે જ આત્મા ને બંધ જુદા કરાય છે).

(અહીં પ્રશ્ન થાય છે કે—) આત્મા અને બંધ કે જેઓ *ચેત્યચેતકભાવ વડે અત્યંત નિકટતાને લીધે એક (-એક જેવા-) થઈ રહ્યા છે, અને ભેદવિજ્ઞાનના અભાવને લીધે, જાણે તેઓ એક ચેતક જ હોય એમ જેમનો વ્યવહાર કરવામાં આવે છે (અર્થાત્ જેમને એક આત્મા તરીકે જ વ્યવહારમાં ગણવામાં આવે છે) તેઓ પ્રજ્ઞા વડે ખરેખર કઈ રીતે છેદી શકાય?

(તેનું સમાધાન આચાર્યદેવ કરે છે:—) આત્મા અને બંધના નિયત સ્વલક્ષણોની સૂક્ષ્મ અંતઃસંધિમાં (અંતરંગની સંધિમાં) પ્રજ્ઞાછીણીને સાવધાન થઈને પટકવાથી (-નાખવાથી, મારવાથી) તેમને છેદી શકાય છે અર્થાત્ જુદા કરી શકાય છે એમ અમે જાણીએ છીએ.

---

૧ કરણ = સાધન; કરણ નામનું કારક.

૨ મીમાંસા = ઊંડી વિચારણા; તપાસ; સમાલોચના.

* આત્મા ચેતક છે અને બંધ ચેત્ય છે; અજ્ઞાનદશામાં તેઓ એકરૂપ અનુભવાય છે.

જીવ બંધ બન્ને, નિયત નિજ નિજ લક્ષણે છેદાય છે,
પ્રજ્ઞાછીણી થકી છેદતાં બન્ને જુદા પડી જાય છે. ૨૯૪.

આત્માનું સ્વલક્ષણ ચૈતન્ય છે, કારણ કે તે સમસ્ત શેષ દ્રવ્યોથી અસાધારણ છે (અર્થાત્ અન્ય દ્રવ્યોમાં તે નથી). તે (ચૈતન્ય) પ્રવર્તતું થકું જે જે પર્યાયને વ્યાપીને પ્રવર્તે છે અને નિવર્તતું થકું જે જે પર્યાયને ગ્રહણ કરીને નિવર્તે છે તે તે સમસ્ત સહવર્તી કે ક્રમવર્તી પર્યાયો આત્મા છે એમ લક્ષિત કરવું—લક્ષણથી ઓળખવું (અર્થાત્ જે જે ગુણપર્યાયોમાં ચૈતન્યલક્ષણ વ્યાપે છે તે તે સમસ્ત ગુણપર્યાયો આત્મા છે એમ જાણવું) કારણ કે આત્મા તે જ એક લક્ષણથી લક્ષ્ય છે (અર્થાત્ ચૈતન્ય-લક્ષણથી જ ઓળખાય છે). વળી સમસ્ત સહવર્તી અને ક્રમવર્તી અનંત પર્યાયો સાથે ચૈતન્યનું અવિનાભાવીપણું હોવાથી ચિન્માત્ર જ આત્મા છે એમ નિશ્ચય કરવો. આટલું આત્માના સ્વલક્ષણ વિષે.

(હવે બંધના સ્વલક્ષણ વિષે કહેવામાં આવે છે:—) બંધનું સ્વલક્ષણ તો આત્મદ્રવ્યથી અસાધારણ એવા રાગાદિક છે. એ રાગાદિક આત્મદ્રવ્ય સાથે સાધારણપણું ધરતા (-ધારણ કરતા-) પ્રતિભાસતા નથી, કારણ કે તેઓ સદાય ચૈતન્યચમત્કારથી ભિન્નપણે પ્રતિભાસે છે. વળી જેટલું, ચૈતન્ય આત્માના સમસ્ત પર્યાયોમાં વ્યાપતું પ્રતિભાસે છે, તેટલા જ, રાગાદિક પ્રતિભાસતા નથી, કારણ કે રાગાદિક વિના પણ ચૈતન્યનો આત્મલાભ સંભવે છે (અર્થાત્ રાગાદિક ન હોય ત્યાં પણ ચૈતન્ય હોય છે). વળી જે, રાગાદિકનું ચૈતન્ય સાથે જ ઉપજવું થાય છે તે ચેત્યચેતકભાવની (-જ્ઞેય-જ્ઞાયકભાવની) અતિ નિકટતાને લીધે જ છે, એકદ્રવ્યપણાને લીધે નહિ; જેમ (દીપક વડે) પ્રકાશવામાં આવતા ઘટાદિક (પદાર્થો) દીપકના પ્રકાશકપણાને જ જાહેર કરે છે—ઘટાદિપણાને નહિ, તેમ (આત્મા વડે) ચેતવામાં આવતા રાગાદિક (અર્થાત્ જ્ઞાનમાં જ્ઞેયરૂપે જણાતા રાગાદિક ભાવો) આત્માના ચેતકપણાને જ જાહેર કરે છે—રાગાદિપણાને નહિ.

આમ હોવા છતાં તે બન્નેની (-આત્માની અને બંધની) અત્યંત નિકટતાને લીધે ભેદસંભાવનાનો અભાવ હોવાથી અર્થાત્ ભેદ નહિ દેખાતો હોવાથી (અજ્ઞાનીને) અનાદિ કાળથી એકપણાનો વ્યામોહ (ભ્રમ) છે; તે વ્યામોહ પ્રજ્ઞા વડે જ અવશ્ય છેદાય છે.

ભાવાર્થ:—આત્મા અને બંધ બન્નેને લક્ષણભેદથી ઓળખી બુદ્ધિરૂપી છીણીથી છેદી જુદા જુદા કરવા.

આત્મા તો અમૂર્તિક છે અને બંધ સૂક્ષ્મ પુદ્ગલપરમાણુઓનો સ્કંધ છે તેથી બન્ને જુદા છદ્મસ્થના જ્ઞાનમાં આવતા નથી, માત્ર એક સ્કંધ દેખાય છે (અર્થાત્ બન્ને એકપિંડરૂપ દેખાય છે); તેથી અનાદિ અજ્ઞાન છે. શ્રીગુરુઓનો ઉપદેશ પામી તેમનાં લક્ષણ જુદાં જુદાં અનુભવીને જાણવું કે ચૈતન્યમાત્ર તો આત્માનું લક્ષણ છે

અને રાગાદિક બંધનું લક્ષણ છે તોપણ માત્ર જ્ઞેયજ્ઞાયકભાવની અતિ નિકટતાથી તેઓ એક જેવા થઈ રહ્યા દેખાય છે. તેથી તીક્ષ્ણ બુદ્ધિરૂપી છીણીને—કે જે તેમને ભેદી જુદા જુદા કરવાનું શસ્ત્ર છે તેને—તેમની સૂક્ષ્મ સંધિ શોધીને તે સંધિમાં સાવધાન (નિષ્પ્રમાદ) થઈને પટકવી. તે પડતાં જ બન્ને જુદા જુદા દેખાવા લાગે છે. એમ બન્ને જુદા જુદા દેખાતાં, આત્માને જ્ઞાનભાવમાં જ રાખવો અને બંધને અજ્ઞાનભાવમાં રાખવો. એ રીતે બન્નેને ભિન્ન કરવા.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(સ્રગ્ધરા)

प्रज्ञाछेत्री शितेयं कथमपि निपुणैः पातिता सावधानैः
सूक्ष्मेऽन्तःसंधिबंधे निपतति रभसादात्मकर्मोभयस्य ।
आत्मानं मग्नमंतःस्थिरविशदलसद्धाम्नि चैतन्यपूरे
बंधं चाज्ञानभावे नियमितमभितः कुर्वती भिन्नभिन्नौ ॥ १८१ ॥

અર્થ:—આ પ્રજ્ઞારૂપી તીક્ષ્ણ છીણી પ્રવીણ પુરુષો વડે કોઈ પણ પ્રકારે (યત્નપૂર્વક) સાવધાનપણે (નિષ્પ્રમાદપણે) પટકવામાં આવી થકી, આત્મા અને કર્મ—બન્નેના સૂક્ષ્મ અંતરંગ સંધિના બંધમાં (અંદરની સાંધના જોડાણમાં) શીઘ્ર પડે છે. કેવી રીતે પડે છે? આત્માને તો જેનું તેજ અંતરંગમાં સ્થિર અને નિર્મળપણે દેદીપ્યમાન છે એવા ચૈતન્યપૂરમાં (ચૈતન્યના પ્રવાહમાં) મગ્ન કરતી અને બંધને અજ્ઞાનભાવમાં નિશ્ચળ (નિયત) કરતી—એ રીતે આત્મા અને બંધને સર્વ તરફથી ભિન્ન ભિન્ન કરતી પડે છે.

ભાવાર્થ:—અહીં આત્મા અને બંધને ભિન્ન ભિન્ન કરવારૂપ કાર્ય છે. તેનો કર્તા આત્મા છે. ત્યાં કરણ વિના કર્તા કોના વડે કાર્ય કરે? તેથી કરણ પણ જોઈએ. નિશ્ચયનયે કર્તાથી ભિન્ન કરણ હોતું નથી; માટે આત્માથી અભિન્ન એવી આ બુદ્ધિ જ આ કાર્યમાં કરણ છે. આત્માને અનાદિ બંધ જ્ઞાનાવરણાદિ કર્મ છે, તેમનું કાર્ય ભાવબંધ તો રાગાદિક છે અને નોકર્મ શરીરાદિક છે. માટે બુદ્ધિ વડે આત્માને શરીરથી, જ્ઞાનાવરણાદિક દ્રવ્યકર્મથી તથા રાગાદિક ભાવકર્મથી ભિન્ન એક ચૈતન્યભાવમાત્ર અનુભવી જ્ઞાનમાં જ લીન રાખવો તે જ (આત્મા ને બંધનું) ભિન્ન કરવું છે. તેનાથી જ સર્વ કર્મનો નાશ થાય છે, સિદ્ધપદને પમાય છે, એમ જાણવું. ૧૮૧.

'આત્મા અને બંધને દ્વિધા કરીને શું કરવું?' એમ પૂછવામાં આવતાં હવે તેનો ઉત્તર કહે છે:—

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं ।
बंधो छेएयव्वो सुद्धो अप्पा य घित्तव्वो ॥ २९५ ॥

जीवो बंधश्च तथा छिद्येते स्वलक्षणाभ्यां नियताभ्याम् ।
बंधश्छेत्तव्यः शुद्ध आत्मा च गृहीतव्यः ॥ २९५ ॥

અન્વયાર્થઃ—[तथा] એ રીતે [जीवः बंधः च] જીવ અને બંધ [नियताभ्यां स्वलक्षणाभ्यां] તેમનાં નિશ્ચિત સ્વલક્ષણોથી [छिद्येते] છેદાય છે. [बंधः] ત્યાં, બંધને [छेत्तव्यः] છેદવો અર્થાત્ છોડવો [च] અને [शुद्धः आत्मा] શુદ્ધ આત્માને [गृहीतव्यः] ગ્રહણ કરવો.

ટીકાઃ—આત્મા અને બંધને પ્રથમ તો તેમનાં નિયત સ્વલક્ષણોના જ્ઞાનથી સર્વથા જ છેદવા અર્થાત્ ભિન્ન કરવા; પછી, રાગાદિક જેનું લક્ષણ છે એવા સમસ્ત બંધને તો છોડવો અને ઉપયોગ જેનું લક્ષણ છે એવા શુદ્ધ આત્માને જ ગ્રહણ કરવો. આ જ ખરેખર આત્મા અને બંધને દ્વિધા કરવાનું પ્રયોજન છે કે બંધના ત્યાગથી (અર્થાત્ બંધનો ત્યાગ કરી) શુદ્ધ આત્માનું ગ્રહણ કરવું.

ભાવાર્થઃ—શિષ્યે પૂછ્યું હતું કે આત્મા અને બંધને દ્વિધા કરીને શું કરવું? તેનો આ ઉત્તર આપ્યો કે બંધનો તો ત્યાગ કરવો અને શુદ્ધ આત્માનું ગ્રહણ કરવું. ૨૯૫.

('આત્મા અને બંધને ભિન્ન તો પ્રજ્ઞા વડે કર્યા પરંતુ આત્માને ગ્રહણ શા વડે કરાય?'—એવા પ્રશ્નની તથા તેના ઉત્તરની ગાથા કહે છેઃ—)

कह सो घिप्पइ अप्पा पण्णाए सो उ घिप्पए अप्पा ।
जह पण्णाइ विहत्तो तह पण्णाएव घित्तव्वो ॥ २९६ ॥

कथं स गृह्यते आत्मा प्रज्ञया स तु गृह्यते आत्मा ।
यथा प्रज्ञया विभक्तस्तथा प्रज्ञयैव गृहीतव्यः ॥ २९६ ॥

જીવ બંધ જ્યાં છેદાય એ રીત નિયત નિજ નિજ લક્ષણે,
ત્યાં છોડવો એ બંધને, જીવ ગ્રહણ કરવો શુદ્ધને. ૨૯૫.
એ જીવ કેમ ગ્રહાય? જીવ ગ્રહાય છે પ્રજ્ઞા વડે,
પ્રજ્ઞાથી જ્યમ જુદો કર્યો ત્યમ ગ્રહણ પણ પ્રજ્ઞા વડે. ૨૯૬.

અન્વયાર્થ:—(શિષ્ય પૂછે છે કે-) [कथं] કઈ રીતે [गृह्यते] ગ્રહણ કરાય? (આચાર્યભગવાન્ ઉત્તર આપે છે કે-) [प्रज्ञया तु] પ્રજ્ઞા વડે [सः आत्मा] તે (શુદ્ધ) આત્મા [गृह्यते] ગ્રહણ કરાય છે. [यथा] જેમ [प्रज्ञया] પ્રજ્ઞા વડે [विभक्तः] ભિન્ન કર્યો, [तथा] તેમ [प्रज्ञया एव] પ્રજ્ઞા વડે જ [गृहीतव्यः] ગ્રહણ કરવો.

ટીકા:—શુદ્ધ એવો આ આત્મા શા વડે ગ્રહણ કરવો? પ્રજ્ઞા વડે જ શુદ્ધ એવો આ આત્મા ગ્રહણ કરવો; કારણ કે શુદ્ધ આત્માને, પોતે પોતાને ગ્રહતાં, પ્રજ્ઞા જ એક કરણ છે—જેમ ભિન્ન કરતાં પ્રજ્ઞા જ એક કરણ હતું તેમ. માટે જેમ પ્રજ્ઞા વડે ભિન્ન કર્યો તેમ પ્રજ્ઞા વડે જ ગ્રહણ કરવો.

ભાવાર્થ:—ભિન્ન કરવામાં અને ગ્રહણ કરવામાં કરણ જુદાં નથી; માટે પ્રજ્ઞા વડે જ આત્માને ભિન્ન કર્યો અને પ્રજ્ઞા વડે જ ગ્રહણ કરવો. ૨૯૬.

હવે પૂછે છે કે—આ આત્માને પ્રજ્ઞા વડે કઈ રીતે ગ્રહણ કરવો? તેનો ઉત્તર કહે છે:—

पण्णाए घित्तव्वो जो चेदा सो अहं तु णिच्छयदो।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णायव्वा ॥ २९७ ॥

प्रज्ञया गृहीतव्यो यश्चेतयिता सोऽहं तु निश्चयतः।
अवशेषा ये भावाः ते मम परा इति ज्ञातव्याः ॥ २९७ ॥

અન્વયાર્થ:—[प्रज्ञया] પ્રજ્ઞા વડે [गृहीतव्यः] (આત્માને) એમ ગ્રહણ કરવો કે—[यः चेतयिता] જે ચેતનારો છે [सः तु] તે [निश्चयतः] નિશ્ચયથી [अहं] હું છું, [अवशेषाः] બાકીના [ये भावाः] જે ભાવો છે [ते] તે [मम पराः] મારાથી પર છે [इति ज्ञातव्याः] એમ જાણવું.

ટીકા:—નિયત સ્વલક્ષણને અવલંબનારી પ્રજ્ઞા વડે જુદો કરવામાં આવેલો જે ચેતક (ચેતનારો), તે આ હું છું; અને અન્ય સ્વલક્ષણોથી લક્ષ્ય (અર્થાત્ ચૈતન્યલક્ષણ સિવાય બીજાં લક્ષણોથી ઓળખાવાયોગ્ય) જે આ બાકીના વ્યવહારરૂપ ભાવો છે, તે બધાય, ચેતકપણારૂપી વ્યાપકના વ્યાપ્ય નહિ થતા હોવાથી, મારાથી અત્યંત

પ્રજ્ઞાથી ગ્રહવો—નિશ્ચયે જે ચેતનારો તે જ હું,
બાકી બધા જે ભાવ તે સૌ મુજ થકી પર—જાણવું. ૨૯૭.

ભિન્ન છે. માટે હું જ, મારા વડે જ, મારા માટે જ, મારામાંથી જ, મારામાં જ, મને જ ગ્રહણ કરું છું. આત્માની, ચેતના જ એક ક્રિયા હોવાથી, 'હું ગ્રહણ કરું છું' એટલે 'હું ચેતું જ છું'; ચેતતો જ (અર્થાત્ ચેતતો થકો જ) ચેતું છું, ચેતતા વડે જ ચેતું છું, ચેતતા માટે જ ચેતું છું, ચેતતામાંથી જ ચેતું છું, ચેતતામાં જ ચેતું છું, ચેતતાને જ ચેતું છું. અથવા—નથી ચેતતો; નથી ચેતતો થકો ચેતતો, નથી ચેતતા વડે ચેતતો, નથી ચેતતા માટે ચેતતો, નથી ચેતતામાંથી ચેતતો, નથી ચેતતામાં ચેતતો, નથી ચેતતાને ચેતતો; પરંતુ સર્વવિશુદ્ધ ચિન્માત્ર (-ચૈતન્યમાત્ર) ભાવ છું.

ભાવાર્થ:—પ્રજ્ઞા વડે ભિન્ન કરવામાં આવેલો જે ચેતક તે આ હું છું અને બાકીના ભાવો મારાથી પર છે; માટે (અભિન્ન છ કારકોથી) હું જ, મારા વડે જ, મારા માટે જ, મારામાંથી જ, મારામાં જ, મને જ ગ્રહણ કરું છું. 'ગ્રહણ કરું છું' એટલે 'ચેતું છું', કારણ કે ચેતવું તે જ આત્માની એક ક્રિયા છે. માટે હું ચેતું જ છું; ચેતનારો જ, ચેતનાર વડે જ, ચેતનાર માટે જ, ચેતનારમાંથી જ, ચેતનારમાં જ, ચેતનારને જ ચેતું છું. અથવા દ્રવ્યદૃષ્ટિએ તો—છ કારકોના ભેદ પણ મારામાં નથી, હું તો શુદ્ધ ચૈતન્યમાત્ર ભાવ છું.—આ પ્રમાણે પ્રજ્ઞા વડે આત્માને ગ્રહણ કરવો અર્થાત્ પોતાને ચેતનાર તરીકે અનુભવવો.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

भित्त्वा सर्वमपि स्वलक्षणबलाद्भेत्तुं हि यच्छक्यते
चिन्मुद्राङ्कितनिर्विभागमहिमा शुद्धश्चिदेवास्म्यहम् ।
भिद्यंते यदि कारकाणि यदि वा धर्मा गुणा वा यदि
भिद्यंतां न भिदास्ति काचन विभौ भावे विशुद्धे चिति ॥ १८२ ॥

અર્થ:—જે કાંઈ ભેદી શકાય છે તે સર્વને સ્વલક્ષણના બળથી ભેદીને, જેનો ચિન્મુદ્રાથી અંકિત નિર્વિભાગ મહિમા છે (અર્થાત્ ચૈતન્યની છાપથી ચિહ્નિત વિભાગ-રહિત જેનો મહિમા છે) એવો શુદ્ધ ચૈતન્ય જ હું છું. જો કારકોના, અથવા ધર્મોના, અથવા ગુણોના ભેદો પડે, તો ભલે પડો; પરંતુ *વિભુ એવા શુદ્ધ (-સમસ્ત વિભાવોથી રહિત-) ચૈતન્યભાવમાં તો કોઈ ભેદ નથી. (આમ પ્રજ્ઞા વડે આત્માને ગ્રહણ કરાય છે.)

ભાવાર્થ:—જેમનું સ્વલક્ષણ ચૈતન્ય નથી એવા પરભાવો તો મારાથી ભિન્ન છે, માત્ર શુદ્ધ ચૈતન્ય જ હું છું. કર્તા, કર્મ, કરણ, સંપ્રદાન, અપાદાન અને અધિ-

* વિભુ = દૃઢ; અચળ; નિત્ય; સમર્થ; સર્વ ગુણપર્યાયોમાં વ્યાપક.

કરણરૂપ કારકભેદો, સત્ત્વ, અસત્ત્વ, નિત્યત્વ, અનિત્યત્વ, એકત્વ, અનેકત્વ આદિ ધર્મભેદો અને જ્ઞાન, દર્શન આદિ ગુણભેદો જો કથંચિત્ હોય તો ભલે હો; પરંતુ શુદ્ધ ચૈતન્યમાત્ર ભાવમાં તો કોઈ ભેદ નથી.—આમ શુદ્ધનયથી અભેદરૂપે આત્માને ગ્રહણ કરવો. ૨૯૭.

(આત્માને શુદ્ધ ચૈતન્યમાત્ર તો ગ્રહણ કરાવ્યો; હવે સામાન્ય ચેતના દર્શનજ્ઞાનસામાન્યમય હોવાથી અનુભવમાં દર્શનજ્ઞાનસ્વરૂપ આત્માને આ પ્રમાણે અનુભવવો—એમ કહે છે:—)

पण्णाए घित्तव्वो जो दट्ठा सो अहं तु णिच्छयदो ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णायव्वा ॥ २९८ ॥
पण्णाए घित्तव्वो जो णादा सो अहं तु णिच्छयदो ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णायव्वा ॥ २९९ ॥

प्रज्ञया गृहीतव्यो यो द्रष्टा सोऽहं तु निश्चयतः ।
अवशेषा ये भावाः ते मम परा इति ज्ञातव्याः ॥ २९८ ॥
प्रज्ञया गृहीतव्यो यो ज्ञाता सोऽहं तु निश्चयतः ।
अवशेषा ये भावाः ते मम परा इति ज्ञातव्याः ॥ २९९ ॥

અન્વયાર્થ:—[प्रज्ञया] પ્રજ્ઞા વડે [गृहीतव्यः] એમ ગ્રહણ કરવો કે—[यः द्रष्टा] જે દેખનારો છે [सः तु] તે [निश्चयतः] નિશ્ચયથી [अहं] હું છું, [अवशेषाः] બાકીના [ये भावाः] જે ભાવો છે [ते] તે [मम पराः] મારાથી પર છે [इति ज्ञातव्याः] એમ જાણવું.

[प्रज्ञया] પ્રજ્ઞા વડે [गृहीतव्यः] એમ ગ્રહણ કરવો કે—[यः ज्ञाता] જે જાણનારો છે [सः तु] તે [निश्चयतः] નિશ્ચયથી [अहं] હું છું, [अवशेषाः]

પ્રજ્ઞાથી ગ્રહવો—નિશ્ચયે જે દેખનારો તે જ હું,
બાકી બધા જે ભાવ તે સૌ મુજ થકી પર—જાણવું. ૨૯૮.
પ્રજ્ઞાથી ગ્રહવો—નિશ્ચયે જે જાણનારો તે જ હું,
બાકી બધા જે ભાવ તે સૌ મુજ થકી પર—જાણવું. ૨૯૯.

બાકીના [ये भावाः] જે ભાવો છે [ते] તે [मम पराः] મારાથી પર છે [इति ज्ञातव्याः] એમ જાણવું.

ટીકાઃ—ચેતના દર્શનજ્ઞાનરૂપ ભેદોને ઉલ્લંઘતી નહિ હોવાથી, ચેતકપણાની માફક દર્શકપણું અને જ્ઞાતાપણું આત્માનું સ્વલક્ષણ જ છે. માટે હું દેખનારા આત્માને ગ્રહણ કરું છું. 'ગ્રહણ કરું છું' એટલે 'દેખું જ છું'; દેખતો જ (અર્થાત્ દેખતો થકો જ) દેખું છું, દેખતા વડે જ દેખું છું, દેખતા માટે જ દેખું છું, દેખતામાંથી જ દેખું છું, દેખતામાં જ દેખું છું, દેખતાને જ દેખું છું. અથવા—નથી દેખતો; નથી દેખતો થકો દેખતો, નથી દેખતા વડે દેખતો, નથી દેખતા માટે દેખતો, નથી દેખતામાંથી દેખતો, નથી દેખતામાં દેખતો, નથી દેખતાને દેખતો; પરંતુ સર્વવિશુદ્ધ દર્શનમાત્ર ભાવ છું. વળી એવી જ રીતે—હું જાણનારા આત્માને ગ્રહણ કરું છું. 'ગ્રહણ કરું છું' એટલે 'જાણું જ છું'; જાણતો જ (અર્થાત્ જાણતો થકો જ) જાણું છું, જાણતા વડે જ જાણું છું, જાણતા માટે જ જાણું છું, જાણતામાંથી જ જાણું છું, જાણતામાં જ જાણું છું, જાણતાને જ જાણું છું. અથવા—નથી જાણતો; નથી જાણતો થકો જાણતો, નથી જાણતા વડે જાણતો, નથી જાણતા માટે જાણતો, નથી જાણતામાંથી જાણતો, નથી જાણતામાં જાણતો, નથી જાણતાને જાણતો; પરંતુ સર્વવિશુદ્ધ જ્ઞપ્તિમાત્ર (જાણનક્રિયામાત્ર) ભાવ છું. (આમ દેખનારા આત્માને તેમ જ જાણનારા આત્માને કર્તા, કર્મ, કરણ, સંપ્રદાન, અપાદાન અને અધિકરણરૂપ કારકોના ભેદપૂર્વક ગ્રહણ કરીને, પછી કારકભેદોનો નિષેધ કરી આત્માને અર્થાત્ પોતાને દર્શનમાત્ર ભાવરૂપે તેમ જ જ્ઞાનમાત્ર ભાવરૂપે અનુભવવો અર્થાત્ અભેદરૂપે અનુભવવો.)

(ભાવાર્થઃ—આ ત્રણ ગાથાઓમાં, પ્રજ્ઞા વડે આત્માને ગ્રહણ કરવાનું કહ્યું છે. 'ગ્રહણ કરવું' એટલે કોઈ અન્ય વસ્તુને ગ્રહવાની—લેવાની નથી; ચેતનાનો અનુભવ કરવો, તે જ, આત્માનું 'ગ્રહણ કરવું' છે.

પ્રથમની ગાથામાં સામાન્ય ચેતનાનો અનુભવ કરાવ્યો હતો. ત્યાં, અનુભવ કરનાર, જેનો અનુભવ કરવામાં આવે તે, જેના વડે અનુભવ કરવામાં આવે તે—ઇત્યાદિ કારકભેદરૂપે આત્માને કહીને, અભેદવિવક્ષામાં કારકભેદનો નિષેધ કરી, આત્માને એક શુદ્ધ ચૈતન્યમાત્ર કહ્યો હતો.

હવે આ બે ગાથાઓમાં દ્રષ્ટા અને જ્ઞાતાનો અનુભવ કરાવ્યો છે, કારણ કે ચેતનાસામાન્ય દર્શનજ્ઞાનવિશેષોને ઉલ્લંઘતી નથી. અહીં પણ, છ કારકરૂપ ભેદ-અનુભવન કરાવી, પછી અભેદ-અનુભવનની અપેક્ષાએ કારકભેદ દૂર કરાવી, દ્રષ્ટાજ્ઞાતા-માત્રનો અનુભવ કરાવ્યો છે.)

(ટીકાઃ—) અહીં પ્રશ્ન થાય છે કે—ચેતના દર્શનજ્ઞાનભેદોને કેમ ઉલ્લંઘતી

નથી કે જેથી ચેતનારો દ્રષ્ટા તથા જ્ઞાતા હોય છે? તેનો ઉત્તર કહેવામાં આ
પ્રથમ તો ચેતના પ્રતિભાસરૂપ છે. તે ચેતના દ્વિરૂપતાને અર્થાત્ બે-રૂપપણાને
નથી, કારણ કે સમસ્ત વસ્તુઓ સામાન્યવિશેષાત્મક છે. (બધી જે વસ્તુઓ છે
વિશેષસ્વરૂપ છે. ચેતના પણ વસ્તુ છે. તેથી તે પણ સામાન્યવિશેષસ્વરૂપ છે
તે બે-રૂપપણાને ઉલ્લંઘતી નથી.) તેના જે બે રૂપો છે તે દર્શન અને જ્ઞાન છે
તે તેમને (-દર્શનજ્ઞાનને) ઉલ્લંઘતી નથી. જો ચેતના દર્શનજ્ઞાનને ઉલ્
સામાન્યવિશેષને ઉલ્લંઘવાથી ચેતના જ ન હોય (અર્થાત્ ચેતનાનો અભાવ
તેના અભાવમાં બે દોષ આવે—(૧) પોતાના ગુણનો નાશ થવાથી ચેતનને
પણું આવી પડે, અથવા (૨) વ્યાપકના (-ચેતનાના-) અભાવમાં વ્યા
ચેતનનો (આત્માનો) અભાવ થાય. માટે તે દોષોના ભયથી ચેતનાને દર્શનજ્ઞાન
જ અંગીકાર કરવી.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

अद्वैतापि हि चेतना जगति चेद् दृग्ज्ञप्तिरूपं त्यजेत् ।
तत्सामान्यविशेषरूपविरहात्साऽस्तित्वमेव त्यजेत् ।
तत्त्यागे जडता चितोऽपि भवति व्याप्यो विना व्यापका-
दात्मा चान्तमुपैति तेन नियतं दृग्ज्ञप्तिरूपास्तु चित् ॥ १८३

અર્થ:—જગતમાં ખરેખર ચેતના અદ્વૈત છે તોપણ જો તે દર્શનજ્ઞ
છોડે તો સામાન્યવિશેષરૂપના અભાવથી (તે ચેતના) પોતાના અસ્તિત્વને જ
એમ ચેતના પોતાના અસ્તિત્વને છોડતાં, (૧) ચેતનને જડપણું આવે અર્થાત્
જડ થઈ જાય, અને (૨) વ્યાપક વિના (—ચેતના વિના—) વ્યાપ્ય જે આ
નાશ પામે (-આમ બે દોષ આવે છે). માટે ચેતના નિયમથી દર્શનજ્ઞાનરૂપ જ

ભાવાર્થ:—વસ્તુનું સ્વરૂપ સામાન્યવિશેષરૂપ છે. ચેતના પણ વસ્તુ છે;
જો તે સામાન્યવિશેષરૂપ એવા દર્શનજ્ઞાનરૂપપણાને છોડે તો તેના વસ્તુપણાનો જ
થાય અર્થાત્ ચેતનાનો અભાવ જ થાય. ચેતનાનો અભાવ થતાં, કાં તો ચેતન આ
(પોતાના ચેતનાગુણનો અભાવ થવાથી) જડપણું આવે, અથવા તો વ્યાપ
અભાવથી વ્યાપ્ય એવા આત્માનો અભાવ થાય. (ચેતના આત્માની સર્વ અવસ્
ઓમાં વ્યાપતી હોવાથી વ્યાપક છે અને આત્મા ચેતન હોવાથી ચેતનાનું વ્યાપ્ય છે
તેથી ચેતનાનો અભાવ થતાં આત્માનો પણ અભાવ થાય.) માટે ચેતના દર્શનજ્ઞાન
સ્વરૂપ જ માનવી.

અહીં તાત્પર્ય એવું છે કે—સાંખ્યમતી આદિ કેટલાક લોકો સામાન્ય ચેતનાને
એકાંત કહે છે, તેમનો નિષેધ કરવા માટે 'વસ્તુનું સ્વરૂપ સામાન્યવિશેષરૂપ
ચેતનાને સામાન્યવિશેષરૂપ અંગીકાર કરવી' એમ અહીં જણાવ્યું છે.

હવે આગળના કથનની સૂચનારૂપ શ્લોક કહે છે:—

(ઉપજાતિ)

एकश्चितश्चिन्मय एव भावो
भावाः परे ये किल ते परेषाम् ।
ग्राह्यस्ततश्चिन्मय एव भावो
भावाः परे सर्वत एव हेयाः ॥ १८४ ॥

અર્થ:—ચૈતન્યનો (આત્માનો) તો એક ચિન્મય જ ભાવ છે, જે બીજા
ભાવો છે તે ખરેખર પરના ભાવો છે; માટે (એક) ચિન્મય ભાવ જ ગ્રહણ કરવા
યોગ્ય છે, બીજા ભાવો સર્વથા છોડવાયોગ્ય છે. ૨૯૮—૨૯૯.

હવે આ ઉપદેશની ગાથા કહે છે:—

को णाम भणिज्ज बुहो णाउं सव्वे पराइए भावे ।
मज्झमिणंति य वयणं जाणंतो अप्पयं सुद्धं ॥ ३०० ॥

को नाम भणेद् बुधः ज्ञात्वा सर्वान् परकीयान् भावान् ।
मम इदमिति च वचनं जानन्नात्मानं शुद्धम् ॥ ३०० ॥

[सर्वान् भावान्] સર્વ ભાવોને [परकीयान्] પારકા [ज्ञात्वा]
કોણ જ્ઞાની, [आत्मानं] પોતાને [शुद्धं] શુદ્ધ [जानन्]
'આ મારું છે' (—'આ ભાવો મારા છે') [इति च वचनं]
?

) પરના અને આત્માના નિયત સ્વલક્ષણોના વિભાગમાં
તે ખરેખર એક ચિન્માત્ર ભાવને પોતાનો જાણે છે અને

જાણે, શુદ્ધ જાણે આત્મને,
આ' એવું વચન બોલે ખરે? ૩૦૦.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છેઃ—

(માલિની)

अनवरतमनंतैर्बध्यते सापराधः
स्पृशति निरपराधो बंधनं नैव जातु ।
नियतमयमशुद्धं स्वं भजन्सापराधो
भवति निरपराधः साधु शुद्धात्मसेवी ॥ १८७ ॥

અર્થઃ—સાપરાધ આત્મા નિરંતર અનંત પુદ્‌ગલપરમાણુરૂપ કર્મોથી બંધાય છે; નિરપરાધ આત્મા બંધનને કદાપિ સ્પર્શતો નથી. જે સાપરાધ આત્મા છે તે તો નિયમથી પોતાને અશુદ્ધ સેવતો થકો સાપરાધ છે; નિરપરાધ આત્મા તો ભલી રીતે શુદ્ધ આત્માનો સેવનાર હોય છે. ૩૦૪—૩૦૫.

(હવે વ્યવહારનયાવલંબી અર્થાત્ વ્યવહારનયને અવલંબનાર તર્ક કરે છે કેઃ—) “શુદ્ધ આત્માની ઉપાસનાનો પ્રયાસ (મહેનત) કરવાનું શું કામ છે? કારણ કે પ્રતિક્રમણ આદિથી જ આત્મા નિરપરાધ થાય છે; કેમ કે સાપરાધને, જે અપ્રતિક્રમણ આદિ છે તે, અપરાધને દૂર કરનારાં નહિ હોવાથી, વિષકુંભ છે, માટે જે પ્રતિક્રમણ આદિ છે તે, અપરાધને દૂર કરનારાં હોવાથી, અમૃતકુંભ છે. વ્યવહારાચારસૂત્રમાં (-વ્યવહારને કહેનારા આચારસૂત્રમાં-) પણ કહ્યું છે કે—

अप्पडिकमणमपडिसरणं अप्पडिहारो अधारणा चेव ।
अणियत्ती य अणिंदागरहासोही य विसकुंभो ॥ १ ॥
पडिकमणं पडिसरणं परिहारो धारणा णियत्ती य ।
णिंदा गरहा सोही अट्ठविहो अमयकुंभो दु ॥ २ ॥

અર્થઃ—અપ્રતિક્રમણ, અપ્રતિસરણ, અપરિહાર, અધારણા, અનિવૃત્તિ, અનિંદા, અગર્હા અને અશુદ્ધિ—(એમ આઠ પ્રકારે, લાગેલા દોષોનું પ્રાયશ્ચિત ન કરવું) તે વિષકુંભ અર્થાત્ ઝેરનો ઘડો છે. પ્રતિક્રમણ, પ્રતિસરણ, પરિહાર, ધારણા, નિવૃત્તિ, નિંદા, ગર્હા અને શુદ્ધિ—(એમ આઠ પ્રકારે, લાગેલા દોષોનું પ્રાયશ્ચિત કરવું) તે અમૃતકુંભ છે.”

ઉપરના તર્કનું સમાધાન આચાર્યભગવાન (નિશ્ચયનયની પ્રધાનતાથી) ગાથામાં કરે છેઃ—

+પ્રતિસરણ = સમ્યક્ત્વાદિ ગુણોમાં પ્રેરણા. પરિહાર = મિથ્યાત્વરાગાદિ દોષોનું નિવારણ. ધારણા = પંચનમસ્કારાદિ મંત્ર, પ્રતિમા વગેરે બાહ્ય દ્રવ્યોના આલંબન વડે ચિત્તને સ્થિર કરવું. નિવૃત્તિ =

पडिक्कमणं पडिसरणं परिहारो धारणा णियत्ती य ।
णिंदा गरहा सोही अट्ठविहो होइ विसकुंभो ॥ ३०६ ॥
अप्पडिक्कमणमप्पडिसरणं अप्परिहारो अधारणा चेव ।
अणियत्ती य अणिंदागरहासोही अमयकुंभो ॥ ३०७ ॥

प्रतिक्रमणं प्रतिसरणं परिहारो धारणा निवृत्तिश्च ।
निंदा गर्हा शुद्धिः अष्टविधो भवति विषकुंभः ॥ ३०६ ॥
अप्रतिक्रमणमप्रतिसरणमपरिहारोऽधारणा चैव ।
अनिवृत्तिश्चानिंदाऽगर्हाऽशुद्धिरमृतकुंभः ॥ ३०७ ॥

અન્વયાર્થઃ—[प्रतिक्रमणं] પ્રતિક્રમણ, [प्रतिसरणं] પ્રતિસરણ, [परिहारः] પરિહાર, [धारणा] ધારણા, [निवृत્તિः] નિવૃત્તિ, [निंदा] નિંદા, [गर्हा] ગર્હા [च शुद्धिः] અને શુદ્ધિ—[अष्टविधः] એ આઠ પ્રકારનો [विषकुंभः] વિષકુંભ [भवति] છે (કારણ કે એમાં કર્તાપણાની બુદ્ધિ સંભવે છે).

[अप्रतिक्रमणं] અપ્રતિક્રમણ, [अप्रतिसरणं] અપ્રતિસરણ, [अपरिहारः] અપરિહાર, [अधारणा] અધારણા, [अनिवृત્તિः च] અનિવૃત્તિ, [अनिंदा] અનિંદા, [अगर्हा] અગર્હા [च एव] અને [अशुद्धिः] અશુદ્ધિ—[अमृतकुंभः] એ અમૃતકુંભ છે (કારણ કે એમાં કર્તાપણાનો નિષેધ છે—કાંઈ કરવાનું જ નથી, માટે બંધ થતો નથી).

ટીકાઃ—પ્રથમ તો જે અજ્ઞાનીજનસાધારણ (અર્થાત્ અજ્ઞાની લોકોને સાધારણ એવાં) અપ્રતિક્રમણાદિ છે તેઓ તો શુદ્ધ આત્માની સિદ્ધિના અભાવરૂપ સ્વભાવવાળાં હોવાને લીધે સ્વયમેવ અપરાધરૂપ હોવાથી વિષકુંભ જ છે; તેમનો વિચાર કરવાનું શું પ્રયોજન છે? (તેઓ તો પ્રથમ જ ત્યાગવાયોગ્ય છે.) અને જે દ્રવ્યરૂપ પ્રતિક્રમણાદિ છે તેઓ સર્વ અપરાધરૂપી વિષના દોષોને ઘટાડવામાં (-ક્રમેક્રમે

પ્રતિક્રમણ, ને પ્રતિસરણ, વળી પરિહરણ, નિવૃત્તિ, ધારણા,
વળી શુદ્ધિ, નિંદા, ગર્હણા—એ અષ્ટવિધ વિષકુંભ છે. ૩૦૬.

અણપ્રતિક્રમણ, અણપ્રતિસરણ, અણપરિહરણ, અણધારણા,
અનિવૃત્તિ, અણગર્હા, અનિંદ, અશુદ્ધિ—અમૃતકુંભ છે. ૩૦૭.

...ભાવવિષયકષાયાદિ કમ્જામાં વર્તતા ચિત્તને પાછું વાળવું. નિંદા = આત્મસાક્ષીએ દોષોનું પ્રગટ કરવું. ...સાક્ષીએ દોષોનું પ્રગટ કરવું. શુદ્ધિ = દોષ થતાં પ્રાયશ્ચિત લઈને વિશુદ્ધિ કરવી.

ભાવાર્થ:—રંગભૂમિમાં મોક્ષતત્ત્વનો સ્વાંગ આવ્યો હતો. જ્યાં જ્ઞાન પ્રગટ થયું ત્યાં તે મોક્ષનો સ્વાંગ રંગભૂમિમાંથી બહાર નીકળી ગયો. ૩૦૬—૩૦૭.

જ્યોં નર કોય પર્યો દ્રઢબંધન બંધસ્વરૂપ લખે દુખકારી,
ચિંત કરૈ નિતિ કૈમ કટૈ યહ તૌઊ છિદૈ નહિ નૈક ટિકારી;
છેદનકૂં ગહિ આયુધ ધાય ચલાય નિશંક કરે દુય ધારી,
યોં બુધ બુદ્ધિ ધસાય દુધા કરિ કર્મ રુ આતમ આપ ગહારી.

આમ આ સમયસાર ગ્રંથની (શ્રીમદ્ અમૃતચંદ્ર આચાર્ય વિરચિત) આત્મખ્યાતિ નામની ટીકાની પંડિત જયચંદજીકૃત ભાષાવચનિકામાં આઠમો મોક્ષ અધિકાર પૂર્ણ થયો.



— ૯ —

સર્વવિશુદ્ધજ્ઞાન અધિકાર

સર્વવિશુદ્ધ સુજ્ઞાનમય, સદા આતમારામ;
પરને કરે ન ભોગવે, જાણે *જપિ તસુ નામ.

પ્રથમ ટીકાકાર આચાર્યદેવ કહે છે કે "હવે સર્વવિશુદ્ધજ્ઞાન પ્રવેશ કરે છે."

મોક્ષતત્ત્વનો સ્વાંગ નીકળી ગયા પછી સર્વવિશુદ્ધ જ્ઞાન પ્રવેશ કરે છે. રંગભૂમિમાં જીવ-અજીવ, કર્તાકર્મ, પુણ્ય-પાપ, આસ્રવ, સંવર, નિર્જરા, બંધ અને મોક્ષ એ આઠ સ્વાંગ આવ્યા, તેમનું નૃત્ય થયું અને પોતપોતાનું સ્વરૂપ બતાવી તેઓ નીકળી ગયા. હવે સર્વ સ્વાંગો દૂર થયે એકાકાર સર્વવિશુદ્ધજ્ઞાન પ્રવેશ કરે છે.

ત્યાં પ્રથમ જ, મંગળરૂપે જ્ઞાનપુંજ આત્માના મહિમાનું કાવ્ય કહે છેઃ—

(મંદાક્રાંતા)

नीत्वा सम्यक् प्रलयमखिलान् कर्तृभोक्त्रादिभावान्
दूरीभूतः प्रतिपदमयं बंधमोक्षप्रक्लृप्तेः ।
शुद्धः शुद्धः स्वरसविसरापूर्णपुण्याचलार्चि-
ष्टंकोत्कीर्णप्रकटमहिमा स्फूर्जति ज्ञानपुंजः ॥ १९३ ॥

અર્થઃ—સમસ્ત કર્તા-ભોક્તા આદિ ભાવોને સમ્યક્ પ્રકારે નાશ પમાડીને પદે પદે (અર્થાત્ કર્મના ક્ષયોપશમના નિમિત્તથી થતા દરેક પર્યાયમાં) બંધ-મોક્ષની

* જપિ = યદ્યપિ; જો.

રચનાથી દૂર વર્તતો, શુદ્ધ-શુદ્ધ (અર્થાત્ જે રાગાદિક મળ તેમ જ આવરણ—બંનેથી રહિત છે એવો), જેનું પવિત્ર અચળ તેજ નિજરસના (-જ્ઞાનરસના, જ્ઞાનચેતનારૂપી રસના) ફેલાવથી ભરપૂર છે એવો, અને જેનો મહિમા ટંકોત્કીર્ણ પ્રગટ છે એવો જ્ઞાનપુંજ આત્મા પ્રગટ થાય છે.

ભાવાર્થ:—શુદ્ધનયનો વિષય જે જ્ઞાનસ્વરૂપ આત્મા છે તે કર્તાભોક્તાપણાના ભાવોથી રહિત છે, બંધમોક્ષની રચનાથી રહિત છે, પરદ્રવ્યથી અને પરદ્રવ્યના સર્વ ભાવોથી રહિત હોવાથી શુદ્ધ છે, પોતાના સ્વરસના પ્રવાહથી પૂર્ણ દેદીપ્યમાન જ્યોતિરૂપ છે અને ટંકોત્કીર્ણ મહિમાવાળો છે. એવો જ્ઞાનપુંજ આત્મા પ્રગટ થાય છે.

હવે સર્વવિશુદ્ધ જ્ઞાનને પ્રગટ કરે છે. તેમાં પ્રથમ, 'આત્મા કર્તા-ભોક્તાભાવથી રહિત છે' એવા અર્થનો, આગળની ગાથાની સૂચનિકારૂપ શ્લોક કહે છે:—

(અનુષ્ટુપ્)

कर्तृत्वं न स्वभावोऽस्य चितो वेदयितृत्ववत् ।
अज्ञानादेव कर्तायं तदभावादकारकः ॥ १९४ ॥

અર્થ:—કર્તાપણું આ ચિત્સ્વરૂપ આત્માનો સ્વભાવ નથી, જેમ ભોક્તાપણું સ્વભાવ નથી. અજ્ઞાનથી જ તે કર્તા છે, અજ્ઞાનનો અભાવ થતાં અકર્તા છે.

હવે આત્માનું અકર્તાપણું દૃષ્ટાંતપૂર્વક કહે છે:—

दवियं जं उप्पज्जइ गुणेहिं तं तेहिं जाणसु अणण्णं ।
जह कडयादीहिं दु पज्जएहिं कणयं अणण्णमिह ॥ ३०८ ॥
जीवस्साजीवस्स दु जे परिणामा दु देसिया सुत्ते ।
तं जीवमजीवं वा तेहिमणण्णं वियाणाहि ॥ ३०९ ॥

જે દ્રવ્ય ઊપજે જે ગુણોથી તેથી જાણ અનન્ય તે,
જ્યમ જગતમાં કટકાદિ પર્યાયોથી કનક અનન્ય છે. ૩૦૮.
જીવ અજીવના પરિણામ જે દર્શાવિયા સૂત્રો મહીં,
તે જીવ અગર અજીવ જાણ અનન્ય તે પરિણામથી. ૩૦૯.

ण कुदोचि वि उप्पण्णो जह्मा कज्जं ण तेण सो आदा ।
उप्पादेदि ण किंचि वि कारणमवि तेण ण स होइ ॥ ३१० ॥
कम्मं पडुच्च कत्ता कत्तारं तह पडुच्च कम्माणि ।
उप्पज्जंति य णियमा सिद्धी दु ण दीसए अण्णा ॥ ३११ ॥

द्रव्यं यदुत्पद्यते गुणैस्तत्तैर्जानीह्यनन्यत् ।
यथा कटकादिभिस्तु पर्यायैः कनकमनन्यदिह ॥ ३०८ ॥
जीवस्याजीवस्य तु ये परिणामास्तु दर्शिताः सूत्रे ।
तं जीवमजीवं वा तैरनन्यं विजानीहि ॥ ३०९ ॥
न कुतश्चिदप्युत्पन्नो यस्मात्कार्यं न तेन स आत्मा ।
उत्पादयति न किंचिदपि कारणमपि तेन न स भवति ॥ ३१० ॥
कर्म प्रतीत्य कर्ता कर्तारं तथा प्रतीत्य कर्माणि ।
उत्पद्यंते च नियमात्सिद्धिस्तु न दृश्यतेऽन्या ॥ ३११ ॥

અન્વયાર્થ:—[यद् द्रव्यं] જે દ્રવ્ય [गुणैः] જે ગુણોથી [उत्पद्यते] ઊપજે છે [तैः] તે ગુણોથી [तद्] તેને [अनन्यत् जानीहि] અનન્ય જાણ; [यथा] જેમ [इह] જગતમાં [कटकादिभिः पर्यायैः तु] કડાં આદિ પર્યાયોથી [कनकं] સુવર્ણ [अनन्यत्] અનન્ય છે તેમ.

[जीवस्य अजीवस्य तु] જીવ અને અજીવનાં [ये परिणामाः तु] જે પરિણામો [सूत्रे दर्शिताः] સૂત્રમાં દર્શાવ્યાં છે, [तैः] તે પરિણામોથી [तं जीवम् अजीवम् वा] તે જીવ અથવા અજીવને [अनन्यं विजानीहि] અનન્ય જાણ.

[यस्मात्] કારણ કે [कुतश्चित् अपि] કોઈથી [न उत्पन्नः] ઉત્પન્ન થયો નથી [तेन] તેથી [सः आत्मा] તે આત્મા [कार्यं न] (કોઈનું) કાર્ય નથી,

---

ઊપજે ન આત્મા કોઈથી તેથી ન આત્મા કાર્ય છે,
ઉપજાવતો નથી કોઈને તેથી ન કારણ પણ ઠરે. ૩૧૦.
રે! કર્મ-આશ્રિત હોય કર્તા, કર્મ પણ કર્તા તણે
આશ્રિતપણે ઊપજે નિયમથી, સિદ્ધિ નવ બીજી દીસે. ૩૧૧.

[किंचिद् अपि] અને કોઈને [न उत्पादयति] ઉપજાવતો નથી [तेन] તેથી [स] તે [कारणं अपि] (કોઈનું) કારણ પણ [न भवति] નથી.

[नियमात्] નિયમથી [कर्म प्रतीत्य] કર્મના આશ્રયે (-કર્મને અવલંબીને) [कर्ता] કર્તા હોય છે [तथा च] તેમ જ [कर्तारं प्रतीत्य] કર્તાના આશ્રયે [कर्माणि उत्पद्यंते] કર્મો ઉત્પન્ન થાય છે; [अन्या तु] બીજી કોઈ રીતે [सिद्धिः] કર્તાકર્મની સિદ્ધિ [न दृश्यते] જોવામાં આવતી નથી.

ટીકાઃ—પ્રથમ તો જીવ ક્રમબદ્ધ એવાં પોતાનાં પરિણામોથી ઉપજતો થકો જીવ જ છે, અજીવ નથી; એવી રીતે અજીવ પણ ક્રમબદ્ધ પોતાનાં પરિણામોથી ઉપજતું થકું અજીવ જ છે, જીવ નથી; કારણ કે જેમ (કંકણ આદિ પરિણામોથી ઉપજતા એવા) સુવર્ણને કંકણ આદિ પરિણામો સાથે તાદાત્મ્ય છે તેમ સર્વ દ્રવ્યોને પોતાનાં પરિણામો સાથે તાદાત્મ્ય છે. આમ જીવ પોતાનાં પરિણામોથી ઉપજતો હોવા છતાં તેને અજીવની સાથે કાર્યકારણભાવ સિદ્ધ થતો નથી, કારણ કે સર્વ દ્રવ્યોને અન્ય દ્રવ્ય સાથે ઉત્પાદ્ય-ઉત્પાદકભાવનો અભાવ છે; તે (કાર્યકારણભાવ) નહિ સિદ્ધ થતાં, અજીવને જીવનું કર્મપણું સિદ્ધ થતું નથી; અને તે (-અજીવને જીવનું કર્મપણું) નહિ સિદ્ધ થતાં, કર્તા-કર્મની બીજી કોઈ અપેક્ષાએ સિદ્ધિ નહિ હોવાથી, જીવને અજીવનું કર્તાપણું સિદ્ધ થતું નથી. માટે જીવ અકર્તા ઠરે છે.

ભાવાર્થઃ—સર્વ દ્રવ્યોનાં પરિણામ જુદાં જુદાં છે. પોતપોતાનાં પરિણામોનાં સૌ દ્રવ્યો કર્તા છે; તેઓ તે પરિણામોના કર્તા છે, તે પરિણામો તેમનાં કર્મ છે. નિશ્ચયથી કોઈનો કોઈની સાથે કર્તાકર્મસંબંધ નથી. માટે જીવ પોતાનાં પરિણામનો જ કર્તા છે, પોતાનાં પરિણામ કર્મ છે. એવી જ રીતે અજીવ પોતાનાં પરિણામનો જ કર્તા છે, પોતાનાં પરિણામ કર્મ છે. આ રીતે જીવ બીજાનાં પરિણામોનો અકર્તા છે.

'આ રીતે જીવ અકર્તા છે તોપણ તેને બંધ થાય છે એ કોઈ અજ્ઞાનનો મહિમા છે' એવા અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય હવે કહે છેઃ—

(શિખરિણી)

अकर्ता जीवोऽयं स्थित इति विशुद्धः स्वरसतः
स्फुरच्चिज्ज्योतिर्भिश्छुरितभुवनाभोगभवनः ।
तथाप्यस्यासौ स्याद्यदिह किल बंधः प्रकृतिभिः
स खल्वज्ञानस्य स्फुरति महिमा कोऽपि गहनः ॥ १९५ ॥

અર્થઃ—જે નિજરસથી વિશુદ્ધ છે, અને સ્ફુરાયમાન થતી જેની ચૈતન્ય

તિઓ વડે લોકનો સમસ્ત વિસ્તાર વ્યાપ્ત થઈ જાય છે એવો જેનો સ્વભાવ છે,
વો આ જીવ પૂર્વોક્ત રીતે (પરદ્રવ્યનો અને પરભાવોનો) અકર્તા ઠર્યો, તોપણ તેને
। જગતમાં કર્મપ્રકૃતિઓ સાથે આ (પ્રગટ) બંધ થાય છે તે ખરેખર અજ્ઞાનનો
ઈ ગહન મહિમા સ્ફુરાયમાન છે.

ભાવાર્થ:—જેનું જ્ઞાન સર્વ જ્ઞેયોમાં વ્યાપનારું છે એવો આ જીવ શુદ્ધનયથી
પરદ્રવ્યનો કર્તા નથી, તોપણ તેને કર્મનો બંધ થાય છે તે કોઈ અજ્ઞાનનો ગહન મહિમા
છે—જેનો પાર પમાતો નથી. ૩૦૮—૩૧૧.

(હવે આ અજ્ઞાનના મહિમાને પ્રગટ કરે છે:—)

चेया उ पयडीअट्ठं उप्पज्जइ विणस्सइ ।
पयडी वि चेययट्ठं उप्पज्जइ विणस्सइ ॥ ३१२ ॥
एवं बंधो उ दुण्हं वि अण्णोण्णप्पच्चया हवे ।
अप्पणो पयडीए य संसारो तेण जायए ॥ ३१३ ॥

चेतयिता तु प्रकृत्यर्थमुत्पद्यते विनश्यति ।
प्रकृतिरपि चेतकार्थमुत्पद्यते विनश्यति ॥ ३१२ ॥
एवं बंधस्तु द्वयोरपि अन्योन्यप्रत्ययाद्भवेत् ।
आत्मनः प्रकृतेश्च संसारस्तेन जायते ॥ ३१३ ॥

અન્વયાર્થ:—[चेतयिता तु] ચેતક અર્થાત્ આત્મા [प्रकृत्यर्थं] પ્રકૃતિના
નિમિત્તે [उत्पद्यते] ઉપજે છે [विनश्यति] તથા વિણસે છે, [प्रकृतिः अपि] અને
પ્રકૃતિ પણ [चेतकार्थं] ચેતકના અર્થાત્ આત્માના નિમિત્તે [उत्पद्यते] ઉપજે છ
[विनश्यति] તથા વિણસે છે. [एवं] એ રીતે [अन्योन्यप्रत्ययात्] પરસ્પર નિમિ
તથી [द्वयोः अपि] બન્નેનો—[आत्मनः प्रकृतेः च] આત્માનો ને પ્રકૃતિનો—[बंध
तु भवेत्] બંધ થાય છે, [तेन] અને તેથી [संसारः] સંસાર [जायते] ઉત્પન્ન થાય છ

પણ જીવ પ્રકૃતિના નિમિત્તે ઉપજે વિણસે અરે!
ને પ્રકૃતિ પણ જીવના નિમિત્ત ઉપજે વિણસે; ૩૧
અન્યોન્યના નિમિત્ત એ રીત બંધ બેઉ તણો બને
—આત્મા અને પ્રકૃતિ તણો, સંસાર તેથી થાય

ટીકાઃ—આ આત્મા, (તેને) અનાદિ સંસારથી જ (પરનાં અને પ
જુદાં જુદાં) નિશ્ચિત સ્વલક્ષણોનું જ્ઞાન (ભેદજ્ઞાન) નહિ હોવાને લીધે પરના
પોતાના એકત્વનો અધ્યાસ કરવાથી કર્તા થયો થકો, પ્રકૃતિના નિમિત્તે ઉત્પત્તિ-વિ
પામે છે; પ્રકૃતિ પણ આત્માના નિમિત્તે ઉત્પત્તિ-વિનાશ પામે છે (અર્થાત્ આત્
પરિણામ અનુસાર પરિણમે છે). એ રીતે—જોકે તે આત્મા અને પ્રકૃતિને કર્તા
ભાવનો અભાવ છે તોપણ—પરસ્પર નિમિત્તનૈમિત્તિકભાવથી બન્નેને બંધ જોવામાં
છે, તેથી સંસાર છે અને તેથી જ તેમને (આત્માને ને પ્રકૃતિને) કર્તાકર્મનો વ્યવહાર

ભાવાર્થઃ—આત્માને અને જ્ઞાનાવરણાદિ કર્મની પ્રકૃતિઓને પરમાર્થે ક
કર્મપણાનો અભાવ છે તોપણ પરસ્પર નિમિત્તનૈમિત્તિકભાવને લીધે બંધ થાય છે, તે
સંસાર છે અને તેથી જ કર્તાકર્મપણાનો વ્યવહાર છે. ૩૧૨—૩૧૩.

('જ્યાંસુધી આત્મા પ્રકૃતિના નિમિત્તે ઉપજવું-વિણસવું ન છોડે ત્યાંસુધી
તે અજ્ઞાની, મિથ્યાદૃષ્ટિ, અસંયત છે' એમ હવે કહે છેઃ—)

जा एस पयडीअट्ठं चेया णेव विमुंचए ।
अयाणओ भवे ताव मिच्छाइट्ठी असंजओ ॥ ३१४ ॥
जया विमुंचए चेया कम्मफलमणंतयं ।
तया विमुत्तो हवइ जाणओ पासओ मुणी ॥ ३१५ ॥

यावदेष प्रकृत्यर्थं चेतयिता नैव विमुंचति ।
अज्ञायको भवेत्तावन्मिथ्यादृष्टिरसंयतः ॥ ३१४ ॥
यदा विमुंचति चेतयिता कर्मफलमनंतकम् ।
तदा विमुक्तो भवति ज्ञायको दर्शको मुनिः ॥ ३१५ ॥

અન્વયાર્થઃ—[यावत्] જ્યાંસુધી [एषः चेतयिता] આ આત્મા [प्रकृत्यर्थं]
*[પ્રકૃતિના નિમિત્તે ઉપજવું-વિણસવું] [न एव विमुंचति] છોડતો નથી, [तावत्]

ાંસુધી તે [अज्ञायकः] અજ્ઞાયક છે, [मिथ्यादृष्टिः] મિથ્યાદૃષ્ટિ છે, [असंयतः भवेत्] અસંયત છે.

[यदा] જ્યારે [चेतयिता] આત્મા [अनतकं कर्मफलं] અનંત કર્મફળને [विमुंचति] છોડે છે, [तदा] ત્યારે તે [ज्ञायकः] જ્ઞાયક છે, [दर्शकः] દર્શક છે, [मुनिः] મુનિ છે, [विमुक्तः भवति] વિમુક્ત (અર્થાત્ બંધથી રહિત) છે.

ટીકાઃ—જ્યાંસુધી આ આત્મા, (પોતાનાં અને પરનાં જુદાં જુદાં) નિશ્ચિત સ્વલક્ષણોનું જ્ઞાન (ભેદજ્ઞાન) નહિ હોવાને લીધે, પ્રકૃતિના સ્વભાવને—કે જે પોતાને બંધનું નિમિત્ત છે તેને—છોડતો-નથી, ત્યાંસુધી સ્વ-પરના એકત્વજ્ઞાનથી અજ્ઞાયક છે, સ્વપરના એકત્વદર્શનથી (એકત્વરૂપ શ્રદ્ધાનથી) મિથ્યાદૃષ્ટિ છે અને સ્વપરની એકત્વ-પરિણતિથી અસંયત છે; અને ત્યાંસુધી જ પરના અને પોતાના એકત્વનો અધ્યાસ કરવાથી કર્તા છે. અને જ્યારે આ જ આત્મા (પોતાનાં અને પરનાં જુદાં જુદાં) નિશ્ચિત સ્વલક્ષણોના જ્ઞાનને (ભેદજ્ઞાનને) લીધે પ્રકૃતિના સ્વભાવને—કે જે પોતાને બંધનું નિમિત્ત છે તેને—છોડે છે, ત્યારે સ્વપરના વિભાગજ્ઞાનથી (ભેદજ્ઞાનથી) જ્ઞાયક છે, સ્વપરના વિભાગદર્શનથી (ભેદદર્શનથી) દર્શક છે અને સ્વપરની વિભાગ-પરિણતિથી (ભેદપરિણતિથી) સંયત છે; અને ત્યારે જ પરના અને પોતાના એકત્વનો અધ્યાસ નહિ કરવાથી અકર્તા છે.

ભાવાર્થઃ—જ્યાંસુધી આ આત્મા પોતાના અને પરના સ્વલક્ષણને જાણતો નથી ત્યાંસુધી તે ભેદજ્ઞાનના અભાવને લીધે કર્મપ્રકૃતિના ઉદયને પોતાનો સમજી પરિણમે છે; એ રીતે મિથ્યાદૃષ્ટિ, અજ્ઞાની, અસંયમી થઈને, કર્તા થઈને, કર્મનો બંધ કરે છે. અને જ્યારે આત્માને ભેદજ્ઞાન થાય છે ત્યારે તે કર્તા થતો નથી, તેથી કર્મનો બંધ કરતો નથી, જ્ઞાતાદ્રષ્ટાપણે પરિણમે છે.

" એવી જ રીતે ભોક્તાપણું પણ આત્માનો સ્વભાવ નથી " એવા અર્થનો
ાગળની ગાથાની સૂચનારૂપ શ્લોક હવે કહે છે:—

(અનુષ્ટુપ્)

भोक्तृत्वं न स्वभावोऽस्य स्मृतः कर्तृत्ववच्चितः ।
अज्ञानादेव भोक्तायं तदभावादवेदकः ॥ १९६ ॥

અર્થઃ—કર્તાપણાની જેમ ભોક્તાપણું પણ આ ચૈતન્યનો (ચિત્સ
આત્માનો) સ્વભાવ કહ્યો નથી. અજ્ઞાનથી જ તે ભોક્તા છે, અજ્ઞાનનો અભાવ
અભોક્તા છે. ૩૧૪—૩૧૫.

હવે આ અર્થને ગાથામાં કહે છે:—

अण्णाणी कम्मफलं पयडिसहावट्ठिओ दु वेदेइ ।
णाणी पुण कम्मफलं जाणइ उदियं ण वेदेइ ॥ ३१६ ॥

अज्ञानी कर्मफलं प्रकृतिस्वभावस्थितस्तु वेदयते ।
ज्ञानी पुनः कर्मफलं जानाति उदितं न वेदयते ॥ ३१६ ॥

અન્વયાર્થ:—[अज्ञानी] અજ્ઞાની [प्रकृतिस्वभावस्थितः तु] પ્રકૃતિના સ્વભાવમાં સ્થિત રહ્યો થકો [कर्मफलं] કર્મફળને [वेदयते] વેદે (ભોગવે) છે [पुनः ज्ञानी] અને જ્ઞાની તો [उदितं कर्मफलं] ઉદિત (ઉદયમાં આવેલા) કર્મફળને [जानाति] જાણે છે, [न वेदयते] વેદતો નથી.

इत्येवं नियमं निरूप्य निपुणैरज्ञानिता त्यज्यतां
शुद्धैकात्ममये महस्यचलितैराश्रित्यतां ज्ञानिता ॥ १९७ ॥

અર્થ:—અજ્ઞાની પ્રકૃતિસ્વભાવમાં લીન-રક્ત હોવાથી (-તેને જ પોતાનો ભાવ જાણતો હોવાથી-) સદા વેદક છે, અને જ્ઞાની તો પ્રકૃતિસ્વભાવથી વિરામ મેલો—વિરક્ત હોવાથી (-તેને પરનો સ્વભાવ જાણતો હોવાથી-) કદાપિ વેદક નથી. ાવો નિયમ બરાબર વિચારીને—નક્કી કરીને નિપુણ પુરુષો અજ્ઞાનીપણાને છોડો અને શુદ્ધ-એક-આત્મામય તેજમાં નિશ્ચળ થઈને જ્ઞાનીપણાને સેવો. ૩૧૬.

હવે, 'અજ્ઞાની વેદક જ છે' એવો નિયમ કરવામાં આવે છે (અર્થાત્ 'અજ્ઞાની ભોક્તા જ છે' એવો નિયમ છે—એમ કહે છે):—

ण मुयइ पयडिमभव्वो सुट्ठुवि अज्झाइऊण सत्थाणि ।
गुडदुद्धंपि पिवंता ण पण्णया णिव्विसा हुंति ॥ ३१७ ॥

न मुंचति प्रकृतिमभव्यः सुष्ठ्वपि अधीत्य शास्त्राणि ।
गुडदुग्धमपि पिबंतो न पन्नगा निर्विषा भवंति ॥ ३१७ ॥

અન્વયાર્થ:—[सुष्ठु] સારી રીતે [शास्त्राणि] શાસ્ત્રો [अधीत्य अपि] ભણીને પણ [अभव्यः] અભવ્ય [प्रकृतिं] પ્રકૃતિને (અર્થાત્ પ્રકૃતિના સ્વભાવને) [न मुंचति] છોડતો નથી, [गुडदुग्धं] જેમ સાકરવાળું દૂધ [पिबंतः अपि] પીતાં છતાં [पन्नगाः] સર્પો [निर्विषाः] નિર્વિષ [न भवंति] થતા નથી.

ટીકા:—જેમ આ જગતમાં સર્પ વિષભાવને પોતાની મેળે છોડતો નથી અને વિષભાવ છોડાવવાને (મટાડવાને) સમર્થ એવા સાકરસહિત દૂધના પાનથી પણ છોડતો નથી, તેમ ખરેખર અભવ્ય પ્રકૃતિસ્વભાવને પોતાની મેળે છોડતો નથી અને પ્રકૃતિ-સ્વભાવ છોડાવવાને સમર્થ એવા દ્રવ્યશ્રુતના જ્ઞાનથી પણ છોડતો નથી; કારણ કે તેને સદાય, ભાવશ્રુતજ્ઞાનસ્વરૂપ શુદ્ધાત્મજ્ઞાનના (-શુદ્ધ આત્માના જ્ઞાનના) અભાવને લીધે અજ્ઞાનીપણું છે. આથી એવો નિયમ કરવામાં આવે છે (અર્થાત્ એવો નિયમ ઠરે છે) કે અજ્ઞાની પ્રકૃતિસ્વભાવમાં સ્થિત હોવાથી વેદક જ છે (-કર્મનો ભોક્તા જ છે).

સુરીતે ભણીને શાસ્ત્ર પણ પ્રકૃતિ અભવ્ય નહિ તજે,
સાકરસહિત ક્ષીરપાનથી પણ સર્પ નહિ નિર્વિષ બને. ૩૧૭.

ભાવાર્થ:—આ ગાથામાં, અજ્ઞાની કર્મના ફળનો ભોક્તા જ છે—એ નિયમ કહ્યો. અહીં અભવ્યનું ઉદાહરણ યુક્ત છે. અભવ્યનો એવો સ્વયમેવ સ્વભ છે કે દ્રવ્યશ્રુતનું જ્ઞાન આદિ બાહ્ય કારણો મળવા છતાં અભવ્ય જીવ, શુદ્ધ આત્મ જ્ઞાનના અભાવને લીધે, કર્મના ઉદયને ભોગવવાનો સ્વભાવ બદલતો નથી; માટે ઉદાહરણથી સ્પષ્ટ થાય છે કે શાસ્ત્રોનું જ્ઞાન વગેરે હોવા છતાં જ્યાંસુધી જીવને શુ આત્માનું જ્ઞાન નથી અર્થાત્ અજ્ઞાનીપણું છે ત્યાંસુધી તે નિયમથી ભોક્તા જ છે. ૩૧

હવે, જ્ઞાની તો કર્મફળનો અવેદક જ છે—એવો નિયમ કરવામાં આવે છે—

णिव्वेयसमावण्णो णाणी कम्मप्फलं वियाणेइ ।
महुरं कडुयं वहुविहमवेयओ तेण सो होई ॥ ३१८ ॥

निर्वेदसमापन्नो ज्ञानी कर्मफलं विजानाति ।
मधुरं कटुकं बहुविधमवेदकस्तेन स भवति ॥ ३१८ ॥

અન્વયાર્થ:—[निर्वेदसमापन्नः] નિર્વેદપ્રાપ્ત (વૈરાગ્યને પામેલો) [ज्ञानी] જ્ઞાની [मधुरं कटुकं] મીઠા-કડવા [बहुविधं] બહુવિધ [कर्मफलं] કર્મોના [विजानाति] જાણે છે [तेन] તેથી [सः] તે [अवेदकः भवति] અવેદક છે.

ટીકા:—જ્ઞાની તો જેમાંથી ભેદ દૂર થયા છે એવું ભાવશ્રુતજ્ઞાન જેનું સ્વરૂપ છે એવા શુદ્ધાત્મજ્ઞાનના (-શુદ્ધ આત્માના જ્ઞાનના-) સદ્ભાવને લીધે, પરથી અત્યંત વિરક્ત હોવાથી પ્રકૃતિસ્વભાવને (કર્મના ઉદયના સ્વભાવને) સ્વયમેવ છો છે તેથી ઉદયમાં આવેલા અમધુર કે મધુર કર્મફળને જ્ઞાતાપણાને લીધે કેવળ જાણે જ છે, પરંતુ જ્ઞાન હોતાં (-જ્ઞાન હોય ત્યારે-) પરદ્રવ્યને 'હું'પણે અનુભવવાની અયોગ્યતા હોવાથી (તે કર્મફળને) વેદતો નથી. માટે, જ્ઞાની પ્રકૃતિસ્વભાવથી વિરક્ત હોવાથી અવેદક જ છે.

ભાવાર્થ:—જે જેનાથી વિરક્ત હોય તે તેને સ્વવશે તો ભોગવે નહિ, અને પરવશે ભોગવે તો તેને પરમાર્થે ભોક્તા કહેવાય નહિ. આ ન્યાયે જ્ઞાની—કે જે પ્રકૃતિ સ્વભાવને (કર્મના ઉદયને) પોતાનો નહિ જાણતો હોવાથી તેનાથી વિરક્ત છે તે— સ્વચ્છંદે તો પ્રકૃતિસ્વભાવને ભોગવતો નથી, અને ઉદયની બળજોરીથી પરવશ થઈ

નિર્વેદને પામેલ જ્ઞાની કર્મફળને જાણતો,
—કડવા મધુર બહુવિધને, તેથી અકારક છે અહો! ૩૧૮.

થકો પોતાની નિર્બળતાથી ભોગવે તો તેને પરમાર્થે ભોક્તા કહેવાય નહિ, વ્યવહારથી ભોક્તા કહેવાય. પરંતુ વ્યવહારનો તો અહીં શુદ્ધનયના કથનમાં અધિકાર નથી; માટે જ્ઞાની અભોક્તા જ છે.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છેઃ—

(વસંતતિલકા)

ज्ञानी करोति न न वेदयते च कर्म
जानाति केवलमयं किल तत्स्वभावम् ।
जानन्परं करणवेदनयोरभावा-
च्छुद्धस्वभावनियतः स हि मुक्त एव ॥ १९८ ॥

અર્થઃ—જ્ઞાની કર્મને કરતો નથી તેમ જ વેદતો નથી, કર્મના સ્વભાવને તે કેવળ જાણે જ છે. એમ કેવળ જાણતો થકો કરણના અને વેદનના (-કરવાના અને ભોગવવાના-) અભાવને લીધે શુદ્ધ સ્વભાવમાં નિશ્ચળ એવો તે ખરેખર મુક્ત જ છે.

ભાવાર્થઃ—જ્ઞાની કર્મનો સ્વાધીનપણે કર્તા-ભોક્તા નથી, કેવળ જ્ઞાતા જ ; માટે તે કેવળ શુદ્ધસ્વભાવરૂપ થયો થકો મુક્ત જ છે. કર્મ ઉદયમાં આવે પણ છે, ાપણ જ્ઞાનીને તે શું કરી શકે? જ્યાંસુધી નિર્બળતા રહે ત્યાંસુધી કર્મ જોર ચલાવી ો; ક્રમે ક્રમે સબળતા વધારીને છેવટે તે જ્ઞાની કર્મનો નિર્મૂળ નાશ કરશે જ. ૧૯૮.

હવે આ જ અર્થને ફરી દૃઢ કરે છેઃ—

णवि कुव्वइ णवि वेयइ णाणी कम्माइं बहुपयाराइं ।
जाणइ पुण कम्मफलं बंधं पुण्णं च पावं च ॥ ३१९ ॥

नापि करोति नापि वेदयते ज्ञानी कर्माणि बहुप्रकाराणि ।
जानाति पुनः कर्मफलं बंधं पुण्यं च पापं च ॥ ३१९ ॥

અન્વયાર્થઃ—[ज्ञानी] જ્ઞાની [बहुप्रकाराणि] બહુ પ્રકારનાં [कर्माणि] કર્મોને [न अपि करोति] કરતો પણ નથી, [न अपि वेदयते] વેદતો (ભોગવ

કરતો નથી, નથી વેદતો જ્ઞાની કરમ બહુવિધને,
બસ જાણતો એ બંધ તેમ જ કર્મફળ શુભ-અશુભને. ૩૧૯.

પણ નથી; [पुनः] પરંતુ [पुण्यं च पापं च] પુણ્ય અને પાપરૂપ [बंधं] બં… [कर्मफलं] તથા કર્મફળને [जानाति] જાણે છે.

ટીકાઃ—કર્મચેતના રહિત હોવાને લીધે પોતે અકર્તા હોવાથી, અને … ચેતના રહિત હોવાને લીધે પોતે અવેદક (-અભોક્તા) હોવાથી, જ્ઞાની … નથી તેમ જ વેદતો (-ભોગવતો) નથી; પરંતુ જ્ઞાનચેતનામય હોવાને લીધે … જ હોવાથી, શુભ અથવા અશુભ કર્મબંધને તથા કર્મફળને કેવળ જાણે જ છે.

હવે પૂછે છે કે—(જ્ઞાની કરતો-ભોગવતો નથી, જાણે જ છે) … તેનો ઉત્તર દૃષ્ટાંતપૂર્વક કહે છેઃ—

दिट्ठी जहेव णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव ।
जाणइ य बंधमोक्खं कम्मुदयं णिज्जरं चेव ॥ ३२० ॥

दृष्टिः यथैव ज्ञानमकारकं तथाऽवेदकं चैव ।
जानाति च बंधमोक्षं कर्मोदयं निर्जरां चैव ॥ ३२० ॥

અન્વયાર્થઃ—[यथा एव दृष्टिः] જેમ નેત્ર (દૃશ્ય પદાર્થોને કરતું-… નથી, દેખે જ છે), [तथा] તેમ [ज्ञानं] જ્ઞાન [अकारकं] અકારક [अवेदकं च एव] તથા અવેદક છે, [च] અને [बंधमोक्षं] બંધ, મોક્ષ, [कर्मोदयं] … [निर्जरां च एव] તથા નિર્જરાને [जानाति] જાણે જ છે.

ટીકાઃ—જેવી રીતે આ જગતમાં નેત્ર દૃશ્ય પદાર્થથી અત્યંત ભિ… તેને કરવા-વેદવાને અસમર્થ હોવાથી, દૃશ્ય પદાર્થને કરતું નથી અને … —જો એમ ન હોય તો અગ્નિને દેખવાથી, *સંધુક્ષણ કરનારની માફ… (નેત્રને) અગ્નિનું કર્તાપણું (સળગાવવાપણું), અને લોખંડના ગોળાની … (નેત્રને) અગ્નિના અનુભવ દુર્નિવાર થાય (અર્થાત્ જો નેત્ર દૃશ્ય … કરતું-વેદતું હોય તો તો નેત્ર વડે અગ્નિ સળગવો જોઈએ અને નેત્રને અગ્નિનો … અનુભવ અવશ્ય થવો જોઈએ; પરંતુ એમ તો થતું નથી, માટે ને… દૃશ્ય પદાર્થને કરતું-વેદતું નથી)—પરંતુ કેવળ દર્શનમાત્રસ્વભાવવાળું હોવાથી તે …

* સંધુક્ષણ = સંધૂકણ; અગ્નિ સળગાવનાર.

જ્યમ નેત્ર, તેમ જ જ્ઞાન નથી કારક, નથી વેદક અરે!
જાણે જ કર્મોદય, નિર્જરા, બંધ તેમ જ મોક્ષને. ૩૨૦

…વળ દેખે જ છે; તેવી રીતે જ્ઞાન પણ, પોતે (નેત્રની માફક) દેખનાર હોવાથી, …ર્મથી અત્યંત ભિન્નપણાને લીધે નિશ્ચયથી તેને કરવા-વેદવાને અસમર્થ હોવાથી, કર્મને કરતું નથી અને વેદતું નથી, પરંતુ કેવળ જ્ઞાનમાત્રસ્વભાવવાળું (જાણવાના સ્વભાવવાળું) હોવાથી કર્મના બંધને તથા મોક્ષને, કર્મના ઉદયને તથા નિર્જરાને …કેવળ જાણે જ છે.

ભાવાર્થ:—જ્ઞાનનો સ્વભાવ નેત્રની જેમ દૂરથી જાણવાનો છે; માટે કરવું-ભોગવવું જ્ઞાનને નથી. કરવા-ભોગવવાપણું માનવું તે અજ્ઞાન છે. અહીં કોઈ પૂછે કે—"એવું તો કેવળજ્ઞાન છે. બાકી જ્યાંસુધી મોહકર્મનો ઉદય છે ત્યાંસુધી તો સુખદુઃખરાગાદિરૂપ પરિણમન થાય જ છે, તેમ જ જ્યાંસુધી દર્શનાવરણ, જ્ઞાનાવરણ તથા વીર્યાંતરાયનો ઉદય છે ત્યાંસુધી અદર્શન, અજ્ઞાન તથા અસમર્થપણું હોય જ છે; તો પછી કેવળજ્ઞાન થયા પહેલાં જ્ઞાતાદ્રષ્ટાપણું કેમ કહેવાય?" તેનું સમાધાનઃ—…હુસેથી કહેતા જ આવીએ છીએ કે જે સ્વતંત્રપણે કરે-ભોગવે, તેને પરમાર્થે કર્તા-…ોક્તા કહેવાય છે. માટે જ્યાં મિથ્યાદૃષ્ટિરૂપ અજ્ઞાનનો અભાવ થયો ત્યાં પરદ્રવ્યના સ્વામીપણાનો અભાવ થયો અને ત્યારે જીવ જ્ઞાની થયો થકો સ્વતંત્રપણે તો કોઈનો કર્તા-ભોક્તા થતો નથી, તથા પોતાની નબળાઈથી કર્મના ઉદયની બળજોરીથી જે કાર્ય થાય છે તેનો કર્તા-ભોક્તા પરમાર્થદૃષ્ટિએ તેને કહેવાતો નથી. વળી તે કાર્યના નિમિત્તે કાંઈક નવીન કર્મરજ લાગે પણ છે તોપણ તેને અહીં બંધમાં ગણવામાં આવતી નથી. મિથ્યાત્વ છે તે જ સંસાર છે. મિથ્યાત્વ ગયા પછી સંસારનો અભાવ જ થાય છે. સમુદ્રમાં બિંદુની શી ગણતરી?

વળી એટલું વિશેષ જાણવું કે—કેવળજ્ઞાની તો સાક્ષાત્ શુદ્ધાત્મસ્વરૂપ જ… છે અને શ્રુતજ્ઞાની પણ શુદ્ધનયના અવલંબનથી આત્માને એવો જ અનુભવે છે… પ્રત્યક્ષ પરોક્ષનો જ ભેદ છે. માટે શ્રુતજ્ઞાનીને જ્ઞાન-શ્રદ્ધાનની અપેક્ષાએ તો જ્ઞાત… દ્રષ્ટાપણું જ છે અને ચારિત્રની અપેક્ષાએ પ્રતિપક્ષી કર્મનો જેટલો ઉદય છે તેટ… ઘાત છે તથા તેને નાશ કરવાનો ઉદ્યમ પણ છે. જ્યારે કર્મનો અભાવ થશે ત્યારે સાક્ષ… યથાખ્યાત ચારિત્ર થશે અને ત્યારે કેવળજ્ઞાન થશે. અહીં સમ્યગ્દૃષ્ટિને જ્ઞાની કહેવા… આવે છે તે મિથ્યાત્વના અભાવની અપેક્ષાએ કહેવામાં આવે છે. જ્ઞાનસામાન્ય… અપેક્ષા લઈએ તો તો સર્વ જીવ જ્ઞાની છે અને વિશેષ અપેક્ષા લઈએ તો જ્યાં… કિંચિત્માત્ર પણ અજ્ઞાન રહે ત્યાંસુધી જ્ઞાની કહી શકાય નહિ—જેમ સિદ્ધાં… ભાવોનું વર્ણન કરતાં, જ્યાંસુધી કેવળજ્ઞાન ન ઉપજે ત્યાંસુધી અર્થાત્ બારમા ગુણસ્… સુધી અજ્ઞાનભાવ કહ્યો છે. માટે અહીં જે જ્ઞાની-અજ્ઞાનીપણું કહ્યું તે સમ્ય… મિથ્યાત્વની અપેક્ષાએ જ જાણવું.

હવે કહે છે કે—જેઓ સાધુઓ પણ— સર્વથા એકાંતના આશયથી આત્માને કર્તા જ માને છે તેમને નિષેધતો, આગળની ગાથાની સૂચનારૂપ શ્લોક કહે છે:—

(અનુષ્ટુપ્)

ये तु कर्तारमात्मानं पश्यंति तमसा तताः ।
सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोऽपि मुमुक्षताम् ॥ १९९ ॥

શ્લોકાર્થ:—જેઓ અજ્ઞાન-અંધકારથી આચ્છાદિત થયા થકા આત્માને કર્તા માને છે, તેઓ ભલે મોક્ષને ઇચ્છનારા હોય તોપણ સામાન્ય (લૌકિક) જનોની જેમ તેમનો પણ મોક્ષ થતો નથી. ૧૯૯.

હવે આ જ અર્થને ગાથા દ્વારા કહે છે:—

लोयस्स कुणइ विण्हू सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते ।
समणाणं पि य अप्पा जइ कुव्वइ छव्विहे काये ॥ ३२१ ॥
लोयसमणाणमेयं सिद्धंतं जइ ण दीसइ विसेसो ।
[illegible]

एवं न कोऽपि मोक्षो दृश्यते लोकश्रमणानां द्वयेषामपि ।
नित्यं कुर्वतां सदेवमनुजासुरान् लोकान् ॥ ३२३ ॥

અન્વયાર્થઃ—[लोकस्य] લોકના (લૌકિક જનોના) મતમાં [सुरनारक
तिर्यङ्मानुषान् सत्त्वान्] દેવ, નારક, તિર્યંચ, મનુષ્ય—પ્રાણીઓને [विष्णुः] વિ
[करोति] કરે છે; [च] અને [यदि] જો [श्रमणानां अपि] શ્રમણોના (મુનિઓના
મન્તવ્યમાં પણ [षड्विधान् कायान्] છ કાયના જીવોને [आत्मा] આત્મા [करोति
કરતો હોય [यदि लोकश्रमणानाम्] તો લોક અને શ્રમણોનો [एकः सिद्धांतः] એ
સિદ્ધાંત થાય છે, [विशेषः] કાંઈ ફેર [न दृश्यते] દેખાતો નથી; (કારણ કે
[लोकस्य] લોકના મતમાં [विष्णुः] વિષ્ણુ [करोति] કરે છે [श्रमणानां अपि
અને શ્રમણોના મતમાં પણ [आत्मा] આત્મા [करोति] કરે છે (તેથી કર્તાપણાન
માન્યતામાં બન્ને સમાન થયા). [एवं] એ રીતે, [सदेवमनुजासुरान् लोकान्] દે
મનુષ્ય અને અસુરવાળા ત્રણે લોકને [नित्यं कुर्वताम्] સદાય કરતા (અર્થાત્ ત્ર
લોકના કર્તાભાવે નિરંતર પ્રવર્તતા) એવા [लोकश्रमणानां द्वयेषां अपि] તે લોક તે
જ શ્રમણ—બન્નેનો [कोऽपि मोक्षः] કોઈ મોક્ષ [न दृश्यते] દેખાતો નથી.

ટીકાઃ—જેઓ આત્માને કર્તા જ દેખે છે—માને છે, તેઓ લોકોત્તર હો
તોપણ લૌકિકતાને અતિક્રમતા નથી; કારણ કે, લૌકિક જનોના મતમાં પરમાત્મા વિ
દેવનારકાદિ કાર્યો કરે છે, અને તેમના (-લોકથી બાહ્ય થયેલા એવા મુનિઓના
મતમાં પોતાનો આત્મા તે કાર્યો કરે છે—એમ *અપસિદ્ધાંતની (બન્નેને) સમાન
છે. માટે આત્માના નિત્ય કર્તાપણાની તેમની માન્યતાને લીધે, લૌકિક જનોની માફ
લોકોત્તર પુરુષોનો (મુનિઓનો) પણ મોક્ષ થતો નથી.

ભાવાર્થઃ—જેઓ આત્માને કર્તા માને છે, તેઓ ભલે મુનિ થયા હોય તોપ
લૌકિક જન જેવા જ છે; કારણ કે, લોક ઈશ્વરને કર્તા માને છે અને તે મુનિઓ
આત્માને કર્તા માન્યો—એમ બન્નેની માન્યતા સમાન થઈ. માટે જેમ લૌકિક જનો
મોક્ષ નથી, તેમ તે મુનિઓને પણ મોક્ષ નથી. જે કર્તા થશે તે કાર્યના ફળને ભોગવ
જ, અને જે ફળ ભોગવશે તેને મોક્ષ કેવો?

હવે, 'પરદ્રવ્યને અને આત્માને કાંઈ પણ સંબંધ નથી, માટે કર્તાકર્મસંબ
પણ નથી'—એમ શ્લોકમાં કહે છેઃ—

(અનુષ્ટુપ્)

नास्ति सर्वोऽपि संबंधः परद्रव्यात्मतत्त्वयोः ।
कर्तृकर्मत्वसंबंधाभावे तत्कर्तृता कुतः ॥ २०० ॥

---

* અપસિદ્ધાંત = ખોટો અથવા ભૂલભરેલો સિદ્ધાંત.

અર્થઃ—પરદ્રવ્યને અને આત્મતત્ત્વને સર્વથા (અર્થાત્ કાંઈ પણ) સંબંધ નથી; એમ કર્તાકર્મપણાના સંબંધનો અભાવ હોતાં, આત્માને પરદ્રવ્યનું કર્તાપણું ક્યાંથી હોય?

ભાવાર્થઃ—પરદ્રવ્યને અને આત્માને કાંઈ પણ સંબંધ નથી, તો પછી તેમને કર્તાકર્મસંબંધ કઈ રીતે હોય? એ રીતે જ્યાં કર્તાકર્મસંબંધ નથી, ત્યાં આત્માને પરદ્રવ્યનું કર્તાપણું કઈ રીતે હોઈ શકે? ૩૨૧—૩૨૩.

હવે, "જેઓ વ્યવહારનયના કથનને ગ્રહીને 'પરદ્રવ્ય મારું છે' એમ કહે છે, એ રીતે વ્યવહારને જ નિશ્ચય માનીને આત્માને પરદ્રવ્યનો કર્તા માને છે, તેઓ મિથ્યાદૃષ્ટિ છે" ઇત્યાદિ અર્થની ગાથાઓ દૃષ્ટાંત સહિત કહે છે:—

ववहारभासिएण उ परदव्वं मम भणंति अविदियत्था ।
जाणंति णिच्छयेण उ ण य मह परमाणुमिच्चमवि किंचि ॥ ३२४॥
जह कोवि णरो जंपइ अह्मं गामविसयणयररट्ठं ।
ण य हुंति तस्स ताणि उ भणइ य मोहेण सो अप्पा ॥ ३२५॥
एमेव मिच्छदिट्ठी णाणी णीसंसयं हवइ एसो ।
जो परदव्वं मम इदि जाणंतो अप्पयं कुणइ ॥ ३२६ ॥
तह्मा ण मेत्ति णिच्चा दोण्ह वि एयाण कत्तविवसायं ।
परदव्वे जाणंतो जाणिज्जो दिट्ठिरहियाणं ॥ ३२७ ॥

વ્યવહારમૂઢ અતત્ત્વવિદ્ પરદ્રવ્યને 'મારું' કહે,
'પરમાણુમાત્ર ન મારું' જ્ઞાની જાણતા નિશ્ચય વડે. ૩૨૪.
જ્યમ પુરુષ કોઈ કહે 'અમારું ગામ, પુર ને દેશ છે,'
પણ તે નથી તેનાં, અરે! જીવ મોહથી 'મારાં' કહે; ૩૨૫.
એવી જ રીત જો જ્ઞાની પણ 'મુજ' જાણતો પરદ્રવ્યને,
નિજરૂપ કરે પરદ્રવ્યને, તે જરૂર મિથ્યાત્વી બને. ૩૨૬.
તેથી 'ન મારું' જાણી જીવ, પરદ્રવ્યમાં આ ઉભયની
કર્તૃત્વબુદ્ધિ જાણતો, જાણે સુદૃષ્ટિરહિતની. ૩૨૭.

व्यवहारभाषितेन तु परद्रव्यं मम भणंत्यविदितार्थाः ।
जानंति निश्चयेन तु न च मम परमाणुमात्रमपि किंचित् ॥ ३२४ ॥
यथा कोऽपि नरो जल्पति अस्माकं ग्रामविषयनगरराष्ट्रम् ।
न च भवंति तस्य तानि तु भणति च मोहेन स आत्मा ॥ ३२५ ॥
एवमेव मिथ्यादृष्टिर्ज्ञानी निःसंशयं भवत्येषः ।
यः परद्रव्यं ममेति जानन्नात्मानं करोति ॥ ३२६ ॥
तस्मान्न मे इति ज्ञात्वा द्वयेषामप्येतेषां कर्तृव्यवसायम् ।
परद्रव्ये जानन् जानीयात् दृष्टिरहितानाम् ॥ ३२७ ॥

અન્વયાર્થઃ—[अविदितार्थाः] જેમણે પદાર્થનું સ્વરૂપ જાણ્યું નથી એવ પુરુષો [व्यवहारभाषितेन तु] વ્યવહારનાં વચનોને ગ્રહીને [परद्रव्यं मम] 'પરદ્રવ્ય મારું છે' [भणंति] એમ કહે છે, [तु] પરંતુ જ્ઞાનીઓ [निश्चयेन जानंति] નિશ્ચય વડે જાણે છે કે [किंचित्] 'કોઈ [परमाणुमात्रं अपि] પરમાણુમાત્ર પણ [न च मम] મારું નથી.'

[यथा] જેવી રીતે [कोऽपि नरः] કોઈ પુરુષ [अस्माकं ग्रामविषयनगरराष्ट्रं] 'અમારું ગામ, અમારો દેશ, અમારું નગર, અમારું રાષ્ટ્ર' [जल्पति] એમ કહે છે, [तु] પરંતુ [तानि] તે [तस्य] તેનાં [न च भवंति] નથી, [मोहेन च] મોહથી [सः आत्मा] તે આત્મા [भणति] 'મારાં' કહે છે; [एवं एव] તેવી જ રીતે [यः ज्ञानी] જે જ્ઞાની પણ [परद्रव्यं मम] 'પરદ્રવ્ય મારું છે' [इति जानन्] એમ જાણતો થકો [आत्मानं करोति] પરદ્રવ્યને પોતારૂપ કરે છે, [एषः] તે [निःसंशयं] નિઃસંદેહ અર્થાત્ ચોક્કસ [मिथ्यादृष्टिः] મિથ્યાદૃષ્ટિ [भवति] થાય છે.

[तस्मात्] માટે તત્ત્વજ્ઞો [न मे इति ज्ञात्वा] 'પરદ્રવ્ય મારું નથી' એમ જાણીને, [एतेषां द्वयेषां अपि] આ બન્નેનો (–લોકનો અને શ્રમણનો–) [परद्रव्ये] પરદ્રવ્યમાં [कर्तृव्यवसायं जानन्] કર્તાપણાનો વ્યવસાય જાણતા થકા, [जानीयात्] એમ જાણે છે કે [दृष्टिरहितानाम्] આ વ્યવસાય સમ્યગ્દર્શન રહિત પુરુષોનો છે.

ટીકાઃ—અજ્ઞાનીઓ જ વ્યવહારવિમૂઢ (વ્યવહારમાં જ વિમૂઢ) હોવાથી પરદ્રવ્યને 'આ મારું છે' એમ દેખે છે—માને છે; જ્ઞાનીઓ તો નિશ્ચયપ્રતિબુદ્ધ (નિશ્ચયના જાણનારા) હોવાથી પરદ્રવ્યની કણિકામાત્રને પણ 'આ મારું છે' એમ દેખતા નથી. તેથી, જેમ આ જગતમાં કોઈ વ્યવહારવિમૂઢ એવો પારકા ગામમાં રહેનારો માણસ 'આ ગામ મારું છે' એમ દેખતો-માનતો થકો મિથ્યાદૃષ્ટિ (–ખોટી

मिथ्यात्वं यदि प्रकृतिर्मिथ्यादृष्टिं करोत्यात्मानम् ।
तस्मादचेतना ते प्रकृतिर्ननु कारका प्राप्ता ॥ ३२८ ॥
अथवैष जीवः पुद्गलद्रव्यस्य करोति मिथ्यात्वम् ।
तस्मात्पुद्गलद्रव्यं मिथ्यादृष्टिर्न पुनर्जीवः ॥ ३२९ ॥
अथ जीवप्रकृतिस्तथा पुद्गलद्रव्यं कुरुते मिथ्यात्वम् ।
तस्मात् द्वाभ्यां कृतं द्वावपि भुंजाते तस्य फलम् ॥ ३३० ॥
अथ न प्रकृतिर्न जीवः पुद्गलद्रव्यं कुरुते मिथ्यात्वम् ।
तस्मात्पुद्गलद्रव्यं मिथ्यात्वं तत्तु न खलु मिथ्या ॥ ३३१ ॥

અન્વયાર્થ:—[यदि] જો [मिथ्यात्वं प्रकृतिः] મિથ્યાત્વ નામની (મોહનીય કર્મની) પ્રકૃતિ [आत्मानं] આત્માને [मिथ्यादृष्टिं] મિથ્યાદૃષ્ટિ [करोति] કરે છે એમ માનવામાં આવે, [तस्मात्] તો [ते] તારા મતમાં [अचेतना प्रकृतिः] અચેતન પ્રકૃતિ [ननु कारका प्राप्ता] (મિથ્યાત્વભાવની) કર્તા બની! (તેથી મિથ્યાત્વભાવ અચેતન ઠર્યો!)

[अथवा] અથવા, [एषः जीवः] આ જીવ [पुद्गलद्रव्यस्य] પુદ્ગલદ્રવ્યના [मिथ्यात्वं] મિથ્યાત્વને [करोति] કરે છે એમ માનવામાં આવે, [तस्मात्] તો [पुद्गलद्रव्यं मिथ्यादृष्टिः] પુદ્ગલદ્રવ્ય મિથ્યાદૃષ્ટિ ઠરે!—[न पुनः जीवः] જીવ નહિ!

[अथ] અથવા જો [जीवः तथा प्रकृतिः] જીવ તેમ જ પ્રકૃતિ બન્ને [पुद्गलद्रव्यं] પુદ્ગલદ્રવ્યને [मिथ्यात्वं] મિથ્યાત્વભાવરૂપ [कुरुते] કરે છે એમ માનવામાં આવે, [तस्मात्] તો [द्वाभ्यां कृतं] જે બન્ને વડે કરવામાં આવ્યું [तस्य फलं] તેનું ફળ [द्वौ अपि भुंजाते] બન્ને ભોગવે!

[अथ] અથવા જો [पुद्गलद्रव्यं] પુદ્ગલદ્રવ્યને [मिथ्यात्वं] મિથ્યાત્વભાવરૂપ [न प्रकृतिः कुरुते] નથી પ્રકૃતિ કરતી [न जीवः] કે નથી જીવ કરતો (-બેમાંથી કોઈ કરતું નથી) એમ માનવામાં આવે, [तस्मात्] તો [पुद्गलद्रव्यं मिथ्यात्वं] પુદ્ગલદ્રવ્ય સ્વભાવે જ મિથ્યાત્વભાવરૂપ ઠરે! [तद् तु न खलु मिथ्या] તે શું ખરેખર મિથ્યા નથી?

(આથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે પોતાના મિથ્યાત્વભાવનો—ભાવકર્મનો—કર્તા જીવ જ છે.)

ટીકા:—જીવ જ મિથ્યાત્વ આદિ ભાવકર્મનો કર્તા છે; કારણ કે જો તે

(ભાવકર્મ) અચેતન પ્રકૃતિનું કાર્ય હોય તો તેને (ભાવકર્મને) અચેતનપણા
પ્રસંગ આવે. જીવ પોતાના જ મિથ્યાત્વાદિ ભાવકર્મનો કર્તા છે; કારણ કે જો જી
પુદ્ગલદ્રવ્યના મિથ્યાત્વાદિ ભાવકર્મને કરે તો પુદ્ગલદ્રવ્યને ચેતનપણાનો પ્રસંગ આવે
વળી જીવ અને પ્રકૃતિ બન્ને મિથ્યાત્વાદિ ભાવકર્મના કર્તા છે એમ પણ નથી; કાર
કે જો તે બન્ને કર્તા હોય તો જીવની માફક અચેતન પ્રકૃતિને પણ તેનું (-ભાવકર્મનું
ફળ ભોગવવાનો પ્રસંગ આવે. વળી જીવ અને પ્રકૃતિ બન્ને મિથ્યાત્વાદિ ભાવકર્મ
અકર્તા છે એમ પણ નથી; કારણ કે જો તે બન્ને અકર્તા હોય તો સ્વભાવથી
પુદ્ગલદ્રવ્યને મિથ્યાત્વાદિ ભાવનો પ્રસંગ આવે. માટે એમ સિદ્ધ થયું કે—જીવ કર્
છે અને પોતાનું કર્મ કાર્ય છે (અર્થાત્ જીવ પોતાના મિથ્યાત્વાદિ ભાવકર્મનો કર્
છે અને પોતાનું ભાવકર્મ પોતાનું કાર્ય છે).

ભાવાર્થ:—ભાવકર્મનો કર્તા જીવ જ છે એમ આ ગાથાઓમાં સિદ્ધ કર્યું
છે. અહીં એમ જાણવું કે—પરમાર્થે અન્ય દ્રવ્ય અન્ય દ્રવ્યના ભાવનું કર્તા હોય નહિ
તેથી જે ચેતનના ભાવો છે તેમનો કર્તા ચેતન જ હોય. આ જીવને અજ્ઞાનથી
મિથ્યાત્વાદિ ભાવરૂપ પરિણામો છે તે ચેતન છે, જડ નથી; શુદ્ધનયથી તેમને ચિદાભા
પણ કહેવામાં આવે છે. એ રીતે તે પરિણામો ચેતન હોવાથી, તેમનો કર્તા પણ ચેત
જ છે; કારણ કે ચેતનકર્મનો કર્તા ચેતન જ હોય—એ પરમાર્થ છે. અભેદદૃષ્ટિમાં તો
જીવ શુદ્ધચેતનામાત્ર જ છે, પરંતુ જ્યારે તે કર્મના નિમિત્તે પરિણમે છે ત્યારે તે
પરિણામોથી યુક્ત તે થાય છે અને ત્યારે પરિણામ-પરિણામીની ભેદદૃષ્ટિમાં પોતાન
અજ્ઞાનભાવરૂપ પરિણામોનો કર્તા જીવ જ છે. અભેદદૃષ્ટિમાં તો કર્તાકર્મભાવ જ નથી
શુદ્ધચેતનામાત્ર જીવવસ્તુ છે. આ પ્રમાણે યથાર્થ પ્રકારે સમજવું કે ચેતનકર્મનો કર્
ચેતન જ છે.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

कार्यत्वादकृतं न कर्म न च तज्जीवप्रकृत्योर्द्वयो-
रज्ञायाः प्रकृतेः स्वकार्यफलभुग्भावानुषंगात्कृतिः ।
नैकस्याः प्रकृतेरचित्त्वलसनाज्जीवोऽस्य कर्ता ततो
जीवस्यैव च कर्म तच्चिदनुगं ज्ञाता न यत्पुद्गलः ॥ २०३ ॥

અર્થ:—કર્મ (અર્થાત્ ભાવકર્મ) છે તે કાર્ય છે, માટે તે અકૃત હોય નહિ
અર્થાત્ કોઈએ કર્યા વિના થાય નહિ. વળી તે (ભાવકર્મ) જીવ અને પ્રકૃતિ બન્નેની
કૃતિ હોય એમ નથી, કારણ કે જો તે બન્નેનું કાર્ય હોય તો જ્ઞાનરહિત (જડ) એવી

પ્રકૃતિને પણ પોતાના કાર્યનું ફળ ભોગવવાનો પ્રસંગ આવે. વળી તે (ભાવ[illegible] એક પ્રકૃતિની કૃતિ (–એકલી પ્રકૃતિનું કાર્ય–) પણ નથી, કારણ કે પ્રકૃતિને અચેતનપણું પ્રકાશે છે (અર્થાત્ પ્રકૃતિ તો અચેતન છે અને ભાવકર્મ ચેતન [illegible] માટે તે ભાવકર્મનો કર્તા જીવ જ છે અને ચેતનને અનુસરનારું અર્થાત્ ચેતન [illegible] અન્વયરૂપ (–ચેતનના પરિણામરૂપ–) એવું તે ભાવકર્મ જીવનું જ કર્મ છે, કાર[illegible] પુદ્ગલ તો જ્ઞાતા નથી (તેથી તે ભાવકર્મ પુદ્ગલનું કર્મ હોઈ શકે નહિ).

ભાવાર્થ:—ચેતનકર્મ ચેતનને જ હોય; પુદ્ગલ જડ છે, તેને ચેત[illegible] કેમ હોય?

હવેની ગાથાઓમાં, જેઓ ભાવકર્મનો કર્તા પણ કર્મને જ માને છે તે[illegible] સમજાવવાને સ્યાદ્વાદ અનુસાર વસ્તુસ્થિતિ કહેશે; તેની સૂચનારૂપ કાવ્ય પ્રથમ કહે [illegible]

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

कर्मैव प्रवितर्क्य कर्तृ हतकैः क्षिप्त्वात्मनः कर्तृतां
कर्तात्मैष कथंचिदित्यचलिता कैश्चिच्छ्रुतिः कोपिता ।
तेषामुद्धतमोहमुद्रितधियां बोधस्य संशुद्धये
स्याद्वादप्रतिबन्धलब्धविजया वस्तुस्थितिः स्तूयते ॥ २०४ ॥

અર્થ:—કોઈ આત્માના ઘાતક (સર્વથા એકાંતવાદીઓ) કર્મને જ [illegible] વિચારીને આત્માના કર્તાપણાને ઉડાડીને, 'આ આત્મા કથંચિત્ કર્તા છે' એમ કહેનારી અચલિત શ્રુતિને કોપિત કરે છે (–નિર્બાધ જિનવાણીની વિરાધના કરે છે); તીવ્ર મોહથી જેમની બુદ્ધિ બિડાઈ ગઈ છે એવા તે આત્મઘાતકોના જ્ઞાનની સંશુદ્ધિ અર્થે (–હવેની ગાથાઓમાં) વસ્તુસ્થિતિ કહેવામાં આવે છે—કે જે વસ્તુસ્થિતિએ સ્યા[illegible] પ્રતિબંધ વડે વિજય મેળવ્યો છે (અર્થાત્ જે વસ્તુસ્થિતિ સ્યાદ્વાદરૂપ નિયમથી નિર્બાધપણે સિદ્ધ થાય છે).

ભાવાર્થ:—કોઈ એકાંતવાદીઓ સર્વથા એકાંતથી કર્મનો કર્તા કર્મને જ મા[illegible] છે અને આત્માને અકર્તા જ કહે છે; તેઓ આત્માના ઘાતક છે. તેમના પર જિનવાણીનો [illegible] કોપ છે, કારણ કે સ્યાદ્વાદથી વસ્તુસ્થિતિને નિર્બાધ રીતે સિદ્ધ કરનારી જિનવાણી તો આત્માને કથંચિત્ કર્તા કહે છે. આત્માને અકર્તા જ કહેનારા એકાંતવાદીઓની બુદ્ધિ ઉત્કટ મિથ્યાત્વથી બિડાઈ ગયેલી છે; તેમના મિથ્યાત્વને દૂર કરવાને આચાર્ય[illegible] ભગવાન સ્યાદ્વાદ અનુસાર જેવી વસ્તુસ્થિતિ છે તેવી, નીચેની ગાથાઓમાં [illegible] કહે છે. ૩૩૨—૩૪૪

'આત્મા સર્વથા અકર્તા નથી, કથંચિત્ કર્તા પણ છે' એવા અર્થની ગાથાઓ હવે કહે છે:—

कम्मेहि दु अण्णाणी किज्जइ णाणी तहेव कम्मेहिं ।
कम्मेहि सुवाविज्जइ जग्गाविज्जइ तहेव कम्मेहिं ॥ ३३२ ॥
कम्मेहि सुहाविज्जइ दुक्खाविज्जइ तहेव कम्मेहिं ।
कम्मेहि य मिच्छत्तं णिज्जइ णिज्जइ असंजमं चेव ॥ ३३३ ॥
कम्मेहि भमाडिज्जइ उड्ढमहो चावि तिरियलोयं च ।
कम्मेहि चेव किज्जइ सुहासुहं जित्ति यं किंचि ॥ ३३४ ॥
जह्मा कम्मं कुव्वइ कम्मं देई हरत्ति जं किंचि ।
तह्मा उ सव्वजीवा अकारया हुंति आवण्णा ॥ ३३५ ॥
पुरिसिच्छियाहिलासी इच्छीकम्मं च पुरिसमहिलसइ ।
एसा आयरियपरंपरागया एरिसी दु सुई ॥ ३३६ ॥

"કર્મો કરે અજ્ઞાની તેમ જ જ્ઞાની પણ કર્મો કરે,
કર્મો સુવાડે તેમ વળી કર્મો જગાડે જીવને; ૩૩૨.
કર્મો કરે સુખી તેમ વળી કર્મો દુઃખી જીવને કરે,
કર્મો કરે મિથ્યાત્વી તેમ અસંયમી કર્મો કરે; ૩૩૩.
કર્મો ભમાવે ઊર્ધ્વ લોકે, અધઃ ને તિર્યક્ વિષે,
જે કાંઈ પણ શુભ કે અશુભ તે સર્વને કર્મ જ કરે. ૩૩૪.
કર્મ જ કરે છે, કર્મ એ આપે, હરે,–સઘળું કરે,
તેથી ઠરે છે એમ કે આત્મા અકારક સર્વ છે. ૩૩૫.
વળી 'પુરુષકર્મ સ્ત્રીને અને સ્ત્રીકર્મ ઇચ્છે પુરુષને'
–એવી શ્રુતિ આચાર્ય કેરી પરંપરા ઊતરેલ છે. ૩૩૬.

तह्मा ण कोवि जीवो अबंभचारी उ अह्म उवएसे ।
जह्मा कम्मं चेव हि कम्मं अहिलसइ इदि भणियं ॥ ३३७॥
जह्मा घाएइ परं परेण घाइज्जए य सा पयडी ।
एएणच्छेण किर भण्णइ परघायणामित्ति ॥ ३३८ ॥
तह्मा ण कोवि जीवो वघायओ अत्थि अह्म उवएसे ।
जह्मा कम्मं चेव हि कम्मं घाएदि इदि भणियं ॥ ३३९॥
एवं संखुवएसं जे उ परूविंति एरिसं समणा ।
तेसिं पयडी कुव्वइ अप्पा य अकारया सव्वे ॥ ३४० ॥
अहवा मण्णसि मज्झं अप्पा अप्पाणमप्पणो कुणइ ।
एसो मिच्छसहावो तुह्मं एयं मुणंतस्स ॥ ३४१ ॥
अप्पा णिच्चो असंखिज्जपदेसो देसिओ उ समयह्मि ।
ण वि सो सक्कइ तत्तो हीणो अहिओ य काउं जे ॥ ३४२ ॥

એ રીત 'કર્મ જ કર્મને ઇચ્છે'–કહ્યું છે શ્રુતમાં.
તેથી ન કો પણ જીવ અબ્રહ્મચારી અમ ઉપદેશમાં. ૩૩૭.
વળી જે હણે પરને, હણાયે પરથી, તેહ પ્રકૃતિ છે,
–એ અર્થમાં પરઘાત નામનું નામકર્મ કથાય છે. ૩૩૮.
એ રીત 'કર્મ જ કર્મને હણતું'–કહ્યું છે શ્રુતમાં,
તેથી ન કો પણ જીવ છે હણનાર અમ ઉપદેશમાં." ૩૩૯.
એમ સાંખ્યનો ઉપદેશ આવો, જે શ્રમણ પ્રરૂપણ કરે,
તેના મતે પ્રકૃતિ કરે છે, જીવ અકારક સર્વ છે! ૩૪૦.
અથવા તું માને 'આતમા મારો કરે નિજ આત્મને,'
તો એવું તુજ મંતવ્ય પણ મિથ્યા સ્વભાવ જ તુજ ખરે. ૩૪૧.
જીવ નિત્ય તેમ વળી અસંખ્યપ્રદેશી દર્શિત સમયમાં,
તેનાથી તેને હીન તેમ અધિક કરવો શક્ય ના. ૩૪૨.

जीवस्स जीवरूवं वित्थरदो जाण लोयमित्तं खु ।
तत्तो सो किं हीणो अहिओ य कहं कुणइ दव्वं ॥ ३४३ ॥
अह जाणओ उ भावो णाणसहावेण अत्थि इत्ति मयं ।
तह्मा ण वि अप्पा अप्पयं तु सयमप्पणो कुणइ ॥ ३४४ ॥

कर्मभिस्तु अज्ञानी क्रियते ज्ञानी तथैव कर्मभिः ।
कर्मभिः स्वाप्यते जागर्यते तथैव कर्मभिः ॥ ३३२ ॥

कर्मभिः सुखी क्रियते दुःखी क्रियते तथैव कर्मभिः ।
कर्मभिश्च मिथ्यात्वं नीयते नीयतेऽसंयमं चैव ॥ ३३३ ॥

कर्मभिर्भ्राम्यते ऊर्ध्वमधश्चापि तिर्यग्लोकं च ।
कर्मभिश्चैव क्रियते शुभाशुभं यावद्यत्किंचित् ॥ ३३४ ॥

यस्मात्कर्म करोति कर्म ददाति हरतीति यत्किंचित् ।
तस्मात्तु सर्वजीवा अकारका भवंत्यापन्नाः ॥ ३३५ ॥

पुरुषः स्त्र्यभिलाषी स्त्रीकर्म च पुरुषमभिलषति ।
एषाचार्यपरंपरागतेदृशी तु श्रुतिः ॥ ३३६ ॥

तस्मान्न कोऽपि जीवोऽब्रह्मचारी त्वस्माकमुपदेशे ।
यस्मात्कर्म चैव हि कर्माभिलषतीति भणितम् ॥ ३३७ ॥

यस्माद्धंति परं परेण हन्यते च सा प्रकृतिः ।
एतेनार्थेन किल भण्यते परघातनामेति ॥ ३३८ ॥

तस्मान्न कोऽपि जीव उपघातकोऽस्त्यस्माकमुपदेशे ।
यस्मात्कर्म चैव हि कर्म हंतीति भणितम् ॥ ३३९ ॥

વિસ્તારર્થીય જીવરૂપ જીવનું લોકમાત્ર જ છે ખરે,
શું તેથી ને હીન-અધિક બનતો? કેમ કરતો દ્રવ્યને? ૩૪૩.
માને તું—'જ્ઞાયક ભાવ તો જ્ઞાનસ્વભાવે સ્થિત રહે,'
તો એમ પણ આત્મા સ્વયં નિજ આતમાને નહિ કરે. ૩૪૪.

एवं सांख्योपदेशं ये तु प्ररूपयंतीदृशं श्रमणाः ।
तेषां प्रकृतिः करोत्यात्मानश्चाकारकाः सर्वे ॥ ३४० ॥
अथवा मन्यसे ममात्मात्मानमात्मनः करोति ।
एष मिथ्यास्वभावस्तवैतज्जानतः ॥ ३४१ ॥
आत्मा नित्योऽसंख्येयप्रदेशो दर्शितस्तु समये ।
नापि स शक्यते ततो हीनोऽधिकश्च कर्तुं यत् ॥ ३४२ ॥
जीवस्य जीवरूपं विस्तरतो जानीहि लोकमात्रं खलु ।
ततः स किं हीनोऽधिको वा कथं करोति द्रव्यम् ॥ ३४३ ॥
अथ ज्ञायकस्तु भावो ज्ञानस्वभावेन तिष्ठतीति मतम् ।
तस्मान्नाप्यात्मात्मानं तु स्वयमात्मनः करोति ॥ ३४४ ॥

અન્વયાર્થ:—"[कर्मभिः तु] કર્મો [अज्ञानी क्रियते] (જીવને) અ[illegible] કરે છે [तथा एव] તેમ જ [कर्मभिः ज्ञानी] કર્મો (જીવને) જ્ઞાની કરે છે. [illegible]] કર્મો સુવાડે છે [तथा एव] તેમ જ [कर्मभिः जागर्यते] કર્મો [illegible] [कर्मभिः सुखी क्रियते] કર્મો સુખી કરે છે [तथा एव] તેમ જ [कर्मभिः [illegible] क्रियते] કર્મો દુઃખી કરે છે, [कर्मभिः च मिथ्यात्वं नीयते] કર્મો મિથ્યાત્વ [illegible] [तथा एव] તેમ જ [असंयमं नीयते] કર્મો અસંયમ પમાડે છે, [कर्मभिः] [illegible] ऊर्ध्वम् अधः च अपि तिर्यग्लोकं च] ઊર્ધ્વલોક, અધોલોક અને તિર્[illegible] [illegible]] ભમાડે છે, [यत्किंचित् यावत् शुभाशुभं] જે કાંઈ પણ [illegible] [illegible] [कर्मभिः च क्रियते] કર્મો જ કરે છે. [illegible] [illegible]

[illegible]

વળી, [यस्मात् परं हंति] જે પરને હણે છે [च] અને [परेण हन्यते] જે પરથી હણાય છે [सा प्रकृतिः] તે પ્રકૃતિ છે—[एतेन अर्थेन किल] એ અર્થમાં [परघातनाम इति भण्यते] પરઘાતનામકર્મ કહેવામાં આવે છે, [तस्मात्] તેથી [अस्माकं उपदेशे] અમારા ઉપદેશમાં [कोऽपि जीवः] કોઈ પણ જીવ [उपघातकः न अस्ति] ઉપઘાતક (હણનાર) નથી [यस्मात्] કારણ કે [कर्म चैव हि] કર્મ જ [कर्म हंति] કર્મને હણે છે [इति भणितं] એમ કહ્યું છે.”

(આચાર્યભગવાન કહે છે કેઃ—) [एवं तु] આ પ્રમાણે [ईदृशं सांख्योपदेशं] આવો સાંખ્યમતનો ઉપદેશ [ये श्रमणाः] જે શ્રમણો (જૈન મુનિઓ) [प्ररूपयंति] પ્રરૂપે છે [तेषां] તેમના મતમાં [प्रकृतिः करोति] પ્રકૃતિ જ કરે છે [आत्मानः च सर्वे] અને આત્માઓ તો સર્વે [अकारकाः] અકારક છે એમ ઠરે છે!

[अथवा] અથવા (કર્તાપણાનો પક્ષ સાધવાને) [मन्यसे] જો તું એમ માને કે ‘[मम आत्मा] મારો આત્મા [आत्मनः] પોતાના [आत्मानं] (દ્રવ્યરૂપ) આત્માને [करोति] કરે છે,’ [एतद् जानतः तव] તો એવું જાણનારનો તારો [एषः मिथ्यास्वभावः] એ મિથ્યાસ્વભાવ છે (અર્થાત્ એમ જાણવું તે તારો મિથ્યાસ્વભાવ છે); [यद्] કારણ કે—[समये] સિદ્ધાંતમાં [आत्मा] આત્માને [नित्यः] નિત્ય, [असंख्येयप्रदेशः] અસંખ્યાત-પ્રદેશી [दर्शितः तु] બતાવ્યો છે, [ततः] તેનાથી [सः] તેને [हीनः अधिकः च] હીન-અધિક [कर्तुं न अपि शक्यते] કરી શકાતો નથી; [विस्तरतः] વળી વિસ્તારથી પણ [जीवस्य जीवरूपं] જીવનું જીવરૂપ [खलु] નિશ્ચયથી [लोकमात्रं जानीहि] લોકમાત્ર જાણ; [ततः] તેનાથી [किं सः हीनः अधिकः वा] શું તે હીન અથવા અધિક થાય છે? [द्रव्यं कथं करोति] તો પછી (આત્મા) દ્રવ્યને (અર્થાત્ દ્રવ્યરૂપ આત્માને) કઈ રીતે કરે છે?

[अथ] અથવા જો ‘[ज्ञायकः भावः तु] જ્ઞાયક ભાવ તો [ज्ञानस्वभावेन तिष्ठति] જ્ઞાનસ્વભાવે સ્થિત રહે છે’ [इति मतं] એમ માનવામાં આવે, [तस्मात् अपि] તો એમ પણ [आत्मा स्वयं] આત્મા પોતે [आत्मनः आत्मानं तु] પોતાના આત્માને [न करोति] કરતો નથી એમ ઠરે છે!

(આ રીતે કર્તાપણું સાધવા માટે વિવક્ષા પલટીને જે પક્ષ કહ્યો તે ઘટતો નથી).

(આ પ્રમાણે, કર્મનો કર્તા કર્મ જ માનવામાં આવે તો સ્યાદ્વાદ સાથે વિરોધ આવે છે; માટે આત્માને અજ્ઞાન-અવસ્થામાં કથંચિત્ પોતાના અજ્ઞાનભાવરૂપ કર્મનો કર્તા માનવો, જેથી સ્યાદ્વાદ સાથે વિરોધ આવતો નથી.)

ટીકાઃ—(અહીં પૂર્વપક્ષ આ પ્રમાણે છેઃ) "કર્મ જ આત્માને અજ્ઞા[illegible] છે, કારણ કે જ્ઞાનાવરણ નામના કર્મના ઉદય વિના તેની (અજ્ઞાનની) અનુ[illegible] છે; કર્મ જ (આત્માને) જ્ઞાની કરે છે, કારણ કે જ્ઞાનાવરણ નામના કર્મના ક્ષયો[illegible] વિના તેની અનુપપત્તિ છે; કર્મ જ સુવાડે છે, કારણ કે નિદ્રા નામના કર્મના [illegible] વિના તેની અનુપપત્તિ છે; કર્મ જ જગાડે છે, કારણ કે નિદ્રા નામના કર્મના ક્ષયો[illegible] વિના તેની અનુપપત્તિ છે; કર્મ જ સુખી કરે છે, કારણ કે શાતાવેદનીય નામના ક[illegible] ઉદય વિના તેની અનુપપત્તિ છે; કર્મ જ દુઃખી કરે છે, કારણ કે અશાતાવે[illegible] નામના કર્મના ઉદય વિના તેની અનુપપત્તિ છે; કર્મ જ મિથ્યાદૃષ્ટિ કરે છે, કાર[illegible] મિથ્યાત્વકર્મના ઉદય વિના તેની અનુપપત્તિ છે; કર્મ જ અસંયમી કરે છે, કાર[illegible] ચારિત્રમોહ નામના કર્મના ઉદય વિના તેની અનુપપત્તિ છે; કર્મ જ ઊર્ધ્વલો[illegible] અધોલોકમાં અને તિર્યગ્લોકમાં ભમાવે છે, કારણ કે આનુપૂર્વી નામના કર્મના [illegible] વિના તેની અનુપપત્તિ છે; બીજું પણ જે કાંઈ પણ જેટલું શુભ અશુભ છે તે બ[illegible] કર્મ જ કરે છે, કારણ કે પ્રશસ્ત-અપ્રશસ્ત રાગ નામના કર્મના ઉદય વિના તે[illegible] અનુપપત્તિ છે. એ રીતે બધુંય સ્વતંત્રપણે કર્મ જ કરે છે, કર્મ જ આપે છે, કર્મ [illegible] હરી લે છે, તેથી અમે એમ નિશ્ચય કરીએ છીએ કે—સર્વે જીવો સદાય એકાંતે અ[illegible] જ છે. વળી શ્રુતિ (ભગવાનની વાણી, શાસ્ત્ર) પણ એ જ અર્થને કહે છે; કારણ [illegible] (તે શ્રુતિ) "પુરુષવેદ નામનું કર્મ સ્ત્રીની અભિલાષા કરે છે અને સ્ત્રીવેદ નામનું કર્મ પુરુષની અભિલાષા કરે છે" એ વાક્યથી કર્મને જ કર્મની અભિલાષાના ક[illegible] [illegible] સમર્થન વડે જીવને અબ્રહ્મચર્યના કર્તાપણાનો નિષેધ કરે છે, તથા 'જે પર[illegible] હણે છે અને જે પરથી હણાય છે તે પરઘાતકર્મ છે' એ વાક્યથી કર્મને જ કર્મના [illegible] ઘાતનું કર્તાપણું હોવાના સમર્થન વડે જીવને ઘાતના કર્તાપણાનો નિષેધ કરે છે, અને એ રીતે (અબ્રહ્મચર્યના તથા ઘાતના કર્તાપણાના નિષેધ દ્વારા) જીવનું સર્વથા જ અકર્તાપણું જણાવે છે."

(આચાર્યદેવ કહે છે કેઃ—) આ પ્રમાણે અ[illegible] [illegible] પોતાની પ્રજ્ઞાના (બુદ્ધિના) અપરાધથી સૂત્રના અર્થને નહિ જા[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ગ્રામીણ પ્રત્યે [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] જાણવાથી. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] કેમ કે [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] અને આત્માને [illegible] [illegible] [illegible] શ્રુતિ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] અજ્ઞાની [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] આને [illegible]

[illegible]

અભિપ્રાય છે તે મિથ્યા જ છે. (તે સમજાવવામાં આવે છે:) દ્રવ્ય તો દ્રવ્યરૂપે નિ
ે, અસંખ્યાત-પ્રદેશી છે અને લોકપરિમાણ છે. તેમાં પ્રથમ, નિત્યનું કાર્યપણું બની
શકતું નથી, કારણ કે કૃતકપણાને અને નિત્યપણાને એકપણાનો વિરોધ છે. (આત્મા
નિત્ય છે તેથી તે કૃતક અર્થાત્ કોઈએ કરેલો હોઈ શકે નહિ). વળી અવસ્થિત
અસંખ્ય-પ્રદેશવાળા એકને (-આત્માને), પુદ્ગલસ્કંધની માફક, પ્રદેશોનાં પ્રક્ષેપણ-
આકર્ષણ દ્વારા પણ કાર્યપણું બની શકતું નથી, કારણ કે પ્રદેશોનું પ્રક્ષેપણ તથા
આકર્ષણ થાય તો તેના એકપણાનો વ્યાઘાત થાય. (સ્કંધ અનેક પરમાણુઓનો બનેલો
ે, માટે તેમાંથી પરમાણુઓ નીકળી જાય તેમ જ તેમાં પરમાણુઓ આવે; પરંતુ
આત્મા નિશ્ચિત અસંખ્ય-પ્રદેશવાળું એક જ દ્રવ્ય હોવાથી તે પોતાના પ્રદેશોને કાઢી
નાખી શકે નહિ તેમ જ વધારે પ્રદેશોને લઈ શકે નહિ.) વળી સકળ લોકરૂપી ઘરના
વિસ્તારથી પરિમિત જેનો નિશ્ચિત નિજ *વિસ્તાર-સંગ્રહ છે (અર્થાત્ લોક જેટલું
જેનું નિશ્ચિત માપ છે) તેને (-આત્માને) પ્રદેશોના સંકોચ-વિકાસ દ્વારા પણ કાર્યપણું
બની શકતું નથી, કારણ કે પ્રદેશોના સંકોચ-વિસ્તાર થવા છતાં પણ, સૂકા-ભીના
ચામડાની માફક, નિશ્ચિત નિજ વિસ્તારને લીધે તેને (આત્માને) હીન-અધિક કરી
શકાતો નથી. (આ રીતે આત્માને દ્રવ્યરૂપ આત્માનું કર્તાપણું ઘટી શકતું નથી.)
વળી, "વસ્તુસ્વભાવનું સર્વથા મટવું અશક્ય હોવાથી જ્ઞાયક ભાવ જ્ઞાનસ્વભાવે જ
સદાય સ્થિત રહે છે અને એમ સ્થિત રહેતો થકો, જ્ઞાયકપણાને અને કર્તાપણાને અત્યંત
વિરુદ્ધતા હોવાથી, મિથ્યાત્વાદિ ભાવોનો કર્તા થતો નથી; અને મિથ્યાત્વાદિ ભાવો તો
થાય છે; તેથી તેમનો કર્તા કર્મ જ છે એમ પ્રરૂપણ કરવામાં આવે છે"—આવી જે
વાસના (અભિપ્રાય, વલણ) પ્રગટ કરવામાં આવે છે તે પણ 'આત્મા આત્માને કરે
' એવી (પૂર્વોક્ત) માન્યતાને અતિશયપણે હણે જ છે (કારણ કે સદાય જ્ઞાયક
માનવાથી આત્મા અકર્તા જ ઠર્યો).

માટે, જ્ઞાયક ભાવ સામાન્ય અપેક્ષાએ જ્ઞાનસ્વભાવે અવસ્થિત હોવા છતાં,
થી ઉત્પન્ન થતા મિથ્યાત્વાદિ ભાવોના જ્ઞાનસમયે, અનાદિ કાળથી જ્ઞેય અને જ્ઞાનના
વિજ્ઞાનથી શૂન્ય હોવાને લીધે, પરને આત્મા તરીકે જાણતો એવો તે (જ્ઞાયક ભાવ)
ષ અપેક્ષાએ અજ્ઞાનરૂપ જ્ઞાનપરિણામને કરતો હોવાથી (-અજ્ઞાનરૂપ એવું જે
નું પરિણમન તેને કરતો હોવાથી), તેને કર્તાપણું સંમત કરવું (અર્થાત્ તે કર્તા
મ સ્વીકારવું); તે ત્યાંસુધી કે જ્યાંસુધી ભેદવિજ્ઞાનની આદિથી જ્ઞેય અને જ્ઞાનના
જ્ઞાનથી પૂર્ણ (અર્થાત્ ભેદવિજ્ઞાન સહિત) થવાને લીધે આત્માને જ આત્મા
જાણતો એવો તે (જ્ઞાયક ભાવ), વિશેષ અપેક્ષાએ પણ જ્ઞાનરૂપ જ જ્ઞાનપરિણામે
નો થકો (-જ્ઞાનરૂપ એવું જે જ્ઞાનનું પરિણમન તે-રૂપે જ પરિણમતો થકો),

સંગ્રહ = જથ્થો; મોટપ.

કેવળ જ્ઞાતાપણાને લીધે સાક્ષાત્ અકર્તા થાય.

ભાવાર્થ:—કેટલાક જૈન મુનિઓ પણ સ્યાદ્વાદ-વાણીને બરાબર નહિ સમજીને સર્વથા એકાંતનો અભિપ્રાય કરે છે અને વિવક્ષા પલટીને એમ કહે છે કે "આત્મા તો ભાવકર્મનો અકર્તા જ છે, કર્મપ્રકૃતિનો ઉદય જ ભાવકર્મને કરે છે; અજ્ઞાન, જ્ઞાન, સૂવું, જાગવું, સુખ, દુઃખ, મિથ્યાત્વ, અસંયમ, ચાર ગતિઓમાં ભ્રમણ—એ બધાંને, તથા જે કાંઈ શુભ-અશુભ ભાવો છે તે બધાયને કર્મ જ કરે છે; જીવ તો અકર્તા છે." વળી તે મુનિઓ શાસ્ત્રનો પણ એવો જ અર્થ કરે છે કે—"વેદના ઉદયથી સ્ત્રી-પુરુષનો વિકાર થાય છે અને ઉપઘાત તથા પરઘાત પ્રકૃતિના ઉદયથી પરસ્પર ઘાત પ્રવર્તે છે." આ પ્રમાણે, જેમ સાંખ્યમતી બધુંય પ્રકૃતિનું જ કાર્ય માને છે અને પુરુષને અકર્તા માને છે તેમ, પોતાની બુદ્ધિના દોષથી આ મુનિઓનું પણ એવું જ એકાંતિક માનવું થયું. માટે જિનવાણી તો સ્યાદ્વાદરૂપ હોવાથી, સર્વથા એકાંત માનનારા તે મુનિઓ પર જિનવાણીનો કોપ અવશ્ય થાય છે. જિનવાણીના કોપના ભયથી જો તેઓ વિવક્ષા પલટીને એમ કહે કે—"ભાવકર્મનો કર્તા કર્મ છે અને પોતાના આત્માનો (અર્થાત્ પોતાનો) કર્તા આત્મા છે; એ રીતે અમે આત્માને કથંચિત્ કર્તા કહીએ છીએ, તેથી વાણીનો કોપ થતો નથી;" તો આ તેમનું કહેવું પણ મિથ્યા જ છે. આત્મા દ્રવ્યે નિત્ય છે, અસંખ્યાત પ્રદેશોવાળો છે, લોકપરિમાણ છે, તેથી તેમાં તો કાંઈ નવીન કરવાનું છે નહિ; અને જે ભાવકર્મરૂપ પર્યાયો છે તેમનો કર્તા તો તે મુનિઓ કર્મને જ કહે છે; માટે આત્મા તો અકર્તા જ રહ્યો! તો પછી વાણીનો કોપ કઈ રીતે મટ્યો? માટે આત્માના કર્તાપણા અને અકર્તાપણાની વિવક્ષા યથાર્થ માનવી તે જ સ્યાદ્વાદનું સાચું માનવું છે. આત્માના કર્તાપણા-અકર્તાપણા વિષે સત્યાર્થ સ્યાદ્વાદ-પ્રરૂપણ આ પ્રમાણે છે:—

આત્મા સામાન્ય અપેક્ષાએ તો જ્ઞાનસ્વભાવે જ સ્થિત છે; પરંતુ મિથ્યાત્વાદિ ભાવોને જાણતી વખતે, અનાદિ કાળથી જ્ઞેય અને જ્ઞાનના ભેદવિજ્ઞાનના અભાવને લીધે, જ્ઞેયરૂપ મિથ્યાત્વાદિ ભાવોને આત્મા તરીકે જાણે છે, તેથી એ રીતે વિશેષ અપેક્ષાએ અજ્ઞાનરૂપ જ્ઞાનપરિણામને કરતો હોવાથી કર્તા છે; અને જ્યારે ભેદવિજ્ઞાન થવાથી આત્માને જ આત્મા તરીકે જાણે છે ત્યારે વિશેષ અપેક્ષાએ પણ જ્ઞાનરૂપ જ્ઞાનપરિણામે જ પરિણમતો થકો કેવળ જ્ઞાતા રહેવાથી સાક્ષાત્ અકર્તા છે.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

माऽकर्तारममी स्पृशन्तु पुरुषं सांख्या इवाप्यार्हताः
कर्तारं कलयन्तु तं किल सदा भेदावबोधादधः ।

ऊर्ध्वं तूद्धतबोधधामनियतं प्रत्यक्षमेनं स्वयं
पश्यन्तु च्युतकर्तृभावमचलं ज्ञातारमेकं परम् ॥ २०५ ॥

અર્થ:—આ અર્હંતના મતના અનુયાયીઓ અર્થાત્ જૈનો પણ આત્માને, સાંખ્યમતીઓની જેમ, (સર્વથા) અકર્તા ન માનો; ભેદજ્ઞાન થયા પહેલાં તેને નિરંતર કર્તા માનો, અને ભેદજ્ઞાન થયા પછી ઉદ્ધત *જ્ઞાનધામમાં નિશ્ચિત એવા આ સ્વયં-પ્રત્યક્ષ આત્માને કર્તાપણા વિનાનો, અચળ, એક પરમ જ્ઞાતા જ દેખો.

ભાવાર્થ:—સાંખ્યમતીઓ પુરુષને સર્વથા એકાંતથી અકર્તા, શુદ્ધ ઉદાસીન ચૈતન્યમાત્ર માને છે. આવું માનવાથી પુરુષને સંસારના અભાવનો પ્રસંગ આવે છે; અને જો પ્રકૃતિને સંસાર માનવામાં આવે તો તે પણ ઘટતું નથી, કારણ કે પ્રકૃતિ તો જડ છે, તેને સુખદુઃખ આદિનું સંવેદન નથી, તેને સંસાર કેવો? આવા અનેક દોષો એકાંત માન્યતામાં આવે છે. સર્વથા એકાંત વસ્તુનું સ્વરૂપ જ નથી. માટે સાંખ્ય-મતીઓ મિથ્યાદૃષ્ટિ છે; અને જો જૈનો પણ એવું માને તો તેઓ પણ મિથ્યાદૃષ્ટિ છે. તેથી આચાર્યદેવ ઉપદેશ કરે છે કે—સાંખ્યમતીઓની માફક જૈનો આત્માને સર્વથા અકર્તા ન માનો; જ્યાંસુધી સ્વપરનું ભેદવિજ્ઞાન ન હોય ત્યાંસુધી તો તેને રાગાદિકનો—પોતાના ચેતનરૂપ ભાવકર્મોનો—કર્તા માનો, અને ભેદવિજ્ઞાન થયા પછી શુદ્ધ વિજ્ઞાન-ઘન, સમસ્ત કર્તાપણાના ભાવથી રહિત, એક જ્ઞાતા જ માનો. આમ એક જ આત્મામાં ર્તાપણું તથા અકર્તાપણું—એ બન્ને ભાવો વિવક્ષાવશ સિદ્ધ થાય છે. આવો સ્યાદ્વાદ ત જૈનોનો છે; અને વસ્તુસ્વભાવ પણ એવો જ છે, કલ્પના નથી. આવું (સ્યાદ્વાદ નુસાર) માનવાથી પુરુષને સંસાર-મોક્ષ આદિની સિદ્ધિ થાય છે; સર્વથા એકાંત નવાથી સર્વ નિશ્ચય-વ્યવહારનો લોપ થાય છે.

હવેની ગાથાઓમાં, 'કર્તા અન્ય છે અને ભોક્તા અન્ય છે' એવું માનનારા ક્ષણિકવાદી બૌદ્ધમતીઓને તેમની સર્વથા એકાંત માન્યતામાં દૂષણ બતાવશે અને વાદ અનુસાર જે રીતે વસ્તુસ્વરૂપ અર્થાત્ કર્તાભોક્તાપણું છે તે રીતે કહેશે. તે ઓની સૂચનાનું કાવ્ય પ્રથમ કહે છે:—

(માલિની)

क्षणिकमिदमिहैकः कल्पयित्वात्मतत्त्वं
निजमनसि विधत्ते कर्तृभोक्त्रोर्विभेदम् ।
अपहरति विमोहं तस्य नित्यामृतौघैः
स्वयमयमभिषिञ्चंश्चिच्चमत्कार एव ॥ २०६ ॥

ધામ = જ્ઞાનમંદિર; જ્ઞાનપ્રકાશ.

केश्चित्तु पर्यायैर्विनश्यति नैव केश्चित्तु जीवः ।
यस्मात्तस्मात्करोति स वा अन्यो वा नैकांतः ॥ ३४५ ॥
केश्चित्तु पर्यायैर्विनश्यति नैव केश्चित्तु जीवः ।
यस्मात्तस्माद्वेदयते स वा अन्यो वा नैकांतः ॥ ३४६ ॥
यश्चैव करोति स चैव न वेदयते यस्य एष सिद्धांतः ।
स जीवो ज्ञातव्यो मिथ्यादृष्टिरनार्हतः ॥ ३४७ ॥
अन्यः करोत्यन्यः परिभुंक्ते यस्य एष सिद्धांतः ।
स जीवो ज्ञातव्यो मिथ्यादृष्टिरनार्हतः ॥ ३४८ ॥

અન્વયાર્થઃ—[यस्मात्] કારણ કે [जीवः] જીવ [कैश्चित् पर्यायैः] કેટલાક પર્યાયોથી [विनश्यति] નાશ પામે છે [तु] અને [कैश्चित्] કેટલાક પર્યાયો [नैव] નથી નાશ પામતો, [तस्मात्] તેથી [सः वा करोति] '(જે ભોગવે છે) તે જ કરે છે' [अन्यः वा] અથવા 'બીજો જ કરે છે' [न एकांतः] એવો એકાંત નથી (–સ્યાદ્વાદ છે).

[यस्मात्] કારણ કે [जीवः] જીવ [कैश्चित् पर्यायैः तु] કેટલાક પર્યાયોથી [विनश्यति] નાશ પામે છે [तु] અને [कैश्चित्] કેટલાક પર્યાયોથી [नैव] નથી નાશ પામતો, [तस्मात्] તેથી [सः वा वेदयते] '(જે કરે છે) તે જ ભોગવે છે' [अन्यः वा] અથવા 'બીજો જ ભોગવે છે' [न एकांतः] એવો એકાંત નથી (–સ્યાદ્વાદ છે).

'[यः च एव करोति] જે કરે છે [सः च एव न वेदयते] તે જ નથી ભોગવતો' [एषः यस्य सिद्धांतः] એવો જેનો સિદ્ધાંત છે, [सः जीवः] તે જીવ [मिथ्यादृष्टिः] મિથ્યાદૃષ્ટિ, [अनार्हतः] અનાર્હત (–અર્હંતના મતને નહિ માનનારો) [ज्ञातव्यः] જાણવો.

'[अन्यः करोति] બીજો કરે છે [अन्यः परिभुंक्ते] અને બીજો ભોગવે છે' [एषः यस्य सिद्धांतः] એવો જેનો સિદ્ધાંત છે, [सः जीवः] તે જીવ [मिथ्यादृष्टिः] મિથ્યાદૃષ્ટિ, [अनार्हतः] અનાર્હત (–અજૈન) [ज्ञातव्यः] જાણવો.

ટીકાઃ—જીવ, પ્રતિસમયે સંભવતા (-દરેક સમયે થતા) અગુરુલઘુગુણના પરિણામ દ્વારા ક્ષણિક હોવાથી અને અચલિત ચૈતન્યના અન્વયરૂપ ગુણ દ્વારા નિત્ય ... કેટલાક પર્યાયોથી વિનાશ પામે છે અને કેટલાક પર્યાયોથી નથી વિનાશ

પામતો—એમ બે સ્વભાવવાળો જીવસ્વભાવ છે; તેથી 'જે કરે છે તે જ ભોગવે છે' અથવા 'બીજો જ ભોગવે છે,' 'જે ભોગવે છે તે જ કરે છે' અથવા 'બીજો જ કરે છે'—એવો એકાંત નથી. આમ અનેકાંત હોવા છતાં, 'જે (પર્યાય) તે ક્ષણે વર્તે છે, તેને જ પરમાર્થ સત્પણું હોવાથી, તે જ વસ્તુ છે' એમ વસ્તુના અંશમાં વસ્તુપણાનો અધ્યાસ કરીને શુદ્ધનયના લોભથી ઋજુસૂત્રનયના એકાંતમાં રહીને જે એમ દેખે-માને છે કે "જે કરે છે તે જ નથી ભોગવતો, બીજો કરે છે અને બીજો ભોગવે છે," તે જીવ મિથ્યાદૃષ્ટિ જ દેખવો—માનવો; કારણ કે, વૃત્ત્યંશોનું (પર્યાયોનું) ક્ષણિકપણું હોવા છતાં, વૃત્તિમાન (પર્યાયી) જે ચૈતન્યચમત્કાર (આત્મા) તે તો ટંકોત્કીર્ણ (નિત્ય) જ અંતરંગમાં પ્રતિભાસે છે.

ભાવાર્થ:—વસ્તુનો સ્વભાવ જિનવાણીમાં દ્રવ્યપર્યાયસ્વરૂપ કહ્યો છે; માટે સ્યાદ્વાદથી એવો અનેકાંત સિદ્ધ થાય છે કે પર્યાય-અપેક્ષાએ તો વસ્તુ ક્ષણિક છે અને દ્રવ્ય-અપેક્ષાએ નિત્ય છે. જીવ પણ વસ્તુ હોવાથી દ્રવ્યપર્યાયસ્વરૂપ છે. તેથી, પર્યાયદૃષ્ટિએ જોવામાં આવે તો કાર્યને કરે છે એક પર્યાય, અને ભોગવે છે અન્ય પર્યાય; જેમ કે—મનુષ્યપર્યાયે શુભાશુભ કર્મ કર્યાં અને તેનું ફળ દેવપર્યાયે ભોગવ્યું. દ્રવ્યદૃષ્ટિએ જોવામાં આવે તો, જે કરે છે તે જ ભોગવે છે; જેમ કે—મનુષ્યપર્યાયમાં જે જીવદ્રવ્યે શુભાશુભ કર્મ કર્યાં, તે જ જીવદ્રવ્યે દેવાદિ પર્યાયમાં પોતે કરેલાં કર્મનું ફળ ભોગવ્યું.

આ રીતે વસ્તુનું સ્વરૂપ અનેકાંતરૂપ સિદ્ધ હોવા છતાં, જે જીવ શુદ્ધનયને સમજ્યા વિના શુદ્ધનયના લોભથી વસ્તુના એક અંશને (-વર્તમાન કાળમાં વર્તના પર્યાયને) જ વસ્તુ માની ઋજુસૂત્રનયના વિષયનો એકાંત પકડી એમ માને છે કે 'જે કરે છે તે જ ભોગવતો નથી—અન્ય ભોગવે છે, અને જે ભોગવે છે તે જ કરતો નથી—અન્ય કરે છે,' તે જીવ મિથ્યાદૃષ્ટિ છે, અર્હંતના મતનો નથી; કારણ કે, પર્યાયોનું ક્ષણિકપણું હોવા છતાં, દ્રવ્યરૂપ ચૈતન્યચમત્કાર તો અનુભવગોચર નિત્ય છે; પ્રત્યભિજ્ઞાનથી જણાય છે કે 'બાળક અવસ્થામાં જે હું હતો તે જ હું તરુણ અવસ્થામાં હતો અને તે જ હું વૃદ્ધ અવસ્થામાં છું.' આ રીતે જે કથંચિત્ નિત્યરૂપ અનુભવગોચર છે—સ્વસંવેદનમાં આવે છે અને જેને જિનવાણી પણ એવો જ ગાય છે, તેને જે ન માને તે મિથ્યાદૃષ્ટિ છે એમ જાણવું.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

आत्मानं परिशुद्धमीप्सुभिरतिव्याप्तिं प्रपद्यान्धकैः
कालोपाधिबलादशुद्धिमधिकां तत्रापि मत्वा परैः ।

चैतन्यं क्षणिकं प्रकल्प्य पृथुकैः शुद्धर्जुसूत्रे रतै-
रात्मा व्युज्झित एष हारवदहो निःसूत्रमुक्तेक्षिभिः ॥ २०८ ॥

અર્થ:—આત્માને સમસ્તપણે શુદ્ધ ઇચ્છનારા બીજા કોઈ અંધોએ—બૌદ્ધોએ—કાળની ઉપાધિના કારણે પણ આત્મામાં અધિક અશુદ્ધિ માનીને અતિવ્યાપ્તિને પામીને, શુદ્ધ ઋજુસૂત્રનયમાં રત થયા થકા ચૈતન્યને ક્ષણિક કલ્પીને, આ આત્માને છોડી દીધો; જેમ હારમાંનો દોરો નહિ જોનારાં કેવળ મોતીને જ જોનારાઓ હારને છોડી દે છે તેમ.

ભાવાર્થ:—આત્માને સમસ્તપણે શુદ્ધ માનવાના ઇચ્છક એવા બૌદ્ધોએ વિચાર્યું કે—"આત્માને નિત્ય માનવામાં આવે તો નિત્યમાં કાળની અપેક્ષા આવે છે તેથી ઉપાધિ લાગી જશે; એમ કાળની ઉપાધિ લાગવાથી આત્માને મોટી અશુદ્ધતા આવશે અને તેથી અતિવ્યાપ્તિ દોષ લાગશે." આ દોષના ભયથી તેઓએ શુદ્ધ ઋજુસૂત્રનયનો વિષય જે વર્તમાન સમય તેટલો જ માત્ર (–ક્ષણિક જ–) આત્માને માન્યો અને નિત્યાનિત્યસ્વરૂપ આત્માને ન માન્યો. આમ આત્માને સર્વથા ક્ષણિક માનવાથી તેમને નિત્યાનિત્યસ્વરૂપ—દ્રવ્યપર્યાયસ્વરૂપ સત્યાર્થ આત્માની પ્રાપ્તિ ન થઈ; માત્ર ક્ષણિક પર્યાયમાં આત્માની કલ્પના થઈ; પરંતુ તે આત્મા સત્યાર્થ નથી.

મોતીના હારમાં, દોરામાં અનેક મોતી પરોવેલાં હોય છે; જે માણસ તે હારની વસ્તુને મોતી તેમ જ દોરા સહિત દેખતો નથી—માત્ર મોતીને જ જુએ છે તે જુદાં જુદાં મોતીને જ ગ્રહણ કરે છે, હારને છોડી દે છે; અર્થાત્ તેને હારની પ્રાપ્તિ થતી નથી. તેવી રીતે જે જીવો આત્માના એક ચૈતન્યભાવને ગ્રહણ કરતા નથી અને માત્ર વર્તનાપરિણામરૂપ ઉપયોગની પ્રવૃત્તિને દેખી આત્માને અનિત્ય કલ્પી ઋજુસૂત્રનયનો વિષય જે વર્તમાન સમયમાત્ર ક્ષણિકપણું તેટલો જ માત્ર આત્મા માને છે (અર્થાત્ જે જીવો આત્માને દ્રવ્યપર્યાયસ્વરૂપ માનતા નથી—માત્ર ક્ષણિક પર્યાયરૂપ જ માને છે), તેઓ આત્માને છોડી દે છે; અર્થાત્ તેમને આત્માની પ્રાપ્તિ થતી નથી.

હવે કાવ્યમાં આત્માનો અનુભવ કરવાનું કહે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

कर्तुर्वेदयितुश्च युक्तिवशतो भेदोऽस्त्वभेदोऽपि वा
कर्ता वेदयिता च मा भवतु वा वस्त्वेव संचिन्त्यताम् ।
प्रोता सूत्र इवात्मनीह निपुणैर्भेत्तुं न शक्या क्वचि-
च्चिच्चिन्तामणिमालिकेयमभितोऽप्येका चकास्त्वेव नः ॥ २०९ ॥

અર્થ:—કર્તાનો અને ભોક્તાનો યુક્તિના વશે ભેદ હો અથવા અભેદ
અથવા કર્તા અને ભોક્તા બન્ને ન હો; વસ્તુને જ અનુભવો. જેમ ચતુર પુરુષો
દોરામાં પરોવેલી મણિઓની માળા ભેદી શકાતી નથી, તેમ આત્મામાં પરોવેલ
ચૈતન્યરૂપ ચિંતામણિની માળા પણ કદી કોઈથી ભેદી શકાતી નથી; એવી આ
આત્મારૂપી માળા એક જ, અમને સમસ્તપણે પ્રકાશમાન હો (અર્થાત્ નિત્યત્વ
અનિત્યત્વ આદિના વિકલ્પો છૂટી આત્માનો નિર્વિકલ્પ અનુભવ અમને હો).

ભાવાર્થ:—વસ્તુ દ્રવ્યપર્યાયાત્મક અનંત-ધર્મવાળી છે. તેમાં વિવક્ષાવશ કર્તા-ભોક્તાપણાનો ભેદ છે તેમ જ નથી. અથવા કર્તા-ભોક્તાનો ભેદાભેદ શા માટે કહેવો? કેવળ શુદ્ધ વસ્તુમાત્રનું તેના અસાધારણ ધર્મ-દ્વારા અનુભવન કરવું. એ જ રીતે આત્મા પણ વસ્તુ હોવાથી દ્રવ્યપર્યાયાત્મક છે; તેથી તેમાં ચૈતન્યના પરિણમનરૂપ પર્યાયના ભેદોની અપેક્ષાએ તો કર્તા-ભોક્તાનો ભેદ છે અને ચિન્માત્ર દ્રવ્યની અપેક્ષાએ ભેદ નથી; એમ ભેદ-અભેદ હો. અથવા ચિન્માત્ર અનુભવનમાં ભેદ-અભેદ શા માટે કહેવો? (આત્માને) કર્તા-ભોક્તા જ ન કહેવો, વસ્તુમાત્ર અનુભવ કરવો. જેમ મણિઓની માળામાં મણિઓની અને દોરાની વિવક્ષાથી ભેદ-અભેદ છે પરંતુ માળા-માત્ર ગ્રહણ કરતાં ભેદાભેદ-વિકલ્પ નથી, તેમ આત્મામાં પર્યાયોની અને દ્રવ્યની વિવક્ષાથી ભેદ-અભેદ છે પરંતુ આત્મવસ્તુમાત્ર અનુભવ કરતાં વિકલ્પ નથી. આચાર્ય મહારાજ કહે છે કે—એવો નિર્વિકલ્પ આત્માનો અનુભવ અમને પ્રકાશમાન હો.

હવે આગળની ગાથાઓની સૂચનારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(રથોદ્ધતા)

व्यावहारिकदृशैव केवलं
कर्तृ कर्म च विभिन्नमिष्यते ।
निश्चयेन यदि वस्तु चिंत्यते
कर्तृ कर्म च सदैकमिष्यते ॥ २१० ॥

અર્થ:—કેવળ વ્યાવહારિક દૃષ્ટિથી જ કર્તા અને કર્મ ભિન્ન ગણવામાં આવે છે; નિશ્ચયથી જો વસ્તુને વિચારવામાં આવે, તો કર્તા અને કર્મ સદા એક ગણવામાં આવે છે.

ભાવાર્થ:—કેવળ વ્યવહાર-દૃષ્ટિથી જ ભિન્ન દ્રવ્યોમાં કર્તા-કર્મપણું ગણવામાં આવે છે; નિશ્ચય-દૃષ્ટિથી તો એક જ દ્રવ્યમાં કર્તા-કર્મપણું ઘટે છે. ૩૪૫—૩૪૮.

હવે આ કથનને દૃષ્ટાંતદ્વારા ગાથામાં કહે છે:—

चैतन्यं क्षणिकं प्रकल्प्य पृथुकैः शुद्धर्जुसूत्रे रतै-
रात्मा व्युज्झित एष हारवदहो निःसूत्रमुक्तेक्षिभिः ॥ २०८ ॥

અર્થ:—આત્માને સમસ્તપણે શુદ્ધ ઇચ્છનારા બીજા કોઈ અંધોએ—બૌદ્ધોએ—કાળની ઉપાધિના કારણે પણ આત્મામાં અધિક અશુદ્ધિ માનીને અતિવ્યાપ્તિને પામીને શુદ્ધ ઋજુસૂત્રનયમાં રત થયા થકા ચૈતન્યને ક્ષણિક કલ્પીને, આ આત્માને છોડી દીધો; જેમ હારમાંનો દોરો નહિ જોતાં કેવળ મોતીને જ જોનારાઓ હારને છોડી દે છે તેમ.

ભાવાર્થ:—આત્માને સમસ્તપણે શુદ્ધ માનવાના ઇચ્છક એવા બૌદ્ધોએ વિચાર્યું કે—"આત્માને નિત્ય માનવામાં આવે તો નિત્યમાં કાળની અપેક્ષા આવે છે તેથી ઉપાધિ લાગી જશે; એમ કાળની ઉપાધિ લાગવાથી આત્માને મોટી અશુદ્ધતા આવશે અને તેથી અતિવ્યાપ્તિ દોષ લાગશે." આ દોષના ભયથી તેઓએ શુદ્ધ ઋજુસૂત્રનયનો વિષય જે વર્તમાન સમય તેટલો જ માત્ર (—ક્ષણિક જ—) આત્માને માન્યો અને નિત્યાનિત્યસ્વરૂપ આત્માને ન માન્યો. આમ આત્માને સર્વથા ક્ષણિક માનવાથી તેમને નિત્યાનિત્યસ્વરૂપ—દ્રવ્યપર્યાયસ્વરૂપ સત્યાર્થ આત્માની પ્રાપ્તિ ન થઈ; માત્ર ક્ષણિક પર્યાયમાં આત્માની કલ્પના થઈ; પરંતુ તે આત્મા સત્યાર્થ નથી.

મોતીના હારમાં, દોરામાં અનેક મોતી પરોવેલાં હોય છે; જે માણસ તે હાર નામની વસ્તુને મોતી તેમ જ દોરા સહિત દેખતો નથી—માત્ર મોતીને જ જુએ છે—તે છૂટા છૂટા મોતીને જ ગ્રહણ કરે છે, હારને છોડી દે છે; અર્થાત્ તેને હારની પ્રાપ્તિ થતી નથી. તેવી રીતે જે જીવો આત્માના એક ચૈતન્યભાવને ગ્રહણ કરતા નથી અને સમયે સમયે વર્તનાપરિણામરૂપ ઉપયોગની પ્રવૃત્તિને દેખી આત્માને અનિત્ય કલ્પીને, ઋજુસૂત્રનયનો વિષય જે વર્તમાન-સમયમાત્ર ક્ષણિકપણું તેટલો જ માત્ર આત્માને માને છે (અર્થાત્ જે જીવો આત્માને દ્રવ્યપર્યાયસ્વરૂપ માનતા નથી—માત્ર ક્ષણિક પર્યાયરૂપ જ માને છે), તેઓ આત્માને છોડી દે છે; અર્થાત્ તેમને આત્માની પ્રાપ્તિ થતી નથી.

હવેના કાવ્યમાં આત્માનો અનુભવ કરવાનું કહે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

कर्तुर्वेदयितुश्च युक्तिवशतो भेदोऽस्त्वभेदोऽपि वा
कर्ता वेदयिता च मा भवतु वा वस्त्वेव संचिन्त्यताम् ।
प्रोता सूत्र इवात्मनीह निपुणैर्भेत्तुं न शक्या क्वचि-
च्चिच्चिन्तामणिमालिकेयमभितोऽप्येका चकास्त्वेव नः ॥ २०९ ॥

અર્થ:—કર્તાનો અને ભોક્તાનો યુક્તિના વશે ભેદ હો અથવા અભેદ હો અથવા કર્તા અને ભોક્તા બન્ને ન હો; વસ્તુને જ અનુભવો. જેમ ચતુર પુરુષો દોરામાં પરોવેલી મણિઓની માળા ભેદી શકાતી નથી, તેમ આત્મામાં પરોવેલ ચૈતન્યરૂપ ચિંતામણિની માળા પણ કદી કોઈથી ભેદી શકાતી નથી; એવી આ આત્મારૂપી માળા એક જ, અમને સમસ્તપણે પ્રકાશમાન હો (અર્થાત્ નિત્યત્વ અનિત્યત્વ આદિના વિકલ્પો છૂટી આત્માનો નિર્વિકલ્પ અનુભવ અમને હો).

ભાવાર્થ:—વસ્તુ દ્રવ્યપર્યાયાત્મક અનંત-ધર્મવાળી છે. તેમાં વિવક્ષાવશ કર્તા-ભોક્તાપણાનો ભેદ છે તેમ જ નથી. અથવા કર્તા-ભોક્તાનો ભેદાભેદ શા માટે કહેવો? કેવળ શુદ્ધ વસ્તુમાત્રનું તેના અસાધારણ ધર્મ દ્વારા અનુભવન કરવું. એ જ રીતે આત્મા પણ વસ્તુ હોવાથી દ્રવ્યપર્યાયાત્મક છે; તેથી તેમાં ચૈતન્યના પરિણમનરૂપ પર્યાયના ભેદોની અપેક્ષાએ તો કર્તા-ભોક્તાનો ભેદ છે અને ચિન્માત્ર દ્રવ્યની અપેક્ષાએ ભેદ નથી; એમ ભેદ-અભેદ હો. અથવા ચિન્માત્ર અનુભવનમાં ભેદ-અભેદ શા માટે કહેવો? (આત્માને) કર્તા-ભોક્તા જ ન કહેવો, વસ્તુમાત્ર અનુભવ કરવો. જેમ મણિઓની માળામાં મણિઓની અને દોરાની વિવક્ષાથી ભેદ-અભેદ છે પરંતુ માળા-માત્ર ગ્રહણ કરતાં ભેદાભેદ-વિકલ્પ નથી, તેમ આત્મામાં પર્યાયોની અને દ્રવ્યની વિવક્ષાથી ભેદ-અભેદ છે પરંતુ આત્મવસ્તુમાત્ર અનુભવ કરતાં વિકલ્પ નથી. આચાર્ય મહારાજ કહે છે કે—એવો નિર્વિકલ્પ આત્માનો અનુભવ અમને પ્રકાશમાન હો.

હવે આગળની ગાથાઓની સૂચનારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(રથોદ્ધતા)

व्यावहारिकदृशैव केवलं
कर्तृ कर्म च विभिन्नमिष्यते ।
निश्चयेन यदि वस्तु चिन्त्यते
कर्तृ कर्म च सदैकमिष्यते ॥ २१० ॥

અર્થ:—કેવળ વ્યાવહારિક દૃષ્ટિથી જ કર્તા અને કર્મ ભિન્ન ગણવામાં આવે છે; નિશ્ચયથી જો વસ્તુને વિચારવામાં આવે, તો કર્તા અને કર્મ સદા એક ગણવામાં આવે છે.

ભાવાર્થ:—કેવળ વ્યવહાર-દૃષ્ટિથી જ ભિન્ન દ્રવ્યોમાં કર્તા-કર્મપણું ગણવામાં આવે છે; નિશ્ચય-દૃષ્ટિથી તો એક જ દ્રવ્યમાં કર્તા-કર્મપણું ઘટે છે. ૩૪૫—૩૪૮.

હવે આ કથનને દૃષ્ટાંતદ્વારા ગાથામાં કહે છે:—

चैतन्यं क्षणिकं प्रकल्प्य पृथुकैः शुद्धर्जुसूत्रे रतै-
रात्मा व्युज्झित एष हारवदहो निःसूत्रमुक्तेक्षिभिः ॥ २०८ ॥

અર્થઃ—આત્માને સમસ્તપણે શુદ્ધ ઇચ્છનારા બીજા કોઈ અંધોએ—બૌદ્ધોએ કાળની ઉપાધિના કારણે પણ આત્મામાં અધિક અશુદ્ધિ માનીને અતિવ્યાપ્તિને પામીને, શુદ્ધ ઋજુસૂત્રનયમાં રત થયા થકા ચૈતન્યને ક્ષણિક કલ્પીને, આ આત્માને છોડી દીધો; જેમ હારમાંના દોરો નહિ જોતાં કેવળ મોતીને જ જોનારાઓ હારને છોડી દે છે તેમ.

ભાવાર્થઃ—આત્માને સમસ્તપણે શુદ્ધ માનવાના ઇચ્છક એવા બૌદ્ધોએ વિચાર્યું કે—"આત્માને નિત્ય માનવામાં આવે તો નિત્યમાં કાળની અપેક્ષા આવે છે તેથી ઉપાધિ લાગી જશે; એમ કાળની ઉપાધિ લાગવાથી આત્માને મોટી અશુદ્ધતા આવશે અને તેથી અતિવ્યાપ્તિ દોષ લાગશે." આ દોષના ભયથી તેઓએ શુદ્ધ ઋજુસૂત્રનયનો વિષય જે વર્તમાન સમય તેટલો જ માત્ર (-ક્ષણિક જ-) આત્માને માન્યો અને નિત્યાનિત્યસ્વરૂપ આત્માને ન માન્યો. આમ આત્માને સર્વથા ક્ષણિક માનવાથી તેમને નિત્યાનિત્યસ્વરૂપ—દ્રવ્યપર્યાયસ્વરૂપ સત્યાર્થ આત્માની પ્રાપ્તિ ન થઈ; માત્ર ક્ષણિક પર્યાયમાં આત્માની કલ્પના થઈ; પરંતુ તે આત્મા સત્યાર્થ નથી.

મોતીના હારમાં, દોરામાં અનેક મોતી પરોવેલાં હોય છે; જે માણસ તે હાર નામની વસ્તુને મોતી તેમ જ દોરા સહિત દેખતો નથી—માત્ર મોતીને જ જુએ છે—તે જુદાં જુદાં મોતીને જ ગ્રહણ કરે છે, હારને છોડી દે છે; અર્થાત્ તેને હારની પ્રાપ્તિ થતી નથી. તેવી રીતે જે જીવો આત્માના એક ચૈતન્યભાવને ગ્રહણ કરતા નથી અને સમયે સમયે વર્તનાપરિણામરૂપ ઉપયોગની પ્રવૃત્તિને દેખી આત્માને અનિત્ય કલ્પીને, ઋજુસૂત્રનયનો વિષય જે વર્તમાન-સમયમાત્ર ક્ષણિકપણું તેટલો જ માત્ર આત્માને માને છે (અર્થાત્ જે જીવો આત્માને દ્રવ્યપર્યાયસ્વરૂપ માનતા નથી—માત્ર ક્ષણિક પર્યાયરૂપ જ માને છે), તેઓ આત્માને છોડી દે છે; અર્થાત્ તેમને આત્માની પ્રાપ્તિ થતી નથી.

હવેના કાવ્યમાં આત્માનો અનુભવ કરવાનું કહે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

कर्तुर्वेदयितुश्च युक्तिवशतो भेदोऽस्त्वभेदोऽपि वा
कर्ता वेदयिता च मा भवतु वा वस्त्वेव संचिन्त्यताम् ।
प्रोता सूत्र इवात्मनीह निपुणैर्भेत्तुं न शक्या क्वचि-
च्चिच्चिन्तामणिमालिकेयमभितोऽप्येका चकास्त्वेव नः ॥ २०९ ॥

અર્થ:—કર્તાનો અને ભોક્તાનો યુક્તિના વશે ભેદ હો અથવા અભેદ હો, અથવા કર્તા અને ભોક્તા બંને ન હો; વસ્તુને જ અનુભવો. જેમ ચતુર પુરુષે દોરામાં પરોવેલી મણિઓની માળા ભેદી શકાતી નથી, તેમ આત્મામાં પરોવેલી ચૈતન્યરૂપ ચિંતામણિની માળા પણ કદી કોઈથી ભેદી શકાતી નથી; એવી આ આત્મારૂપી માળા એક જ, અમને સમસ્તપણે પ્રકાશમાન હો (અર્થાત્ નિત્યત્વ અનિત્યત્વ આદિના વિકલ્પો છૂટી આત્માનો નિર્વિકલ્પ અનુભવ અમને હો).

ભાવાર્થ:—વસ્તુ દ્રવ્યપર્યાયાત્મક અનંત-ધર્મવાળી છે. તેમાં વિવક્ષાવશ કર્તા-ભોક્તાપણાનો ભેદ છે તેમ જ નથી. અથવા કર્તા-ભોક્તાનો ભેદાભેદ શા માટે કહેવો? કેવળ શુદ્ધ વસ્તુમાત્રનું તેના અસાધારણ ધર્મ દ્વારા અનુભવન કરવું. એ જ રીતે આત્મા પણ વસ્તુ હોવાથી દ્રવ્યપર્યાયાત્મક છે; તેથી તેમાં ચૈતન્યના પરિણમનરૂપ પર્યાયના ભેદોની અપેક્ષાએ તો કર્તા-ભોક્તાનો ભેદ છે અને ચિન્માત્ર દ્રવ્યની અપેક્ષાએ ભેદ નથી; એમ ભેદ-અભેદ હો. અથવા ચિન્માત્ર અનુભવનમાં ભેદ-અભેદ શા માટે કહેવો? (આત્માને) કર્તા-ભોક્તા જ ન કહેવો, વસ્તુમાત્ર અનુભવ કરવો. જેમ મણિઓની માળામાં મણિઓની અને દોરાની વિવક્ષાથી ભેદ-અભેદ છે પરંતુ માળા-માત્ર ગ્રહણ કરતાં ભેદાભેદ-વિકલ્પ નથી, તેમ આત્મામાં પર્યાયોની અને દ્રવ્યની વિવક્ષાથી ભેદ-અભેદ છે પરંતુ આત્મવસ્તુમાત્ર અનુભવ કરતાં વિકલ્પ નથી. આચાર્ય મહારાજ કહે છે કે—એવો નિર્વિકલ્પ આત્માનો અનુભવ અમને પ્રકાશમાન હો.

હવે આગળની ગાથાઓની સૂચનારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(રથોદ્ધતા)

व्यावहारिकदृशैव केवलं
कर्तृ कर्म च विभिन्नमिष्यते ।
निश्चयेन यदि वस्तु चिन्त्यते
कर्तृ कर्म च सदैकमिष्यते ॥ २१० ॥

અર્થ:—કેવળ વ્યાવહારિક દૃષ્ટિથી જ કર્તા અને કર્મ ભિન્ન ગણવામાં આવે છે; નિશ્ચયથી જો વસ્તુને વિચારવામાં આવે, તો કર્તા અને કર્મ સદા એક ગણવામાં આવે છે.

ભાવાર્થ:—કેવળ વ્યવહાર-દૃષ્ટિથી જ ભિન્ન દ્રવ્યોમાં કર્તા-કર્મપણું ગણવામાં આવે છે; નિશ્ચય-દૃષ્ટિથી તો એક જ દ્રવ્યમાં કર્તા-કર્મપણું ઘટે છે. ૩૪૫—૩૪૮.

હવે આ કથનને દૃષ્ટાંતદ્વારા ગાથામાં કહે છે:—

चैतन्यं क्षणिकं प्रकल्प्य पृथुकैः शुद्धर्जुसूत्रे रतै-
रात्मा व्युज्झित एष हारवदहो निःसूत्रमुक्तेक्षिभिः ॥ २०८ ॥

અર્થ:—આત્માને સમસ્તપણે શુદ્ધ ઇચ્છનારા બીજા કોઈ અંધોએ—બૌદ્ધોએ કાળની ઉપાધિના કારણે પણ આત્મામાં અધિક અશુદ્ધિ માનીને અતિવ્યાપ્તિને પામીને શુદ્ધ ઋજુસૂત્રનયમાં રત થયા થકા ચૈતન્યને ક્ષણિક કલ્પીને, આ આત્માને છોડી દીધો; જેમ હારમાંનો દોરો નહિ જોતાં કેવળ મોતીને જ જોનારાઓ હારને છોડી દે છે તેમ.

ભાવાર્થ:—આત્માને સમસ્તપણે શુદ્ધ માનવાના ઇચ્છક એવા બૌદ્ધોએ વિચાર્યું કે—"આત્માને નિત્ય માનવામાં આવે તો નિત્યમાં કાળની અપેક્ષા આવે છે તેથી ઉપાધિ લાગી જશે; એમ કાળની ઉપાધિ લાગવાથી આત્માને મોટી અશુદ્ધિ આવશે અને તેથી અતિવ્યાપ્તિ દોષ લાગશે." આ દોષના ભયથી તેઓએ શુદ્ધ ઋજુસૂત્રનયનો વિષય જે વર્તમાન સમય તેટલો જ માત્ર (–ક્ષણિક જ–) આત્માને માન્યો અને નિત્યાનિત્યસ્વરૂપ આત્માને ન માન્યો. આમ આત્માને સર્વથા ક્ષણિક માનવાથી તેમને નિત્યાનિત્યસ્વરૂપ—દ્રવ્યપર્યાયસ્વરૂપ સત્યાર્થ આત્માની પ્રાપ્તિ ન થઈ; માત્ર ક્ષણિક પર્યાયમાં આત્માની કલ્પના થઈ; પરંતુ તે આત્મા સત્યાર્થ નથી.

મોતીના હારમાં, દોરામાં અનેક મોતી પરોવેલા હોય છે; જે માણસ તે હાર નામની વસ્તુને મોતી તેમ જ દોરા સહિત દેખતો નથી—માત્ર મોતીને જ જુએ છે, તે છૂટા છૂટા મોતીને જ ગ્રહણ કરે છે, હારને છોડી દે છે; અર્થાત્ તેને હારની પ્રાપ્તિ થતી નથી. તેવી રીતે જે જીવો આત્માના એક ચૈતન્યભાવને ગ્રહણ કરતા નથી અને સમયે સમયે વર્તનાપરિણામરૂપ ઉપયોગની પ્રવૃત્તિને દેખી આત્માને અનિત્ય કલ્પીને, ઋજુસૂત્રનયનો વિષય જે વર્તમાન-સમયમાત્ર ક્ષણિકપણું તેટલો જ માત્ર આત્માને માને છે (અર્થાત્ જે જીવો આત્માને દ્રવ્યપર્યાયસ્વરૂપ માનતા નથી—માત્ર ક્ષણિક પર્યાયરૂપ જ માને છે), તેઓ આત્માને છોડી દે છે; અર્થાત્ તેમને આત્માની પ્રાપ્તિ થતી નથી.

હવેના કાવ્યમાં આત્માનો અનુભવ કરવાનું કહે છે:—

(शार्दूलविक्रीडित)

कर्तुर्वेदयितुश्च युक्तिवशतो भेदोऽस्त्वभेदोऽपि वा
कर्ता वेदयिता च मा भवतु वा वस्त्वेव संचिन्त्यताम् ।
प्रोता सूत्र इवात्मनीह निपुणैर्भेत्तुं न शक्या क्वचि-
च्चिच्चिन्तामणिमालिकेयमभितोऽप्येका चकास्त्वेव नः ॥ २०९ ॥

અર્થ:—કર્તાનો અને ભોક્તાનો યુક્તિના વશે ભેદ હો અથવા અભેદ હો, અથવા કર્તા અને ભોક્તા બન્ને ન હો; વસ્તુને જ અનુભવો. જેમ ચતુર પુરુષોએ દોરામાં પરોવેલી મણિઓની માળા ભેદી શકાતી નથી, તેમ આત્મામાં પરોવેલી ચૈતન્યરૂપ ચિંતામણિની માળા પણ કદી કોઈથી ભેદી શકાતી નથી; એવી આ આત્મારૂપી માળા એક જ, અમને સમસ્તપણે પ્રકાશમાન હો (અર્થાત્ નિત્યત્વ, અનિત્યત્વ આદિના વિકલ્પો છૂટી આત્માનો નિર્વિકલ્પ અનુભવ અમને હો).

ભાવાર્થ:—વસ્તુ દ્રવ્યપર્યાયાત્મક અનંત-ધર્મવાળી છે. તેમાં વિવક્ષાવશ કર્તા-ભોક્તાપણાનો ભેદ છે તેમ જ નથી. અથવા કર્તા-ભોક્તાનો ભેદાભેદ શા માટે કહેવો? કેવળ શુદ્ધ વસ્તુમાત્રનું તેના અસાધારણ ધર્મ દ્વારા અનુભવન કરવું. એ જ ...નિ આત્મા પણ વસ્તુ હોવાથી દ્રવ્યપર્યાયાત્મક છે; તેથી તેમાં ચૈતન્યના પરિણમનરૂપ પર્યાયના ભેદોની અપેક્ષાએ તો કર્તા-ભોક્તાનો ભેદ છે અને ચિન્માત્ર દ્રવ્યની અપેક્ષાએ ભેદ નથી; એમ ભેદ-અભેદ હો. અથવા ચિન્માત્ર અનુભવનમાં ભેદ-અભેદ શા માટે કહેવો? (આત્માને) કર્તા-ભોક્તા જ ન કહેવો, વસ્તુમાત્ર અનુભવ કરવો. જેમ ...મણિઓની માળામાં મણિઓની અને દોરાની વિવક્ષાથી ભેદ-અભેદ છે પરંતુ ...માત્ર ગ્રહણ કરતાં ભેદાભેદ-વિકલ્પ નથી, તેમ આત્મામાં પર્યાયોની અને દ્રવ્યની વિવક્ષાથી ભેદ-અભેદ છે પરંતુ આત્મવસ્તુમાત્ર અનુભવ કરતાં વિકલ્પ નથી. આચાર્યમહારાજ કહે છે કે—એવો નિર્વિકલ્પ આત્માનો અનુભવ અમને પ્રકાશમાન હો.

હવે આગળની ગાથાઓની સૂચનારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(રથોદ્ધતા)

व्यावहारिकदृशैव केवलं
कर्तृ कर्म च विभिन्नमिष्यते ।
निश्चयेन यदि वस्तु चिन्त्यते
कर्तृ कर्म च सदैकमिष्यते ॥ २१० ॥

અર્થ:—કેવળ વ્યાવહારિક દૃષ્ટિથી જ કર્તા અને કર્મ ભિન્ન ગણવામાં આવે ...યથી જો વસ્તુને વિચારવામાં આવે, તો કર્તા અને કર્મ સદા એક ગણવામાં ...

ભાવાર્થ:—કેવળ વ્યવહાર-દૃષ્ટિથી જ ભિન્ન દ્રવ્યોમાં કર્તા-કર્મપણું ગણવામાં ... નિશ્ચય-દૃષ્ટિથી તો એક જ દ્રવ્યમાં કર્તા-કર્મપણું ઘટે છે. ૩૪૫—૩૪૮.

હવે આ કથનને દૃષ્ટાંતદ્વારા ગાથામાં કહે છે:—

जह सिप्पिओ उ कम्मं कुव्वइ ण य सो उ तम्मओ होइ।
तह जीवो वि य कम्मं कुव्वइ ण य तम्मओ होइ ॥ ३४९॥

जह सिप्पिओ उ करणेहिं कुव्वइ ण सो उ तम्मओ होइ।
तह जीवो करणेहिं कुव्वइ ण य तम्मओ होइ ॥ ३५०

जह सिप्पिओ उ करणाणि गिह्णइ ण सो उ तम्मओ होइ।
तह जीवो करणाणि उ गिह्णइ ण य तम्मओ होइ ॥ ३५१

जह सिप्पि उ कम्मफलं भुंजइ ण य सो उ तम्मओ होइ।
तह जीवो कम्मफलं भुंजइ ण य तम्मओ होइ ॥ ३५२।

एवं ववहारस्स उ वत्तव्वं दरिसणं समासेण।
सुणु णिच्छयस्स वयणं परिणामकयं तु जं होई ॥ ३५३॥

જ્યમ શિલ્પી કર્મ કરે પરંતુ તે નહિ તન્મય બને,
ત્યમ જીવ પણ કર્મો કરે પણ તે નહિ તન્મય બને. ૩૪૯.

જ્યમ શિલ્પી કરણ વડે કરે પણ તે નહિ તન્મય બને,
ત્યમ જીવ કરણ વડે કરે પણ તે નહિ તન્મય બને. ૩૫૦.

જ્યમ શિલ્પી કરણ ગ્રહે પરંતુ તે નહિ તન્મય બને,
ત્યમ જીવ પણ કરણો ગ્રહે પણ તે નહિ તન્મય બને. ૩૫૧.

શિલ્પી કરમફળ ભોગવે પણ તે નહિ તન્મય બને,
ત્યમ જીવ કરમફળ ભોગવે પણ તે નહિ તન્મય બને. ૩૫૨.

—એ રીત મત વ્યવહારનો સંક્ષેપથી વક્તવ્ય છે;
સાંભળ વચન નિશ્ચય તણું પરિણામવિષયક જેહ છે. ૩૫૩.

जह सिप्पिओ उ चिट्ठं कुव्वइ हवइ य तहा अणण्णो से ।
तह जीवो वि य कम्मं कुव्वइ हवइ य अणण्णो से ॥ ३५४॥

जह चिट्ठं कुव्वंतो उ सिप्पिओ णिच्चदुक्खिओ होई ।
तत्तो सिया अणण्णो तह चिट्ठंतो दुही जीवो ॥ ३५५ ॥

यथा शिल्पिकस्तु कर्म करोति न च स तु तन्मयो भवति ।
तथा जीवोऽपि च कर्म करोति न च तन्मयो भवति ॥ ३४९ ॥
यथा शिल्पिकस्तु करणैः करोति न स तु तन्मयो भवति ।
तथा जीवः करणैः करोति न च तन्मयो भवति ॥ ३५० ॥
यथा शिल्पिकस्तु करणानि गृह्णाति न स तु तन्मयो भवति ।
तथा जीवः करणानि तु गृह्णाति न च तन्मयो भवति ॥ ३५१ ॥
यथा शिल्पी तु कर्मफलं भुंक्ते न च स तु तन्मयो भवति ।
तथा जीवः कर्मफलं भुंक्ते न च तन्मयो भवति ॥ ३५२ ॥
एवं व्यवहारस्य तु वक्तव्यं दर्शनं समासेन ।
शृणु निश्चयस्य वचनं परिणामकृतं तु यद्भवति ॥ ३५३ ॥
यथा शिल्पिकस्तु चेष्टां करोति भवति च तथानन्यस्तस्याः ।
तथा जीवोऽपि च कर्म करोति भवति चानन्यस्तस्मात् ॥ ३५४ ॥
यथा चेष्टां कुर्वाणस्तु शिल्पिको नित्यदुःखितो भवति ।
तस्माच्च स्यादनन्यस्तथा चेष्टमानो दुःखी जीवः ॥ ३५५ ॥

શિલ્પી કરે ચેષ્ટા અને તેનાથી તેહ અનન્ય છે,
ત્યમ જીવ કર્મ કરે અને તેનાથી તેહ અનન્ય છે. ૩૫૪.
ચેષ્ટા કરંતો શિલ્પી જેમ દુઃખિત થાય નિરંતરે,
ને દુઃખથી તેહ અનન્ય, ત્યમ જીવ ચેષ્ટમાન દુઃખી બને. ૩૫૫.

અર્થ:—ખરેખર પરિણામ છે તે જ નિશ્ચયથી કર્મ છે, અને પરિણામ પોતાના આશ્રયભૂત પરિણામીનું જ હોય છે, અન્યનું નહિ (કારણ કે પરિણામ પોતપોતાના દ્રવ્યના આશ્રયે છે, અન્યના પરિણામનો અન્ય આશ્રય નથી હોતો); વળી કર્મ કર્તા વિના હોતું નથી, તેમ જ વસ્તુની એકરૂપ સ્થિતિ (અર્થાત્ કૂટસ્થ સ્થિતિ) હોતી નથી (કારણ કે વસ્તુ દ્રવ્યપર્યાયસ્વરૂપ હોવાથી સર્વથા નિત્યપણું બાધાસહિત છે); માટે વસ્તુ પોતે જ પોતાના પરિણામરૂપ કર્મની કર્તા છે (-એ નિશ્ચયસિદ્ધાંત છે).

હવે આગળની ગાથાઓની સૂચનારૂપે કાવ્ય કહે છે:—

(પૃથ્વી)

बहिर्लुठति यद्यपि स्फुटदनंतशक्तिः स्वयं
तथाप्यपरवस्तुनो विशति नान्यवस्त्वन्तरम् ।
स्वभावनियतं यतः सकलमेव वस्त्विष्यते
स्वभावचलनाकुलः किमिह मोहितः क्लिश्यते ॥ २१२ ॥

અર્થ:—જેને પોતાને અનંત શક્તિ પ્રકાશમાન છે એવી વસ્તુ અન્ય વસ્તુની બહાર જોકે લોટે છે તોપણ અન્ય વસ્તુ અન્ય વસ્તુની અંદર પ્રવેશતી નથી, કારણ કે સમસ્ત વસ્તુઓ પોતપોતાના સ્વભાવમાં નિશ્ચિત છે એમ માનવામાં આવે છે. (આચાર્યદેવ કહે છે કે-) આમ હોવા છતાં, મોહિત જીવ, પોતાના સ્વભાવથી ચલિત થવાનું માનીને આકુળ થતો થકો, શા માટે ક્લેશ પામે છે?

ભાવાર્થ:—વસ્તુસ્વભાવ તો નિયમરૂપે એવો છે કે કોઈ વસ્તુમાં કોઈ વસ્તુ મળે નહિ. આમ હોવા છતાં, આ મોહી પ્રાણી, 'પરદ્રવ્યોને જાણતાં આત્મા પોતાના સ્વભાવથી ચલાયમાન થઈ જાય છે' એમ માનીને, ક્લેશ પામે છે, તે મોટું અજ્ઞાન છે.

ફરી આગળની ગાથાઓની સૂચનારૂપે બીજું કાવ્ય કહે છે:—

(રથોદ્ધતા)

वस्तु चैकमिह नान्यवस्तुनो
येन तेन खलु वस्तु वस्तु तत् ।
निश्चयोऽयमपरो परस्य कः
किं करोति हि बहिर्लुठन्नपि ॥ २१३ ॥

અર્થ:—આ લોકમાં એક વસ્તુ અન્ય વસ્તુની નથી, તેથી ખરેખર વસ્તુ

-એ નિશ્ચય છે. આમ હોવાથી કોઈ અન્ય વસ્તુ અન્ય વસ્તુની તેને શું કરી શકે?

:—વસ્તુનો સ્વભાવ તો એવો છે કે એક વસ્તુ અન્ય વસ્તુને પલટાવી ન હોય તો વસ્તુનું વસ્તુપણું જ ન ઠરે. આમ જ્યાં એક વસ્તુ શકતી નથી ત્યાં એક વસ્તુએ અન્યને શું કર્યું? કાંઈ ન કર્યું. એકક્ષેત્રાવગાહરૂપે પુદ્‌ગલો રહેલાં છે તોપણ ચેતનને જડ કરીને ાવી શકયાં નહિ; તો પછી પુદ્‌ગલે ચેતનને શું કર્યું? કાંઈ ન કર્યું.

ધી એમ સમજવું કે—વ્યવહારે પરદ્રવ્યોને અને આત્માને જ્ઞેયજ્ઞાયક પરદ્રવ્યો જ્ઞાયકને કાંઈ કરી શકતાં નથી.

જ અર્થને દૃઢ કરતું ત્રીજું કાવ્ય કહે છે:—

(રથોદ્ધતા)

यत्तु वस्तु कुरुतेऽन्यवस्तुनः
किंचनापि परिणामिनः स्वयम् ।
व्यावहारिकदृशैव तन्मतं
नान्यदस्ति किमपीह निश्चयात् ॥ २१४ ॥

-એક વસ્તુ સ્વયં પરિણમતી અન્ય વસ્તુને કાંઈ પણ કરી શકે છે— આવે છે, તે વ્યવહારદૃષ્ટિથી જ માનવામાં આવે છે. નિશ્ચયથી આ ને અન્ય વસ્તુ કાંઈ પણ નથી (અર્થાત્ એક વસ્તુને અન્ય વસ્તુ બંધ નથી).

:—એક દ્રવ્યના પરિણમનમાં અન્ય દ્રવ્ય નિમિત્ત દેખીને એમ કહેવું ા કર્યું,' તે વ્યવહારનયની દૃષ્ટિથી જ છે; નિશ્ચયથી તો તે દ્રવ્યમાં યું નથી. વસ્તુના પર્યાયસ્વભાવને લીધે વસ્તુનું પોતાનું જ એક અવસ્થારૂપ પરિણમન થાય છે; તેમાં અન્ય વસ્તુ પોતાનું કાંઈ ધી.

થી એમ સમજવું કે—પરદ્રવ્યરૂપ જ્ઞેય પદાર્થો તેમના ભાવે પરિણમે ત્મા પોતાના ભાવે પરિણમે છે; તેઓ એકબીજાને પરસ્પર કાંઈ કરી 'જ્ઞાયક પરદ્રવ્યોને જાણે છે' એમ વ્યવહારથી જ માનવામાં આવે ક તો બસ જ્ઞાયક જ છે. ૩૪૬—૩૫૫.

('ખડી તો ખડી જ છે'—એ નિશ્ચય છે; 'ખડી-સ્વભાવે પરિણમતી
ભીંત-સ્વભાવે પરિણમતી ભીંતને સફેદ કરે છે' એમ કહેવું તે પણ વ્યવહારકથન
તેવી રીતે 'જ્ઞાયક તો જ્ઞાયક જ છે'—એ નિશ્ચય છે; 'જ્ઞાયકસ્વભાવે પરિણમતો જ્ઞા
પરદ્રવ્યસ્વભાવે પરિણમતાં એવાં પરદ્રવ્યોને જાણે છે' એમ કહેવું તે પણ વ્યવહાર
છે.) આવા નિશ્ચય-વ્યવહાર કથનને હવે ગાથાઓમાં દૃષ્ટાંતદ્વારા સ્પષ્ટ કહે છેઃ—

जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होइ।
तह जाणओ दु ण परस्स जाणओ जाणओ सो दु ॥ ३५६॥
जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होइ।
तह पासओ दु ण परस्स पासओ पासओ सो दु ॥ ३५७॥
जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होइ।
तह संजओ दु ण परस्स संजओ जओ सो दु ॥ ३५८॥
जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होइ।
तह दंसणं दु ण परस्स दंसणं दंसणं तं तु ॥ ३५९॥
एवं तु णिच्छयणयस्स भासियं णाणदंसणचरित्ते।
सुणु ववहारणयस्स य वत्तव्वं से समासेण ॥ ३६०॥

જ્યમ સેટિકા નથી પર તણી, છે સેટિકા બસ સેટિકા,
જ્ઞાયક નથી ત્યમ પર તણો, જ્ઞાયક ખરે જ્ઞાયક તથા; ૩૫૬.
જ્યમ સેટિકા નથી પર તણી, છે સેટિકા બસ સેટિકા,
દર્શક નથી ત્યમ પર તણો, દર્શક ખરે દર્શક તથા; ૩૫૭.
જ્યમ સેટિકા નથી પર તણી, છે સેટિકા બસ સેટિકા,
સંયત નથી ત્યમ પર તણો, સંયત ખરે સંયત તથા; ૩૫૮.
જ્યમ સેટિકા નથી પર તણી, છે સેટિકા બસ સેટિકા,
દર્શન નથી ત્યમ પર તણું, દર્શન ખરે દર્શન તથા. ૩૫૯.
એમ જ્ઞાન-દર્શન-ચરિતવિષયક કથન નિશ્ચયનય તણું;
સાંભળ કથન સંક્ષેપથી એના વિષે વ્યવહારનું. ૩૬૦.

जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं जाणइ णाया वि सयेण भावेण ॥ ३६१ ॥
जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं पस्सइ जीवो वि सयेण भावेण ॥ ३६२ ॥
जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं विजहइ णाया वि सयेण भावेण ॥ ३६३ ॥
जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं सद्दहइ सम्मदिट्ठी सहावेण ॥ ३६४ ॥
एवं ववहारस्स दु विणिच्छओ णाणदंसणचरित्ते ।
भणिओ अण्णेसु वि पज्जएसु एमेव णायव्वो ॥ ३६५ ॥

यथा सेटिका तु न परस्य सेटिका सेटिका च सा भवति ।
तथा ज्ञायकस्तु न परस्य ज्ञायको ज्ञायकः स तु ॥ ३५६ ॥
यथा सेटिका तु न परस्य सेटिका सेटिका च सा भवति ।
तथा दर्शकस्तु न परस्य दर्शको दर्शकः स तु ॥ ३५७ ॥

જ્યમ નિજ સ્વભાવથી સેટિકા પરદ્રવ્યને ધોળું કરે,
જ્ઞાતાય એ રીત જાણતો નિજ ભાવથી પરદ્રવ્યને; ૩૬૧.
જ્યમ નિજ સ્વભાવથી સેટિકા પરદ્રવ્યને ધોળું કરે,
આત્માય એ રીત દેખતો નિજભાવથી પરદ્રવ્યને; ૩૬૨.
જ્યમ નિજ સ્વભાવથી સેટિકા પરદ્રવ્યને ધોળું કરે,
જ્ઞાતાય એ રીત ત્યાગતો નિજ ભાવથી પરદ્રવ્યને; ૩૬૩.
જ્યમ નિજ સ્વભાવથી સેટિકા પરદ્રવ્યને ધોળું કરે,
સુદૃષ્ટિ એ રીત શ્રદ્ધતો નિજ ભાવથી પરદ્રવ્યને. ૩૬૪.
એમ જ્ઞાન-દર્શન-ચરિતમાં નિર્ણય કહ્યો વ્યવહારનો,
ને અન્ય પર્યાયો વિષે પણ એ જ રીતે જાણવો. ૩૬૫.

यथा सेटिका तु न परस्य सेटिका सेटिका च सा भवति।
तथा संयतस्तु न परस्य संयतः संयतः स तु ॥ ३५८ ॥
यथा सेटिका तु न परस्य सेटिका सेटिका च सा भवति।
तथा दर्शनं तु न परस्य दर्शनं दर्शनं तत्तु ॥ ३५९ ॥
एवं तु निश्चयनयस्य भाषितं ज्ञानदर्शनचरित्रे।
शृणु व्यवहारनयस्य च वक्तव्यं तस्य समासेन ॥ ३६० ॥
यथा परद्रव्यं सेटयति सेटिकात्मनः स्वभावेन।
तथा परद्रव्यं जानाति ज्ञातापि स्वकेन भावेन ॥ ३६१ ॥
यथा परद्रव्यं सेटयति सेटिकात्मनः स्वभावेन।
तथा परद्रव्यं पश्यति जीवोऽपि स्वकेन भावेन ॥ ३६२ ॥
यथा परद्रव्यं सेटयति सेटिकात्मनः स्वभावेन।
तथा परद्रव्यं विजहाति ज्ञातापि स्वकेन भावेन ॥ ३६३ ॥
यथा परद्रव्यं सेटयति सेटिकात्मनः स्वभावेन।
तथा परद्रव्यं श्रद्धत्ते सम्यग्दृष्टिः स्वभावेन ॥ ३६४ ॥
एवं व्यवहारस्य तु विनिश्चयो ज्ञानदर्शनचरित्रे।
भणितोऽन्येष्वपि पर्यायेषु एवमेव ज्ञातव्यः ॥ ३६५ ॥

અન્વયાર્થઃ—(જોકે વ્યવહારે પરદ્રવ્યોને અને આત્માને જ્ઞેયજ્ઞાયક, [illegible] ઇત્યાદિ સંબંધ છે, તોપણ નિશ્ચયે તો આ પ્રમાણે છે—) [યથા] જેમ [સેટિકા તુ] ખડી [પરસ્ય ન] પરની (ભીંત આદિની) નથી, [સેટિકા] ખડી [સા ચ સેટિકા ભવતિ] તે તો ખડી જ છે, [તથા] તેમ [જ્ઞાયક: તુ] જ્ઞાયક (જાણનાર, આત્મા) [પરસ્ય ન] પરનો (પરદ્રવ્યનો) નથી, [જ્ઞાયક:] જ્ઞાયક [સ: તુ જ્ઞાયક:] તે તો જ્ઞાયક જ છે. [યથા] જેમ [સેટિકા તુ] ખડી [પરસ્ય ન] પરની નથી, [સેટિકા] ખડી [સા ચ સેટિકા ભવતિ] તે તો ખડી જ છે, [તથા] તેમ [દર્શક: તુ] દર્શક (દેખનાર, આત્મા) [પરસ્ય ન] પરનો નથી, [દર્શક:] દર્શક [સ: તુ દર્શક:] તે તો દર્શક જ છે. [યથા] જેમ [સેટિકા તુ] ખડી [illegible] [તથા] તેમ [સંયત: તુ] સંયત [illegible] [સંયત:] સંયત [સ: તુ સંયત:] [illegible] [યથા] જેમ [સેટિકા તુ] ખડી [પરસ્ય ન] પરની નથી [illegible]

का] ખડી [सा च सेटिका भवति] તે તો ખડી જ છે, [तथा] તેમ [दर्शनं
ર્શન અર્થાત્ શ્રદ્ધાન [परस्य न] પરનું નથી, [दर्शनं तद् तु दर्शनं] દર્શન
દર્શન જ છે અર્થાત્ શ્રદ્ધાન તે તો શ્રદ્ધાન જ છે.

[एवं तु] એ પ્રમાણે [ज्ञानदर्शनचरित्रे] જ્ઞાન-દર્શન-ચારિત્ર વિષે [निश्चय-
भाषितं] નિશ્ચયનયનું કથન છે. [तस्य च] વળી તે વિષે [समासेन] સંક્ષેપથી
हारनयस्य वक्तव्यं] વ્યવહારનયનું કથન [शृणु] સાંભળ.

[यथा] જેમ [सेटिका] ખડી [आत्मनः स्वभावेन] પોતાના સ્વભાવથી
व्यं] (ભીંત આદિ) પરદ્રવ્યને [सेटयति] સફેદ કરે છે, [तथा] તેમ [ज्ञाता
] જ્ઞાતા પણ [स्वकेन भावेन] પોતાના સ્વભાવથી [परद्रव्यं] પરદ્રવ્યને
ाति] જાણે છે. [यथा] જેમ [सेटिका] ખડી [आत्मनः स्वभावेन] પોતાના
વથી [परद्रव्यं] પરદ્રવ્યને [सेटयति] સફેદ કરે છે, [तथा] તેમ [जीवः
] જીવ પણ [स्वकेन भावेन] પોતાના સ્વભાવથી [परद्रव्यं] પરદ્રવ્યને [पश्यति]
છે. [यथा] જેમ [सेटिका] ખડી [आत्मनः स्वभावेन] પોતાના સ્વભાવથી
द्रव्यं] પરદ્રવ્યને [सेटयति] સફેદ કરે છે, [तथा] તેમ [ज्ञाता अपि] જ્ઞાતા
[स्वकेन भावेन] પોતાના સ્વભાવથી [परद्रव्यं] પરદ્રવ્યને [विजहाति] ત્યાગે
यथा] જેમ [सेटिका] ખડી [आत्मनः स्वभावेन] પોતાના સ્વભાવથી [पर-
] પરદ્રવ્યને [सेटयति] સફેદ કરે છે, [तथा] તેમ [सम्यग्दृष्टिः] સમ્યગ્દૃષ્ટિ
ावेन] પોતાના સ્વભાવથી [परद्रव्यं] પરદ્રવ્યને [श्रद्धत्ते] શ્રદ્ધે છે. [एवं तु]
માણે [ज्ञानदर्शनचरित्रे] જ્ઞાન-દર્શન-ચારિત્ર વિષે [व्यवहारनयस्य विनिश्चयः]
ારનયનો નિર્ણય [भणितः] કહ્યો; [अन्येषु पर्यायेषु अपि] બીજા પર્યાયો વિષે
[एवं एव ज्ञातव्यः] એ રીતે જ જાણવો.

ટીકા:—આ જગતમાં ખડી છે તે શ્વેતગુણથી ભરેલા સ્વભાવવાળું દ્રવ્ય છે.
આદિ પરદ્રવ્ય વ્યવહારે તે ખડીનું શ્વેત્ય છે (અર્થાત્ ખડી વડે શ્વેત કરાવા-
પદાર્થ છે). હવે, 'શ્વેત કરનારી ખડી, શ્વેત કરાવા યોગ્ય જે ભીંત આદિ
ય તેની છે કે નથી?'—એમ તે બન્નેનો તાત્ત્વિક (પારમાર્થિક) સંબંધ અહીં
રવામાં આવે છે:—જો ખડી ભીંત-આદિ પરદ્રવ્યની હોય તો શું થાય તે પ્રથમ
રીએ: 'જેનું જે હોય તે તે જ હોય, જેમ આત્માનું જ્ઞાન હોવાથી જ્ઞાન તે
ા જ છે (—જુદું દ્રવ્ય નથી);'—આવો તાત્ત્વિક સંબંધ જીવંત (અર્થાત્
ાન) હોવાથી, ખડી જો ભીંત-આદિની હોય તો ખડી તે ભીંત-આદિ જ હોય
ર્થાત્ ખડી ભીંત-આદિ સ્વરૂપ જ હોવી જોઈએ, ભીંત-આદિથી જુદું દ્રવ્ય ન
જોઈએ); એમ હોતાં, ખડીના સ્વદ્રવ્યનો ઉચ્છેદ (નાશ) થાય. પરંતુ દ્રવ્યનો

ચ્છેદ તો થતો નથી, કારણ કે એક દ્રવ્યનું અન્ય દ્રવ્યરૂપે સંક્રમણ થવાનો તો પૂર્વે જ નિષેધ કર્યો છે. માટે (એ સિદ્ધ થયું કે) ખડી ભીંત-આદિની નથી. (આગળ વિચારીએ:) જો ખડી ભીંત આદિની નથી, તો ખડી કોની છે? ખડીની જ ખડી છે. (આ) ખડીથી જુદી એવી બીજી કઈ ખડી છે કે જેની (આ) ખડી છે? (આ) ખડીથી જુદી અન્ય કોઈ ખડી નથી, જુદા જુદા બે સ્વ-સ્વામીરૂપ અંશો જ છે. અહીં સ્વ-સ્વામીરૂપ અંશોના વ્યવહારથી શું સાધ્ય છે? કાંઈ સાધ્ય નથી. તો પછી ખડી કોઈની નથી, ખડી ખડી જ છે—એ નિશ્ચય છે. (એ પ્રમાણે દૃષ્ટાંત કહ્યું). જેમ આ દૃષ્ટાંત છે, તેમ આ (નીચે પ્રમાણે) દાર્ષ્ટાંત છે:—આ જગતમાં ચેતયિતા (ચેતનારો અર્થાત્ આત્મા) છે તે જ્ઞાનગુણથી ભરેલા સ્વભાવવાળું દ્રવ્ય છે. પુદ્‌ગલાદિ પરદ્રવ્ય વ્યવહારે તે ચેતયિતાનું (આત્માનું) જ્ઞેય છે. હવે, 'જ્ઞાયક (અર્થાત્ જાણનારો) ચેતયિતા, જ્ઞેય (અર્થાત્ જણાવાયોગ્ય) જે પુદ્‌ગલાદિ પરદ્રવ્ય તેનો છે કે નથી?'—એમ તે બન્નેનો તાત્ત્વિક સંબંધ અહીં વિચારવામાં આવે છે:—જો ચેતયિતા પુદ્‌ગલાદિનો હોય તો શું થાય તે પ્રથમ વિચારીએ: 'જેનું જે હોય તે તે જ હોય, જેમ આત્માનું જ્ઞાન હોવાથી જ્ઞાન તે આત્મા જ છે;'—આવો તાત્ત્વિક સંબંધ જીવંત (અર્થાત્ છતો) હોવાથી, ચેતયિતા જો પુદ્‌ગલાદિનો હોય તો ચેતયિતા તે પુદ્‌ગલાદિ જ હોય (અર્થાત્ ચેતયિતા પુદ્‌ગલાદિસ્વરૂપ જ હોવો જોઈએ, પુદ્‌ગલાદિથી જુદું દ્રવ્ય ન હોવું જોઈએ); એમ હોતાં, ચેતયિતાના સ્વદ્રવ્યનો ઉચ્છેદ થાય. પરંતુ દ્રવ્યનો ઉચ્છેદ તો થતો નથી, કારણ કે એક દ્રવ્યનું અન્ય દ્રવ્યરૂપે સંક્રમણ થવાનો તો પૂર્વે જ નિષેધ કર્યો છે. માટે (એ સિદ્ધ થયું કે) ચેતયિતા પુદ્‌ગલાદિનો નથી. (આગળ વિચારીએ:) જો ચેતયિતા પુદ્‌ગલાદિનો નથી તો ચેતયિતા કોનો છે? ચેતયિતાનો જ ચેતયિતા છે. (આ) ચેતયિતાથી જુદો એવો બીજો કયો ચેતયિતા છે કે જેનો (આ) ચેતયિતા છે? (આ) ચેતયિતાથી જુદો અન્ય કોઈ ચેતયિતા નથી, જુદા જુદા બે સ્વ-સ્વામીરૂપ અંશો જ છે. અહીં સ્વ-સ્વામીરૂપ અંશોના વ્યવહારથી શું સાધ્ય છે? કાંઈ સાધ્ય નથી. તો પછી જ્ઞાયક કોઈનો નથી, જ્ઞાયક જ્ઞાયક જ [illegible] છે.

(આ રીતે અહીં એમ બતાવ્યું કે: ' [illegible] '—એ વ્યવહારકથન છે; 'આત્મા પોતાને [illegible] 'શરૂપ વ્યવહાર છે; 'જ્ઞાયક જ્ઞાયક જ [illegible] શ્ચય [illegible]

વળી (જેવી રીતે જ્ઞાયક [illegible] કહેવામાં આવે છે:—આ જગતમાં [illegible] ભીંત આદિ પરદ્રવ્ય વ્યવહારે તે [illegible] કાર્ય છે). હવે, 'શ્વેત કરનારી [illegible] ની છે કે નથી?'—એમ તે [illegible] બન્ને [illegible]

જો ખડી ભીંત-આદિ પરદ્રવ્યની હોય તો શું થાય તે પ્રથમ વિચારીએઃ 'જેનું જે હોય તે તે જ હોય, જેમ આત્માનું જ્ઞાન હોવાથી જ્ઞાન તે આત્મા જ છે;'—આવો તાત્ત્વિક સંબંધ જીવંત હોવાથી, ખડી જો ભીંત-આદિની હોય તો ખડી તે ભીંત-આદિ જ હોય (અર્થાત્ ખડી ભીંત-આદિ સ્વરૂપ જ હોવી જોઈએ); એમ હોતાં, ખડીના સ્વદ્રવ્યનો ઉચ્છેદ થાય. પરંતુ દ્રવ્યનો ઉચ્છેદ તો થતો નથી, કારણ કે એક દ્રવ્યનું અન્ય દ્રવ્યરૂપે સંક્રમણ થવાનો તો પૂર્વે જ નિષેધ કર્યો છે. માટે (એ સિદ્ધ થયું કે) ખડી ભીંત-આદિની નથી. (આગળ વિચારીએઃ) જો ખડી ભીંત-આદિની નથી તો ખડી કોની છે? ખડીની જ ખડી છે. (આ) ખડીથી જુદી એવી બીજી કઈ ખડી છે કે જેની (આ) ખડી છે? (આ) ખડીથી જુદી અન્ય કોઈ ખડી નથી, જુદા જુદા બે સ્વ-સ્વામીરૂપ અંશો જ છે. અહીં સ્વ-સ્વામીરૂપ અંશોના વ્યવહારથી શું સાધ્ય છે? કાંઈ સાધ્ય નથી. તો પછી ખડી કોઈની નથી, ખડી ખડી જ છે—એ નિશ્ચય છે. જેમ આ દૃષ્ટાંત છે, તેમ આ (નીચે પ્રમાણે) દાર્ષ્ટાંત છેઃ—આ જગતમાં ચેતયિતા છે તે દર્શનગુણથી ભરેલા સ્વભાવવાળું દ્રવ્ય છે. પુદ્ગલાદિ પરદ્રવ્ય વ્યવહારે તે ચેતયિતાનું દૃશ્ય છે. હવે, 'દર્શક (દેખનારો અથવા શ્રદ્ધનારો) ચેતયિતા, દૃશ્ય (દેખાવાયોગ્ય અથવા શ્રદ્ધાવાયોગ્ય) જે પુદ્ગલાદિ પરદ્રવ્ય તેનો છે કે નથી?'—એમ તે બન્નેનો તાત્ત્વિક સંબંધ અહીં વિચારવામાં આવે છેઃ—જો ચેતયિતા પુદ્ગલાદિનો હોય તો શું થાય તે પ્રથમ વિચારીએઃ 'જેનું જે હોય તે તે જ હોય, જેમ આત્માનું જ્ઞાન હોવાથી જ્ઞાન તે આત્મા જ છે;'—આવો તાત્ત્વિક સંબંધ જીવંત હોવાથી, ચેતયિતા જો પુદ્ગલાદિનો હોય તો ચેતયિતા તે પુદ્ગલાદિ જ હોય (અર્થાત્ ચેતયિતા પુદ્ગલાદિસ્વરૂપ જ હોવો જોઈએ). એમ હોતાં, ચેતયિતાના સ્વદ્રવ્યનો ઉચ્છેદ થાય. પરંતુ દ્રવ્યનો ઉચ્છેદ તો થતો નથી, કારણ કે એક દ્રવ્યનું અન્ય દ્રવ્યરૂપે સંક્રમણ થવાનો તો પૂર્વે જ નિષેધ કર્યો છે. માટે (એ સિદ્ધ થયું કે) ચેતયિતા પુદ્ગલાદિનો નથી. (આગળ વિચારીએઃ) જો ચેતયિતા પુદ્ગલાદિનો નથી તો ચેતયિતા કોનો છે? ચેતયિતાનો જ ચેતયિતા છે. (આ) ચેતયિતાથી જુદો એવો બીજો કયો ચેતયિતા છે કે જેનો (આ) ચેતયિતા છે? (આ) ચેતયિતાથી જુદો અન્ય કોઈ ચેતયિતા નથી, જુદા જુદા બે સ્વ-સ્વામીરૂપ અંશો જ છે. અહીં સ્વ-સ્વામીરૂપ અંશોના વ્યવહારથી શું સાધ્ય છે? કાંઈ સાધ્ય નથી. તો પછી દર્શક કોઈનો નથી, દર્શક દર્શક જ છે—એ નિશ્ચય છે.

(આ રીતે અહીં એમ બતાવ્યું કેઃ 'આત્મા પરદ્રવ્યને દેખે છે અથવા શ્રદ્ધે છે'—એ વ્યવહારકથન છે; 'આત્મા પોતાને દેખે છે અથવા શ્રદ્ધે છે'—એમ કહેવામાં પણ સ્વ-સ્વામીઅંશરૂપ વ્યવહાર છે; 'દર્શક દર્શક જ છે'—એ નિશ્ચય છે.)

વળી (જેવી રીતે જ્ઞાયક તથા દર્શક વિષે દૃષ્ટાંત-દાર્ષ્ટાંતથી કહ્યું) એવી જ

રીતે અપોહક (ત્યાજક, ત્યાગ કરનાર) વિષે કહેવામાં આવે છે:—આ જગતમાં ખડી છે તે શ્વેતગુણથી ભરેલા સ્વભાવવાળું દ્રવ્ય છે. ભીંત આદિ પરદ્રવ્ય વ્યવહારે તે ખડીનું શ્વૈત્ય છે (અર્થાત્ ખડી વડે શ્વેત કરવાયોગ્ય પદાર્થ છે). હવે, 'શ્વેત કરનારી ખડી, શ્વેત કરવાયોગ્ય જે ભીંત આદિ પરદ્રવ્ય તેની છે કે નથી?'—એમ તે બન્નેનો તાત્ત્વિક સંબંધ અહીં વિચારવામાં આવે છે:—જો ખડી ભીંત આદિ પરદ્રવ્યની હોય તો શું થાય તે પ્રથમ વિચારીએ: 'જેનું જે હોય તે તે જ હોય, જેમ આત્માનું જ્ઞાન હોવાથી જ્ઞાન તે આત્મા જ છે;'—આવો તાત્ત્વિક સંબંધ જીવંત હોવાથી, ખડી જો ભીંત-આદિની હોય તો ખડી તે ભીંત-આદિ જ હોય (અર્થાત્ ખડી ભીંત-આદિ સ્વરૂપ જ હોવી જોઈએ); એમ હોતાં, ખડીના સ્વદ્રવ્યનો ઉચ્છેદ થાય. પરંતુ દ્રવ્યનો ઉચ્છેદ તો થતો નથી, કારણ કે એક દ્રવ્યનું અન્ય દ્રવ્યરૂપે સંક્રમણ થવાનો તો પૂર્વે જ નિષેધ કર્યો છે. માટે (એ સિદ્ધ થયું કે) ખડી ભીંત-આદિની નથી. (આગળ વિચારીએ:) જો ખડી ભીંત-આદિની નથી તો ખડી કોની છે? ખડીની જ ખડી છે. (આ) ખડીથી જુદી એવી બીજી કઈ ખડી છે કે જેની (આ) ખડી છે? (આ) ખડીથી જુદી અન્ય કોઈ ખડી નથી, જુદા જુદા બે સ્વ-સ્વામીરૂપ અંશો જ છે. અહીં સ્વ-સ્વામીરૂપ અંશોના વ્યવહારથી શું સાધ્ય છે? કાંઈ સાધ્ય નથી. તો પછી ખડી કોઈની નથી, ખડી ખડી જ છે—એ નિશ્ચય છે. જેમ આ દૃષ્ટાંત છે, તેમ આ (નીચે પ્રમાણે) દાર્ષ્ટાંત છે:—આ જગતમાં જે ચેતયિતા છે તે, જ્ઞાનદર્શનગુણથી ભરેલો, પરના અપોહનસ્વરૂપ (ત્યાગસ્વરૂપ) સ્વભાવ છે એવું દ્રવ્ય છે. પુદ્ગલાદિ પરદ્રવ્ય વ્યવહારે તે ચેતયિતાનું અપોહ્ય (ત્યાજ્ય, ત્યાગવાયોગ્ય પદાર્થ) છે. હવે, 'અપોહક (ત્યાજક) ચેતયિતા, અપોહ્ય (ત્યાજ્ય) જે પુદ્ગલાદિ પરદ્રવ્ય તેનો છે કે નથી?'—એમ તે બન્નેનો તાત્ત્વિક સંબંધ અહીં વિચારવામાં આવે છે:—જો ચેતયિતા પુદ્ગલાદિનો હોય તો શું થાય તે પ્રથમ વિચારીએ: 'જેનું જે હોય તે તે જ હોય, જેમ આત્માનું જ્ઞાન હોવાથી જ્ઞાન તે આત્મા જ છે;'—આવો તાત્ત્વિક સંબંધ જીવંત હોવાથી, ચેતયિતા જો પુદ્ગલાદિનો હોય તો ચેતયિતા તે પુદ્ગલાદિ જ હોય (અર્થાત્ ચેતયિતા પુદ્ગલાદિસ્વરૂપ જ હોવો જોઈએ); એમ હોતાં, ચેતયિતાના સ્વદ્રવ્યનો ઉચ્છેદ થાય. પરંતુ દ્રવ્યનો ઉચ્છેદ તો થતો નથી, કારણ કે એક દ્રવ્યનું અન્ય દ્રવ્યરૂપે સંક્રમણ થવાનો તો પૂર્વે જ નિષેધ કર્યો છે. માટે (એ સિદ્ધ થયું કે) ચેતયિતા પુદ્ગલાદિનો નથી. (આગળ વિચારીએ:) જો ચેતયિતા પુદ્ગલાદિનો નથી તો ચેતયિતા કોનો છે? ચેતયિતાનો જ ચેતયિતા છે. (આ) ચેતયિતાથી જુદો એવો બીજો કયો ચેતયિતા છે કે જેનો (આ) ચેતયિતા છે? (આ) ચેતયિતાથી જુદો અન્ય કોઈ ચેતયિતા નથી, જુદા જુદા બે સ્વ-સ્વામીરૂપ અંશો જ છે. અહીં સ્વ-સ્વામીરૂપ અંશોના વ્યવહારથી શું સાધ્ય છે? કાંઈ સાધ્ય નથી. તો પછી અપોહક (અર્થાત્ ત્યાગ કરનાર) કોઈનો નથી, અપોહક અપોહક જ છે—એ નિશ્ચય છે.

(આ રીતે અહીં એમ બતાવ્યું કે: 'આત્મા પરદ્રવ્યને અપોહે છે અર્થાત્ ત્યાગે છે'—એ વ્યવહારકથન છે; 'આત્મા જ્ઞાનદર્શનમય એવા પોતાને ગ્રહે છે'—એમ કહેવામાં પણ સ્વ-સ્વામીઅંશરૂપ વ્યવહાર છે; 'અપોહક-અપોહક જ છે'—એ નિશ્ચય છે.)

હવે વ્યવહારનું વ્યાખ્યાન કરવામાં આવે છે:—

જેવી રીતે શ્વેતગુણથી ભરેલા સ્વભાવવાળી તે જ ખડી, પોતે ભીંત આદિ પરદ્રવ્યના સ્વભાવે નહિ પરિણમતી થકી અને ભીંત આદિ પરદ્રવ્યને પોતાના સ્વભાવે નહિ પરિણમાવતી થકી, ભીંત-આદિ પરદ્રવ્ય જેને નિમિત્ત છે એવા પોતાના શ્વેતગુણથી ભરેલા સ્વભાવના પરિણામ વડે ઉપજતી થકી, ખડી જેને નિમિત્ત છે એવા પોતાના (-ભીંત આદિના) સ્વભાવના પરિણામ વડે ઉપજતા ભીંત-આદિ પરદ્રવ્યને, પોતાના (-ખડીના-) સ્વભાવથી શ્વેત કરે છે—એમ વ્યવહાર કરવામાં આવે છે; તેવી રીતે જ્ઞાનગુણથી ભરેલા સ્વભાવવાળો ચેતયિતા પણ, પોતે પુદ્ગલાદિ પરદ્રવ્યના સ્વભાવે નહિ પરિણમતો થકો અને પુદ્ગલાદિ પરદ્રવ્યને પોતાના સ્વભાવે નહિ પરિણમાવતો થકો, પુદ્ગલાદિ પરદ્રવ્ય જેને નિમિત્ત છે એવા પોતાના જ્ઞાનગુણથી ભરેલા સ્વભાવના પરિણામ વડે ઉપજતો થકો, ચેતયિતા જેને નિમિત્ત છે એવા પોતાના (-પુદ્ગલાદિના-) સ્વભાવના પરિણામ વડે ઉપજતા પુદ્ગલાદિ પરદ્રવ્યને, પોતાના (-ચેતયિતાના-) સ્વભાવથી જાણે છે—એમ વ્યવહાર કરવામાં આવે છે.

વળી (જેવી રીતે જ્ઞાનગુણનો વ્યવહાર કહ્યો) એવી જ રીતે દર્શનગુણનો વ્યવહાર કહેવામાં આવે છે:—જેવી રીતે શ્વેતગુણથી ભરેલા સ્વભાવવાળી તે જ ખડી, પોતે ભીંત-આદિ પરદ્રવ્યના સ્વભાવે નહિ પરિણમતી થકી અને ભીંત-આદિ પરદ્રવ્યને પોતાના સ્વભાવે નહિ પરિણમાવતી થકી, ભીંત-આદિ પરદ્રવ્ય જેને નિમિત્ત છે એવા પોતાના શ્વેતગુણથી ભરેલા સ્વભાવના પરિણામ વડે ઉપજતી થકી, ખડી જેને નિમિત્ત છે એવા પોતાના (-ભીંત આદિના-) સ્વભાવના પરિણામ વડે ઉપજતા ભીંત-આદિ પરદ્રવ્યને પોતાના (-ખડીના-) સ્વભાવથી શ્વેત કરે છે—એમ વ્યવહાર કરવામાં આવે છે; તેવી રીતે દર્શનગુણથી ભરેલા સ્વભાવવાળો ચેતયિતા પણ, પોતે પુદ્ગલાદિ પરદ્રવ્યના સ્વભાવે નહિ પરિણમતો થકો અને પુદ્ગલાદિ પરદ્રવ્યને પોતાના સ્વભાવે નહિ પરિણમાવતો થકો, પુદ્ગલાદિ પરદ્રવ્ય જેને નિમિત્ત છે એવા પોતાના દર્શનગુણથી ભરેલા સ્વભાવના પરિણામ વડે ઉપજતો થકો, ચેતયિતા જેને નિમિત્ત છે એવા પોતાના (-પુદ્ગલાદિના-) સ્વભાવના પરિણામ વડે ઉપજતા પુદ્ગલાદિ પરદ્રવ્યને પોતાના (-ચેતયિતાના-) સ્વભાવથી દેખે છે અથવા શ્રદ્ધે છે—એમ વ્યવહાર કરવામાં આવે છે.

વળી (જેવી રીતે જ્ઞાન-દર્શન ગુણોનો વ્યવહાર કહ્યો) એવી જ રીતે

ચારિત્રગુણનો વ્યવહાર કહેવામાં આવે છેઃ—જેવી રીતે શ્વેતગુણથી ભરેલા સ્વભાવ
તે જ ખડી, પોતે ભીંત-આદિ પરદ્રવ્યના સ્વભાવે નહિ પરિણમતી થકી અને ભીંત-
આદિ પરદ્રવ્યને પોતાના સ્વભાવે નહિ પરિણમાવતી થકી, ભીંત-આદિ પરદ્રવ્ય
નિમિત્ત છે એવા પોતાના શ્વેતગુણથી ભરેલા સ્વભાવના પરિણામ વડે ઊપજતી
ખડી જેને નિમિત્ત છે એવા પોતાના (-ભીંત આદિના-) સ્વભાવના પરિણામ
ઊપજતા ભીંત-આદિ પરદ્રવ્યને, પોતાના (-ખડીના-) સ્વભાવથી શ્વેત કરે છે—એ
વ્યવહાર કરવામાં આવે છે; તેવી રીતે જેનો જ્ઞાનદર્શનગુણથી ભરેલો, પરના અપોહ
સ્વરૂપ સ્વભાવ છે એવો ચેતયિતા પણ, પોતે પુદ્‌ગલાદિ પરદ્રવ્યના સ્વભાવે નહિ
પરિણમતો થકો અને પુદ્‌ગલાદિ પરદ્રવ્યને પોતાના સ્વભાવે નહિ પરિણમાવતો થકો,
પુદ્‌ગલાદિ પરદ્રવ્ય જેને નિમિત્ત છે એવા પોતાના જ્ઞાનદર્શનગુણથી ભરેલા પર
અપોહનાત્મક (-પરના ત્યાગસ્વરૂપ) સ્વભાવના પરિણામ વડે ઊપજતો થકો, ચેતયિતા
જેને નિમિત્ત છે એવા પોતાના (-પુદ્‌ગલાદિના-) સ્વભાવના પરિણામ વડે ઊપજતા
પુદ્‌ગલાદિ પરદ્રવ્યને, પોતાના (-ચેતયિતાના-) સ્વભાવથી અપોહે છે અર્થાત્ ત્યાગે
છે—એમ વ્યવહાર કરવામાં આવે છે.

એ રીતે આ, આત્માના જ્ઞાન-દર્શન ચારિત્ર પર્યાયોનો નિશ્ચય-વ્યવહાર પ્રકાર
છે. એ જ પ્રમાણે બીજા પણ સમસ્ત પર્યાયોનો નિશ્ચય-વ્યવહાર પ્રકાર સમજવો.

ભાવાર્થઃ—શુદ્ધનયથી આત્માનો એક ચેતનામાત્ર સ્વભાવ છે. તેનાં પરિણામ
જાણવું, દેખવું, શ્રદ્ધવું, નિવૃત્ત થવું ઇત્યાદિ છે. ત્યાં નિશ્ચયનયથી વિચારવામાં આવે
તો આત્માને પરદ્રવ્યનો જ્ઞાયક નથી કહી શકાતો, દર્શક નથી કહી શકાતો, શ્રદ્ધાન
કરનારો નથી કહી શકાતો, ત્યાગ કરનારો નથી કહી શકાતો; કારણ કે પરદ્રવ્યને અને
આત્માને નિશ્ચયથી કાંઈ પણ સંબંધ નથી. જે જ્ઞાન, દર્શન, શ્રદ્ધાન, ત્યાગ કરવારૂપ
ભાવો છે તે પોતે જ છે; ભાવ્ય-ભાવકનો ભેદ કહેવો તે પણ વ્યવહાર છે. નિશ્ચયથી
ભાવ્ય-ભાવક ભેદ નથી.

હવે વ્યવહારનય વિષે. વ્યવહારનયથી આત્માને પરદ્રવ્યનો જ્ઞાતા, દ્રષ્ટા,
શ્રદ્ધાન કરનાર, ત્યાગ કરનાર કહેવામાં આવે છે; કારણ કે પરદ્રવ્યને અને આત્માને
નિમિત્તનૈમિત્તિકભાવ છે. જ્ઞાનાદિક ભાવોને પરદ્રવ્ય નિમિત્ત થતું હોવાથી વ્યવહારી
જનો કહે છે કે—આત્મા પરદ્રવ્યને જાણે છે, પરદ્રવ્યને દેખે છે, પરદ્રવ્યનું શ્રદ્ધાન કરે
છે, પરદ્રવ્યને ત્યાગે છે.

આ પ્રમાણે નિશ્ચય-વ્યવહારના પ્રકારને જાણી યથાવત્ (જેમ છે તેમ)
[illegible] કરવું.

હવે આ અર્થના કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

शुद्धद्रव्यनिरूपणार्पितमतेस्तत्त्वं समुत्पश्यतो
नैकद्रव्यगतं चकास्ति किमपि द्रव्यांतरं जातुचित् ।
ज्ञानं ज्ञेयमवैति यत्तु तदयं शुद्धस्वभावोदयः
किं द्रव्यांतरचुंबनाकुलधियस्तत्त्वाच्च्यवंते जनाः ॥ २१५ ॥

અર્થ:—જેણે શુદ્ધ દ્રવ્યના નિરૂપણમાં બુદ્ધિને સ્થાપી—લગાડી છે અને જે તત્ત્વને અનુભવે છે, તે પુરુષને એક દ્રવ્યની અંદર કોઈ પણ અન્ય દ્રવ્ય રહેલું બિલકુલ (કદાપિ) ભાસતું નથી. જ્ઞાન જ્ઞેયને જાણે છે તે તો આ જ્ઞાનના શુદ્ધ સ્વભાવનો ઉદય છે. આમ છે તો પછી અન્ય દ્રવ્યના સ્પર્શથી (અર્થાત્ પરદ્રવ્યને જાણતાં પોતે પરદ્રવ્યમય—અશુદ્ધ—થઈ જાય છે એવું માનવાથી) જેમની બુદ્ધિ આકુળ છે એવા પુરુષો તત્ત્વથી (શુદ્ધ સ્વરૂપથી) શા માટે ચ્યુત થાય છે?

ભાવાર્થ:—શુદ્ધનયની દૃષ્ટિથી તત્ત્વનું સ્વરૂપ વિચારતાં અન્ય દ્રવ્યનો અન્ય દ્રવ્યમાં પ્રવેશ દેખાતો નથી. જ્ઞાનમાં અન્ય દ્રવ્યો પ્રતિભાસે છે તે તો આ જ્ઞાનની સ્વચ્છતાનો સ્વભાવ છે; કાંઈ જ્ઞાન તેમને સ્પર્શતું નથી કે તેઓ જ્ઞાનને સ્પર્શતાં નથી. આમ હોવા છતાં, જ્ઞાનમાં અન્ય દ્રવ્યોનો પ્રતિભાસ દેખીને આ લોકો 'જ્ઞાન પરદ્રવ્યમય થઈ જાય છે' એવું માનતા થકા જ્ઞાનસ્વરૂપથી ચ્યુત થાય છે, તે તેમનું અજ્ઞાન છે. તેમના પર કરુણા કરીને આચાર્યદેવ કહે છે કે—આ લોકો તત્ત્વથી કાં ચ્યુત થાય છે?

ફરી આ જ અર્થને દૃઢ કરે છે:—

(મંદાક્રાંતા)

शुद्धद्रव्यस्वरसभवनात्किं स्वभावस्य शेष-
मन्यद्द्रव्यं भवति यदि वा तस्य किं स्यात्स्वभावः ।
ज्योत्स्नारूपं स्नपयति भुवं नैव तस्यास्ति भूमि-
र्ज्ञानं ज्ञेयं कलयति सदा ज्ञेयमस्यास्ति नैव ॥ २१६ ॥

અર્થ:—શુદ્ધ દ્રવ્યનું (આત્મા આદિ દ્રવ્યનું) નિજરસરૂપે (અર્થાત્ જ્ઞાન આદિ સ્વભાવે) પરિણમન થતું હોવાથી, બાકીનું કોઈ અન્યદ્રવ્ય શું તે (જ્ઞાનાદિ) સ્વભાવનું થઈ શકે? (ન જ થઈ શકે.) અથવા શું તે (જ્ઞાનાદિ સ્વભાવ) કોઈ અન્યદ્રવ્યનો થઈ શકે? (ન જ થઈ શકે. પરમાર્થે એક દ્રવ્યને અન્ય દ્રવ્ય સાથે સંબંધ નથી.) ચાંદનીનું રૂપ પૃથ્વીને ઉજ્જવળ કરે છે તોપણ પૃથ્વી ચાંદનીની થતી જ નથી; તેવી રીતે જ્ઞાન જ્ઞેયને સદા જાણે છે તોપણ જ્ઞેય જ્ઞાનનું થતું જ નથી.

ભાવાર્થઃ—શુદ્ધનયની દૃષ્ટિથી જોવામાં આવે તો કોઈ દ્રવ્યનો સ્વભાવ અન્ય દ્રવ્યરૂપે થતો નથી. જેમ ચાંદની પૃથ્વીને ઉજ્જ્વળ કરે છે પરંતુ પૃથ્વી ચાંદની જરા પણ થતી નથી, તેમ જ્ઞાન જ્ઞેયને જાણે છે પરંતુ જ્ઞેય જ્ઞાનનું જરા પણ થ નથી. આત્માનો જ્ઞાનસ્વભાવ હોવાથી તેની સ્વચ્છતામાં જ્ઞેય સ્વયમેવ ઝળકે છે, પ જ્ઞાનમાં તે જ્ઞેયોનો પ્રવેશ નથી.

હવે આગળની ગાથાઓની સૂચનારૂપ કાવ્ય કહે છેઃ—

(મંદાક્રાંતા)

रागद्वेषद्वयमुदयते तावदेतन्न यावत्
ज्ञानं ज्ञानं भवति न पुनर्बोध्यतां याति बोध्यम् ।
ज्ञानं ज्ञानं भवतु तदिदं न्यक्कृताज्ञानभावं
भावाभावौ भवति तिरयन् येन पूर्णस्वभावः ॥ २१७ ॥

અર્થઃ—ત્યાંસુધી રાગ-દ્વેષનું દ્વંદ્વ ઉદય પામે છે (ઉત્પન્ન થાય છે) કે જ્યાં સુધી આ જ્ઞાન જ્ઞાનરૂપ ન થાય અને જ્ઞેય જ્ઞેયપણાને ન પામે. માટે આ જ્ઞાન અજ્ઞાનભાવને દૂર કરીને, જ્ઞાનરૂપ થાઓ—કે જેથી ભાવ-અભાવને (રાગ-દ્વેષને) અટકાવી દેતો પૂર્ણસ્વભાવ (પ્રગટ) થાય.

ભાવાર્થઃ—જ્યાંસુધી જ્ઞાન જ્ઞાનરૂપ ન થાય, જ્ઞેય જ્ઞેયરૂપ ન થાય, ત્યાંસુધી રાગદ્વેષ ઉપજે છે; માટે આ જ્ઞાન, અજ્ઞાનભાવને દૂર કરીને, જ્ઞાનરૂપ થાઓ, કે જેથી જ્ઞાનમાં જે ભાવ અને અભાવરૂપ બે અવસ્થાઓ થાય છે તે મટી જાય અને જ્ઞાન પૂર્ણસ્વભાવને પામી જાય. એ પ્રાર્થના છે. ૩૫૬—૩૬૫.

'જ્ઞાન અને જ્ઞેય તદ્દન ભિન્ન છે, આત્માના દર્શનજ્ઞાનચારિત્રાદિ કોઈ ગુણો પરદ્રવ્યોમાં નથી' એમ જાણતો હોવાથી સમ્યગ્દૃષ્ટિને વિષયો પ્રત્યે રાગ થતો નથી; વળી રાગદ્વેષાદિ જડ વિષયોમાં પણ નથી; તેઓ માત્ર અજ્ઞાનદશામાં વર્તતા જીવનાં પરિણામ છે.—આવા અર્થની ગાથાઓ હવે કહે છેઃ—

दंसणणाणचरित्तं किंचि वि णत्थि दु अचेयणे विसये ।
तह्मा किं घादयदे चेदयिदा तेसु विसएसु ॥ ३६६ ॥

ચારિત્ર-દર્શન-જ્ઞાન જરીયે નહિ અચેતન વિષયમાં,
તે કારણે આ આતમા શું હણી શકે તે વિષયમાં? ૩૬૬.

दंसणणाणचरित्तं किंचि वि णत्थि दु अचेयणे कम्मे ।
तम्हा किं घादयदे चेदयिदा तम्हि कम्मम्मि ॥ ३६७ ॥
दंसणणाणचरित्तं किंचि वि णत्थि दु अचेयणे काये ।
तम्हा किं घादयदे चेदयिदा तेसु कायेसु ॥ ३६८ ॥
णाणस्स दंसणस्स य भणिओ घाओ तहा चरित्तस्स ।
ण वि तहिं पुग्गलदव्वस्स को वि घाओ उ णिद्दिट्ठो ॥ ३६९ ॥
जीवस्स जे गुणा केइ णत्थि खलु ते परेसु दव्वेसु ।
तम्हा सम्माइट्ठिस्स णत्थि रागो उ विसएसु ॥ ३७० ॥
रागो दोसो मोहो जीवस्सेव य अणण्णपरिणामा ।
एएण कारणेण उ सद्दादिसु णत्थि रागादि ॥ ३७१ ॥

दर्शनज्ञानचारित्रं किंचिदपि नास्ति त्वचेतने विषये ।
तस्मात्किं हंति चेतयिता तेषु विषयेषु ॥ ३६६ ॥
दर्शनज्ञानचारित्रं किंचिदपि नास्ति त्वचेतने कर्मणि ।
तस्मात्किं हंति चेतयिता तत्र कर्मणि ॥ ३६७ ॥

ચારિત્ર-દર્શન-જ્ઞાન જરીયે નહિ અચેતન કર્મમાં,
તે કારણે આ આતમા શું હણી શકે તે કર્મમાં? ૩૬૭.
ચારિત્ર-દર્શન-જ્ઞાન જરીયે નહિ અચેતન કાયમાં,
તે કારણે આ આતમા શું હણી શકે તે કાયમાં? ૩૬૮.
છે જ્ઞાનનો, દર્શન તણો, ઉપઘાત ભાખ્યો ચરિતનો,
ત્યાં કાંઈ પણ ભાખ્યો નથી ઉપઘાત પુદ્ગલદ્રવ્યનો. ૩૬૯.
જે ગુણ જીવ તણા, ખરે તે કોઈ નહિ પરદ્રવ્યમાં,
તે કારણે વિષયો પ્રતિ સુદૃષ્ટિ જીવને રાગ ના. ૩૭૦.
વળી રાગ, દ્વેષ, વિમોહ તો જીવનાં અનન્ય પરિણામ છે,
તે કારણે શબ્દાદિ વિષયોમાં નહિ રાગાદિ છે. ૩૭૧.

दर्शनज्ञानचारित्रं किंचिदपि नास्ति त्वचेतने काये ।
तस्मात्किं हंति चेतयिता तेषु कायेषु ॥ ३६८ ॥
ज्ञानस्य दर्शनस्य च भणितो घातस्तथा चारित्रस्य ।
नापि तत्र पुद्गलद्रव्यस्य कोऽपि घातस्तु निर्दिष्टः ॥ ३६९ ॥
जीवस्य ये गुणाः केचिन्न संति खलु ते परेषु द्रव्येषु ।
तस्मात्सम्यग्दृष्टेर्नास्ति रागस्तु विषयेषु ॥ ३७० ॥
रागो द्वेषो मोहो जीवस्यैव चानन्यपरिणामाः ।
एतेन कारणेन तु शब्दादिषु न संति रागादयः ॥ ३७१ ॥

અન્વયાર્થ:—[दर्शनज्ञानचारित्रं] દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર [अचेतने विषये] અચેતન વિષયમાં [किंचित् अपि] જરા પણ [न अस्ति] નથી, [तस्मात्] તે [चेतयिता] આત્મા [तेषु विषयेषु] તે વિષયોમાં [किं हंति] શું હણે (અ શાનો ઘાત કરી શકે)?

[दर्शनज्ञानचारित्रं] દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર [अचेतने कर्मणि तु] અચે કર્મમાં [किंचित् अपि] જરા પણ [न अस्ति] નથી, [तस्मात्] તેથી [चेतयिता] આત્મા [तत्र कर्मणि] તે કર્મમાં [किं हंति] શું હણે? (કાંઈ હણી શકતો નથી.

[दर्शनज्ञानचारित्रं] દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર [अचेतने काये तु] અચેતન કાયા [किंचित् अपि] જરા પણ [न अस्ति] નથી, [तस्मात्] તેથી [चेतयिता] આત્મ [तेषु कायेषु] તે કાયાઓમાં [किं हंति] શું હણે? (કાંઈ હણી શકતો નથી.)

[ज्ञानस्य] જ્ઞાનનો, [दर्शनस्य च] દર્શનનો [तथा चारित्रस्य] તથ ચારિત્રનો [घातः भणितः] ઘાત કહ્યો છે, [तत्र] ત્યાં [पुद्गलद्रव्यस्य] પુદ્ગલદ્રવ્યનો [घातः तु] ઘાત [कः अपि] જરા પણ [न अपि निर्दिष्टः] કહ્યો નથી. (દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર હણાતાં પુદ્ગલદ્રવ્ય હણાતું નથી.)

(આ રીતે) [ये केचित्] જે કોઈ [जीवस्य गुणाः] જીવના ગુણો છે, [ते खलु] તે ખરેખર [परेषु द्रव्येषु] પર દ્રવ્યોમાં [न संति] નથી; [तस्मात्] તેથી [सम्यग्दृष्टेः] સમ્યગ્દૃષ્ટિને [विषयेषु] વિષયો પ્રત્યે [रागः तु] રાગ [न अस्ति] નથી.

[च] વળી [रागः द्वेषः मोहः] રાગ, દ્વેષ અને મોહ [जीवस्य एव] જીવનાં જ [अनन्यपरिणामाः] અનન્ય (એકરૂપ) પરિણામ છે, [एतेन कारणेन तु] તે કારણે [रागादयः] રાગાદિક [शब्दादिषु] શબ્દાદિ વિષયોમાં (પણ) [न संति] નથી.

(રાગદ્વેષાદિ સમ્યગ્દષ્ટિ આત્મામાં નથી તેમ જ જડ વિષયોમાં નથી, માત્ર અજ્ઞાનદશામાં રહેલા જીવનાં પરિણામ છે.)

ટીકાઃ—ખરેખર જે જેમાં હોય તે તેનો ઘાત થતાં હણાય જ છે (અર્થાત્ આધારનો ઘાત થતાં આધેયનો ઘાત થાય જ છે), જેમ દીવાનો ઘાત થતાં (દીવામાં રહેલો) પ્રકાશ હણાય છે; તથા જેમાં જે હોય તે તેનો ઘાત થતાં હણાય જ છે (અર્થાત્ આધેયનો ઘાત થતાં આધારનો ઘાત થાય જ છે), જેમ પ્રકાશનો ઘાત થતાં દીવો હણાય છે. વળી જે જેમાં ન હોય તે તેનો ઘાત થતાં હણાતું નથી, જેમ ઘડાનો ઘાત થતાં *ઘટ-પ્રદીપ હણાતો નથી; તથા જેમાં જે ન હોય તે તેનો ઘાત થતાં હણાતું નથી, જેમ ઘટ-પ્રદીપનો ઘાત થતાં ઘટ હણાતો નથી. (એ પ્રમાણે ન્યાય કહ્યો.) હવે, આત્માના ધર્મો—દર્શન, જ્ઞાન અને ચારિત્ર—પુદ્ગલદ્રવ્યનો ઘાત થવા છતાં હણાતાં નથી અને દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રનો ઘાત થવા છતાં પુદ્ગલદ્રવ્ય હણાતું નથી (એ તો સ્પષ્ટ છે); માટે એ રીતે 'દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર પુદ્ગલદ્રવ્યમાં નથી' એમ ફલિત (સિદ્ધ) થાય છે; કારણ કે, જો એમ ન હોય તો દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રનો ઘાત થતાં પુદ્ગલદ્રવ્યનો ઘાત, અને પુદ્ગલદ્રવ્યનો ઘાત થતાં દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રનો ઘાત અનિવાર્ય થાય (અર્થાત્ અવશ્ય થવો જોઈએ). આમ છે તેથી જે કોઈ જેટલા જીવના ગુણો છે તે બધાય પરદ્રવ્યોમાં નથી એમ અમે સમ્યક્ પ્રકારે દેખીએ છીએ (-જાણીએ છીએ); કારણ કે, જો એમ ન હોય તો, અહીં પણ જીવના ગુણોનો ઘાત થતાં પુદ્ગલદ્રવ્યનો ઘાત, અને પુદ્ગલદ્રવ્યનો ઘાત થતાં જીવના ગુણોનો ઘાત અનિવાર્ય થાય. (આ રીતે સિદ્ધ થયું કે જીવના કોઈ ગુણો પુદ્ગલદ્રવ્યમાં નથી.)

(પ્રશ્નઃ-) જો આમ છે તો સમ્યગ્દષ્ટિને વિષયોમાં રાગ કયા કારણે થાય છે? (ઉત્તરઃ-) કોઈ પણ કારણે થતો નથી. (પ્રશ્નઃ-) તો પછી રાગની કઈ ખાણ છે? (ઉત્તરઃ-) રાગ-દ્વેષ-મોહાદિ, જીવનાં જ અજ્ઞાનમય પરિણામ છે (અર્થાત્ જીવનું અજ્ઞાન જ રાગાદિક ઉપજવાની ખાણ છે); માટે તે રાગદ્વેષમોહાદિક, વિષયોમાં નથી કારણ કે વિષયો પરદ્રવ્ય છે, અને સમ્યગ્દષ્ટિમાં (પણ) નથી કારણ કે તેને અજ્ઞાનનો અભાવ છે; આ રીતે રાગદ્વેષમોહાદિક, વિષયોમાં નહિ હોવાથી અને સમ્યગ્દષ્ટિને (પણ) નહિ હોવાથી, (તેઓ) છે જ નહિ.

ભાવાર્થઃ—આત્માને અજ્ઞાનમય પરિણામરૂપ રાગદ્વેષમોહાદિ ઉત્પન્ન થતાં આત્માના દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રાદિ ગુણો હણાય છે, પરંતુ તે ગુણો હણાતાં છતાં અચેતન પુદ્ગલદ્રવ્ય હણાતું નથી; વળી પુદ્ગલદ્રવ્ય હણાતાં દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રાદિ હણાતાં નથી; માટે જીવના કોઈ ગુણો પુદ્ગલદ્રવ્યમાં નથી. આવું જાણતા સમ્યગ્દષ્ટિને અચેતન

* ઘટ-પ્રદીપ = ઘડામાં મૂકેલો દીવો. (પરમાર્થે દીવો ઘડામાં નથી, ઘડામાં તો ઘડાના જ ગુણો છે.)

વિષયોમાં રાગાદિ થતા નથી. રાગદ્વેષમોહાદિક પુદ્ગલદ્રવ્યમાં નથી, જીવના જ ત્વમાં અજ્ઞાનથી ઉપજે છે; જ્યારે અજ્ઞાનનો અભાવ થાય અર્થાત્ સમ્યગ્દૃ ત્યારે તેઓ ઉપજતા નથી. આ રીતે રાગદ્વેષમોહાદિ પુદ્ગલમાં નથી તેમ જ સમ્ય પણ નથી, તેથી શુદ્ધદ્રવ્યદૃષ્ટિથી જોતાં તેઓ છે જ નહિ. પર્યાયદૃષ્ટિથી જોતાં અજ્ઞાન અવસ્થામાં તેઓ છે. એ પ્રમાણે જાણવું.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છેઃ—

(મંદાક્રાંતા)

रागद्वेषाविह हि भवति ज्ञानमज्ञानभावात्
तौ वस्तुत्वमणिहितदृशा दृश्यमानौ न किंचित् ।
सम्यग्दृष्टिः क्षपयतु ततस्तत्त्वदृष्ट्या स्फुटं तौ
ज्ञानज्योतिर्ज्वलति सहजं येन पूर्णाचलार्चिः ॥ २१८ ॥

અર્થઃ—આ જગતમાં જ્ઞાન જ અજ્ઞાનભાવથી રાગદ્વેષરૂપે પરિણમે વસ્તુત્વમાં મૂકેલી (–સ્થાપેલી, એકાગ્ર કરેલી) દૃષ્ટિ વડે જોતાં (અર્થાત્ દ્રવ્યદૃ જોતાં), તે રાગદ્વેષ કાંઈ જ નથી (–દ્રવ્યરૂપ જુદી વસ્તુ નથી). માટે (આચાર્ય પ્રેરણા કરે છે કે) સમ્યગ્દૃષ્ટિ પુરુષ તત્ત્વદૃષ્ટિ વડે તેમને (રાગદ્વેષને) પ્રગટ રીતે ક્ષ કરો, કે જેથી, પૂર્ણ અને અચળ જેનો પ્રકાશ છે એવી (દેદીપ્યમાન) સહજ જ્ઞાન જ્યોતિ પ્રકાશે.

ભાવાર્થઃ—રાગદ્વેષ કોઈ જુદું દ્રવ્ય નથી, જીવને અજ્ઞાનભાવથી (રાગ દ્વેષરૂપ પરિણામ) થાય છે; માટે સમ્યગ્દૃષ્ટિ થઈને તત્ત્વદૃષ્ટિથી જોવામાં આવે તો તેઓ (રાગદ્વેષ) કાંઈ પણ વસ્તુ નથી એમ દેખાય છે, અને ઘાતિકર્મનો નાશ થઈ કેવળ જ્ઞાન ઉપજે છે.

'અન્ય દ્રવ્ય અન્ય દ્રવ્યને ગુણ ઉપજાવી શકતું નથી' એમ હવેની ગાથામાં કહેશે; તેની સૂચનારૂપ કાવ્ય પ્રથમ કહે છેઃ—

(શાલિની)

रागद्वेषोत्पादकं तत्त्वदृष्ट्या
नान्यद्द्रव्यं वीक्ष्यते किंचनापि ।
सर्वद्रव्योत्पत्तिरन्तश्चकास्ति
व्यक्तात्यन्तं स्वस्वभावेन यस्मात् ॥ २१९ ॥

ઉત્પાદ જોવામાં આવે છે. આમ હોવાથી, માટી પોતાના સ્વભાવને નહિ ઉલ્લંઘ
હોવાને લીધે, કુંભાર ઘડાનો ઉત્પાદક છે જ નહિ; માટી જ, કુંભારના સ્વભાવને ન
સ્પર્શતી થકી, પોતાના સ્વભાવથી કુંભભાવે ઉપજે છે.

એવી રીતે—બધાંય દ્રવ્યો સ્વપરિણામપર્યાયે (અર્થાત્ પોતાના પરિણા
ભાવરૂપે) ઉપજતાં થકાં, નિમિત્તભૂત અન્યદ્રવ્યોના સ્વભાવથી ઉપજે છે કે પોતા
સ્વભાવથી ઉપજે છે? જો નિમિત્તભૂત અન્યદ્રવ્યોના સ્વભાવથી ઉપજતાં હોય તે
નિમિત્તભૂત અન્યદ્રવ્યોના આકારે તેમનાં પરિણામ થવાં જોઈએ. પરંતુ એમ તો થ
નથી, કારણ કે અન્યદ્રવ્યના સ્વભાવે કોઈ દ્રવ્યના પરિણામનો ઉત્પાદ જોવામાં આવ
નથી. જો આમ છે તો સર્વ દ્રવ્યો નિમિત્તભૂત અન્યદ્રવ્યોના સ્વભાવથી ઉપજતાં નથી
પરંતુ પોતાના સ્વભાવથી જ ઉપજે છે કારણ કે (દ્રવ્યના) પોતાના સ્વભાવે દ્રવ્ય
પરિણામનો ઉત્પાદ જોવામાં આવે છે. આમ હોવાથી, સર્વ દ્રવ્યોને, નિમિત્તભૂ
અન્યદ્રવ્યો પોતાનાં (અર્થાત્ સર્વ દ્રવ્યોનાં) પરિણામનાં ઉત્પાદક છે જ નહિ; સર્વ
દ્રવ્યો જ, નિમિત્તભૂત અન્યદ્રવ્યોના સ્વભાવને નહિ સ્પર્શતાં થકાં, પોતાના સ્વભાવથી
પોતાના પરિણામભાવે ઉપજે છે.

માટે (આચાર્યદેવ કહે છે કે) જીવને રાગાદિનું ઉત્પાદક અમે પરદ્રવ્યો
દેખતા (-માનતા, સમજતા) નથી કે જેના પર કોપ કરીએ.

ભાવાર્થ:—આત્માને રાગાદિક ઉપજે છે તે પોતાનાં જ અશુદ્ધ પરિણામ છે
નિશ્ચયનયથી વિચારવામાં આવે તો અન્યદ્રવ્ય રાગાદિકનું ઉપજાવનાર નથી, અન્યદ્રવ્ય
તેમનું નિમિત્તમાત્ર છે; કારણ કે અન્ય દ્રવ્યને અન્ય દ્રવ્ય ગુણપર્યાય ઉપજાવતું નથી
એ નિયમ છે. જેઓ એમ માને છે—એવો એકાંત કરે છે—કે 'પરદ્રવ્ય જ મને રાગાદિ
ઉપજાવે છે,' તેઓ નયવિભાગને સમજ્યા નથી, મિથ્યાદૃષ્ટિ છે. એ રાગાદિક જીવના
સત્ત્વમાં ઉપજે છે, પરદ્રવ્ય તો નિમિત્તમાત્ર છે—એમ માનવું તે સમ્યગ્જ્ઞાન છે. માટે
આચાર્યમહારાજ કહે છે કે—અમે રાગદ્વેષની ઉત્પત્તિમાં અન્ય દ્રવ્ય પર શા માટે કો
કરીએ? રાગદ્વેષનું ઉપજવું તે પોતાનો જ અપરાધ છે.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(માલિની)

यदिह भवति रागद्वेषदोषप्रसूतिः
कतरदपि परेषां दूषणं नास्ति तत्र ।
स्वयमयमपराधी तत्र सर्पत्यबोधो
भवतु विदितमस्तं यात्वबोधोऽस्मि बोधः ॥ २२० ॥

અર્થ:—આ આત્મામાં જે રાગદ્વેષરૂપ દોષોની ઉત્પત્તિ થાય છે ત્યાં પરદ્રવ્યનો કાંઈ પણ દોષ નથી, ત્યાં તો સ્વયં અપરાધી એવું આ અજ્ઞાન જ ફેલાય છે;—એ પ્રમાણે વિદિત થાઓ અને અજ્ઞાન અસ્ત થઈ જાઓ; હું તો જ્ઞાન છું.

ભાવાર્થ:—અજ્ઞાની જીવ રાગદ્વેષની ઉત્પત્તિ પરદ્રવ્યથી થતી માનીને પરદ્રવ્ય ઉપર કોપ કરે છે કે 'આ પરદ્રવ્ય મને રાગદ્વેષ ઉપજાવે છે, તેને દૂર કરું.' એવા અજ્ઞાની જીવને સમજાવવાને આચાર્યદેવ ઉપદેશ કરે છે કે—રાગદ્વેષની ઉત્પત્તિ અજ્ઞાનથી આત્મામાં જ થાય છે અને તે આત્માનાં જ અશુદ્ધ પરિણામ છે. માટે એ અજ્ઞાનને નાશ કરો, સમ્યગ્જ્ઞાન પ્રગટ કરો, આત્મા જ્ઞાનસ્વરૂપ છે એમ અનુભવ કરો; પરદ્રવ્યને રાગદ્વેષનું ઉપજાવનારું માનીને તેના પર કોપ ન કરો.

હવે આ જ અર્થ દૃઢ કરવાને અને આગળના કથનની સૂચના કરવાને કાવ્ય કહે છે:—

(રથોદ્ધતા)

रागजन्मनि निमित्ततां पर-
द्रव्यमेव कलयंति ये तु ते ।
उत्तरंति न हि मोहवाहिनीं
शुद्धबोधविधुरांधबुद्धयः ॥ २२१ ॥

અર્થ:—જેઓ રાગની ઉત્પત્તિમાં પરદ્રવ્યનું જ નિમિત્તપણું (કારણપણું) માને છે, (પોતાનું કાંઈ કારણપણું માનતા નથી,) તેઓ—જેમની બુદ્ધિ શુદ્ધજ્ઞાનથી રહિત અંધ છે એવા (અર્થાત્ જેમની બુદ્ધિ શુદ્ધનયના વિષયભૂત શુદ્ધ આત્મસ્વરૂપના જ્ઞાનથી રહિત અંધ છે એવા)—મોહનદીને ઊતરી શકતા નથી.

ભાવાર્થ:—શુદ્ધનયનો વિષય આત્મા અનંત શક્તિવાળો, ચૈતન્યચમત્કારમાત્ર, નિત્ય, અભેદ, એક છે. તે પોતાના જ અપરાધથી રાગદ્વેષરૂપ પરિણમે છે. એવું નથી કે જેમ નિમિત્તભૂત પરદ્રવ્ય પરિણમાવે તેમ આત્મા પરિણમે છે અને તેમાં આત્માનો કાંઈ પુરુષાર્થ જ નથી. આવું આત્માના સ્વરૂપનું જ્ઞાન જેમને નથી તેઓ એમ માને છે કે પરદ્રવ્ય આત્માને જેમ પરિણમાવે તેમ આત્મા પરિણમે છે. આવું માનનારા મોહરૂપી નદીને ઊતરી શકતા નથી (અથવા મોહની સેનાને હરાવી શકતા નથી); કારણ કે રાગદ્વેષ કરવામાં જો પોતાનો પુરુષાર્થ હોય તો જ તેમને રાગદ્વેષ મટાડવામાં પણ હોય, પરંતુ જો પરના કરાવ્યા જ રાગદ્વેષ થતા હોય તો તેમને રાગદ્વેષ મટતા નથી; પર તો રાગદ્વેષ કરાવ્યા જ કરે, ત્યાં આત્મા તેમને ક્યાંથી મટાડી શકે? માટે

પોતાના કર્તા થાય છે અને પોતાના મરાગ્યા મરે છે—એમ કથંચિત્ માનવું તે સમ્યગ્જ્ઞાન છે. ૩૭૨.

સ્પર્શ, રસ, ગંધ, વર્ણ અને શબ્દાદિરૂપે પરિણમતા પુદ્ગલો આત્માને કાંઈ કહેતાં નથી કે 'તું અમને જાણ,' અને આત્મા પણ પોતાના સ્થાનથી છૂટીને તેમને જાણવા જતો નથી. બન્ને તદ્દન સ્વતંત્રપણે પોતપોતાના સ્વભાવથી જ પરિણમે છે. આમ આત્મા પર પ્રત્યે ઉદાસીન (-સંબંધ વિનાનો, તટસ્થ) છે, તોપણ અજ્ઞાની જીવ સ્પર્શાદિકને સારાં-નરસાં માનીને રાગીદ્વેષી થાય છે તે તેનું અજ્ઞાન છે.—આ અર્થની ગાથાઓ હવે કહે છે:—

णिंदियसंथुयवयणाणि पोग्गला परिणमंति बहुयाणि ।
ताणि सुणिऊण रूसइ तूसइ य पुणो अहं भणिओ ॥ ३७३ ॥
पोग्गलदव्वं सद्दत्तपरिणयं तस्स जइ गुणो अण्णो ।
तह्मा ण तुमं भणिओ किंचिवि किं रूससि अबुद्धो ॥ ३७४ ॥
असुहो सुहो व सद्दो ण तं भणइ सुणसु मंति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं सोयविसयमागयं सद्दं ॥ ३७५ ॥
असुहं सुहं व रूवं ण तं भणइ पिच्छ मंति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं चक्खुविसयमागयं रूवं ॥ ३७६ ॥

રે! પુદ્ગલો બહુવિધ નિંદા-સ્તુતિવચનરૂપ પરિણમે,
તેને સુણી, 'મુજને કહ્યું' ગણી, રોષ તોષ જીવો કરે. ૩૭૩.
પુદ્ગલદરવ શબ્દત્વપરિણત, તેહનો ગુણ અન્ય છે,
તો નવ કહ્યું કંઈ પણ તને, હે અબુધ! રોષ તું ક્યમ કરે? ૩૭૪.
શુભ કે અશુભ જે શબ્દ તે 'તું સુણ મને' ન તને કહે,
ને જીવ પણ ગ્રહવા ન જાયે કર્ણગોચર શબ્દને; ૩૭૫.
શુભ કે અશુભ જે રૂપ તે 'તું જો મને' ન તને કહે,
ને જીવ પણ ગ્રહવા ન જાયે ચક્ષુગોચર રૂપને; ૩૭૬.

अमुहो सुहो व गंधो ण तं भणइ जिग्घ मंति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं घाणविसयमागयं तु गंधं ॥ ३७७ ॥
असुहो सुहो व रसो ण तं भणइ रसय मंति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं रसणविसयमागयं तु रसं ॥ ३७८ ॥
असुहो सुहो व फासो ण तं भणइ फुसगु मंति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं कायविसयमागयं फासं ॥ ३७९ ॥
असुहो सुहो व गुणो ण तं भणइ वुज्झ मंति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं वुद्धिविसयमागयं तु गुणं ॥ ३८० ॥
असुहं सुहं व दव्वं ण तं भणइ वुज्झ मंति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं वुद्धिविसयमागयं दव्वं ॥ ३८१ ॥
एयं तु जाणिऊण उवसमं णेव गच्छई मूढो ।
णिग्गहमणा परस्स य सयं च वुद्धिं सिवमपत्तो ॥ ३८२ ॥

શુભ કે અશુભ જે ગંધ તે 'તું સૂંઘ મુજને' નવ કહે,
ને જીવ પણ ગ્રહવા ન જાયે ઘ્રાણગોચર ગંધને; ૩૭૭.
શુભ કે અશુભ રસ જેહ તે 'તું ચાખ મુજને' નવ કહે,
ને જીવ પણ ગ્રહવા ન જાયે રસનગોચર રસ અરે! ૩૭૮.
શુભ કે અશુભ જે સ્પર્શ તે 'તું સ્પર્શ મુજને' નવ કહે,
ને જીવ પણ ગ્રહવા ન જાયે કાયગોચર સ્પર્શને; ૩૭૯.
શુભ કે અશુભ જે ગુણ તે 'તું જાણ મુજને' નવ કહે,
ને જીવ પણ ગ્રહવા ન જાયે બુદ્ધિગોચર ગુણને; ૩૮૦.
શુભ કે અશુભ જે દ્રવ્ય તે 'તું જાણ મુજને' નવ કહે,
ને જીવ પણ ગ્રહવા ન જાયે બુદ્ધિગોચર દ્રવ્યને. ૩૮૧.
—આ જાણીને પણ મૂઢ જીવ પામે નહિ ઉપશમ અરે!
શિવ બુદ્ધિને પામેલ નહિ એ પર ગ્રહણ કરવા ચહે. ૩૮૨.

निंदितसंस्तुतवचनानि पुद्गलाः परिणमंति बहुकानि ।
तानि श्रुत्वा रुष्यति तुष्यति च पुनरहं भणितः ॥ ३७३ ॥
पुद्गलद्रव्यं शब्दत्वपरिणतं तस्य यदि गुणोऽन्यः ।
तस्मान्न त्वं भणितः किंचिदपि किं रुष्यस्यबुद्धः ॥ ३७४ ॥
अशुभः शुभो वा शब्दो न त्वां भणति शृणु मामिति स एव ।
न चैति विनिर्ग्रहीतुं श्रोत्रविषयमागतं शब्दम् ॥ ३७५ ॥
अशुभं शुभं वा रूपं न त्वां भणति पश्य मामिति स एव ।
न चैति विनिर्ग्रहीतुं चक्षुर्विषयमागतं रूपम् ॥ ३७६ ॥
अशुभः शुभो वा गंधो न त्वां भणति जिघ्र मामिति स एव ।
न चैति विनिर्ग्रहीतुं घ्राणविषयमागतं गंधम् ॥ ३७७ ॥
अशुभः शुभो वा रसो न त्वां भणति रसय मामिति स एव ।
न चैति विनिर्ग्रहीतुं रसनविषयमागतं तु रसम् ॥ ३७८ ॥
अशुभः शुभो वा स्पर्शो न त्वां भणति स्पृश मामिति स एव ।
न चैति विनिर्ग्रहीतुं कायविषयमागतं स्पर्शम् ॥ ३७९ ॥
अशुभः शुभो वा गुणो न त्वां भणति बुध्यस्व मामिति स एव ।
न चैति विनिर्ग्रहीतुं बुद्धिविषयमागतं तु गुणम् ॥ ३८० ॥
अशुभं शुभं वा द्रव्यं न त्वां भणति बुध्यस्व मामिति स एव ।
न चैति विनिर्ग्रहीतुं बुद्धिविषयमागतं द्रव्यम् ॥ ३८१ ॥
एतत्तु ज्ञात्वा उपशमं नैव गच्छति मूढः ।
विनिर्ग्रहमनाः परस्य च स्वयं च बुद्धिं शिवामप्राप्तः ॥ ३८२ ॥

અન્વયાર્થઃ—[बहुकानि] બહુ પ્રકારનાં [निंदितसंस्तुतवचनानि] નિંદા- અને સ્તુતિનાં વચનોરૂપે [पुद्गलाः] પુદ્ગલો [परिणमंति] પરિણમે છે; [तानि श्रु- पुनः] તેમને સાંભળીને અજ્ઞાની જીવ [अहं भणितः] 'મને કહ્યું' એમ માની [रुष्यति तुष्यति च] રોષ તથા તોષ કરે છે (અર્થાત્ ગુસ્સે થાય છે તથા ખુ- થાય છે).

[पुद्गलद्रव्यं] પુદ્ગલદ્રવ્ય [शब्दत्वपरिणतं] શબ્દપણે પરિણમ્યું છે; [त- गुणः] તેનો ગુણ [यदि अन्यः] જો (તારાથી) અન્ય છે, [तस्मात्] તો હે અજ્ઞા-

વ! [त्वं न किंचित् अपि भणितः] તને કાંઈ પણ કહ્યું નથી; [अबुद्धः] તું અજ્ઞાની થયો થકો [किं रुष्यसि] રોષ શા માટે કરે છે?

[अशुभः वा शुभः शब्दः] અશુભ અથવા શુભ શબ્દ [त्वां न भणति] તને એમ નથી કહેતો કે [मां शृणु इति] 'તું મને સાંભળ'; [सः एव च] અને આત્મા પણ (પોતાના સ્થાનથી છૂટીને), [श्रोत्रविषयं आगतं शब्दं] શ્રોત્રેંદ્રિયના વિષયમાં આવેલા શબ્દને [विनिर्ग्रहीतुं न एति] ગ્રહવા (જાણવા) જતો નથી.

[अशुभं वा शुभं रूपं] અશુભ અથવા શુભ રૂપ [त्वां न भणति] તને એમ નથી કહેતું કે [मां पश्य इति] 'તું મને જો'; [सः एव च] અને આત્મા પણ (પોતાના સ્થાનથી છૂટીને), [चक्षुर्विषयं आगतं] ચક્ષુ-ઇંદ્રિયના વિષયમાં આવેલા (અર્થાત્ ચક્ષુગોચર થયેલા) [रूपं] રૂપને [विनिर्ग्रहीतुं न एति] ગ્રહવા જતો નથી.

[अशुभः वा शुभः गंधः] અશુભ અથવા શુભ ગંધ [त्वां न भणति] તને એમ નથી કહેતી કે [मां जिघ्र इति] 'તું મને સૂંઘ'; [सः एव च] અને આત્મા પણ [घ्राणविषयं आगतं गंधं] ઘ્રાણેંદ્રિયના વિષયમાં આવેલી ગંધને [विनिर्ग्रहीतुं न एति] (પોતાના સ્થાનથી ચ્યુત થઈને) ગ્રહવા જતો નથી.

[अशुभः वा शुभः रसः] અશુભ અથવા શુભ રસ [त्वां न भणति] તને એમ નથી કહેતો કે [मां रसय इति] 'તું મને ચાખ'; [सः एव च] અને આત્મા પણ [रसनविषयं आगतं तु रसं] રસના-ઇંદ્રિયના વિષયમાં આવેલા રસને [विनिर्ग्रहीतुं न एति] (પોતાના સ્થાનથી છૂટીને) ગ્રહવા જતો નથી.

[अशुभः वा शुभः स्पर्शः] અશુભ અથવા શુભ સ્પર્શ [त्वां न भणति] તને એમ નથી કહેતો કે [मां स्पृश इति] 'તું મને સ્પર્શ'; [सः एव च] અને આત્મા પણ (પોતાના સ્થાનથી છૂટીને), [कायविषयं आगतं स्पर्शं] કાયાના (-સ્પર્શેન્દ્રિયના) વિષયમાં આવેલા સ્પર્શને [विनिर्ग्रहीतुं न एति] ગ્રહવા જતો નથી.

[अशुभः वा शुभः गुणः] અશુભ અથવા શુભ ગુણ [त्वां न भणति] તને એમ નથી કહેતો કે [मां बुध्यस्व इति] 'તું મને જાણ'; [सः एव च] અને આત્મા પણ (પોતાના સ્થાનથી છૂટીને), [बुद्धिविषयं आगतं तु गुणं] બુદ્ધિના વિષયમાં આવેલા ગુણને [विनिर्ग्रहीतुं न एति] ગ્રહવા જતો નથી.

[अशुभं वा शुभं द्रव्यं] અશુભ અથવા શુભ દ્રવ્ય [त्वां न भणति] તને એમ નથી કહેતું કે [मां बुध्यस्व इति] 'તું મને જાણ'; [सः एव च] અને આત્મા પણ (પોતાના સ્થાનથી છૂટીને), [बुद्धिविषयं आगतं द्रव्यं] બુદ્ધિના વિષયમાં

આવેલા દ્રવ્યને [विनिर्ग्रहीतुं न एति] ગ્રહવા જતો નથી.

[एतद् तु ज्ञात्वा] આવું જાણીને પણ [मूढः] મૂઢ જીવ [उपशमं
गच्छति] ઉપશમને પામતો નથી; [च] અને [शिवां बुद्धि अप्राप्तः च स्वयं
બુદ્ધિને (કલ્યાણકારી બુદ્ધિને, સમ્યગ્જ્ઞાનને) નહિ પામેલો પોતે [...
પરને ગ્રહવાનું મન કરે છે.

ટીકા:—પ્રથમ દૃષ્ટાંત કહે છે: આ જગતમાં બાહ્યપદાર્થ—ઘટપટાદિ—
દેવદત્ત નામનો પુરુષ યજ્ઞદત્ત નામના પુરુષને હાથ પકડીને કોઈ કાર્યમાં જો
દીવાને સ્વપ્રકાશનમાં (અર્થાત્ બાહ્યપદાર્થને પ્રકાશવાના કાર્યમાં) જોડતો નથી
મને પ્રકાશ', અને દીવો પણ લોહચુંબક-પાષાણથી ખેંચાયેલી લોખંડની સ
જેમ પોતાના સ્થાનથી ચ્યુત થઈને તેને (બાહ્યપદાર્થને) પ્રકાશવા જતો નથી;
વસ્તુસ્વભાવ પર વડે ઉત્પન્ન કરી શકાતો નહિ હોવાથી તેમ જ વસ્તુસ્વભાવ
ઉત્પન્ન કરી શકતો નહિ હોવાથી, દીવો જેમ બાહ્યપદાર્થની અસમીપતામાં (પ
સ્વરૂપથી જ પ્રકાશે છે) તેમ બાહ્યપદાર્થની સમીપતામાં પણ પોતાના સ્વરૂપ
પ્રકાશે છે. (એમ) પોતાના સ્વરૂપથી જ પ્રકાશતા એવા તેને (દીવાને), વસ્તુસ્વ
જ વિચિત્ર પરિણતિને પામતો એવો મનોહર કે અમનોહર ઘટપટાદિ બાહ્યપદાર્થ
વિક્રિયા ઉત્પન્ન કરતો નથી.

એવી રીતે હવે દાર્ષ્ટાંત છે: બાહ્યપદાર્થો—શબ્દ, રૂપ, ગંધ, રસ, સ્પર્શ
ગુણ ને દ્રવ્ય—, જેમ દેવદત્ત યજ્ઞદત્તને હાથ પકડીને કોઈ કાર્યમાં જોડે તેમ, આ
સ્વજ્ઞાનમાં (બાહ્યપદાર્થોને જાણવાના કાર્યમાં) જોડતા નથી કે 'તું મને સાંભળ
મને જો, તું મને સૂંઘ, તું મને ચાખ, તું મને સ્પર્શ, તું મને જાણ', અને આ
પણ લોહચુંબક-પાષાણથી ખેંચાયેલી લોખંડની સોયની જેમ પોતાના સ્થાનથી
થઈને તેમને (બાહ્યપદાર્થોને) જાણવા જતો નથી; પરંતુ, વસ્તુસ્વભાવ પર વડે ઉ
કરી શકાતો નહિ હોવાથી તેમ જ વસ્તુસ્વભાવ પરને ઉત્પન્ન કરી શકતો નહિ હોવ
આત્મા જેમ બાહ્યપદાર્થોની અસમીપતામાં (પોતાના સ્વરૂપથી જ જાણે છે)
બાહ્યપદાર્થોની સમીપતામાં પણ પોતાના સ્વરૂપથી જ જાણે છે. (એમ) પોત
સ્વરૂપથી જ જાણતા એવા તેને (આત્માને), વસ્તુસ્વભાવથી જ વિચિત્ર પરિણ
પામતા એવા મનોહર કે અમનોહર શબ્દાદિ બાહ્યપદાર્થો જરાય વિક્રિયા ઉ
કરતા નથી.

આ રીતે આત્મા દીવાની જેમ પર પ્રત્યે સદાય ઉદાસીન છે (અર્થાત્ સં
વગરનો, તટસ્થ છે)—એવી વસ્તુસ્થિતિ છે, તોપણ જે રાગદ્વેષ થાય છે તે અજ્ઞાન

ભાવાર્થ:—શબ્દાદિક જડ પુદ્ગલદ્રવ્યના ગુણો છે. તેઓ આત્માને

કહેતા નથી, કે 'તું અમને ગ્રહણ કર (અર્થાત્ તું અમને જાણ);' અને આત્મા પણ પોતાના સ્થાનથી ચ્યુત થઈને તેમને ગ્રહવા (-જાણવા) તેમના પ્રત્યે જતો નથી. જેમ શબ્દાદિક સમીપ ન હોય ત્યારે આત્મા પોતાના સ્વરૂપથી જ જાણે છે, તેમ શબ્દાદિક સમીપ હોય ત્યારે પણ આત્મા પોતાના સ્વરૂપથી જ જાણે છે. આમ પોતાના સ્વરૂપથી જ જાણતા એવા આત્માને પોતપોતાના સ્વભાવથી જ પરિણમતા શબ્દાદિક કિંચિત્માત્ર પણ વિકાર કરતા નથી, જેમ પોતાના સ્વરૂપથી જ પ્રકાશતા એવા દીવાને ઘટપટાદિ પદાર્થો વિકાર કરતા નથી તેમ. આવો વસ્તુસ્વભાવ છે, તોપણ જીવ શબ્દને સાંભળી, રૂપને દેખી, ગંધને સૂંઘી, રસને આસ્વાદી, સ્પર્શને સ્પર્શી, ગુણ-દ્રવ્યને જાણી, તેમને સારાં-નરસાં માની રાગદ્વેષ કરે છે, તે અજ્ઞાન જ છે.

હવે આ જ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છેઃ—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

पूर्णैकाच्युतशुद्धबोधमहिमा बोद्धा न बोध्यादयं
यायात्कामपि विक्रियां तत इतो दीपः प्रकाश्यादिव ।
तद्वस्तुस्थितिबोधवंध्यधिषणा एते किमज्ञानिनो
रागद्वेषमयीभवंति सहजां मुंचंत्युदासीनताम् ॥ २२२ ॥

અર્થઃ—પૂર્ણ, એક, અચ્યુત અને શુદ્ધ (-વિકાર રહિત) એવું જ્ઞાન જેને મહિમા છે એવો આ જ્ઞાયક આત્મા જ્ઞેય પદાર્થોથી જરા પણ વિક્રિયા પામતો નથી જેમ દીવો પ્રકાશ્ય પદાર્થોથી (-પ્રકાશાવાયોગ્ય ઘટપટાદિ પદાર્થોથી) વિક્રિયા પામતો નથી તેમ. તો પછી એવી વસ્તુસ્થિતિના જ્ઞાનથી રહિત જેમની બુદ્ધિ છે એવા અ અજ્ઞાની જીવો પોતાની સહજ ઉદાસીનતાને કેમ છોડે છે અને રાગદ્વેષમય કેમ થા છે? (એમ આચાર્યદેવે શોચ કર્યો છે).

ભાવાર્થઃ—જ્ઞાનનો સ્વભાવ જ્ઞેયને જાણવાનો જ છે, જેમ દીપકનો સ્વભા ઘટપટાદિને પ્રકાશવાનો છે. એવો વસ્તુસ્વભાવ છે. જ્ઞેયને જાણવામાત્રથી જ્ઞાનમાં વિ થતો નથી. જ્ઞેયોને જાણી, તેમને સારાં-નરસાં માની, આત્મા રાગીદ્વેષી—વિકારી થ છે તે અજ્ઞાન છે. માટે આચાર્યદેવે શોચ કર્યો છે કે—'વસ્તુનો સ્વભાવ તો આ છે, છતાં આ આત્મા અજ્ઞાની થઈને રાગદ્વેષરૂપે કેમ પરિણમે છે? પોતાની સ્વાભા ઉદાસીન-અવસ્થારૂપ કેમ રહેતો નથી?' આ પ્રમાણે આચાર્યદેવે જે શોચ કર્યો તે યુક્ત છે, કારણ કે જ્યાંસુધી શુભ રાગ છે ત્યાંસુધી પ્રાણીઓને અજ્ઞાનથી દુ દેખી કરુણા ઉપજે છે અને તેથી શોચ થાય છે.

હવે આગળના કથનની સૂચનારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

रागद्वेषविभावमुक्तमहसो नित्यं स्वभावस्पृशः
पूर्वागामिसमस्तकर्मविकला भिन्नास्तदात्वोदयात् ।
दूरारूढचरित्रवैभवबलाच्चञ्चच्चिदर्चिर्मयीं
विन्दन्ति स्वरसाभिषिक्तभुवनां ज्ञानस्य संचेतनाम् ॥ २२३ ॥

અર્થ:—જેમનું તેજ રાગદ્વેષરૂપ વિભાવથી રહિત છે, જેઓ સદા (પોતા
ચૈતન્યચમત્કારમાત્ર) સ્વભાવને સ્પર્શનારા છે, જેઓ ભૂત કાળનાં તેમ જ ભવિ
કાળનાં સમસ્ત કર્મથી રહિત છે અને જેઓ વર્તમાન કાળના કર્મોદયથી ભિન્ન છે
તેઓ (–એવા જ્ઞાનીઓ–) અતિ પ્રબળ ચારિત્રના વૈભવના બળથી જ્ઞાનની સંચેતના
અનુભવે છે—કે જે જ્ઞાન-ચેતના ચમકતી ચૈતન્યજ્યોતિમય છે અને જેણે નિજ રસથી
(પોતાના જ્ઞાનરૂપ રસથી) સમસ્ત લોકને સિંચ્યો છે.

ભાવાર્થ:—જેમને રાગદ્વેષ ગયા, પોતાના ચૈતન્યસ્વભાવનો અંગીકાર થ
અને અતીત, અનાગત તથા વર્તમાન કર્મનું મમત્વ ગયું એવા જ્ઞાનીઓ સર્વ પર
દ્રવ્યથી જુદા થઈને ચારિત્ર અંગીકાર કરે છે. તે ચારિત્રના બળથી, કર્મચેતના અને
કર્મફળચેતનાથી જુદી જે પોતાની ચૈતન્યના પરિણમનસ્વરૂપ જ્ઞાનચેતના તેનું અનુ
ભવન કરે છે.

અહીં તાત્પર્ય આમ જાણવું:—જીવ પહેલાં તો કર્મચેતના અને કર્મફળ
ચેતનાથી ભિન્ન પોતાની જ્ઞાનચેતનાનું સ્વરૂપ આગમ-પ્રમાણ, અનુમાન-પ્રમાણ અ
સ્વસંવેદનપ્રમાણથી જાણે છે અને તેનું શ્રદ્ધાન (પ્રતીતિ) દૃઢ કરે છે; એ તો અવિરત
દેશવિરત અને પ્રમત્ત અવસ્થામાં પણ થાય છે. અને જ્યારે અપ્રમત્ત અવસ્થા થાય
છે ત્યારે જીવ પોતાના સ્વરૂપનું જ ધ્યાન કરે છે; તે વખતે, જે જ્ઞાનચેતનાનું તેણે
પ્રથમ શ્રદ્ધાન કર્યું હતું તેમાં તે લીન થાય છે અને શ્રેણિ ચડી, કેવળજ્ઞાન ઉપજાવી
સાક્ષાત્ *જ્ઞાનચેતનારૂપ થાય છે. ૩૭૩—૩૮૨.

* કેવળજ્ઞાની જીવને સાક્ષાત્ જ્ઞાનચેતના હોય છે. કેવળજ્ઞાન થયા પહેલાં પણ, નિર્વિક
અનુભવ વખતે જીવને ઉપયોગાત્મક જ્ઞાનચેતના હોય છે. જ્ઞાનચેતનાના ઉપયોગાત્મકપણાને મુખ્ય
ન કરીએ તો, સમ્યગ્દષ્ટિને જ્ઞાનચેતના નિરંતર હોય છે, કર્મચેતના અને કર્મફળચેતના નથી
હોતી; કારણ કે તેને નિરંતર જ્ઞાનના સ્વામિત્વભાવે પરિણમન હોય છે, કર્મના અને કર્મફળના
સ્વામિત્વભાવે પરિણમન નથી હોતું.

અતીત કર્મ પ્રત્યે મમત્વ છોડે તે આત્મા પ્રતિક્રમણ છે, અનાગત કર્મ ન કરવાની પ્રતિજ્ઞા કરે (અર્થાત્ જે ભાવોથી આગામી કર્મ બંધાય તે ભાવોનું મમત્વ છોડે) તે આત્મા પ્રત્યાખ્યાન છે અને ઉદયમાં આવેલા વર્તમાન કર્મનું મમત્વ છોડે તે આત્મા આલોચના છે; સદાય આવાં પ્રતિક્રમણ, પ્રત્યાખ્યાન અને આલોચનાપૂર્વક વર્તતો આત્મા ચારિત્ર છે.—આવું ચારિત્રનું વિધાન હવેની ગાથાઓમાં કહે છે:—

कम्मं जं पुव्वकयं सुहासुहमणेयवित्थरविसेसं ।
तत्तो णियत्तए अप्पयं तु जो सो पडिकमणं ॥ ३८३ ॥
कम्मं जं सुहमसुहं जह्मि य भावह्मि वज्झइ भविस्सं ।
तत्तो णियत्तए जो सो पच्चक्खाणं हवइ चेया ॥ ३८४ ॥
जं सुहमसुहमुदिण्णं संपदि य अणेयवित्थरविसेसं ।
तं दोसं जो चेयइ सो खलु आलोयणं चेया ॥ ३८५ ॥
णिच्चं पच्चक्खाणं कुव्वइ णिच्चं पडिकमदि यो य ।
णिच्चं आलोचेयइ सो हु चरित्तं हवइ चेया ॥ ३८६ ॥

कर्म यत्पूर्वकृतं शुभाशुभमनेकविस्तरविशेषम् ।
तस्मान्निवर्तयत्यात्मानं तु यः स प्रतिक्रमणम् ॥ ३८३ ॥
कर्म यच्छुभमशुभं यस्मिंश्च भावे बध्यते भविष्यत् ।
तस्मान्निवर्तते यः स प्रत्याख्यानं भवति चेतयिता ॥ ३८४ ॥

શુભ ને અશુભ અનેકવિધ પૂર્વે કરેલું કર્મ જે,
તેથી નિવર્તે આત્મને, તે આતમા પ્રતિક્રમણ છે; ૩૮૩.
શુભ ને અશુભ ભાવિ કરમ જે ભાવમાં બંધાય છે,
તેથી નિવર્તન જે કરે, તે આતમા પચ્ચખાણ છે; ૩૮૪.
શુભ ને અશુભ અનેકવિધ છે વર્તમાને ઉદિત જે,
તે દોષને જે ચેતતો, તે જીવ આલોચન ખરે. ૩૮૫.
પચ્ચખાણ નિત્ય કરે અને પ્રતિક્રમણ જે નિત્યે કરે,
નિત્યે કરે આલોચના, તે આતમા ચારિત્ર છે. ૩૮૬.

यच्छुभमशुभमुदीर्णं संप्रति चानेकविस्तरविशेषम् ।
तं दोषं यः चेतयते स खल्वालोचनं चेतयिता ॥ ३८५ ॥
नित्यं प्रत्याख्यानं करोति नित्यं प्रतिक्रामति यश्च ।
नित्यमालोचयति स खलु चरित्रं भवति चेतयिता ॥ ३८६ ॥

અન્વયાર્થઃ—[पूर्वकृतं] પૂર્વે કરેલું [यद्] જે [अनेकविस्तरविशेषं] અનેક પ્રકારના વિસ્તારવાળું [शुभाशुभं कर्म] (જ્ઞાનાવરણીયાદિ) શુભાશુભ કર્મ [तस्मात्] તેનાથી [यः] જે આત્મા [आत्मानं तु] પોતાને [निवर्तयति] *નિવર્તાવે છે, [सः] તે આત્મા [प्रतिक्रमणं] પ્રતિક્રમણ છે.

[भविष्यत्] ભવિષ્ય કાળનું [यद्] જે [शुभं अशुभं कर्म] શુભ-અશુભ કર્મ [यस्मिन् भावे च] તે જે ભાવમાં [बध्यते] બંધાય છે [तस्मात्] તે ભાવથી [यः] જે આત્મા [निवर्तते] નિવર્તે છે, [सः चेतयिता] તે આત્મા [प्रत्याख्यानं भवति] પ્રત્યાખ્યાન છે.

[संप्रति च] વર્તમાન કાળે [उदीर्णं] ઉદયમાં આવેલું [यद्] જે [अनेकविस्तरविशेषं] અનેક પ્રકારના વિસ્તારવાળું [शुभं अशुभं] શુભ-અશુભ કર્મ [तं दोषं] તે દોષને [यः] જે આત્મા [चेतयते] ચેતે છે—અનુભવે છે—જ્ઞાતાભાવે જાણી લે છે (અર્થાત્ તેનું સ્વામિત્વ—કર્તાપણું છોડે છે), [सः चेतयिता] તે આત્મા [खलु] ખરેખર [आलोचनं] આલોચના છે.

[यः] જે [नित्यं] સદા [प्रत्याख्यानं करोति] પ્રત્યાખ્યાન કરે છે, [नित्यं प्रतिक्रामति च] સદા પ્રતિક્રમણ કરે છે [नित्यं आलोचयति] અને સદા આલોચના કરે છે, [सः चेतयिता] તે આત્મા [खलु] ખરેખર [चरित्रं भवति] ચારિત્ર છે.

ટીકાઃ—જે આત્મા પુદ્ગલકર્મના વિપાકથી (ઉદયથી) થતા ભાવોથી પોતાને નિવર્તાવે છે, તે આત્મા તે ભાવોના કારણભૂત પૂર્વકર્મને (ભૂતકાળના કર્મને) પ્રતિક્રમતો થકો પોતે જ પ્રતિક્રમણ છે; તે જ આત્મા, તે ભાવોના કાર્યભૂત ઉત્તરકર્મને (ભવિષ્ય કાળના કર્મને) પચખતો થકો, પ્રત્યાખ્યાન છે; તે જ આત્મા, વર્તમાન કર્મવિપાકને પોતાથી (આત્માથી) અત્યંત ભેદપૂર્વક અનુભવતો થકો, આલોચના છે. એ રીતે તે આત્મા સદા પ્રતિક્રમતો (અર્થાત્ પ્રતિક્રમણ કરતો) થકો, સદા પચખતો (અર્થાત્ પ્રત્યાખ્યાન કરતો) થકો અને સદા આલોચતો (અર્થાત્ આલોચના કરતો) થકો, પૂર્વકર્મના કાર્યરૂપ અને ઉત્તરકર્મના કારણરૂપ ભાવોથી અત્યંત નિવૃત્ત થયો થકો, વર્તમાન કર્મવિપાકને પોતાથી (આત્માથી) અત્યંત ભેદપૂર્વક અનુભવતો થકો,

* નિવર્તવું = પાછા વળવું; અટકવું; દૂર રહેવું.

ોતામાં જ—જ્ઞાનસ્વભાવમાં જ—નિરંતર ચરતો (વિચરતો, આચરણ કરતો) હોવાથી ચારિત્ર છે (અર્થાત્ પોતે જ ચારિત્રસ્વરૂપ છે). અને ચારિત્રસ્વરૂપ વર્તતો થકો ોતાને -જ્ઞાનમાત્રને- ચેતતો (અનુભવતો) હોવાથી (તે આત્મા) પોતે જ જ્ઞાનચેતના ે, એવો ભાવ (આશય) છે.

ભાવાર્થ:—ચારિત્રમાં પ્રતિક્રમણ, પ્રત્યાખ્યાન અને આલોચનાનું વિધાન છે. ામાં, પૂર્વે લાગેલા દોષથી આત્માને નિવર્તાવવો તે પ્રતિક્રમણ છે, ભવિષ્યમાં દોષ ાગાડવાનો ત્યાગ કરવો તે પ્રત્યાખ્યાન છે અને વર્તમાન દોષથી આત્માને જુદો કરવો ે આલોચના છે. અહીં તો નિશ્ચયચારિત્રને પ્રધાન કરીને કથન છે; માટે નિશ્ચયથી વિચારતાં તો, જે આત્મા ત્રણે કાળનાં કર્મોથી પોતાને ભિન્ન જાણે છે, શ્રદ્ધે છે અને અનુભવે છે, તે આત્મા પોતે જ પ્રતિક્રમણ છે, પોતે જ પ્રત્યાખ્યાન છે અને પોતે જ આલોચના છે. એમ પ્રતિક્રમણસ્વરૂપ, પ્રત્યાખ્યાનસ્વરૂપ અને આલોચનાસ્વરૂપ આત્માનું નિરંતર અનુભવન તે જ નિશ્ચયચારિત્ર છે. જે આ નિશ્ચયચારિત્ર, તે જ જ્ઞાનચેતના (અર્થાત્ જ્ઞાનનું અનુભવન) છે. તે જ જ્ઞાનચેતનાથી (અર્થાત્ જ્ઞાનના અનુભવનથી) સાક્ષાત્ જ્ઞાનચેતનાસ્વરૂપ કેવળજ્ઞાનમય આત્મા પ્રગટ થાય છે.

હવે આગળની ગાથાઓની સૂચનારૂપ કાવ્ય કહે છે, જેમાં જ્ઞાનચેતનાનું ફળ અને અજ્ઞાનચેતનાનું (અર્થાત્ કર્મચેતનાનું અને કર્મફળચેતનાનું) ફળ પ્રગટ કરે છે:—

(ઉપજાતિ)

ज्ञानस्य संचेतनयैव नित्यं
प्रकाशते ज्ञानमतीव शुद्धम् ।
अज्ञानसंचेतनया तु धावन्
बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि बंधः ॥ २२४ ॥

અર્થ:—નિરંતર જ્ઞાનની સંચેતનાથી જ જ્ઞાન અત્યંત શુદ્ધ પ્રકાશે છે; અને અજ્ઞાનની સંચેતનાથી બંધ દોડતો થકો જ્ઞાનની શુદ્ધતાને રોકે છે—જ્ઞાનની શુદ્ધતા થવા દેતો નથી.

ભાવાર્થ:—કોઈ (વસ્તુ) પ્રત્યે એકાગ્ર થઈને તેનો જ અનુભવરૂપ સ્વાદ લીધા કરવો તે તેનું સંચેતન કહેવાય. જ્ઞાન પ્રત્યે જ એકાગ્ર ઉપયુક્ત થઈને તેના તરફ જ ચેત રાખવી તે જ્ઞાનનું સંચેતન અર્થાત્ જ્ઞાનચેતના છે. તેનાથી જ્ઞાન અત્યંત શુદ્ધ થઈને પ્રકાશે છે અર્થાત્ કેવળજ્ઞાન ઉપજે છે. કેવળજ્ઞાન ઉપજતાં સંપૂર્ણ જ્ઞાનચેતના કહેવાય છે.

હું પરમ નૈષ્કર્મ્યને (-ઉત્કૃષ્ટ નિષ્કર્મ અવસ્થાને) અવલંબું છું.-(એ પ્રમાણે સર્વ કર્મનો ત્યાગ કરનાર જ્ઞાની પ્રતિજ્ઞા કરે છે.)

(હવે ટીકામાં પ્રથમ, પ્રતિક્રમણ-કલ્પ અર્થાત્ પ્રતિક્રમણનો વિધિ કહે છે:-)

(પ્રતિક્રમણ કરનાર કહે છે કે:)

જે મેં (પૂર્વે કર્મ) કર્યું, કરાવ્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું, મનથી, વચનથી તથા કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. (કર્મ કરવું, કરાવવું અને અન્ય કરનારને અનુમોદવું તે સંસારનું બીજ છે એમ જાણીને તે દુષ્કૃત પ્રત્યે હેયબુદ્ધિ આવી ત્યારે જીવે તેના પ્રત્યેનું મમત્વ છોડયું, તે જ તેનું મિથ્યા કરવું છે.) ૧.

જે મેં (પૂર્વે કર્મ) કર્યું, કરાવ્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું, મનથી તથા વચનથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૨. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું, કરાવ્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું, મનથી તથા કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૩. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું, કરાવ્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું, વચનથી તથા કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૪.

જે મેં (પૂર્વે) કર્યું, કરાવ્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું, મનથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૫. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું, કરાવ્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું, વચનથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૬. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું, કરાવ્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું, કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૭.

જે મેં (પૂર્વે) કર્યું અને કરાવ્યું મનથી, વચનથી તથા કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૮. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું મનથી, વચનથી તથા કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૯. જે મેં (પૂર્વે) કરાવ્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું મનથી, વચનથી તથા કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૧૦.

જે મેં (પૂર્વે) કર્યું અને કરાવ્યું મનથી તથા વચનથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૧૧. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું મનથી તથા વચનથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૧૨. જે મેં (પૂર્વે) કરાવ્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું મનથી તથા વચનથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૧૩. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું અને કરાવ્યું મનથી તથા કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૧૪. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન

કર્યું મનથી તથા કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૧૫. જે મેં (પૂર્વે) કરાવ્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું મનથી તથા કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૧૬. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું અને કરાવ્યું વચનથી તથા કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૧૭. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું વચનથી તથા કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૧૮. જે મેં (પૂર્વે) કરાવ્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું વચનથી તથા કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૧૯.

જે મેં (પૂર્વે) કર્યું અને કરાવ્યું મનથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૨૦. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું મનથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૨૧. જે મેં (પૂર્વે) કરાવ્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું મનથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૨૨. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું અને કરાવ્યું વચનથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૨૩. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું વચનથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૨૪. જે મેં (પૂર્વે) કરાવ્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું વચનથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૨૫. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું અને કરાવ્યું કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૨૬. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૨૭. જે મેં (પૂર્વે) કરાવ્યું અને અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૨૮.

જે મેં (પૂર્વે) કર્યું મનથી, વચનથી તથા કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૨૯. જે મેં (પૂર્વે) કરાવ્યું મનથી, વચનથી તથા કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૩૦. જે મેં અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું મનથી, વચનથી તથા કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૩૧.

જે મેં (પૂર્વે) કર્યું મનથી તથા વચનથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૩૨. જે મેં (પૂર્વે) કરાવ્યું મનથી તથા વચનથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૩૩. જે મેં (પૂર્વે) અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું મનથી તથા વચનથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૩૪. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું મનથી તથા કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૩૫. જે મેં (પૂર્વે) કરાવ્યું મનથી તથા કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૩૬. જે મેં (પૂર્વે) અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું મનથી તથા કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૩૭. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું વચનથી તથા કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૩૮. જે મેં (પૂર્વે) કરાવ્યું વચનથી તથા કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત

મિથ્યા હો. ૩૯. જે મેં (પૂર્વે) અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું વચનથી તથા કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૪૦.

જે મેં (પૂર્વે) કર્યું મનથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૪૧. જે મેં (પૂર્વે) કરાવ્યું મનથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૪૨. જે મેં (પૂર્વે) અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું મનથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૪૩. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું વચનથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૪૪. જે મેં (પૂર્વે) કરાવ્યું વચનથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૪૫. જે મેં (પૂર્વે) અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું વચનથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૪૬. જે મેં (પૂર્વે) કર્યું કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૪૭. જે મેં (પૂર્વે) કરાવ્યું કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૪૮. જે મેં (પૂર્વે) અન્ય કરતો હોય તેનું અનુમોદન કર્યું કાયાથી, તે મારું દુષ્કૃત મિથ્યા હો. ૪૯.

(આ ૪૯ ભંગોની અંદર, પહેલા ભંગમાં કૃત, કારિત, અનુમોદના—એ ત્રણે લીધાં અને તેના પર મન, વચન, કાયા—એ ત્રણે લગાવ્યાં. એ રીતે બનેલા આ એક ભંગને *'૩૩'ની સમસ્યાથી—સંજ્ઞાથી—ઓળખી શકાય. ૨ થી ૪ સુધીના ભંગોમાં કૃત, કારિત, અનુમોદના ત્રણે લઈને તેના પર મન, વચન, કાયામાંથી બબ્બે લગાવ્યાં. એ રીતે બનેલા આ ત્રણે ભંગોને †'૩૨'ની સંજ્ઞાથી ઓળખી શકાય. ૫ થી ૭ સુધીના ભંગોમાં કૃત, કારિત, અનુમોદના ત્રણે લઈને તેના પર મન, વચન, કાયામાંથી એકેક લગાવ્યાં. આ ત્રણે ભંગોને '૩૧'ની સંજ્ઞાથી ઓળખી શકાય. ૮ થી ૧૦ સુધીના ભંગોમાં કૃત, કારિત, અનુમોદનામાંથી બબ્બે લઈને તેમના પર મન, વચન, કાયા ત્રણે લગાવ્યાં. આ ત્રણે ભંગોને '૨૩'ની સંજ્ઞાવાળા ભંગો તરીકે ઓળખી શકાય. ૧૧ થી ૧૯ સુધીના ભંગોમાં કૃત, કારિત, અનુમોદનામાંથી બબ્બે લઈને તેમના પર મન, વચન, કાયામાંથી બબ્બે લગાવ્યાં. આ નવ ભંગોને '૨૨'ની સંજ્ઞાથી ઓળખી શકાય. ૨૦ થી ૨૮ સુધીના ભંગોમાં કૃત, કારિત, અનુમોદનામાંથી બબ્બે લઈને તેમના પર મન, વચન, કાયામાંથી એકેક લગાવ્યું. આ નવ ભંગોને '૨૧'ની સંજ્ઞાથી ઓળખી શકાય. ૨૯ થી ૩૧ સુધીના ભંગોમાં કૃત, કારિત, અનુમોદનામાંથી

* [illegible]

† [illegible]

એકેક લઈને તેમના પર મન, વચન, કાયા ત્રણે લગાવ્યાં. આ ત્રણ ભંગોને '૧૩'ની સંજ્ઞાથી ઓળખી શકાય. ૩૨ થી ૪૦ સુધીના ભંગોમાં કૃત, કારિત, અનુમોદનામાંથી એકેક લઈને તેમના પર મન, વચન, કાયામાંથી બબ્બે લગાવ્યાં. આ નવ ભંગોને '૧૨'ની સંજ્ઞાથી ઓળખી શકાય. ૪૧ થી ૪૯ સુધીના ભંગોમાં કૃત, કારિત, અનુમોદનામાંથી એકેક લઈને તેમના પર મન, વચન, કાયામાંથી એકેક લગાવ્યું. આ નવ ભંગોને '૧૧'ની સંજ્ઞાથી ઓળખી શકાય. બધા મળીને ૪૯ ભંગ થયા.)

હવે આ કથનના કળશરૂપ કાવ્ય કહે છેઃ—

(આર્યા)

मोहाद्यदहमकार्षं समस्तमपि कर्म तत्प्रतिक्रम्य ।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते ॥ २२६ ॥

અર્થઃ—જે મેં મોહથી અર્થાત્ અજ્ઞાનથી (ભૂત કાળમાં) કર્મ કર્યાં, તે સમસ્ત કર્મને પ્રતિક્રમીને હું નિષ્કર્મ (અર્થાત્ સર્વ કર્મોથી રહિત) ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્મામાં આત્માથી જ (-પોતાથી જ-) નિરંતર વર્તું છું (એમ જ્ઞાની અનુભવ કરે છે).

ભાવાર્થઃ—ભૂત કાળમાં કરેલા કર્મને ૪૯ ભંગપૂર્વક મિથ્યા કરનારું પ્રતિક્રમણ કરીને જ્ઞાની જ્ઞાનસ્વરૂપ આત્મામાં લીન થઈને નિરંતર ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માનો અનુભવ કરે, તેનું આ વિધાન (વિધિ) છે. 'મિથ્યા' કહેવાનું પ્રયોજન આ પ્રમાણે છેઃ—જેવી રીતે, કોઈએ પહેલાં ધન કમાઈને ઘરમાં રાખ્યું હતું; પછી તેના પ્રત્યે મમત્વ છોડયું ત્યારે તેને ભોગવવાનો અભિપ્રાય ન રહ્યો; તે વખતે, ભૂત કાળમાં જે ધન કમાયો હતો તે નહિ કમાયા સમાન જ છે; તેવી રીતે, જીવે પહેલાં કર્મ બાંધ્યું હતું; પછી જ્યારે તેને અહિતરૂપ જાણીને તેના પ્રત્યે મમત્વ છોડયું અને તેના ફળમાં લીન ન થયો, ત્યારે ભૂત કાળમાં જે કર્મ બાંધ્યું હતું તે નહિ બાંધ્યા સમાન મિથ્યા જ છે.

આ રીતે પ્રતિક્રમણ-કલ્પ (અર્થાત્ પ્રતિક્રમણનો વિધિ) સમાપ્ત થયો.

(હવે ટીકામાં આલોચનાકલ્પ કહે છેઃ—)

હું (વર્તમાનમાં કર્મ) કરતો નથી, કરાવતો નથી, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદતો નથી, મનથી, વચનથી તથા કાયાથી. ૧.

હું (વર્તમાનમાં કર્મ) કરતો નથી, કરાવતો નથી, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદતો નથી, મનથી તથા વચનથી. ૨. હું (વર્તમાનમાં) કરતો નથી, કરાવતો

નથી, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદતો નથી, મનથી તથા કાયાથી. ૩. હું ક
નથી, કરાવતો નથી, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદતો નથી, વચનથી તથા કાયાથી.

હું કરતો નથી, કરાવતો નથી, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદતો ન
મનથી. ૫. હું કરતો નથી, કરાવતો નથી, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદતો
વચનથી. ૬. હું કરતો નથી, કરાવતો નથી, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદતો
કાયાથી. ૭.

હું કરતો નથી, કરાવતો નથી, મનથી, વચનથી તથા કાયાથી. ૮. હું કર
નથી, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદતો નથી, મનથી, વચનથી તથા કાયાથી.
હું કરાવતો નથી, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદતો નથી, મનથી, વચનથી ત
કાયાથી. ૧૦.

હું કરતો નથી, કરાવતો નથી, મનથી તથા વચનથી. ૧૧. હું કરતો નથી,
અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદતો નથી, મનથી તથા વચનથી. ૧૨. હું કરાવતો નથી,
અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદતો નથી, મનથી તથા વચનથી. ૧૩. હું કરતો નથી,
કરાવતો નથી, મનથી તથા કાયાથી. ૧૪. હું કરતો નથી, અન્ય કરતો હોય તેને અનુ-
મોદતો નથી, મનથી તથા કાયાથી. ૧૫. હું કરાવતો નથી, અન્ય કરતો હોય તેને
અનુમોદતો નથી, મનથી તથા કાયાથી. ૧૬. હું કરતો નથી, કરાવતો નથી, વચનથી
તથા કાયાથી. ૧૭. હું કરતો નથી, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદતો નથી, વચનથી
તથા કાયાથી. ૧૮. હું કરાવતો નથી, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદતો નથી, વચનથી
તથા કાયાથી. ૧૯.

હું કરતો નથી, કરાવતો નથી, મનથી. ૨૦. હું કરતો નથી, અન્ય કરતો
હોય તેને અનુમોદતો નથી, મનથી. ૨૧. હું કરાવતો નથી, અન્ય કરતો હોય તેને
અનુમોદતો નથી, મનથી. ૨૨. હું કરતો નથી, કરાવતો નથી, વચનથી. ૨૩. હું કરતો
નથી, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદતો નથી, વચનથી. ૨૪. હું કરાવતો નથી, અન્ય
કરતો હોય તેને અનુમોદતો નથી, વચનથી. ૨૫. હું કરતો નથી, કરાવતો નથી,
કાયાથી. ૨૬. હું કરતો નથી, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદતો નથી, કાયાથી. ૨૭.
હું કરાવતો નથી, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદતો નથી, કાયાથી. ૨૮.

હું કરતો નથી મનથી, વચનથી તથા કાયાથી. ૨૯. હું કરાવતો નથી મનથી,
વચનથી તથા કાયાથી. ૩૦. હું અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદતો નથી મનથી,
વચનથી તથા કાયાથી. ૩૧.

હું કરતો નથી મનથી તથા વચનથી. ૩૨. હું કરાવતો નથી મનથી તથા
વચનથી. ૩૩. હું અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદતો નથી મનથી તથા વચનથી. ૩૪

કરતો નથી મનથી તથા કાયાથી. ૩૫. હું કરાવતો નથી મનથી તથા કાયાથી. હું અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદતો નથી મનથી તથા કાયાથી. ૩૭. હું કરતો નથી વચનથી તથા કાયાથી. ૩૮. હું કરાવતો નથી વચનથી તથા કાયાથી. ૩૯. હું અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદતો નથી વચનથી તથા કાયાથી. ૪૦.

હું કરતો નથી મનથી. ૪૧. હું કરાવતો નથી મનથી. ૪૨. હું અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદતો નથી મનથી. ૪૩. હું કરતો નથી વચનથી. ૪૪. હું કરાવતો નથી વચનથી. ૪૫. હું અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદતો નથી વચનથી. ૪૬. હું કરતો નથી કાયાથી. ૪૭. હું કરાવતો નથી કાયાથી. ૪૮. હું અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદતો નથી કાયાથી. ૪૯. (આ રીતે, પ્રતિક્રમણના જેવા જ આલોચનામાં પણ ભંગ કહ્યા.)

હવે આ કથનના કળશરૂપે કાવ્ય કહે છે:—

(આર્યા)

मोहविलासविजृंभितमिदमुदयत्कर्म सकलमालोच्य ।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते ॥ २२७ ॥

અર્થઃ—(નિશ્ચયચારિત્રને અંગીકાર કરનાર કહે છે કે—) મોહના વિલાસથી ફેલાયેલું જે આ ઉદયમાન (ઉદયમાં આવતું) કર્મ તે સમસ્તને આલોચીને (-તે સર્વ કર્મની આલોચના કરીને-) હું નિષ્કર્મ (અર્થાત્ સર્વ કર્મોથી રહિત) ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્મામાં આત્માથી જ (-પોતાથી જ-) નિરંતર વર્તું છું.

ભાવાર્થઃ—વર્તમાન કાળમાં કર્મનો ઉદય આવે તેના વિષે જ્ઞાની એમ વિચારે છે કે—પૂર્વે જે કર્મ બાંધ્યું હતું તેનું આ કાર્ય છે, મારું તો આ કાર્ય નથી. હું આનો કર્તા નથી, હું તો શુદ્ધચૈતન્યમાત્ર આત્મા છું. તેની દર્શનજ્ઞાનરૂપ પ્રવૃત્તિ છે. તે દર્શનજ્ઞાનરૂપ પ્રવૃત્તિ વડે હું આ ઉદયમાં આવેલા કર્મનો દેખનાર-જાણનાર છું. મારા સ્વરૂપમાં જ હું વર્તું છું. આવું અનુભવન કરવું તે જ નિશ્ચયચારિત્ર છે.

આ રીતે આલોચનાકલ્પ સમાપ્ત થયો.

(હવે ટીકામાં પ્રત્યાખ્યાનકલ્પ અર્થાત્ પ્રત્યાખ્યાનનો વિધિ કહે છે:—)

(પ્રત્યાખ્યાન કરનાર કહે છે કે:—)

હું (ભવિષ્યમાં કર્મ) કરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ, મનથી, વચનથી તથા કાયાથી. ૧.

હું (ભવિષ્યમાં કર્મ) કરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ, મનથી તથા વચનથી. ૨. હું કરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ, મનથી તથા કાયાથી. ૩. હું કરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ, વચનથી તથા કાયાથી. ૪.

હું કરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ મનથી. ૫. હું કરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ વચનથી. ૬. હું કરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ કાયાથી. ૭.

હું કરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, મનથી, વચનથી તથા કાયાથી. ૮. હું કરીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ, મનથી, વચનથી તથા કાયાથી. ૯. હું કરાવીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ, મનથી, વચનથી તથા કાયાથી. ૧૦.

હું કરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, મનથી તથા વચનથી. ૧૧. હું કરીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ, મનથી તથા વચનથી. ૧૨. હું કરાવીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ, મનથી તથા વચનથી. ૧૩. હું કરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, મનથી તથા કાયાથી. ૧૪. હું કરીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ, મનથી તથા કાયાથી. ૧૫. હું કરાવીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ, મનથી તથા કાયાથી. ૧૬. હું કરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, વચનથી તથા કાયાથી. ૧૭. હું કરીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ, વચનથી તથા કાયાથી. ૧૮. હું કરાવીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ, વચનથી તથા કાયાથી. ૧૯.

હું કરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, મનથી. ૨૦. હું કરીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ, મનથી. ૨૧. હું કરાવીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ, મનથી. ૨૨. હું કરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, વચનથી. ૨૩. હું કરીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ, વચનથી. ૨૪. હું કરાવીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ, વચનથી. ૨૫. હું કરીશ નહિ, કરાવીશ નહિ, કાયાથી. ૨૬. હું કરીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ કાયાથી. ૨૭. હું કરાવીશ નહિ, અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ, કાયાથી. ૨૮

હું કરીશ નહિ મનથી, વચનથી તથા કાયાથી. ૨૯. હું કરાવીશ નહિ મનથી, વચનથી તથા કાયાથી. ૩૦. હું અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ

નથી, વચનથી તથા કાયાથી. ૩૧.

હું કરીશ નહિ મનથી તથા વચનથી. ૩૨. હું કરાવીશ નહિ મનથી તથા વચનથી. ૩૩. હું અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ મનથી તથા વચનથી. ૩૪. હું કરીશ નહિ મનથી તથા કાયાથી. ૩૫. હું કરાવીશ નહિ મનથી તથા કાયાથી. ૩૬. હું અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ મનથી તથા કાયાથી. ૩૭. હું કરીશ નહિ વચનથી તથા કાયાથી. ૩૮. હું કરાવીશ નહિ વચનથી તથા કાયાથી. ૩૯. હું અન્ય તો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ વચનથી તથા કાયાથી. ૪૦.

હું કરીશ નહિ મનથી. ૪૧. હું કરાવીશ નહિ મનથી. ૪૨. હું અન્ય કરતો ાય તેને અનુમોદીશ નહિ મનથી. ૪૩. હું કરીશ નહિ વચનથી. ૪૪. હું કરાવીશ હિ વચનથી. ૪૫. હું અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ વચનથી. ૪૬. હું કરીશ નહિ કાયાથી. ૪૭. હું કરાવીશ નહિ કાયાથી. ૪૮. હું અન્ય કરતો હોય તેને અનુમોદીશ નહિ કાયાથી. ૪૯. (આ રીતે, પ્રતિક્રમણના જેવા જ પ્રત્યાખ્યાનમાં પણ ૪૯ ભંગ કહ્યા.)

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છેઃ—

(આર્યા)

प्रत्याख्याय भविष्यत्कर्म समस्तं निरस्तसंमोहः ।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते ॥ २२८ ॥

અર્થઃ—(પ્રત્યાખ્યાન કરનાર જ્ઞાની કહે છે કે—) ભવિષ્યના સમસ્ત કર્મને પચખીને (-ત્યાગીને), જેનો મોહ નષ્ટ થયો છે એવો હું નિષ્કર્મ (અર્થાત્ સર્વ કર્મોથી રહિત) ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્મામાં આત્માથી જ (-પોતાથી જ-) નિરંતર વર્તું છું.

ભાવાર્થઃ—નિશ્ચયચારિત્રમાં પ્રત્યાખ્યાનનું વિધાન એવું છે કે—સમસ્ત આગામી કર્મોથી રહિત, ચૈતન્યની પ્રવૃત્તિરૂપ (પોતાના) શુદ્ધોપયોગમાં વર્તવું તે પ્રત્યાખ્યાન. તેથી જ્ઞાની આગામી સમસ્ત કર્મોનું પ્રત્યાખ્યાન કરીને પોતાના ચૈતન્યસ્વરૂપમાં વર્તે છે.

અહીં તાત્પર્ય આ પ્રમાણે જાણવુંઃ—વ્યવહારચારિત્રમાં તો પ્રતિજ્ઞામાં જે દોષ લાગે તેનું પ્રતિક્રમણ, આલોચના તથા પ્રત્યાખ્યાન હોય છે. અહીં નિશ્ચયચારિત્રનું પ્રધાનપણે કથન હોવાથી શુદ્ધોપયોગથી વિપરીત સર્વ કર્મો આત્માના દોષસ્વરૂપ છે. તે સર્વ કર્મચેતનાસ્વરૂપ પરિણામોનું—ત્રણે કાળનાં કર્મોનું—પ્રતિક્રમણ, આલોચના તથા પ્રત્યાખ્યાન કરીને જ્ઞાની સર્વ કર્મચેતનાથી જુદા પોતાના શુદ્ધોપયોગરૂપ આત્માના જ્ઞાનશ્રદ્ધાન વડે અને તેમાં સ્થિર થવાના વિધાન વડે નિષ્પ્રમાદ દશાને પ્રાપ્ત

થઈ, શ્રેણિ ચડી, કેવળજ્ઞાન ઉપજાવવાની સન્મુખ થાય છે. આ, જ્ઞાનીનું કાર્ય છે.

આ રીતે પ્રત્યાખ્યાનકલ્પ સમાપ્ત થયો.

હવે સકળ કર્મના સંન્યાસની ભાવનાને નચાવવા વિષેનું કથન પૂર્ણ કરતાં કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(ઉપજાતિ)

समस्तमित्येवमपास्य कर्म
त्रैकालिकं शुद्धनयावलंबी ।
विलीनमोहो रहितं विकारै-
श्चिन्मात्रमात्मानमथावलंबे ॥ २२९ ॥

અર્થ:—(શુદ્ધનયનું આલંબન કરનાર કહે છે કે—) પૂર્વોક્ત રીતે ત્રણે કાળનાં સમસ્ત કર્મોને દૂર કરીને—છોડીને, શુદ્ધનયાવલંબી (અર્થાત્ શુદ્ધનયને અવલંબનાર) અને વિલીનમોહ (અર્થાત્ જેનું મિથ્યાત્વ નષ્ટ થયું છે) એવો હું હવે (સર્વ) વિકારોથી રહિત ચૈતન્યમાત્ર આત્માને અવલંબું છું.

હવે સકળ કર્મફળના સંન્યાસની ભાવનાને નચાવે છે:—

(ત્યાં પ્રથમ, તે કથનના સમુચ્ચય-અર્થનું કાવ્ય કહે છે:—)

(આર્યા)

विगलंतु कर्मविषतरुफलानि मम भुक्तिमन्तरेणैव ।
संचेतयेऽहमचलं चैतन्यात्मानमात्मानम् ॥ २३० ॥

અર્થ:—(સમસ્ત કર્મફળની સંન્યાસભાવના કરનાર કહે છે કે—) કર્મરૂપી વિષવૃક્ષનાં ફળ મારા ભોગવ્યા વિના જ ખરી જાઓ; હું (મારા) ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માને નિશ્ચળપણે સંચેતું છું—અનુભવું છું.

ભાવાર્થ:—જ્ઞાની કહે છે કે—જે કર્મ ઉદયમાં આવે છે તેના ફળને હું જ્ઞાતા-દ્રષ્ટાપણે દેખું છું, તેનો ભોક્તા થતો નથી, માટે મારા ભોગવ્યા વિના જ તે કર્મ ખરી જાઓ; હું મારા ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્મામાં લીન થયો થકો તેનો દેખનાર-જાણનાર જ હોઉં.

અહીં એટલું વિશેષ જાણવું કે—અવિરત, દેશવિરત તથા પ્રમત્તસંયત દશામાં તો આવું જ્ઞાન-શ્રદ્ધાન જ પ્રધાન છે, અને જ્યારે જીવ અપ્રમત્ત દશાને પામીને શ્રેણી ચડે છે ત્યારે આ અનુભવ સાક્ષાત્ હોય છે.

(હવે ટીકામાં સકળ કર્મફળના સંન્યાસની ભાવનાને નચાવે છે:—)

હું (જ્ઞાની હોવાથી) મતિજ્ઞાનાવરણીયકર્મના ફળને નથી ભોગવતો, ચૈતન્ય-
રૂપ આત્માને જ સંચેતું છું અર્થાત્ એકાગ્રપણે અનુભવું છું. (અહીં 'ચેતવું'
ટલે અનુભવવું, વેદવું, ભોગવવું. 'સં' ઉપસર્ગ લાગવાથી, 'સંચેતવું' એટલે
એકાગ્રપણે અનુભવવું' એવો અર્થ અહીં બધા પાઠોમાં સમજવો.) ૧. હું શ્રુતજ્ઞાના-
રણીયકર્મના ફળને નથી ભોગવતો, ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માને જ સંચેતું છું—અનુભવું
ં. ૨. હું અવધિજ્ઞાનાવરણીયકર્મના ફળને નથી ભોગવતો, ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માને જ
ંચેતું છું. ૩. હું મનઃપર્યયજ્ઞાનાવરણીયકર્મના ફળને નથી ભોગવતો, ચૈતન્યસ્વરૂપ
આત્માને જ સંચેતું છું. ૪. હું કેવળજ્ઞાનાવરણીયકર્મના ફળને નથી ભોગવતો, ચૈતન્ય-
સ્વરૂપ આત્માને જ સંચેતું છું. ૫.

હું ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય કર્મના ફળને નથી ભોગવતો, ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માને
જ સંચેતું છું. ૬. હું અચક્ષુર્દર્શનાવરણીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૭. હું અવધિદર્શના-
વરણીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૮. હું કેવળદર્શનાવરણીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૯. હું નિદ્રા-
દર્શનાવરણીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૦. હું નિદ્રાનિદ્રાદર્શનાવરણીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦.
૧૧. હું પ્રચલાદર્શનાવરણીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૨. હું પ્રચલાપ્રચલાદર્શનાવરણીય-
કર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૩. હું સ્ત્યાનગૃદ્ધિદર્શનાવરણીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૪.

હું શાતાવેદનીયકર્મના ફળને નથી ભોગવતો, ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માને જ
સંચેતું છું. ૧૫. હું અશાતાવેદનીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૬.

હું સમ્યક્ત્વમોહનીયકર્મના ફળને નથી ભોગવતો, ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માને
જ સંચેતું છું. ૧૭. હું મિથ્યાત્વમોહનીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૮. હું સમ્યક્ત્વમિથ્યા-
ત્વમોહનીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૯. હું અનંતાનુબંધિક્રોધકષાયવેદનીયમોહનીયકર્મના૦,
ચૈતન્ય૦. ૨૦. હું અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીયક્રોધકષાયવેદનીયમોહનીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૨૧.
હું પ્રત્યાખ્યાનાવરણીયક્રોધકષાયવેદનીયમોહનીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૨૨. હું સંજ્વલન-
ક્રોધકષાયવેદનીયમોહનીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૨૩. હું અનંતાનુબંધિમાનકષાયવેદનીયમોહ-
નીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૨૪. હું અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીયમાનકષાયવેદનીયમોહનીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૨૫.
ચૈતન્ય૦. ૨૫. હું પ્રત્યાખ્યાનાવરણીયમાનકષાયવેદનીયમોહનીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૨૬. હું અનંતાનુબંધિમાયા
હું સંજ્વલનમાનકષાયવેદનીયમોહનીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૨૭. હું અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીયમાયાકષાયવેદ-
કષાયવેદનીયમોહનીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૨૮. હું અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીયમાયાકષાયવેદનીયમોહ-
નીયમોહનીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૨૯. હું પ્રત્યાખ્યાનાવરણીયમાયાકષાયવેદનીયમોહનીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૩૧.
નીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૩૦. હું સંજ્વલનમાયાકષાયવેદનીયમોહનીયકર્મના૦,

હું અનંતાનુબંધિલોભકષાયવેદનીયમોહનીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૩૨. હું અપ્ર ખ્યાનાવરણીયલોભકષાયવેદનીયમોહનીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૩૩. હું પ્રત્ય ણીયલોભકષાયવેદનીયમોહનીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૩૪. હું સંજ્વલનલોભકષાય મોહનીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૩૫. હું હાસ્યનોકષાયવેદનીયમોહનીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. હું રતિનોકષાયવેદનીયમોહનીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૩૭. હું અરતિનોકષાયવેદ મોહનીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૩૮. હું શોકનોકષાયવેદનીયમોહનીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. હું ભયનોકષાયવેદનીયમોહનીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૪૦. હું જુગુપ્સાનોકષાયવેદ મોહનીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૪૧. હું સ્ત્રીવેદનોકષાયવેદનીયમોહનીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. હું પુરુષવેદનોકષાયવેદનીયમોહનીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૪૩. હું નપુંસકવેદનોકષાયવેદ નીયમોહનીયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૪૪.

હું નરકઆયુકર્મના ફળને નથી ભોગવતો, ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માને જ સંચેતું છું. ૪૫. હું તિર્યંચઆયુકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૪૬. હું મનુષ્યઆયુકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. હું દેવઆયુકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૪૮.

હું નરકગતિનામકર્મના ફળને નથી ભોગવતો, ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માને સંચેતું છું. ૪૯. હું તિર્યંચગતિનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૫૦. હું મનુષ્યગતિનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૫૧. હું દેવગતિનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૫૨. હું એકેંદ્રિયજાતિનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૫૩. હું દ્વીંદ્રિયજાતિનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૫૪. હું ત્રીંદ્રિયજાતિનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૫૫. હું ચતુરિંદ્રિયજાતિનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૫૬. હું પંચેંદ્રિયજાતિનામ કર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૫૭. હું ઔદારિકશરીરનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૫૮. હું વૈક્રિયિક શરીરનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૫૯. હું આહારકશરીરનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૬૦. હું તૈજસશરીરનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૬૧. હું કાર્મણશરીરનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૬૨. હું ઔદારિકશરીરઅંગોપાંગનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૬૩. હું વૈક્રિયિકશરીરઅંગોપાંગ નામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૬૪. હું આહારકશરીરઅંગોપાંગનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૬૫. હું ઔદારિકશરીરબંધનનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૬૬. હું વૈક્રિયિકશરીરબંધનનામ કર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૬૭. હું આહારકશરીરબંધનનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૬૮. હું તૈજસ શરીરબંધનનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૬૯. હું કાર્મણશરીરબંધનનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૭૦. હું ઔદારિકશરીરસંઘાતનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૭૧. હું વૈક્રિયિકશરીરસંઘાતનામકર્મ ના૦, ચૈતન્ય૦. ૭૨. હું આહારકશરીરસંઘાતનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૭૩. હું તૈજસશરીર સંઘાતનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૭૪. હું કાર્મણશરીરસંઘાતનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૭૫. હું સમચતુરસ્રસંસ્થાનનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૭૬. હું ન્યગ્રોધપરિમંડલસંસ્થાનનામ કર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૭૭. હું સાતિકસંસ્થાનનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૭૮. હું કુબ્જ

સ્થાનનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૭૯. હું વામનસંસ્થાનનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૮૦. હું હુંડકસંસ્થાનનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૮૧. હું વજ્રર્ષભનારાચસંહનનનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૮૨. હું વજ્રનારાચસંહનનનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૮૩. હું નારાચસંહનનનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૮૪. હું અર્ધનારાચસંહનનનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૮૫. હું કીલિકાસંહનનનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૮૬. હું અસંપ્રાપ્તાસૃપાટિકાસંહનનનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૮૭. હું સ્નિગ્ધસ્પર્શનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૮૮. હું રૂક્ષસ્પર્શનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૮૯. હું શીતસ્પર્શનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૯૦. હું ઉષ્ણસ્પર્શનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૯૧. હું ગુરુસ્પર્શનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૯૨. હું લઘુસ્પર્શનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૯૩. હું મૃદુસ્પર્શનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૯૪. હું કર્કશસ્પર્શનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૯૫. હું મધુરરસનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૯૬. હું આમ્લરસનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૯૭. હું તિક્તરસનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૯૮. હું કટુકરસનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૯૯. હું કષાયરસનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૦૦. હું સુરભિગંધનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૦૧. હું અસુરભિગંધનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૦૨. હું શુક્લવર્ણનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૦૩. હું રક્તવર્ણનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૦૪. હું પીતવર્ણનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૦૫. હું હરિતવર્ણનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૦૬. હું કૃષ્ણવર્ણનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૦૭. હું નરકગત્યાનુપૂર્વીનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૦૮. હું તિર્યંચગત્યાનુપૂર્વીનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૦૯. હું મનુષ્યગત્યાનુપૂર્વીનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૧૦. હું દેવગત્યાનુપૂર્વીનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૧૧. હું નિર્માણનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૧૨. હું અગુરુલઘુનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૧૩. હું ઉપઘાતનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૧૪. હું પરઘાતનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૧૫. હું આતપનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૧૬. હું ઉદ્યોતનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૧૭. હું ઉચ્છ્વાસનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૧૮. હું પ્રશસ્તવિહાયોગતિનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૧૯. હું અપ્રશસ્તવિહાયોગતિનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૨૦. હું સાધારણશરીરનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૨૧. હું પ્રત્યેકશરીરનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૨૨. હું સ્થાવરનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૨૩. હું ત્રસનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૨૪. હું સુભગનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૨૫. હું દુર્ભગનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૨૬. હું સુસ્વરનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૨૭. હું દુઃસ્વરનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૨૮. હું શુભનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૨૯ હું અશુભનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૩૦. હું સૂક્ષ્મશરીરનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૩૧. હું બાદરશરીરનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૩૨. હું પર્યાપ્તનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૩૩. હું અપર્યાપ્તનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૩૪. હું સ્થિરનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૩૫. હું અસ્થિરનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૩૬. હું આદેયનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૩૭. હું અનાદેયનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૩૮. હું યશઃકીર્તિનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૩૯. હું અયશઃકીર્તિનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૪૦. હું

તીર્થંકરનામકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૪૧.

હું ઉચ્ચગોત્રકર્મના ફળને નથી ભોગવતો, ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માને જ સંચેતું છું. ૧૪૨. હું નીચગોત્રકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૪૩.

હું દાનાંતરાયકર્મના ફળને નથી ભોગવતો, ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માને જ સંચેતું છું. ૧૪૪. હું લાભાંતરાયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૪૫. હું ભોગાંતરાયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૪૬. હું ઉપભોગાંતરાયકર્મના૦, ચૈતન્ય૦. ૧૪૭. હું વીર્યાંતરાયકર્મના ફળને નથી ભોગવતો, ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માને જ સંચેતું છું. ૧૪૮. (આ પ્રમાણે જ્ઞાની સર્વ કર્મોના ફળના સંન્યાસની ભાવના કરે છે).

(અહીં ભાવના એટલે વારંવાર ચિંતવન કરીને ઉપયોગનો અભ્યાસ કરવો તે. જ્યારે જીવ સમ્યગ્દૃષ્ટિ-જ્ઞાની થાય છે ત્યારે તેને જ્ઞાન-શ્રદ્ધાન તો થયું જ કે 'હું શુદ્ધનયે સમસ્ત કર્મથી અને કર્મના ફળથી રહિત છું.' પરંતુ પૂર્વે બાંધેલાં કર્મ ઉદયમાં આવે તેમનાથી થતા ભાવોનું કર્તાપણું છોડીને, ત્રણે કાળ સંબંધી ઓગણપચાસ ઓગણપચાસ ભંગો વડે કર્મચેતનાના ત્યાગની ભાવના કરીને તથા સર્વ કર્મનું ફળ ભોગવવાના ત્યાગની ભાવના કરીને, એક ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માને જ ભોગવવાનું બાકી રહ્યું. અવિરત, દેશવિરત અને પ્રમત્ત અવસ્થાવાળા જીવને જ્ઞાન-શ્રદ્ધાનમાં નિરંતર એ ભાવના તો છે જ; અને જ્યારે જીવ અપ્રમત્ત દશા પ્રાપ્ત કરીને એકાગ્ર ચિત્તથી ધ્યાન કરે, કેવળ ચૈતન્યમાત્ર આત્મામાં ઉપયોગ લગાવે અને શુદ્ધોપયોગરૂપ થાય, ત્યારે નિશ્ચયચારિત્રરૂપ શુદ્ધોપયોગભાવથી શ્રેણી ચઢીને કેવળજ્ઞાન ઉપજાવે છે. તે વખતે એ ભાવનાનું ફળ જે કર્મચેતનાથી અને કર્મફળચેતનાથી રહિત સાક્ષાત્ જ્ઞાનચેતનારૂપ પરિણમન તે થાય છે. પછી આત્મા અનંત કાળ સુધી જ્ઞાનચેતનારૂપ જ રહેતો થકો પરમાનંદમાં મગ્ન રહે છે.)

હવે આ જ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છેઃ—

(વસંતતિલકા)

निःशेषकर्मफलसंन्यसनान्ममैवं
सर्वक्रियांतरविहारनिवृत्तवृत्तेः ।
चैतन्यलक्ष्म भजतो भृशमात्मतत्त्वं
कालावलीयमचलस्य वहत्वनंता ॥ २३१ ॥

અર્થઃ—(સકળ કર્મોના ફળનો ત્યાગ કરીને જ્ઞાનચેતનાની ભાવના કરનાર જ્ઞાની કહે છે કેઃ) પૂર્વોક્ત રીતે સમસ્ત કર્મના ફળનો સંન્યાસ કરવાથી હું ચૈતન્ય જેનું

પ્રભુ છે એવા આત્મતત્ત્વને અતિશયપણે ભોગવું છું અને તે સિવાય અન્ય ક્રિયામાં વિહારથી મારી વૃત્તિ નિવૃત્ત છે (અર્થાત્ આત્મતત્ત્વના ભોગવવા સિવાયની અન્ય જે ઉપયોગની ક્રિયા—વિભાવરૂપ ક્રિયા—તેમાં મારી પરિણતિ વિહાર કરતી નથી—પ્રવર્તતી નથી); એમ આત્મતત્ત્વના ભોગવટામાં અચળ એવા મને, આ કાળની આવલી કે જે પ્રવાહરૂપે અનંત છે તે, આત્મતત્ત્વના ભોગવટામાં જ વહો—જાઓ; (ઉપયોગની પ્રવૃત્તિ અન્યમાં કદી પણ ન જાઓ).

ભાવાર્થ:—આવી ભાવના કરનાર જ્ઞાની એવો તૃપ્ત થયો છે કે જાણે ભાવના કરતાં સાક્ષાત્ કેવળી જ થયો હોય; તેથી તે અનંત કાળ સુધી એવો જ રહેવાનું ચાહે છે. અને તે યોગ્ય જ છે; કારણ કે આ જ ભાવનાથી કેવળી થવાય છે. કેવળજ્ઞાન ઉપજવાનો પરમાર્થ ઉપાય આ જ છે. બાહ્ય વ્યવહારચારિત્ર છે તે આના જ સાધનરૂપ છે; અને આના વિના વ્યવહારચારિત્ર શુભકર્મને બાંધે છે, મોક્ષનો ઉપાય નથી.

ફરી કાવ્ય કહે છે:—

(વસંતતિલકા)

यः पूर्वभावकृतकर्मविषद्रुमाणां
भुंक्ते फलानि न खलु स्वत एव तृप्तः ।
आपातकालरमणीयमुदर्करम्यं
निष्कर्मशर्ममयमेति दशांतरं सः ॥ २३२ ॥

અર્થ:—પૂર્વે અજ્ઞાનભાવથી કરેલાં જે કર્મ તે કર્મરૂપી વિષવૃક્ષોનાં ફળને જે પુરુષ (તેનો સ્વામી થઈને) ભોગવતો નથી અને ખરેખર પોતાથી જ (-આત્મસ્વરૂપથી જ) તૃપ્ત છે, તે પુરુષ, જે વર્તમાન કાળે રમણીય છે અને ભવિષ્યમાં પણ જેનું ફળ રમણીય છે એવી નિષ્કર્મ-સુખમય દશાંતરને પામે છે (અર્થાત્ જે પૂર્વે સંસાર-અવસ્થામાં કદી થઈ નહોતી એવી જુદા પ્રકારની કર્મરહિત સ્વાધીન સુખમય દશાને પામે છે).

ભાવાર્થ:—જ્ઞાનચેતનાની ભાવનાનું આ ફળ છે. તે ભાવનાથી જીવ અત્યંત તૃપ્ત રહે છે—અન્ય તૃષ્ણા રહેતી નથી, અને ભવિષ્યમાં કેવળજ્ઞાન ઉપજાવી સર્વ કર્મથી રહિત મોક્ષ-અવસ્થાને પામે છે.

'પૂર્વોક્ત રીતે કર્મચેતનાના અને કર્મફળચેતનાના ત્યાગની ભાવના કરીને, સમસ્ત અજ્ઞાનચેતનાના પ્રલયને પ્રગટ રીતે નચાવીને, પોતાના સ્વભાવને પૂર્ણ કરીને,

ચેતનાને નચાવતા થકા જ્ઞાની જનો સદાકાળ આનંદરૂપ રહો'—એવા ૯.
કાવ્ય હવે કહે છે:—

(સ્રગ્ધરા)

अत्यंतं भावयित्वा विरतिमविरतं कर्मणस्तत्फलाच्च
प्रस्पष्टं नाटयित्वा प्रलयनमखिलाज्ञानसंचेतनायाः ।
पूर्णं कृत्वा स्वभावं स्वरसपरिगतं ज्ञानसंचेतनां स्वां
सानंदं नाटयंतः प्रशमरसमितः सर्वकालं पिबंतु ॥ २३३ ॥

અર્થ:—જ્ઞાની જનો, અવિરતપણે કર્મથી અને કર્મના ફળથી વિરતિ અત્યંત ભાવીને (અર્થાત્ કર્મ અને કર્મફળ પ્રત્યે અત્યંત વિરક્તભાવને નિરંતર ભાવીને), (એ રીતે) સમસ્ત અજ્ઞાનચેતનાના નાશને સ્પષ્ટપણે નચાવીને, નિજરસથી પ્રાપ્ત પોતાના સ્વભાવને પૂર્ણ કરીને, પોતાની જ્ઞાનચેતનાને આનંદપૂર્વક નચાવતા થકા હવેથી સદાકાળ પ્રશમરસને પીઓ (અર્થાત્ કર્મના અભાવરૂપ આત્મિક રસને—અમૃતરસને—અત્યારથી માંડીને અનંત કાળ પર્યંત પીઓ. આમ જ્ઞાનીજનોને પ્રેરણા છે).

ભાવાર્થ:—પહેલાં તો ત્રણે કાળ સંબંધી કર્મના કર્તાપણારૂપ કર્મચેતનાના ત્યાગની ભાવના (૪૯ ભંગપૂર્વક) કરાવી. પછી ૧૪૮ કર્મપ્રકૃતિના ઉદયરૂપ કર્મફળના ત્યાગની ભાવના કરાવી. એ રીતે અજ્ઞાનચેતનાનો પ્રલય કરાવીને જ્ઞાનચેતનામાં પ્રવર્તવાનો ઉપદેશ કર્યો છે. એ જ્ઞાનચેતના સદા આનંદરૂપ—પોતાના સ્વભાવના અનુભવરૂપ—છે. તેને જ્ઞાનીજનો સદા ભોગવો—એમ શ્રીગુરુઓનો ઉપદેશ છે.

આ સર્વવિશુદ્ધજ્ઞાન અધિકાર છે, તેથી જ્ઞાનને કર્તાભોક્તાપણાથી ભિન્ન બતાવ્યું; હવેની ગાથાઓમાં અન્ય દ્રવ્યો અને અન્ય દ્રવ્યોના ભાવોથી જ્ઞાનને ભિન્ન બતાવશે. તે ગાથાઓની સૂચનારૂપ કાવ્ય પ્રથમ કહે છે:—

(વંશસ્થ)

इतः पदार्थप्रथनावगुंठनाद्-
विना कृतेरेकमनाकुलं ज्वलत् ।
समस्तवस्तुव्यतिरेकनिश्चयाद्-
विवेचितं ज्ञानमिहावतिष्ठते ॥ २३४ ॥

અર્થઃ—અહીંથી હવે (આ સર્વવિશુદ્ધજ્ઞાન અધિકારમાં હવેની ગાથાઓમાં કહે છે કે—) સમસ્ત વસ્તુઓથી ભિન્નપણાના નિશ્ચય વડે જુદું કરવામાં આવેલું ..., પદાર્થના વિસ્તાર સાથે ગુંથાવાથી (અનેક પદાર્થો સાથે, જ્ઞેયજ્ઞાનસંબંધને ... એક જેવું દેખાવાથી) ઉત્પન્ન થતી (અનેક પ્રકારની) ક્રિયા તેનાથી રહિત ... જ્ઞાનક્રિયામાત્ર, અનાકુળ (-સર્વ આકુળતાથી રહિત) અને દેદીપ્યમાન વર્તતું ..., નિશ્ચળ રહે છે.

ભાવાર્થઃ—હવેની ગાથાઓમાં જ્ઞાનને સ્પષ્ટ રીતે સર્વ વસ્તુઓથી ભિન્ન ...ાવે છે. ૩૮૭—૩૮૯.

એ જ અર્થની ગાથાઓ હવે કહે છેઃ—

सत्थं णाणं ण हवइ जह्मा सत्थं ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं सत्थं जिणा विंति ॥ ३९० ॥
सद्दो णाणं ण हवइ जह्मा सद्दो ण याणए किंचि ।
तह्मः अण्णं णाणं अण्णं सद्दं जिणा विंति ॥ ३९१ ॥
रूवं णाणं ण हवइ जह्मा रूवं ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं रूवं जिणा विंति ॥ ३९२ ॥
वण्णो णाणं ण हवइ जह्मा वण्णो ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं वण्णं जिणा विंति ॥ ३९३ ॥

રે! શાસ્ત્ર તે નથી જ્ઞાન, જેથી શાસ્ત્ર કંઈ જાણે નહિ,
તે કારણે છે જ્ઞાન જુદું, શાસ્ત્ર જુદું—જિન કહે; ૩૯૦.
રે! શબ્દ તે નથી જ્ઞાન, જેથી શબ્દ કંઈ જાણે નહિ,
તે કારણે છે જ્ઞાન જુદું, શબ્દ જુદો—જિન કહે; ૩૯૧.
રે! રૂપ તે નથી જ્ઞાન, જેથી રૂપ કંઈ જાણે નહિ,
તે કારણે છે જ્ઞાન જુદું, રૂપ જુદું—જિન કહે; ૩૯૨.
રે! વર્ણ તે નથી જ્ઞાન, જેથી વર્ણ કંઈ જાણે નહિ,
તે કારણે છે જ્ઞાન જુદું, વર્ણ જુદો—જિન કહે; ૩૯૩.

गंधो णाणं ण हवइ जह्मा गंधो ण याणए किंचि।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं गंधं जिणा विंति ॥ ३९४ ॥
ण रसो दु हवइ णाणं जह्मा दु रसो ण याणए किंचि।
तह्मा अण्णं णाणं रसं य अण्णं जिणा विंति ॥ ३९५ ॥
फासो ण हवइ णाणं जह्मा फासो ण याणए किंचि।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं फासं जिणा विंति ॥ ३९६ ॥
कम्मं णाणं ण हवइ जह्मा कम्मं ण याणए किंचि।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं कम्मं जिणा विंति ॥ ३९७ ॥
धम्मो णाणं ण हवइ जह्मा धम्मो ण याणए किंचि।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं धम्मं जिणा विंति ॥ ३९८ ॥
णाणमधम्मो ण हवइ जह्माधम्मो ण याणए किंचि।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णमधम्मं जिणा विंति ॥ ३९९ ॥

રે! ગંધ તે નથી જ્ઞાન, જેથી ગંધ કંઈ જાણે નહિ,
તે કારણે છે જ્ઞાન જુદું, ગંધ જુદી—જિન કહે; ૩૯૪.
રે! રસ નથી કંઈ જ્ઞાન, જેથી રસ કંઈ જાણે નહિ,
તે કારણે છે જ્ઞાન જુદું, રસ જુદો—જિનવર કહે; ૩૯૫.
રે! સ્પર્શ તે નથી જ્ઞાન, જેથી સ્પર્શ કંઈ જાણે નહિ,
તે કારણે છે જ્ઞાન જુદું, સ્પર્શ જુદો—જિન કહે; ૩૯૬.
રે! કર્મ તે નથી જ્ઞાન, જેથી કર્મ કંઈ જાણે નહિ,
તે કારણે છે જ્ઞાન જુદું, કર્મ જુદું—જિન કહે; ૩૯૭.
રે! ધર્મ તે નથી જ્ઞાન, જેથી ધર્મ કંઈ જાણે નહિ,
તે કારણે છે જ્ઞાન જુદું, ધર્મ જુદો—જિન કહે; ૩૯૮.
અધર્મ તે નથી જ્ઞાન, જેથી અધર્મ કંઈ જાણે નહિ,
તે કારણે છે જ્ઞાન જુદું, અધર્મ જુદો—જિન કહે; ૩૯૯.

कालो णाणं ण हवइ जह्मा कालो ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं कालं जिणा विंति ॥ ४०० ॥
आयासं पि ण णाणं जह्मायासं ण याणए किंचि ।
तह्मायासं अण्णं अण्णं णाणं जिणा विंति ॥ ४०१ ॥
णज्झवसाणं णाणं अज्झवसाणं अचेदणं जह्मा ।
तह्मा अण्णं णाणं अज्झवसाणं तहा अण्णं ॥ ४०२ ॥
जह्मा जाणइ णिच्चं तह्मा जीवो दु जाणओ णाणी ।
णाणं च जाणयादो अव्वदिरित्तं मुणेयव्वं ॥ ४०३ ॥
णाणं सम्मादिट्ठं दु संजमं सुत्तमंगपुव्वगयं ।
धम्माधम्मं च तहा पव्वज्जं अब्भुवंति बुहा ॥ ४०४ ॥

शास्त्रं ज्ञानं न भवति यस्माच्छास्त्रं न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यच्छास्त्रं जिना विदंति ॥ ३९० ॥
शब्दो ज्ञानं न भवति यस्माच्छब्दो न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं शब्दं जिना विदंति ॥ ३९१ ॥

રે! કાળ ને નથી જ્ઞાન, જેથી કાળ કંઈ જાણે નહિ,
તે કારણે છે જ્ઞાન જુદું, કાળ જુદો—જિન કહે; ૪૦૦.
આકાશ ને નથી જ્ઞાન, જે આકાશ કંઈ જાણે નહિ,
તે કારણે આકાશ જુદું, જ્ઞાન જુદું—જિન કહે; ૪૦૧.
નહિ જ્ઞાન અધ્યવસાન છે, જેથી અચેતન તેહ છે,
તે કારણે છે જ્ઞાન જુદું, જુદું અધ્યવસાન છે. ૪૦૨.
રે! સર્વદા જાણે જ તેથી જીવ જ્ઞાયક [illegible] છે,
તે જ્ઞાન છે જ્ઞાયકથી અવ્યતિરિક્ત એમ [illegible] ૪૦૩.
સમ્યક્ત્વ, ને સંયમ, તથા પૂર્વાંગ [illegible] ને. ૪૦૪.
ધ[illegible], દીક્ષા વળી, બુધ [illegible]

रूपं ज्ञानं न भवति यस्माद्रूपं न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यद्रूपं जिना विंदंति ॥ ३९२ ॥
वर्णो ज्ञानं न भवति यस्माद्वर्णो न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं वर्णं जिना विंदंति ॥ ३९३ ॥
गंधो ज्ञानं न भवति यस्माद्गंधो न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं गंधं जिना विंदंति ॥ ३९४ ॥
न रसस्तु भवति ज्ञानं यस्मात्तु रसो न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानं रसं चान्यं जिना विंदंति ॥ ३९५ ॥
स्पर्शो न भवति ज्ञानं यस्मात्स्पर्शो न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं स्पर्शं जिना विंदंति ॥ ३९६ ॥
कर्म ज्ञानं न भवति यस्मात्कर्म न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यत्कर्म जिना विंदंति ॥ ३९७ ॥
धर्मो ज्ञानं न भवति यस्माद्धर्मो न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं धर्मं जिना विंदंति ॥ ३९८ ॥
ज्ञानमधर्मो न भवति यस्मादधर्मो न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यमधर्मं जिना विंदंति ॥ ३९९ ॥
कालो ज्ञानं न भवति यस्मात्कालो न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं कालं जिना विंदंति ॥ ४०० ॥
आकाशमपि न ज्ञानं यस्मादाकाशं न जानाति किंचित् ।
तस्मादाकाशमन्यदन्यज्ज्ञानं जिना विंदंति ॥ ४०१ ॥
नाध्यवसानं ज्ञानमध्यवसानमचेतनं यस्मात् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमध्यवसानं तथान्यत् ॥ ४०२ ॥
यस्माज्जानाति नित्यं तस्माज्जीवस्तु ज्ञायको ज्ञानी ।
ज्ञानं च ज्ञायकादव्यतिरिक्तं ॥ ४०३ ॥
ज्ञानं सम्यग्दृष्टिं तु संयमं
धर्माधर्मं च ०४ ॥

અન્વયાર્થ:—[शास्त्रं] શાસ્ત્ર [ज्ञानं न भवति] જ્ઞાન નથી [यस्मात्] કારણ કે [शास्त्रं किंचित् न जानाति] શાસ્ત્ર કાંઈ જાણતું નથી (–જડ છે), [तस्मात्] માટે [ज्ञानं अन्यत्] જ્ઞાન અન્ય છે, [शास्त्रं अन्यत्] શાસ્ત્ર અન્ય છે—[जिना: विंदंति] એમ જિનદેવો જાણે છે—કહે છે. [शब्द: ज्ञानं न भवति] શબ્દ જ્ઞાન નથી [यस्मात्] કારણ કે [शब्द: किंचित् न जानाति] શબ્દ કાંઈ જાણતો નથી, [तस्मात्] માટે [ज्ञानं अन्यत्] જ્ઞાન અન્ય છે, [शब्दं अन्यं] શબ્દ અન્ય છે—[जिना: विंदंति] એમ જિનદેવો જાણે છે—કહે છે. [रूपं ज्ञानं न भवति] રૂપ જ્ઞાન નથી [यस्मात्] કારણ કે [रूपं किंचित् न जानाति] રૂપ કાંઈ જાણતું નથી, [तस्मात्] માટે [ज्ञानं अन्यत्] જ્ઞાન અન્ય છે, [रूपं अन्यत्] રૂપ અન્ય છે—[जिना: विंदंति] એમ જિનદેવો કહે છે. [वर्ण: ज्ञानं न भवति] વર્ણ જ્ઞાન નથી [यस्मात्] કારણ કે [वर्ण: किंचित् न जानाति] વર્ણ કાંઈ જાણતો નથી, [तस्मात्] માટે [ज्ञानं अन्यत्] જ્ઞાન અન્ય છે, [वर्णं अन्यं] વર્ણ અન્ય છે—[जिना: विंदंति] એમ જિનદેવો કહે છે. [गंध: ज्ञानं न भवति] ગંધ જ્ઞાન નથી [यस्मात्] કારણ કે [गंध: किंचित् न जानाति] ગંધ કાંઈ જાણતી નથી, [तस्मात्] માટે [ज्ञानं अन्यत्] જ્ઞાન અન્ય છે, [गंधं अन्यं] ગંધ અન્ય છે—[जिना: विंदंति] એમ જિનદેવો કહે છે. [रस: तु ज्ञानं न भवति] રસ જ્ઞાન નથી [यस्मात् तु] કારણ કે [रस: किंचित् न जानाति] રસ કાંઈ જાણતો નથી, [तस्मात्] માટે [ज्ञानं अन्यत्] જ્ઞાન અન્ય છે [रसं च अन्यं] અને રસ અન્ય છે—[जिना: विंदंति] એમ જિનદેવો કહે છે. [स्पर्श: ज्ञानं न भवति] સ્પર્શ જ્ઞાન નથી [यस्मात्] કારણ કે [स्पर्श: किंचित् न जानाति] સ્પર્શ કાંઈ જાણતો નથી, [तस्मात्] માટે [ज्ञानं अन्यत्] જ્ઞાન અન્ય છે, [स्पर्शं अन्यं] સ્પર્શ અન્ય છે—[जिना: विंदंति] એમ જિનદેવો કહે છે. [कर्म ज्ञानं न भवति] કર્મ જ્ઞાન નથી [यस्मात्] કારણ કે [कर्म किंचित् न जानाति] કર્મ કાંઈ જાણતું નથી, [तस्मात्] માટે [ज्ञानं अन्यत्] જ્ઞાન અન્ય છે, [कर्म अन्यत्] કર્મ અન્ય છે—[जिना: विंदंति] એમ જિનદેવો કહે છે. [धर्म: ज्ञानं न भवति] ધર્મ (અર્થાત્ ધર્માસ્તિકાય) જ્ઞાન નથી [यस्मात्] કારણ કે [धर्म: किंचित् न जानाति] ધર્મ કાંઈ જાણતો નથી, [तस्मात्] માટે [ज्ञानं अन्यत्] જ્ઞાન અન્ય છે, [धर्मं अन्यं] ધર્મ અન્ય છે—[जिना: विंदंति] એમ જિનદેવો કહે છે. [अधर्म: ज्ञानं न भवति] અધર્મ (અર્થાત્ અધર્માસ્તિકાય) જ્ઞાન નથી [यस्मात्] કારણ કે [अधर्म: किंचित् न जानाति] અધર્મ કાંઈ જાણતો નથી, [तस्मात्] માટે [ज्ञानं अन्यत्] જ્ઞાન અન્ય છે, [अधर्मं अन्यं] અધર્મ અન્ય છે—[जिना: विंदंति] એમ જિનદેવો કહે છે. [काल: ज्ञानं न भवति] કાળ જ્ઞાન નથી [यस्मात्] કારણ કે [काल: किंचित् न जानाति] કાળ કાંઈ જાણતો નથી, [तस्मात्] માટે [ज्ञानं अन्यत्] જ્ઞાન અન્ય છે,

[कालं अन्यं] કાળ અન્ય છે—[जिनाः विंदंति] એમ જિનદેવો કહે છે. [आकाश-
मपि ज्ञानं न] આકાશ પણ જ્ઞાન નથી [यस्मात्] કારણ કે [आकाशं किंचित् न
जानाति] આકાશ કાંઈ જાણતું નથી, [तस्मात्] માટે [ज्ञानं अन्यत्] જ્ઞાન અન્ય
છે, [आकाशं अन्यत्] આકાશ અન્ય છે—[जिनाः विंदंति] એમ જિનદેવો કહે છે.
[अध्यवसानं ज्ञानं न] અધ્યવસાન જ્ઞાન નથી [यस्मात्] કારણ કે [अध्यवसानं
अचेतनं] અધ્યવસાન અચેતન છે, [तस्मात्] માટે [ज्ञानं अन्यत्] જ્ઞાન અન્ય છે
[तथा अध्यवसानं अन्यत्] તથા અધ્યવસાન અન્ય છે (–એમ જિનદેવો કહે છે).

[यस्मात्] કારણ કે [नित्यं जानाति] (જીવ) નિરંતર જાણે છે [तस्मात्]
માટે [ज्ञायकः जीवः तु] જ્ઞાયક એવો જીવ [ज्ञानी] જ્ઞાની (-જ્ઞાનવાળો, જ્ઞાનસ્વરૂપ)
છે, [ज्ञानं च] અને જ્ઞાન [ज्ञायकात् अव्यतिरिक्तं] જ્ઞાયકથી અવ્યતિરિક્ત છે (–અ-
ભિન્ન છે, જુદું નથી) [ज्ञातव्यं] એમ જાણવું.

[बुधाः] બુધ પુરુષો (અર્થાત્ જ્ઞાની જનો) [ज्ञानं] જ્ઞાનને જ [सम्यग्दृष्टिं
तु] સમ્યગ્દૃષ્ટિ, [संयमं] (જ્ઞાનને જ) સંયમ, [अंगपूर्वगतं सूत्रं] અંગપૂર્વગત
સૂત્ર, [धर्माधर्मं च] ધર્મ-અધર્મ (પુણ્ય-પાપ) [तथा प्रव्रज्यां] તથા દીક્ષા [अभ्यु-
पयान्ति] માને છે.

ટીકાઃ—શ્રુત (અર્થાત્ વચનાત્મક દ્રવ્યશ્રુત) જ્ઞાન નથી, કારણ કે શ્રુત
અચેતન છે; માટે જ્ઞાનને અને શ્રુતને વ્યતિરેક (અર્થાત્ ભિન્નતા) છે. શબ્દ જ્ઞાન
નથી, કારણ કે શબ્દ (પુદ્ગલદ્રવ્યનો પર્યાય છે,) અચેતન છે; માટે જ્ઞાનને અને
શબ્દને વ્યતિરેક (અર્થાત્ ભેદ) છે. રૂપ જ્ઞાન નથી, કારણ કે રૂપ (પુદ્ગલદ્રવ્યનો
ગુણ છે,) અચેતન છે; માટે જ્ઞાનને અને રૂપને વ્યતિરેક છે (અર્થાત્ બન્ને જુદાં છે).
વર્ણ જ્ઞાન નથી, કારણ કે વર્ણ (પુદ્ગલદ્રવ્યનો ગુણ છે,) અચેતન છે; માટે જ્ઞાનને
અને વર્ણને વ્યતિરેક છે (અર્થાત્ જ્ઞાન અન્ય છે, વર્ણ અન્ય છે). ગંધ જ્ઞાન નથી,
કારણ કે ગંધ (પુદ્ગલદ્રવ્યનો ગુણ છે,) અચેતન છે; માટે જ્ઞાનને અને ગંધને
વ્યતિરેક (–ભેદ, ભિન્નતા) છે. રસ જ્ઞાન નથી, કારણ કે રસ (પુદ્ગલદ્રવ્યનો ગુણ છે,)
અચેતન છે; માટે જ્ઞાનને અને રસને વ્યતિરેક છે. સ્પર્શ જ્ઞાન નથી, કારણ કે સ્પર્શ
(પુદ્ગલદ્રવ્યનો ગુણ છે,) અચેતન છે; માટે જ્ઞાનને અને સ્પર્શને વ્યતિરેક છે. કર્મ
જ્ઞાન નથી, કારણ કે કર્મ અચેતન છે; માટે જ્ઞાનને અને કર્મને વ્યતિરેક છે. ધર્મ
(-ધર્મદ્રવ્ય) જ્ઞાન નથી, કારણ કે ધર્મ અચેતન છે; માટે જ્ઞાનને અને ધર્મને વ્યતિરેક
છે. અધર્મ (-અધર્મદ્રવ્ય) જ્ઞાન નથી, કારણ કે અધર્મ અચેતન છે; માટે જ્ઞાનને
અને અધર્મને વ્યતિરેક છે. કાળ (-કાળદ્રવ્ય) જ્ઞાન નથી, કારણ કે કાળ અચેતન છે;
માટે જ્ઞાનને અને કાળને વ્યતિરેક છે. આકાશ (-આકાશદ્રવ્ય) જ્ઞાન નથી, કારણ કે

ાકાશ અચેતન છે; માટે જ્ઞાનને અને આકાશને વ્યતિરેક છે. અધ્યવસાન જ્ઞાન નથી, રણ કે અધ્યવસાન અચેતન છે; માટે જ્ઞાનને અને (કર્મના ઉદયની પ્રવૃત્તિરૂપ) ધ્યવસાનને વ્યતિરેક છે. આમ આ રીતે જ્ઞાનનો સમસ્ત પરદ્રવ્યો સાથે વ્યતિરેક શ્ચયસાધિત દેખવો (અર્થાત્ નિશ્ચય વડે સિદ્ધ થયેલો સમજવો—અનુભવવો).

હવે, જીવ જ એક જ્ઞાન છે, કારણ કે જીવ ચેતન છે; માટે જ્ઞાનને અને વને અવ્યતિરેક (-અભિન્નતા) છે. વળી જ્ઞાનનો જીવની સાથે વ્યતિરેક જરા પણ કનીય નથી (અર્થાત્ જ્ઞાનની જીવથી ભિન્નતા હશે એમ જરાય શંકા કરવાયોગ્ય થી), કારણ કે જીવ પોતે જ જ્ઞાન છે. આ પ્રમાણે (જ્ઞાન જીવથી અભિન્ન) હોવાથી, ાન જ સમ્યગ્દૃષ્ટિ છે, જ્ઞાન જ સંયમ છે, જ્ઞાન જ અંગપૂર્વરૂપ સૂત્ર છે, જ્ઞાન જ ર્મ-અધર્મ (અર્થાત્ પુણ્ય-પાપ) છે, જ્ઞાન જ પ્રવ્રજ્યા (-દીક્ષા, નિશ્ચયચારિત્ર) —એમ જ્ઞાનનો જીવપર્યાયોની સાથે પણ અવ્યતિરેક નિશ્ચયસાધિત દેખવો (અર્થાત્ શ્ચય વડે સિદ્ધ થયેલો સમજવો—અનુભવવો).

હવે, એ પ્રમાણે સર્વ પરદ્રવ્યો સાથે વ્યતિરેક વડે અને સર્વ દર્શનાદિ વસ્વભાવો સાથે અવ્યતિરેક વડે અતિવ્યાપ્તિને અને અવ્યાપ્તિને દૂર કરતું થકું, નાદિ વિભ્રમ જેનું મૂળ છે એવા ધર્મ-અધર્મરૂપ (પુણ્ય-પાપરૂપ, શુભ-અશુભરૂપ) સમયને દૂર કરીને, પોતે જ પ્રવ્રજ્યારૂપને પામીને (અર્થાત્ પોતે જ નિશ્ચયચારિત્રરૂપ ક્ષાપણાને પામીને), દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રમાં સ્થિતિરૂપ સ્વસમયને પ્રાપ્ત કરીને, મોક્ષ- ાર્ગને પોતામાં જ પરિણત કરીને, જેણે સંપૂર્ણ વિજ્ઞાનઘનસ્વભાવને પ્રાપ્ત કર્યો છે વું, ત્યાગ-ગ્રહણથી રહિત, સાક્ષાત્ સમયસારભૂત, પરમાર્થરૂપ શુદ્ધજ્ઞાન એક વસ્થિત (-નિશ્ચળ રહેલું) દેખવું (અર્થાત્ પ્રત્યક્ષ સ્વસંવેદનથી અનુભવવું).

ભાવાર્થ:—અહીં જ્ઞાનને સર્વ પરદ્રવ્યોથી ભિન્ન અને પોતાના પર્યાયોથી ભિન્ન બતાવ્યું, તેથી અતિવ્યાપ્તિ અને અવ્યાપ્તિ નામના બે લક્ષણના દોષો તે દૂર યા. આત્માનું લક્ષણ ઉપયોગ છે, અને ઉપયોગમાં જ્ઞાન પ્રધાન છે; તે (જ્ઞાન) અન્ય ચેતન દ્રવ્યોમાં નથી તેથી તે અતિવ્યાપ્તિવાળું નથી, અને પોતાની સર્વ અવસ્થા- ામાં છે તેથી અવ્યાપ્તિવાળું નથી. આ રીતે જ્ઞાનલક્ષણ કહેવાથી અતિવ્યાપ્તિ અને વ્યાપ્તિ દોષો આવતા નથી.

અહીં જ્ઞાનને જ પ્રધાન કરીને આત્માનો અધિકાર છે, કારણ કે જ્ઞાનલક્ષણથી આત્મા સર્વ પરદ્રવ્યોથી ભિન્ન અનુભવગોચર થાય છે. જોકે આત્મામાં અનંત ર્મો છે, તોપણ તેમાંના કેટલાક તો છદ્મસ્થને અનુભવગોચર જ નથી; તે ધર્મો ન હોવાથી છદ્મસ્થ જ્ઞાની આત્માને કઈ રીતે ઓળખે? વળી કેટલાક ધર્મો અનુભવગોચર

છે, પરંતુ તેમાંના કેટલાક તો—અસ્તિત્વ, વસ્તુત્વ, પ્રમેયત્વ આદિ તો—અન્ય દ્રવ્યો સાથે સાધારણ અર્થાત્ સમાન છે માટે તેમને કહેવાથી જુદો આત્મા જાણી શકાય નહિ, અને કેટલાક (ધર્મો) પરદ્રવ્યના નિમિત્તથી થયેલા છે તેમને કહેવાથી પરમાર્થભૂત આત્માનું શુદ્ધ સ્વરૂપ કેવી રીતે જણાય? માટે જ્ઞાનને કહેવાથી જ જ્ઞાની આત્માને ઓળખી શકે છે.

અહીં જ્ઞાનને આત્માનું લક્ષણ કહ્યું છે એટલું જ નહિ, પણ જ્ઞાનને આત્મા જ કહ્યો છે; કારણ કે અભેદવિવક્ષામાં ગુણગુણીનો અભેદ હોવાથી, જ્ઞાન તે જ આત્મા છે. અભેદવિવક્ષામાં જ્ઞાન કહો કે આત્મા કહો—કાંઈ વિરોધ નથી; માટે અહીં જ્ઞાન કહેવાથી આત્મા જ સમજવો.

ટીકામાં છેવટે એમ કહેવામાં આવ્યું કે—જે, પોતામાં અનાદિ અજ્ઞાનથી થતી શુભાશુભ ઉપયોગરૂપ પરસમયની પ્રવૃત્તિને દૂર કરીને, સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રમાં પ્રવૃત્તિરૂપ સ્વસમયને પ્રાપ્ત કરીને, એવા સ્વસમયરૂપ પરિણમનસ્વરૂપ મોક્ષમાર્ગમાં પોતાને પરિણમાવીને, સંપૂર્ણવિજ્ઞાનઘનસ્વભાવને પામ્યું છે, અને જેમાં કાંઈ ત્યાગ-ગ્રહણ નથી, એવા સાક્ષાત્ સમયસારસ્વરૂપ, પરમાર્થભૂત, નિશ્ચળ રહેલા, શુદ્ધ, પૂર્ણ જ્ઞાનને (પૂર્ણ આત્મદ્રવ્યને) દેખવું. ત્યાં 'દેખવું' ત્રણ પ્રકારે સમજવું. શુદ્ધનયનું જ્ઞાન કરીને પૂર્ણ જ્ઞાનનું શ્રદ્ધાન કરવું તે પહેલા પ્રકારનું દેખવું છે. તે અવિરત આદિ અવસ્થામાં પણ હોય છે. જ્ઞાન-શ્રદ્ધાન થયા પછી બાહ્ય સર્વ પરિગ્રહનો ત્યાગ કરી તેનો (પૂર્ણ જ્ઞાનનો) અભ્યાસ કરવો, ઉપયોગને જ્ઞાનમાં જ થંભાવવો, જેવું શુદ્ધનયથી પોતાના સ્વરૂપને સિદ્ધ સમાન જાણ્યું-શ્રદ્ધ્યું હતું તેવું જ ધ્યાનમાં લઈને ચિત્તને એકાગ્ર—સ્થિર કરવું, ફરી ફરી તેનો જ અભ્યાસ કરવો, તે બીજા પ્રકારનું દેખવું છે. આ દેખવું અપ્રમત્ત દશામાં હોય છે. જ્યાંસુધી એવા અભ્યાસથી કેવળજ્ઞાન ન ઉપજે ત્યાંસુધી તે અભ્યાસ નિરંતર રહે. આ, દેખવાનો બીજો પ્રકાર થયો. અહીં સુધી તો પૂર્ણ જ્ઞાનનું શુદ્ધનયના આશ્રયે પરોક્ષ દેખવું છે. કેવળજ્ઞાન ઉપજે ત્યારે સાક્ષાત્ દેખવું થાય છે તે ત્રીજા પ્રકારનું દેખવું છે. તે સ્થિતિમાં જ્ઞાન સર્વ વિભાવોથી રહિત થયું થકું સર્વનું દેખનાર-જાણનાર છે, તેથી આ ત્રીજા પ્રકારનું દેખવું તે પૂર્ણ જ્ઞાનનું પ્રત્યક્ષ દેખવું છે.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

अन्येभ्यो व्यतिरिक्तमात्मनियतं बिभ्रत्पृथग्वस्तुता-
मादानोज्झनशून्यमेतदमलं ज्ञानं तथावस्थितम् ।

(અનુષ્ટુપ)

व्यतिरिक्तं परद्रव्यादेवं ज्ञानमवस्थितम् ।
कथमाहारकं तत्स्यादेन देहोऽस्य शंक्यते ॥ २३७ ॥

અર્થઃ—આમ (પૂર્વોક્ત રીતે) જ્ઞાન પરદ્રવ્યથી જુદું અવસ્થિત (-નિશ્ચળ રહેલું) છે; તે (જ્ઞાન) આહારક (અર્થાત્ કર્મ-નોકર્મરૂપ આહાર કરનારું) કેમ હોય કે જેથી તેને દેહની શંકા કરાય? (જ્ઞાનને દેહ હોઈ શકે જ નહિ કારણ કે તેને કર્મ-નોકર્મરૂપ આહાર જ નથી). ૩૯૦–૪૦૪.

હવે આ અર્થને ગાથામાં કહે છેઃ—

अत्ता जस्सामुत्तो ण हु सो आहारओ हवइ एवं ।
आहारो खलु मुत्तो जम्हा सो पुग्गलमओ उ ॥ ४०५ ॥
ण वि सक्कइ घित्तुं जं ण विमोत्तुं जं य जं परद्दव्वं ।
सो को वि य तस्स गुणो पाउगिओ विस्ससो वा वि ॥ ४०६ ॥
तम्हा उ जो विसुद्धो चेया सो णेव गिण्हए किंचि ।
णेव विमुंचइ किंचि वि जीवाजीवाण दव्वाणं ॥ ४०७ ॥

आत्मा यस्यामूर्तो न खलु स आहारको भवत्येवम् ।
आहारः खलु मूर्तो यस्मात्स पुद्गलमयस्तु ॥ ४०५ ॥
नापि शक्यते ग्रहीतुं यत् न विमोक्तुं यच्च यत्परद्रव्यम् ।
स कोऽपि च तस्य गुणः प्रायोगिको वैस्रसो वापि ॥ ४०६ ॥

એમ આત્મા જેનો અમૂર્તિક તે નથી આહારક ખરે,
પુદ્ગલમયી છે આહાર તેથી આહાર તો મૂર્તિક ખરે. ૪૦૫
જે દ્રવ્ય છે પર તેહને ન ગ્રહી, ન છોડી શકાય છે,
એવો જ તેનો ગુણ કો પ્રાયોગી ને વૈસ્રસિક છે. ૪૦૬
તેથી ખરે જે શુદ્ધ આત્મા તે નહિ કંઈ પણ ગ્રહે,
છોડે નહીં વળી કંઈ પણ જીવ ને અજીવ દ્રવ્યો વિષે. ૪૦૭

तम्मात्तु यो विशुद्धश्चेतयिता स नैव गृह्णाति किंचित् ।
नैव विमुंचति किंचिदपि जीवाजीवयोर्द्रव्ययोः ॥ ४०७ ॥

અન્વયાર્થ:—[एवं] એ રીતે [यस्य आत्मा] જેનો આત્મા [अमूर्तः]
ર્તિક છે [सः खलु] તે ખરેખર [आहारकः न भवति] આહારક નથી; [आहारः
] આહાર તો [मूर्तः] મૂર્તિક છે [यस्मात्] કારણ કે [सः तु पुद्गलमयः] તે
ગલમય છે.

[यत् परद्रव्य] જે પરદ્રવ્ય છે [न अपि शक्यते ग्रहीतुं यत्] તે ગ્રહી
તું નથી [न विमोक्तुं यत् च] તથા છોડી શકાતું નથી, [सः कोऽपि] એવો જ
[तस्य] તેનો (-આત્માનો) [प्रायोगिकः वाऽपि वैस्रसः गुणः] પ્રાયોગિક તેમ
વૈસ્રસિક ગુણ છે.

[तस्मात् तु] માટે [यः विशुद्धः चेतयिता] જે વિશુદ્ધ આત્મા છે [सः]
[जीवाजीवयोः द्रव्ययोः] જીવ અને અજીવ દ્રવ્યોમાં (-પરદ્રવ્યોમાં) [किंचित्
ব गृह्णाति] કાંઈ પણ ગ્રહતો નથી [किंचित् अपि नैव विमुंचति] તથા કાંઈ પણ
ડતો નથી.

ટીકા:—જ્ઞાન પરદ્રવ્યને કાંઈ પણ (જરા પણ) ગ્રહતું નથી તથા છોડતું
થી, કારણ કે પ્રાયોગિક (અર્થાત્ પર નિમિત્તથી થયેલા) ગુણના સામર્થ્યથી તેમ
જ વૈસ્રસિક (અર્થાત્ સ્વાભાવિક) ગુણના સામર્થ્યથી જ્ઞાન વડે પરદ્રવ્યનું ગ્રહવું
તથા છોડવું અશક્ય છે. વળી, (કર્મ-નોકર્માદિરૂપ) પરદ્રવ્ય જ્ઞાનનો—અમૂર્તિક
આત્મદ્રવ્યનો—આહાર નથી, કારણ કે તે મૂર્તિક પુદ્ગલદ્રવ્ય છે; (અમૂર્તિકને મૂર્તિક
આહાર હોય નહિ). તેથી જ્ઞાન આહારક નથી. માટે જ્ઞાનને દેહની શંકા ન કરવી.

(અહીં 'જ્ઞાન' કહેવાથી 'આત્મા' સમજવો; કારણ કે, અભેદ વિવક્ષાથી
લક્ષણમાં જ લક્ષ્યનો વ્યવહાર કરાય છે. આ ન્યાયે ટીકાકાર આચાર્યદેવ આત્માને
જ્ઞાન જ કહેતા આવ્યા છે.)

ભાવાર્થ:—જ્ઞાનસ્વરૂપ આત્મા અમૂર્તિક છે અને આહાર તો કર્મ-નોકર્મરૂપ
પુદ્ગલમય મૂર્તિક છે; તેથી પરમાર્થે આત્માને પુદ્ગલમય આહાર નથી. વળી આત્માનો
એવો જ સ્વભાવ છે કે તે પરદ્રવ્યને તો ગ્રહતો જ નથી;—સ્વભાવરૂપ પરિણમો કે
વિભાવરૂપ પરિણમો, પોતાનાં જ પરિણામનાં ગ્રહણત્યાગ છે, પરદ્રવ્યનાં ગ્રહણત્યાગ
તો જરા પણ નથી.

આ રીતે આત્માને આહાર નહિ હોવાથી તેને દેહ જ નથી.

આત્માને દેહ જ નહિ હોવાથી, પુદ્‌ગલમય દેહસ્વરૂપ લિંગ (-વેષ, બ્રે બાહ્ય ચિહ્ન) મોક્ષનું કારણ નથી—એવા અર્થનું, આગળની ગાથાઓની સૂચના કાવ્ય હવે કહે છે:—

(અનુષ્ટુપ્)

एवं ज्ञानस्य शुद्धस्य देह एव न विद्यते ।
ततो देहमयं ज्ञातुर्न लिंगं मोक्षकारणम् ॥ २३८ ॥

અર્થ:—આમ શુદ્ધ જ્ઞાનને દેહ જ નથી; તેથી જ્ઞાતાને દેહમય લિંગ મોક્ષ કારણ નથી. ૪૦૫-૪૦૭.

હવે આ અર્થને ગાથામાં કહે છે:—

पासंडीलिंगाणि व गिहिलिंगाणि व बहुप्पयाराणि ।
घित्तुं वदंति मूढा लिंगमिणं मोक्खमग्गोत्ति ॥ ४०८ ॥
ण दु होइ मोक्खमग्गो लिंगं जं देहणिम्ममा अरिहा ।
लिंगं मुइत्तु दंसणणाणचरित्ताणि सेयंति ॥ ४०९ ॥

पाषंडिलिंगानि वा गृहिलिंगानि वा बहुप्रकाराणि ।
गृहीत्वा वदन्ति मूढा लिंगमिदं मोक्षमार्ग इति ॥ ४०८ ॥
न तु भवति मोक्षमार्गो लिंगं यद्देहनिर्ममा अर्हंतः ।
लिंगं मुक्त्वा दर्शनज्ञानचारित्राणि सेवन्ते ॥ ४०९ ॥

અન્વયાર્થ:—[बहुप्रकाराणि] બહુ પ્રકારનાં [पाषंडिलिंगानि वा] મુનિ લિંગોને [गृहिलिंगानि वा] અથવા ગૃહીલિંગોને [गृहीत्वा] ગ્રહણ કરીને [मूढाः] મૂઢ (અજ્ઞાની) જનો [वदंति] એમ કહે છે કે '[इदं लिंगं] આ (બાહ્ય) લિંગ [मोक्षमार्गः इति] મોક્ષમાર્ગ છે.'

બહુવિધનાં મુનિલિંગને અથવા ગૃહસ્થીલિંગને
ગ્રહીને કહે છે મૂઢજન 'આ લિંગ મુક્તિમાર્ગ છે.' ૪૦૮.
પણ લિંગ મુક્તિમાર્ગ નહિ, અર્હંત નિર્મમ દેહમાં
બસ લિંગ છોડી જ્ઞાન ને ચારિત્ર, દર્શન સેવતા. ૪૦૯.

[તુ] પરંતુ [લિંગં] લિંગ [મોક્ષમાર્ગઃ ન ભવતિ] મોક્ષમાર્ગ નથી; [યત્] કારણ કે [અર્હન્તઃ] અર્હંતદેવો [દેહનિર્મમાઃ] દેહ પ્રત્યે નિર્મમ વર્તતા થકા [લિંગં મુક્ત્વા] લિંગને છોડીને [દર્શનજ્ઞાનચારિત્રાણિ સેવન્તે] દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રને જ સેવે છે.

ટીકા:—કેટલાક લોકો અજ્ઞાનથી દ્રવ્યલિંગને મોક્ષમાર્ગ માનતા થકા મોહથી દ્રવ્યલિંગને જ ગ્રહણ કરે છે. તે (દ્રવ્યલિંગને મોક્ષમાર્ગ માનીને ગ્રહણ કરવું તે) અનુપપન્ન અર્થાત્ અયુક્ત છે; કારણ કે બધાય ભગવાન અર્હંતદેવોને, શુદ્ધજ્ઞાનમયપણું હોવાને લીધે દ્રવ્યલિંગના આશ્રયભૂત શરીરના મમકારનો ત્યાગ હોવાથી, શરીરાશ્રિત દ્રવ્યલિંગના ત્યાગ વડે દર્શનજ્ઞાનચારિત્રની મોક્ષમાર્ગપણે ઉપાસના જોવામાં આવે છે (અર્થાત્ તેઓ શરીરાશ્રિત દ્રવ્યલિંગનો ત્યાગ કરીને દર્શનજ્ઞાનચારિત્રને મોક્ષમાર્ગ તરીકે સેવતા જોવામાં આવે છે).

ભાવાર્થ:—જો દેહમય દ્રવ્યલિંગ મોક્ષનું કારણ હોત તો અર્હંતદેવ વગેરે દેહનું મમત્વ છોડી દર્શનજ્ઞાનચારિત્રને શા માટે સેવત? દ્રવ્યલિંગથી જ મોક્ષને પામત! માટે એ નક્કી થયું કે—દેહમય લિંગ મોક્ષમાર્ગ નથી, પરમાર્થે દર્શનજ્ઞાનચારિત્રરૂપ આત્મા જ મોક્ષનો માર્ગ છે. ૪૦૮—૪૦૯.

હવે એ જ સિદ્ધ કરે છે (અર્થાત્ દ્રવ્યલિંગ મોક્ષમાર્ગ નથી, દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર જ મોક્ષમાર્ગ છે—એમ સિદ્ધ કરે છે):—

ण वि एस मोक्खमग्गो पासंडीगिहिमयाणि लिंगाणि ।
दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गं जिणा विंति ॥ ४१० ॥

नाप्येष मोक्षमार्गः पाषंडिगृहिमयानि लिंगानि ।
दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गं जिना विदंति ॥ ४१० ॥

અન્વયાર્થ:—[પાષંડિગૃહિમયાનિ લિંગાનિ] મુનિનાં અને ગૃહસ્થનાં લિંગો [એષઃ] એ [મોક્ષમાર્ગઃ ન અપિ] મોક્ષમાર્ગ નથી; [દર્શનજ્ઞાનચારિત્રાણિ] દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રને [જિનાઃ] જિનદેવો [મોક્ષમાર્ગં વિદંતિ] મોક્ષમાર્ગ કહે છે.

ટીકા:—દ્રવ્યલિંગ ખરેખર મોક્ષમાર્ગ નથી, કારણ કે તે (દ્રવ્યલિંગ) શરીરાશ્રિત હોવાથી પરદ્રવ્ય છે. દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર જ મોક્ષમાર્ગ છે, કારણ કે તેઓ આત્માશ્રિત હોવાથી સ્વદ્રવ્ય છે.

મુનિલિંગ ને ગૃહીલિંગ—એ લિંગો ન મુક્તિમાર્ગ છે,
ચારિત્ર-દર્શન-જ્ઞાનને બસ મોક્ષમાર્ગ જિનો કહે. ૪૧૦.

ભાવાર્થઃ—[illegible] કર્મના [illegible] આત્મપરિણામ ([illegible]
[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] સાગારણગારએહિં વા ગહિદે ।
[illegible] અપ્પાણં જુંજ મોક્ખપહે ॥ ૪૧૧ ॥

[illegible] સાગારૈરનગારકૈર્વા ગૃહીતાનિ ।
[illegible] મોક્ષપથે ॥ ૪૧૧ ॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

નથી, પરંતુ નિયમ કર્યો છે કે તે બન્નેનું પણ ભજન કરીને પરમાર્થે મોક્ષમાર્ગમાં સેવવાથી મોક્ષ થાય છે, કેવળ લિંગમાત્રથી—વેષમાત્રથી મોક્ષ નથી.

હવે આ જ અર્થને દૃઢ કરતી આગળની ગાથાની સૂચનારૂપ શ્લોક કહે છે:—

(અનુષ્ટુપ)

दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मा तत्त्वमात्मनः ।
एक एव सदा सेव्यो मोक्षमार्गो मुमुक्षुणा ॥ २३९ ॥

અર્થ:—આત્માનું તત્ત્વ દર્શનજ્ઞાનચારિત્રત્રયાત્મક છે (અર્થાત્ આત્માનું યથાર્થ રૂપ દર્શન, જ્ઞાન ને ચારિત્રના ત્રિકસ્વરૂપ છે); તેથી મોક્ષના ઇચ્છક પુરુષે (આ દર્શનજ્ઞાનચારિત્રસ્વરૂપ) મોક્ષમાર્ગ એક જ સદા સેવવાયોગ્ય છે. ૨૩૯.

હવે આ જ ઉપદેશ ગાથાદ્વારા કરે છે:—

मोक्खपहे अप्पाणं ठवेहि तं चेव झाहि तं चेय ।
तत्थेव विहर णिच्चं मा विहरसु अण्णदव्वेसु ॥ ४१२ ॥

मोक्षपथे आत्मानं स्थापय तं चैव ध्यायस्व तं चेतयस्व ।
तत्रैव विहर नित्यं मा विहार्षीरन्यद्रव्येषु ॥ ४१२ ॥

અન્વયાર્થ:—(હે ભવ્ય!) [मोक्षपथे] તું મોક્ષમાર્ગમાં [आत्मानं स्थापय] પોતાના આત્માને સ્થાપ, [तं च एव ध्यायस्व] તેનું જ ધ્યાન કર, [तं चेतयस्व] તેને જ ચેત—અનુભવ [तत्र एव नित्यं विहर] અને તેમાં જ નિરંતર વિહાર કર; [अन्यद्रव्येषु मा विहार्षीः] અન્ય દ્રવ્યોમાં વિહાર ન કર.

ટીકા:—(હે ભવ્ય!) પોતે અર્થાત્ પોતાનો આત્મા અનાદિ સંસારથી માંડીને પોતાની પ્રજ્ઞાના (-બુદ્ધિના) દોષથી પરદ્રવ્યમાં—રાગદ્વેષાદિમાં નિરંતર સ્થિત રહેલો હોવા છતાં, પોતાની પ્રજ્ઞાના ગુણ વડે જ તેમાંથી પાછો વાળીને તેને અતિ નિશ્ચળપણે દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રમાં નિરંતર સ્થાપ; તથા સમસ્ત અન્ય ચિંતાના નિરોધ વડે અત્યંત એકાગ્ર થઈને દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રને જ ધ્યા; તથા સમસ્ત કર્મચેતના અને

તું સ્થાપ નિજને મોક્ષપંથે, ધ્યા, અનુભવ તેહને,
તેમાં જ નિત્ય વિહાર કર, નહિ વિહર પરદ્રવ્યો વિષે. ૪૧૨.

કર્મફળચેતનાના ત્યાગ વડે શુદ્ધજ્ઞાનચેતનામય થઈને દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રને જ ... અનુભવ; તથા દ્રવ્યના સ્વભાવના વશે (પોતાને) જે ક્ષણે ક્ષણે પરિણામો ઉ... તે-પણા વડે (અર્થાત્ પરિણામીપણા વડે) તન્મય પરિણામવાળો (-દર્શ... પરિણામવાળો) થઈને દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રમાં જ વિહર; તથા જ્ઞાનરૂપને એક... અચળપણે અવલંબતો થકો, જેઓ જ્ઞેયરૂપ હોવાથી ઉપાધિસ્વરૂપ છે એવાં સર્વ ... ફેલાતાં સમસ્ત પરદ્રવ્યોમાં જરા પણ ન વિહર.

ભાવાર્થ:—પરમાર્થરૂપ આત્માનાં પરિણામ દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર છે; તે મોક્ષમાર્ગ છે. તેમાં જ (-દર્શનજ્ઞાનચારિત્રમાં જ) આત્માને સ્થાપવો, તેનું જ ધ... કરવું, તેનો જ અનુભવ કરવો: અને તેમાં જ વિહરવું—પ્રવર્તવું, અન્ય દ્રવ્યોમાં ... પ્રવર્તવું. અહીં પરમાર્થે એ જ ઉપદેશ છે કે—નિશ્ચય મોક્ષમાર્ગનું સેવન ક... કેવળ વ્યવહારમાં જ મૂઢ ન રહેવું.

હવે આ જ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

एको मोक्षपथो य एप नियतो दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मक-
स्तत्रैवस्थितिमेति यस्तमनिशं ध्यायेच्च तं चेतति ।
तस्मिन्नेव निरंतरं विहरति द्रव्यांतराण्यस्पृशन्
सोऽवश्यं समयस्य सारमचिरान्नित्योदयं विंदति ॥ २४० ॥

અર્થ:—દર્શનજ્ઞાનચારિત્રસ્વરૂપ જે આ એક નિયત મોક્ષમાર્ગ છે, તેમાં જ જે પુરુષ સ્થિતિ પામે છે અર્થાત્ સ્થિત રહે છે, તેને જ નિરંતર ધ્યાવે છે, તેને જ ચેતે—અનુભવે છે, અને અન્ય દ્રવ્યોને નહિ સ્પર્શતો થકો તેમાં જ નિરંતર વિહાર કરે છે, તે પુરુષ, જેનો ઉદય નિત્ય રહે છે એવા સમયના સારને (અર્થાત્ પરમાત્માના રૂપને) થોડા કાળમાં જ અવશ્ય પામે છે—અનુભવે છે.

ભાવાર્થ:—નિશ્ચયમોક્ષમાર્ગના સેવનથી થોડા જ કાળમાં મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય એ નિયમ છે.

'જેઓ દ્રવ્યલિંગને જ મોક્ષમાર્ગ માની તેમાં મમત્વ રાખે છે, તેમણે સમયસારને અર્થાત્ શુદ્ધ આત્માને જાણ્યો નથી'—એમ હવેની ગાથામાં કહેશે; તેની સૂચનાનું કાવ્ય પ્રથમ કહે છે:—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

ये त्वेनं परिहृत्य संवृतिपथप्रस्थापितेनात्मना
लिंगे द्रव्यमये वहन्ति ममतां तत्त्वावबोधच्युताः ।
नित्योद्योतमखंडमेकमतुलालोकं स्वभावप्रभा-
प्राग्भारं समयस्य सारममलं नाद्यापि पश्यंति ते ॥ २४१ ॥

અર્થ:—જે પુરુષો આ પૂર્વોક્ત પરમાર્થસ્વરૂપ મોક્ષમાર્ગને છોડીને વ્યવહાર-મોક્ષમાર્ગમાં સ્થાપેલા પોતાના આત્મા વડે દ્રવ્યમય લિંગમાં મમતા કરે છે (અર્થાત્ એમ માને છે કે આ દ્રવ્યલિંગ જ અમને મોક્ષ પમાડશે), તે પુરુષો તત્ત્વના યથાર્થ જ્ઞાનથી રહિત વર્તતા થકા હજુ સુધી સમયના સારને (અર્થાત્ શુદ્ધ આત્માને) દેખતા—અનુભવતા નથી. કેવો છે તે સમયસાર અર્થાત્ શુદ્ધ આત્મા? નિત્ય પ્રકાશમાન છે (અર્થાત્ કોઈ પ્રતિપક્ષી થઈને જેના ઉદયનો નાશ કરી શકતું નથી), અખંડ છે (અર્થાત્ જેમાં અન્ય જ્ઞેય આદિના નિમિત્તે ખંડ થતા નથી), એક છે (અર્થાત્ પર્યાયોથી અનેક અવસ્થારૂપ થવા છતાં જે એકરૂપપણાને છોડતો નથી), અતુલ (-ઉપમારહિત) જેનો પ્રકાશ છે (કારણ કે જ્ઞાનપ્રકાશને સૂર્યાદિકના પ્રકાશની ઉપમા આપી શકાતી નથી), સ્વભાવપ્રભાનો પુંજ છે (અર્થાત્ ચૈતન્યપ્રકાશના સમૂહરૂપ છે), અમલ છે (અર્થાત્ રાગાદિ-વિકારરૂપી મળથી રહિત છે).

(આ રીતે, જેઓ દ્રવ્યલિંગમાં મમત્વ કરે છે તેમને નિશ્ચય-કારણસમયસારનો અનુભવ નથી; તો પછી તેમને કાર્યસમયસારની પ્રાપ્તિ ક્યાંથી થાય?) ૨૪૧.

હવે આ અર્થની ગાથા કહે છે:—

पासंडीलिंगेसु व गिहिलिंगेसु व बहुप्पयारेसु ।
कुव्वंति जे ममत्तं तेहिं ण णायं समयसारं ॥ ४१३ ॥

पाषंडिलिंगेषु वा गृहिलिंगेषु वा बहुप्रकारेषु ।
कुर्वंति ये ममत्वं तैर्न ज्ञातः समयसारः ॥ ४१३ ॥

અન્વયાર્થ:—[ये] જેઓ [बहुप्रकारेषु] બહુ પ્રકારનાં [पाषंडिलिंगेषु वा] મુનિલિંગોમાં [गृहिलिंगेषु वा] અથવા ગૃહસ્થલિંગોમાં [ममत्वं कुर्वंति] મમતા

બહુવિધનાં મુનિલિંગમાં અથવા ગૃહીલિંગો વિષે
મમતા કરે, તેણે નથી જાણ્યો 'સમયનાસાર'ને. ૪૧૩.

કરે છે (અર્થાત્ આ દ્રવ્ય લિંગ જ મોક્ષનું દેનાર છે એમ માને છે), [તૈ: સમયસા
न ज्ञातः] તેમણે સમયસારને નથી જાણ્યો.

ટીકા:—જેઓ ખરેખર 'હું શ્રમણ છું, શ્રમણોપાસક (-શ્રાવક) છું' એ
દ્રવ્યલિંગમાં મમકાર વડે મિથ્યા અહંકાર કરે છે, તેઓ અનાદિરૂઢ (અનાદિ કાળ
ચાલ્યા આવેલા) વ્યવહારમાં મૂઢ (મોહી) વર્તતા થકા, પ્રૌઢ વિવેકવાળા નિશ્
(-નિશ્ચયનય) પર *અનારૂઢ વર્તતા થકા, પરમાર્થસત્ય (-જે પરમાર્થે સત્યાર્થ
એવા) ભગવાન સમયસારને દેખતા—અનુભવતા નથી.

ભાવાર્થ:—અનાદિ કાળનો પરદ્રવ્યના સંયોગથી થયેલો જે વ્યવહાર તે
જ જે પુરુષો મૂઢ અર્થાત્ મોહિત છે, તેઓ એમ માને છે કે 'આ બાહ્ય મહાવ્રતાદિ
ભેખ છે તે જ અમને મોક્ષ પ્રાપ્ત કરાવશે,' પરંતુ જેનાથી ભેદજ્ઞાન થાય છે એ
નિશ્ચયને તેઓ જાણતા નથી. આવા પુરુષો સત્યાર્થ, પરમાત્મરૂપ, શુદ્ધજ્ઞાનમ
સમયસારને દેખતા નથી.

હવે આ જ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(વિયોગિની)

व्यवहारविमूढदृष्टयः परमार्थं कलयंति नो जनाः ।
तुषबोधविमुग्धबुद्धयः कलयंतीह तुषं न तंडुलम् ॥ २४२ ॥

અર્થ:—વ્યવહારમાં જ જેમની દૃષ્ટિ (-બુદ્ધિ) મોહિત છે એવા પુરુષો
પરમાર્થને જાણતા નથી, જેમ જગતમાં [1]તુષના જ્ઞાનમાં જ જેમની બુદ્ધિ મોહિત છે
(-મોહ પામી છે) એવા પુરુષો તુષને જ જાણે છે, [2]તંડુલને જાણતા નથી.

ભાવાર્થ:—જેઓ ફોતરાંમાં મુગ્ધ થઈ રહ્યા છે, ફોતરાંને જ ફૂટ્યા કરે છે
તેમણે તંડુલને જાણ્યા જ નથી; તેવી રીતે જેઓ દ્રવ્યલિંગ આદિ વ્યવહારમાં મુગ્ધ
થઈ રહ્યા છે (અર્થાત્ શરીરાદિની ક્રિયામાં મમત્વ કર્યા કરે છે), તેમણે શુદ્ધાત્મ-
અનુભવનરૂપ પરમાર્થને જાણ્યો જ નથી; અર્થાત્ એવા જીવો શરીરાદિ પરદ્રવ્યને જ
આત્મા જાણે છે, પરમાર્થ આત્માનું સ્વરૂપ તેઓ જાણતા જ નથી.

હવે આગળની ગાથાની સૂચનારૂપ કાવ્ય કહે છે:—

---

* અનારૂઢ = નહિ આરૂઢ; નહિ ચઢેલા.

1. તુષ = ડાંગરનાં ફોતરાં; અનાજનાં ફોતરાં.

2. તંડુલ = ફોતરાં વિનાના ચોખા; ફોતરાં વિનાનું અનાજ.

(સ્વાગતા)

द्रव्यलिंगममकारमीलितै-
र्दृश्यते समयसार एव न ।
द्रव्यलिंगमिह यत्किलान्यतो
ज्ञानमेकमिदमेव हि स्वतः ॥ २४३ ॥

અર્થ:—જેઓ દ્રવ્યલિંગમાં મમકાર વડે અંધ—વિવેકરહિત છે, તેઓ સમયસારને જ દેખતા નથી; કારણ કે આ જગતમાં દ્રવ્યલિંગ તો ખરેખર અન્યદ્રવ્યથી થાય છે, આ જ્ઞાન જ એક પોતાથી (આત્મદ્રવ્યથી) થાય છે.

ભાવાર્થ:—જેઓ દ્રવ્યલિંગમાં મમત્વ વડે અંધ છે તેમને શુદ્ધાત્મદ્રવ્યનો અનુભવ જ નથી, કારણ કે તેઓ વ્યવહારને જ પરમાર્થ માનતા હોવાથી પરદ્રવ્યને આત્મદ્રવ્ય માને છે. ૨૪૩.

'વ્યવહારનય જ મુનિલિંગને અને શ્રાવકલિંગને—એ બન્ને લિંગોને મોક્ષમાર્ગ કહે છે, નિશ્ચયનય કોઈ લિંગને મોક્ષમાર્ગ કહેતો નથી'—એમ હવે ગાથામાં કહે છે:—

ववहारिओ पुण णओ दोण्णि वि लिंगाणि भणइ मोक्खपहे ।
णिच्छयणओ ण इच्छइ मोक्खपहे सव्वलिंगाणि ॥ ४१४ ॥

व्यावहारिकः पुनर्नयो द्वे अपि लिंगे भणति मोक्षपथे ।
निश्चयनयो नेच्छति मोक्षपथे सर्वलिंगानि ॥ ४१४ ॥

અન્વયાર્થ:—[व्यावहारिकः नयः पुनः] વ્યવહારનય [द्वे लिंगे अपि] બન્ને લિંગોને [मोक्षपथे भणति] મોક્ષમાર્ગમાં કહે છે (અર્થાત્ વ્યવહારનય મુનિલિંગ તેમ જ ગૃહીલિંગને મોક્ષમાર્ગ કહે છે); [निश्चयनयः] નિશ્ચયનય [सर्वलिंगानि] સર્વ લિંગોને (અર્થાત્ કોઈ પણ લિંગને) [मोक्षपथे न इच्छति] મોક્ષમાર્ગમાં માનતો નથી.

ટીકા:—શ્રમણ અને શ્રમણોપાસકના ભેદે બે પ્રકારનાં દ્રવ્યલિંગો મોક્ષમાર્ગ છે—એવો જે પ્રરૂપણ-પ્રકાર (અર્થાત્ એવા પ્રકારની જે પ્રરૂપણા) તે કેવળ વ્યવહાર

વ્યવહારનય એ ઉભય લિંગો મોક્ષપંથ વિષે કહે,
નિશ્ચય નહીં માને કદી કો લિંગ મુક્તિપંથ વિષે. ૪૧૪.

જ છે, પરમાર્થ નથી, કારણ કે તે (પ્રરૂપણા) પોતે અશુદ્ધ દ્રવ્યના અનુભવનરૂ
હોવાથી તેને પરમાર્થપણાનો અભાવ છે; શ્રમણ અને શ્રમણોપાસકના ભેદોથી અતિ
દર્શનજ્ઞાનમાં પ્રવૃત્ત પરિણતિમાત્ર (-માત્ર દર્શન-જ્ઞાનમાં પ્રવર્તેલી પરિણતિરૂપ)
જ્ઞાન જ એક છે—એવું જે નિસ્તુષ (-નિર્મળ) અનુભવન તે પરમાર્થ છે, કારણ
તે (અનુભવન) પોતે શુદ્ધ દ્રવ્યના અનુભવનસ્વરૂપ હોવાથી તેને જ પરમાર્થપણું
માટે જેઓ વ્યવહારને જ પરમાર્થબુદ્ધિથી (-પરમાર્થ માનીને) અનુભવે છે, તે
સમયસારને જ નથી અનુભવતા; જેઓ પરમાર્થને પરમાર્થબુદ્ધિથી અનુભવે છે, તે
જ સમયસારને અનુભવે છે.

ભાવાર્થ:—વ્યવહારનયનો વિષય તો ભેદરૂપ અશુદ્ધદ્રવ્ય છે, તેથી તે પરમ
નથી; નિશ્ચયનયનો વિષય અભેદરૂપ શુદ્ધદ્રવ્ય છે, તેથી તે જ પરમાર્થ છે. માટે, જે
વ્યવહારને જ નિશ્ચય માનીને પ્રવર્તે છે તેઓ સમયસારને અનુભવતા નથી; જે
પરમાર્થને પરમાર્થ માનીને પ્રવર્તે છે તેઓ જ સમયસારને અનુભવે છે (તેથી તે
જ મોક્ષને પામે છે).

'બહુ કથનથી બસ થાઓ, એક પરમાર્થનો જ અનુભવ કરો'—એવા અર્થ
કાવ્ય હવે કહે છે:—

(માલિની)

अलमलमतिजल्पैर्दुर्विकल्पैरनल्पै-
रयमिह परमार्थश्चेत्यतां नित्यमेकः ।
स्वरसविसरपूर्णज्ञानविस्फूर्तिमात्रा-
न्न खलु समयसारादुत्तरं किंचिदस्ति ॥ २४४ ॥

અર્થ:—બહુ કહેવાથી અને બહુ દુર્વિકલ્પોથી બસ થાઓ, બસ થાઓ;
અહીં એટલું જ કહેવાનું છે કે આ પરમાર્થને એકને જ નિરંતર અનુભવો; કારણ
કે નિજ રસના ફેલાવથી પૂર્ણ જે જ્ઞાન તેના સ્ફુરાયમાન થવામાત્ર જે સમયસાર
(પરમાત્મા) તેનાથી ઊંચું ખરેખર બીજું કાંઈ પણ નથી (—સમયસાર સિવાય
બીજું કાંઈ પણ સારભૂત નથી).

ભાવાર્થ:—પૂર્ણજ્ઞાનસ્વરૂપ આત્માનો અનુભવ કરો; આ સિવાય બીજું
કાંઈ પણ સારભૂત નથી.

હવે છેલ્લી ગાથામાં આ સમયસારગ્રંથના અભ્યાસ વગેરેનું ફળ [illegible]
આચાર્યભગવાન આ ગ્રંથ પૂર્ણ [illegible]

(અનુષ્ટુપ્)
इदमेकं जगच्चक्षुरक्षयं याति पूर्णताम् ।
विज्ञानघनमानंदमयमध्यक्षतां नयत् ॥ २४५ ॥

અર્થ:—આનંદમય વિજ્ઞાનઘનને (-શુદ્ધ પરમાત્માને, સમયસારને) પ્રત્યક્ષ કરતું આ એક (-અદ્વિતીય) અક્ષય જગત્-ચક્ષુ (-સમયપ્રાભૃત) પૂર્ણતાને પામે છે.

ભાવાર્થ:—આ સમયપ્રાભૃત ગ્રંથ વચનરૂપે તેમ જ જ્ઞાનરૂપે—બન્ને પ્રકારે જગતને અક્ષય (અર્થાત્ જેનો વિનાશ ન થાય એવું) અદ્વિતીય નેત્ર સમાન છે, કારણ કે જેમ નેત્ર ઘટપટાદિકને પ્રત્યક્ષ દેખાડે છે તેમ સમયપ્રાભૃત આત્માના શુદ્ધ સ્વરૂપને પ્રત્યક્ષ અનુભવગોચર દેખાડે છે. ૨૪૫.

હવે ભગવાન કુંદકુંદાચાર્ય આ ગ્રંથને પૂર્ણ કરે છે તેથી તેના મહિમારૂપે તેના અભ્યાસ વગેરેનું ફળ ગાથામાં કહે છે:—

जो समयपाहुडमिणं पडिहूणं अत्थतच्चओ णाउं ।
अत्थे ठाही चेया सो होही उत्तमं सोक्खं ॥ ४१५ ॥

यः समयप्राभृतमिदं पठित्वा अर्थतत्त्वतो ज्ञात्वा ।
अर्थे स्थास्यति चेतयिता स भविष्यत्युत्तमं सौख्यम् ॥ ४१५ ॥

અર્થ:—[यः चेतयिता] જે આત્મા (-ભવ્ય જીવ) [इदं समयप्राभृतं पठित्वा] આ સમયપ્રાભૃતને ભણીને, [अर्थतत्त्वतः ज्ञात्वा] અર્થ અને તત્ત્વથી જાણીને, [अर्थे स्थास्यति] તેના અર્થમાં સ્થિત થશે, [सः] તે [उत्तमं सौख्यं भविष्यति] ઉત્તમ સૌખ્યસ્વરૂપ થશે.

ટીકા:—સમયસારભૂત ભગવાન પરમાત્માનું—કે જે વિશ્વનો પ્રકાશક હોવાથી વિશ્વસમય છે તેનું—પ્રતિપાદન કરતું હોવાથી જે પોતે શબ્દબ્રહ્મ સમાન છે એવા આ શાસ્ત્રને જે આત્મા ખરેખર ભણીને, વિશ્વને પ્રકાશવામાં સમર્થ એવા પરમાર્થભૂત, ચૈતન્ય-પ્રકાશરૂપ આત્માનો નિશ્ચય કરતો થકો (આ શાસ્ત્રને) અર્થથી અને તત્ત્વથી જાણીને, તેના જ અર્થભૂત ભગવાન એક પૂર્ણવિજ્ઞાનઘન પરમબ્રહ્મમાં સર્વ ઉદ્યમથી સ્થિત થશે, તે આત્મા, તત્ક્ષણ પ્રગટ થતા એક ચૈતન્યરસથી ભરેલા સ્વભાવમાં સુસ્થિત

આ સમયપ્રાભૃત પઠન કરીને, અર્થ-તત્ત્વથી જાણીને,
ઠરશે અરથમાં આતમા જે, સૌખ્ય ઉત્તમ તે થશે. ૪૧૫.

અને નિરાકુળ (-આકુળતા વિનાનું) હોવાને લીધે જે (સૌખ્ય) 'પરમાનંદ' … વાચ્ય છે, ઉત્તમ છે અને અનાકુળતા-લક્ષણવાળું છે એવા સૌખ્યસ્વરૂપ પોતે … થઈ જશે.

ભાવાર્થ:—આ શાસ્ત્રનું નામ સમયપ્રાભૃત છે. સમય એટલે પદાર્થ, અ… સમય એટલે આત્મા. તેનું કહેનારું આ શાસ્ત્ર છે. વળી આત્મા તો સમસ્ત પદાર્થ… પ્રકાશક છે. આવા વિશ્વપ્રકાશક આત્માને કહેતું હોવાથી આ સમયપ્રાભૃત શબ્દ… સમાન છે; કારણ કે જે સમસ્ત પદાર્થોનું કહેનાર હોય તેને શબ્દબ્રહ્મ કહેવામાં આ… છે. દ્વાદશાંગશાસ્ત્ર શબ્દબ્રહ્મ છે અને આ સમયપ્રાભૃતશાસ્ત્રને પણ શબ્દબ્રહ્મની ઉ… છે. આ શબ્દબ્રહ્મ (અર્થાત્ સમયપ્રાભૃતશાસ્ત્ર) પરબ્રહ્મને (અર્થાત્ શુદ્ધ પરમાત્મ…) સાક્ષાત્ દેખાડે છે. જે આ શાસ્ત્રને ભણીને તેના યથાર્થ અર્થમાં ઠરશે, તે પરબ્ર… પામશે; અને તેથી, જેને 'પરમાનંદ' કહેવામાં આવે છે એવા ઉત્તમ, સ્વાત્મ… સ્વાધીન, બાધારહિત, અવિનાશી સુખને પામશે. માટે હે ભવ્ય જીવો! તમે પોતા… કલ્યાણને અર્થે આનો અભ્યાસ કરો, આનું શ્રવણ કરો, નિરંતર આનું જ સ્મરણ … ધ્યાન રાખો, કે જેથી અવિનાશી સુખની પ્રાપ્તિ થાય. આવો શ્રીગુરુઓનો ઉપદે…

હવે આ સર્વવિશુદ્ધજ્ઞાનના અધિકારની પૂર્ણતાનો કળશરૂપ શ્લોક કહે છે:

(અનુષ્ટુપ્)

इतीदमात्मनस्तत्त्वं ज्ञानमात्रमवस्थितम् ।
अखण्डमेकमचलं स्वसंवेद्यमबाधितम् ॥ २४६ ॥

અર્થ:—આ રીતે આ આત્માનું તત્ત્વ (અર્થાત્ પરમાર્થભૂત સ્વરૂ…) જ્ઞાનમાત્ર નક્કી થયું—કે જે (આત્માનું) જ્ઞાનમાત્ર તત્ત્વ અખંડ છે (અર્થાત્ અને… જ્ઞેયાકારોથી અને પ્રતિપક્ષી કર્મોથી જોકે ખંડ ખંડ દેખાય છે તોપણ જ્ઞાનમાત્રમાં ખ… નથી), એક છે (અર્થાત્ અખંડ હોવાથી એકરૂપ છે), અચળ છે (અર્થાત્ જ્ઞાનરૂપથ… ચળતું નથી—જ્ઞેયરૂપ થતું નથી), સ્વસંવેદ્ય છે (અર્થાત્ પોતાથી જ પોતે જણા… છે), અને અબાધિત છે (અર્થાત્ કોઈ ખોટી યુક્તિથી બાધા પામતું નથી).

ભાવાર્થ:—અહીં આત્માનું નિજ સ્વરૂપ જ્ઞાન જ કહ્યું છે તેનું કારણ … એ છે કે—આત્મામાં અનંત ધર્મો છે; પરંતુ તેમાં કેટલાક તો સાધારણ છે, … [illegible] અતિવ્યાપ્તિવાળા છે, તેમનાથી આત્માને ઓળખી શકાય નહિ; વળી કેટલા… (ધર્મો) પર્યાયાશ્રિત છે—કોઈ અવસ્થામાં હોય છે અને કોઈ અવસ્થામાં નથી હોતા… [illegible] અવ્યાપ્તિવાળા છે, તેમનાથી પણ આત્મા ઓળખી શકાય નહિ. … [illegible] (અતિવ્યાપ્તિ અને અવ્યાપ્તિથી રહિત) લક્ષણ છે, … [illegible]

અદૃષ્ટ છે; તેની વ્યક્તિ દર્શન અને જ્ઞાન છે. તે દર્શન અને જ્ઞાનમાં પણ જ્ઞાન
ર છે, પ્રગટ અનુભવગોચર છે; તેથી તેના દ્વારાં જ આત્મા ઓળખી શકાય છે.
અહીં આ જ્ઞાનને જ પ્રધાન કરીને આત્માનું તત્ત્વ કહ્યું છે.

અહીં એમ ન સમજવું કે 'આત્માને જ્ઞાનમાત્ર તત્ત્વવાળો કહ્યો છે તેથી
લો જ પરમાર્થ છે અને અન્ય ધર્મો જુદા છે, આત્મામાં નથી'; આવો સર્વથા
ાંત કરવાથી તો મિથ્યાદૃષ્ટિપણું થાય છે, વિજ્ઞાનાદ્વૈતવાદી બૌદ્ધનો અને વેદાંતનો
આવે છે; માટે આવો એકાંત બાધાસહિત છે. આવા એકાંત અભિપ્રાયથી કોઈ
ાનન પણ પાળે અને આત્માનું—જ્ઞાનમાત્રનું—ધ્યાન પણ કરે, તો પણ મિથ્યાત્વ
ય નહિ; મંદ કષાયોને લીધે સ્વર્ગ પામે તો પામો, મોક્ષનું સાધન તો થતું નથી.
સ્યાદ્વાદથી યથાર્થ સમજવું. ૪૧૫.

* *

(અહીં સુધીમાં ભગવાન કુંદકુંદાચાર્યની ૪૧૫ ગાથાઓનું વ્યાખ્યાન
ાકાર શ્રી અમૃતચંદ્રાચાર્યદેવે કર્યું અને તે વ્યાખ્યાનમાં કળશરૂપ તથા સૂચનિકારૂપ
ર કાવ્યો કહ્યાં. હવે ટીકાકાર આચાર્યદેવે વિચાર્યું કે—આ ગ્રંથમાં જ્ઞાનને પ્રધાન
ાને જ્ઞાનમાત્ર આત્મા કહેતા આવ્યા છીએ; તેથી કોઈ તર્ક કરશે કે 'જૈનમત તો
ાદ્વાદ છે; તો પછી આત્માને જ્ઞાનમાત્ર કહેવાથી શું એકાંત આવી જતો નથી?
ર્થાત્ સ્યાદ્વાદ સાથે વિરોધ આવતો નથી? વળી એક જ જ્ઞાનમાં ઉપાયતત્ત્વ અને
ેયતત્ત્વ—એ બન્ને કઈ રીતે ઘટે છે?' આમ તર્ક કોઈને થશે. માટે આવા તર્કનું
ાકરણ કરવાને ટીકાકાર આચાર્યદેવ અહીં સર્વવિશુદ્ધજ્ઞાન અધિકારના અંતમાં
િશિષ્ટરૂપે થોડું કહે છે. તેમાં પ્રથમ શ્લોક કહે છેઃ—)

(અનુષ્ટુપ)

अत्र स्याद्वादशुद्ध्यर्थं वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिः ।
उपायोपेयभावश्च मनाग्भूयोऽपि चिन्त्यते ॥ २४७ ॥

અર્થઃ—અહીં સ્યાદ્વાદની શુદ્ધિને અર્થે વસ્તુતત્ત્વની વ્યવસ્થા અને (એક
જ્ઞાનમાં ઉપાયપણું અને ઉપેયપણું કઈ રીતે ઘટે છે તે બતાવવા) ઉપાય-ઉપેયભાવ
ફરીને પણ વિચારવામાં આવે છે.

ભાવાર્થઃ—વસ્તુનું સ્વરૂપ સામાન્યવિશેષાત્મક અનેક-ધર્મસ્વરૂપ હોવાથી તે સ્યાદ્વાદથી જ સાધી શકાય છે. એ રીતે સ્યાદ્વાદની શુદ્ધતા (-પ્રમાણિકતા, સત્ય-નિર્દોષતા, નિર્મળતા, અદ્વિતીયતા) સિદ્ધ કરવા માટે આ અધિકારમાં વસ્તુનું સ્વરૂપ વિચારવામાં આવે છે. (તેમાં એમ પણ બતાવવામાં આવશે કે આ ગ્રંથમાં આત્માને જ્ઞાનમાત્ર કહ્યો હોવા છતાં સ્યાદ્વાદ સાથે વિરોધ આવતો નથી.) વળી બીજું, એક જ જ્ઞાનમાં સાધકપણું તથા સાધ્યપણું કઈ રીતે બની શકે તે સમજાવવા જ્ઞાનનો ઉપાય-ઉપેયભાવ અર્થાત્ સાધકસાધ્યભાવ પણ આ અધિકારમાં વિચારવામાં આવે છે.

(હવે પ્રથમ આચાર્યદેવ વસ્તુસ્વરૂપના વિચાર દ્વારા સ્યાદ્વાદને સિદ્ધ કરે છેઃ—)

સ્યાદ્વાદ સમસ્ત વસ્તુઓના સ્વરૂપને સાધનારું, અર્હંત્ સર્વજ્ઞનું એક અસ્ખલિત (-નિર્બાધ) શાસન છે. તે (સ્યાદ્વાદ) 'બધું અનેકાંતાત્મક છે' એમ ઉપદેશે છે, કારણ કે સમસ્ત વસ્તુ અનેકાંત-સ્વભાવવાળી છે. ('સર્વ વસ્તુઓ અનેકાંતસ્વરૂપ છે' એમ જે સ્યાદ્વાદ કહે છે તે અસત્યાર્થ કલ્પનાથી કહેતો નથી, પરંતુ જેવો વસ્તુનો અનેકાંત સ્વભાવ છે તેવો જ કહે છે).

અહીં આત્મા નામની વસ્તુને જ્ઞાનમાત્રપણે ઉપદેશવામાં આવતાં છતાં પણ સ્યાદ્વાદનો કોપ નથી; કારણ કે જ્ઞાનમાત્ર આત્મવસ્તુને સ્વયમેવ અનેકાંતપણું છે. ત્યાં (અનેકાંતનું એવું સ્વરૂપ છે કે), જે (વસ્તુ) તત્ છે તે જ અતત્ છે, જે (વસ્તુ) એક છે તે જ અનેક છે, જે સત્ છે તે જ અસત્ છે, જે નિત્ય છે તે જ અનિત્ય છે—એમ એક વસ્તુમાં વસ્તુપણાની નિપજાવનારી પરસ્પર વિરુદ્ધ બે શક્તિઓનું પ્રકાશવું તે અનેકાંત છે. માટે પોતાની આત્મવસ્તુને પણ, જ્ઞાનમાત્રપણું હોવા છતાં, તત્-અતત્પણું, એક-અનેકપણું, સત્-અસત્પણું અને નિત્ય-અનિત્યપણું પ્રકાશે જ છે; કારણ કે—તેને (જ્ઞાનમાત્ર આત્મવસ્તુને) અંતરંગમાં ચકચકાટ પ્રકાશતા જ્ઞાનસ્વરૂપ વડે તત્પણું છે, અને બહાર પ્રગટ થતા, અનંત, જ્ઞેયપણાને પામેલા, સ્વરૂપથી ભિન્ન એવા પર રૂપ વડે (-જ્ઞાનસ્વરૂપથી ભિન્ન એવા પરદ્રવ્યના રૂપ વડે-) અતત્પણું છે (અર્થાત્ તે-રૂપે જ્ઞાન નથી); સહભૂત (-સાથે) પ્રવર્તતા અને ક્રમે પ્રવર્તતા અનંત ચૈતન્ય-અંશોના સમુદાયરૂપ અવિભાગ દ્રવ્ય વડે એકપણું છે, અને અવિભાગ એક દ્રવ્યમાં વ્યાપેલા, સહભૂત પ્રવર્તતા અને ક્રમે પ્રવર્તતા અનંત ચૈતન્ય-અંશોરૂપ (-ચૈતન્યના અનંત અંશોરૂપ) પર્યાયો વડે અનેકપણું છે; પોતાના દ્રવ્ય-ક્ષેત્ર-કાળ-ભાવરૂપે હોવાની શક્તિરૂપ જે સ્વભાવ તે સ્વભાવવાન્પણા વડે (અર્થાત્ એવા સ્વભાવવાળી હોવાથી) સત્પણું છે, અને પરના દ્રવ્ય-ક્ષેત્ર-કાળ-ભાવરૂપે નહિ હોવાની શક્તિરૂપ જે સ્વભાવ તે સ્વભાવવાન્પણા વડે અસત્પણું છે; અનાદિનિધન અવિભાગ

એક વૃત્તિરૂપે પરિણતપણા વડે નિત્યપણું છે, અને ક્રમે પ્રવર્તતા, એક સમયની મર્યાદાવાળા અનેક વૃત્તિ-અંશોરૂપે પરિણતપણા વડે અનિત્યપણું છે. (આ રીતે જ્ઞાનમાત્ર આત્મ-વસ્તુને પણ, તત્-અતત્પણું વગેરે બબ્બે વિરુદ્ધ શક્તિઓ સ્વયમેવ પ્રકાશતી હોવાથી, અનેકાંત સ્વયમેવ પ્રકાશે જ છે).

(પ્રશ્ન-) જો આત્મવસ્તુને, જ્ઞાનમાત્રપણું હોવા છતાં, સ્વયમેવ અનેકાંત પ્રકાશે છે, તો પછી અર્હંત ભગવંતો તેના સાધન તરીકે અનેકાંતને (-સ્યાદ્વાદને) શા માટે ઉપદેશે છે? (ઉત્તર-) અજ્ઞાનીઓને જ્ઞાનમાત્ર આત્મવસ્તુની પ્રસિદ્ધિ કરવા માટે ઉપદેશે છે એમ અમે કહીએ છીએ. ખરેખર અનેકાંત (-સ્યાદ્વાદ) વિના જ્ઞાનમાત્ર આત્મવસ્તુ જ પ્રસિદ્ધ થઈ શકતી નથી. તે નીચે પ્રમાણે સમજાવવામાં આવે છેઃ—

સ્વભાવથી જ બહુ ભાવોથી ભરેલા આ વિશ્વમાં સર્વ ભાવોનું સ્વભાવથી અદ્વૈત હોવા છતાં, દ્વૈતનો નિષેધ કરવો અશક્ય હોવાથી સમસ્ત વસ્તુ સ્વરૂપમાં પ્રવૃત્તિ અને પરરૂપથી વ્યાવૃત્તિ વડે બન્ને ભાવોથી અધ્યાસિત છે (અર્થાત્ સમસ્ત વસ્તુ સ્વરૂપમાં પ્રવર્તતી હોવાથી અને પરરૂપથી ભિન્ન રહેતી હોવાથી દરેક વસ્તુમાં બન્ને ભાવો રહેલા છે). ત્યાં, જ્યારે આ જ્ઞાનમાત્ર ભાવ (-આત્મા), શેષ (બાકીના) ભાવો સાથે નિજ રસના ભારથી પ્રવર્તેલા જ્ઞાતા-જ્ઞેયના સંબંધને લીધે અને અનાદિ કાળથી જ્ઞેયોના પરિણમનને લીધે જ્ઞાનતત્ત્વને પર રૂપે માનીને (અર્થાત્ જ્ઞેયરૂપે અંગીકાર કરીને) અજ્ઞાની થયો થકો નાશ પામે છે, ત્યારે (તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવનું) સ્વ-રૂપથી (-જ્ઞાનરૂપથી) તત્પણું પ્રકાશીને (અર્થાત્ જ્ઞાન જ્ઞાનપણે જ છે એમ પ્રગટ કરીને), જ્ઞાતાપણે પરિણમનને લીધે જ્ઞાની કરતો થકો અનેકાંત જ (-સ્યાદ્વાદ જ) તેને ઉદ્ધારે છે—નાશ થવા દેતો નથી. ૧. વળી જ્યારે તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવ 'ખરેખર આ બધું આત્મા છે' એમ અજ્ઞાનતત્ત્વને સ્વરૂપે (જ્ઞાનરૂપે) માનીને—અંગીકાર કરીને વિશ્વના ગ્રહણ વડે પોતાનો નાશ કરે છે (-સર્વ જગતને પોતારૂપ માનીને તેનું ગ્રહણ કરીને જગતથી ભિન્ન એવા પોતાને નષ્ટ કરે છે), ત્યારે (તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવનું) પરરૂપથી અતત્પણું પ્રકાશીને (અર્થાત્ જ્ઞાન પરપણે નથી એમ પ્રગટ કરીને) વિશ્વથી ભિન્ન જ્ઞાનને દેખાડતો થકો અનેકાંત જ તેને પોતાનો (-જ્ઞાનમાત્ર ભાવનો) નાશ કરવા દેતો નથી. ૨. જ્યારે આ જ્ઞાનમાત્ર ભાવ અનેક જ્ઞેયાકારો વડે (-જ્ઞેયોના આકારો વડે) પોતાનો સકળ (-આખો, અખંડ) એક જ્ઞાન-આકાર ખંડિત (-ખંડખંડરૂપ) થયો માનીને નાશ પામે છે, ત્યારે (તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવનું) દ્રવ્યથી એકપણું પ્રકાશતો થકો અનેકાંત જ તેને જિવાડે છે—નાશ પામવા દેતો નથી. ૩. વળી જ્યારે તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવ એક જ્ઞાન-આકારનું ગ્રહણ કરવા માટે અનેક જ્ઞેયાકારોના ત્યાગ વડે પોતાનો નાશ કરે છે (અર્થાત્ જ્ઞાનમાં જે અનેક જ્ઞેયોના આકાર આવે છે તેમનો ત્યાગ કરીને પોતાને નષ્ટ કરે છે), ત્યારે (તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવનું) પર્યાયોથી [illegible] પ્રકાશતો

થકો અનેકાંત જ તેને પોતાનો નાશ કરવા દેતો નથી. ૪. જ્યારે આ જ્ઞાનમાત્ર ભાવ જાણવામાં આવતાં એવાં પરદ્રવ્યોના પરિણમનને લીધે જ્ઞાતૃદ્રવ્યને પરદ્રવ્યપણે માનીને—અંગીકાર કરીને નાશ પામે છે, ત્યારે (તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવનું) સ્વદ્રવ્યથી સત્પણું પ્રકાશતો થકો અનેકાંત જ તેને જિવાડે છે—નાશ પામવા દેતો નથી. ૫. વળી જ્યારે તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવ 'સર્વ દ્રવ્યો હું જ છું (અર્થાત્ સર્વ દ્રવ્યો આત્મા જ છે)' એમ પરદ્રવ્યને જ્ઞાતૃદ્રવ્યપણે માનીને—અંગીકાર કરીને પોતાનો નાશ કરે છે, ત્યારે (તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવનું) પરદ્રવ્યથી અસત્પણું પ્રકાશતો થકો (અર્થાત્ પરદ્રવ્યરૂપે આત્મા નથી એમ પ્રગટ કરતો થકો) અનેકાંત જ તેને પોતાનો નાશ કરવા દેતો નથી. ૬. જ્યારે આ જ્ઞાનમાત્ર ભાવ પરક્ષેત્રગત (-પરક્ષેત્રે રહેલા) જ્ઞેય પદાર્થોના પરિણમનને લીધે પરક્ષેત્રથી જ્ઞાનને સત્ માનીને—અંગીકાર કરીને નાશ પામે છે, ત્યારે (તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવનું) સ્વક્ષેત્રથી અસ્તિત્વ પ્રકાશતો થકો અનેકાંત જ તેને જિવાડે છે—નાશ પામવા દેતો નથી. ૭. વળી જ્યારે તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવ સ્વક્ષેત્રે હોવાને (-રહેવાને, પરિણમવાને) માટે, પરક્ષેત્રગત જ્ઞેયોના આકારોના ત્યાગ વડે (અર્થાત્ જ્ઞાનમાં જે પરક્ષેત્રે રહેલા જ્ઞેયોના આકાર આવે છે તેમનો ત્યાગ કરીને) જ્ઞાનને તુચ્છ કરતો થકો પોતાનો નાશ કરે છે, ત્યારે સ્વક્ષેત્રે રહીને જ પરક્ષેત્રગત જ્ઞેયોના આકારોરૂપે પરિણમવાનો જ્ઞાનનો સ્વભાવ હોવાથી (તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવનું) પરક્ષેત્રથી નાસ્તિત્વ પ્રકાશતો થકો અનેકાંત જ તેને પોતાનો નાશ કરવા દેતો નથી. ૮. જ્યારે આ જ્ઞાનમાત્ર ભાવ પૂર્વાલંબિત પદાર્થોના વિનાશકાળે (-પૂર્વે જેમનું આલંબન કર્યું હતું એવા જ્ઞેય પદાર્થોના વિનાશ વખતે) જ્ઞાનનું અસત્પણું માનીને—અંગીકાર કરીને નાશ પામે છે, ત્યારે (તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવનું) સ્વકાળથી (-જ્ઞાનના કાળથી) સત્પણું પ્રકાશતો થકો અનેકાંત જ તેને જિવાડે છે—નાશ પામવા દેતો નથી. ૯. વળી જ્યારે તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવ પદાર્થોના આલંબનકાળે જ (-માત્ર જ્ઞેય પદાર્થોને જાણવા વખતે જ) જ્ઞાનનું સત્પણું માનીને—અંગીકાર કરીને પોતાનો નાશ કરે છે, ત્યારે (તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવનું) પરકાળથી (-જ્ઞેયના કાળથી) અસત્પણું પ્રકાશતો થકો અનેકાંત જ તેને પોતાનો નાશ કરવા દેતો નથી. ૧૦. જ્યારે આ જ્ઞાનમાત્ર ભાવ, જાણવામાં આવતા એવા પરભાવોના પરિણમનને લીધે જ્ઞાયકભાવને પરભાવપણે માનીને—અંગીકાર કરીને નાશ પામે છે, ત્યારે (તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવનું) સ્વ-ભાવથી સત્પણું પ્રકાશતો થકો અનેકાંત જ તેને જિવાડે છે—નાશ પામવા દેતો નથી. ૧૧. વળી જ્યારે તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવ 'સર્વ ભાવો હું જ છું' એમ પરભાવને જ્ઞાયકભાવપણે માનીને—અંગીકાર કરીને પોતાનો નાશ કરે છે, ત્યારે (તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવનું) પરભાવથી અસત્પણું પ્રકાશતો થકો અનેકાંત જ તેને પોતાનો નાશ કરવા દેતો નથી. ૧૨. જ્યારે આ જ્ઞાનમાત્ર ભાવ અનિત્ય જ્ઞાન-વિશેષો વડે પોતાનું નિત્ય જ્ઞાનસામાન્ય ખંડિત થયું માનીને નાશ પામે છે, ત્યારે (તે

જ્ઞાનમાત્ર ભાવનું) જ્ઞાનસામાન્યરૂપથી નિત્યપણું પ્રકાશતો થકો અનેકાંત જ તેને જિવાડે છે—નાશ પામવા દેતો નથી. ૧૩. વળી જ્યારે તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવ નિત્ય જ્ઞાનસામાન્યનું ગ્રહણ કરવા માટે અનિત્ય જ્ઞાનવિશેષોના ત્યાગ વડે પોતાનો નાશ કરે છે (અર્થાત્ જ્ઞાનના વિશેષોનો ત્યાગ કરીને પોતાને નષ્ટ કરે છે), ત્યારે (તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવનું) જ્ઞાનવિશેષરૂપથી અનિત્યપણું પ્રકાશતો થકો અનેકાંત જ તેને પોતાનો નાશ કરવા દેતો નથી. ૧૪.

(અહીં તત્-અતત્ના ૨ ભંગ, એક-અનેકના ૨ ભંગ, સત્-અસત્ના દ્રવ્ય-ક્ષેત્ર-કાળ-ભાવથી ૮ ભંગ, અને નિત્ય-અનિત્યના ૨ ભંગ—એમ બધા મળીને ૧૪ ભંગ થયા. આ ચૌદ ભંગોમાં એમ બતાવ્યું કે—એકાંતથી જ્ઞાનમાત્ર આત્માનો અભાવ થાય છે અને અનેકાંતથી આત્મા જીવતો રહે છે; અર્થાત્, એકાંતથી આત્મા જે સ્વરૂપે છે તે સ્વરૂપે સમજાતો નથી, સ્વરૂપમાં પરિણમતો નથી, અને અનેકાંતથી તે વાસ્તવિક સ્વરૂપે સમજાય છે, સ્વરૂપમાં પરિણમે છે.)

અહીં નીચે પ્રમાણે (૧૪ ભંગોના કળશરૂપે) ૧૪ કાવ્યો પણ કહેવામાં આવે છેઃ—

(પ્રથમ, પહેલા ભંગના કળશરૂપે કાવ્ય કહેવામાં આવે છેઃ—)

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

बाह्यार्थैः परिपीतमुज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभवद्-
विश्रान्तं पररूप एव परितो ज्ञानं पशोः सीदति ।
यत्तत्तत्तदिह स्वरूपत इति स्याद्वादिनस्तत्पुन-
र्दूरोन्मग्नघनस्वभावभरतः पूर्णं समुन्मज्जति ॥ २४८ ॥

અર્થઃ—બાહ્ય પદાર્થો વડે સમસ્તપણે પી જવામાં આવેલું, પોતાની વ્યક્તિને (-પ્રગટતાને) છોડી દેવાથી ખાલી (-શૂન્ય) થઈ ગયેલું, સમસ્તપણે પરરૂપમાં જ વિશ્રાંત (અર્થાત્ પરરૂપ ઉપર જ આધાર રાખતું) એવું પશુનું જ્ઞાન (-પશુ જેવા એકાંતવાદીનું જ્ઞાન) નાશ પામે છે; અને સ્યાદ્વાદીનું જ્ઞાન તો, 'જે તત્ છે તે સ્વરૂપથી તત્ છે (અર્થાત્ દરેક તત્ત્વને—વસ્તુને સ્વરૂપથી તત્પણું છે)' એવી માન્યતાને લીધે, અત્યંત પ્રગટ થયેલા જ્ઞાનઘનરૂપ સ્વભાવના ભારથી, સંપૂર્ણ ઉદિત (-પ્રગટ) થાય છે.

ભાવાર્થઃ—કોઈ સર્વથા એકાંતી તો એમ માને છે કે—ઘટજ્ઞાન ઘટના આધારે જ થાય છે માટે જ્ઞાન સર્વ પ્રકારે જ્ઞેયો પર જ આધાર રાખે છે. આવું માનના

એકાંતવાદીના જ્ઞાનને તો જ્ઞેયો પી ગયાં, જ્ઞાન પોતે કાંઈ ન રહ્યું. સ્યાદ્વાદી તો એમ માને છે કે—જ્ઞાન પોતાના સ્વરૂપથી તત્સ્વરૂપ જ (-જ્ઞાનસ્વરૂપ જ) છે, જ્ઞેયાકારે થવા છતાં જ્ઞાનપણાને છોડતું નથી. આવી યથાર્થ અનેકાંત સમજણને લીધે સ્યાદ્વાદીને જ્ઞાન (અર્થાત્ જ્ઞાનસ્વરૂપ આત્મા) પ્રગટ પ્રકાશે છે.

આ પ્રમાણે સ્વરૂપથી તત્પણાનો ભંગ કહ્યો.

(હવે બીજા ભંગના કળશરૂપે કાવ્ય કહેવામાં આવે છે:—)

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

विश्वं ज्ञानमिति प्रतर्क्य सकलं दृष्ट्वा स्वतत्त्वाशया
भूत्वा विश्वमयः पशुः पशुरिव स्वच्छंदमाचेष्टते ।
यत्तत्तत्पररूपतो न तदिति स्याद्वाददर्शी पुन-
र्विश्वाद्भिन्नमविश्वविश्वघटितं तस्य स्वतत्त्वं स्पृशेत् ॥ २४९ ॥

અર્થ:—પશુ અર્થાત્ સર્વથા એકાંતવાદી અજ્ઞાની, 'વિશ્વ જ્ઞાન છે (અર્થાત્ સર્વ જ્ઞેયપદાર્થો આત્મા છે)' એમ વિચારીને સર્વને (-સમસ્ત વિશ્વને) નિજતત્ત્વની આશાથી દેખીને વિશ્વમય (-સમસ્ત જ્ઞેયપદાર્થમય) થઈને, ઢોરની માફક સ્વચ્છંદપણે ચેષ્ટા કરે છે—વર્તે છે; અને સ્યાદ્વાદદર્શી તો (-સ્યાદ્વાદનો દેખનાર તો), 'જે તત્ છે તે પરરૂપથી તત્ નથી (અર્થાત્ દરેક તત્ત્વને સ્વરૂપથી તત્પણું હોવા છતાં પરરૂપથી અતત્પણું છે)' એમ માનતો હોવાથી, વિશ્વથી ભિન્ન એવા અને વિશ્વથી (-વિશ્વના નિમિત્તથી) રચાયેલું હોવા છતાં વિશ્વરૂપ નહિ એવા (અર્થાત્ સમસ્ત જ્ઞેય વસ્તુઓના આકારે થવા છતાં સમસ્ત જ્ઞેયવસ્તુથી ભિન્ન એવા) પોતાના નિજતત્ત્વને સ્પર્શે છે—અનુભવે છે.

ભાવાર્થ:—એકાંતવાદી એમ માને છે કે—વિશ્વ (-સમસ્ત વસ્તુઓ) જ્ઞાનરૂપ અર્થાત્ પોતારૂપ છે. આ રીતે પોતાને અને વિશ્વને અભિન્ન માનીને, પોતાને વિશ્વમય માનીને, એકાંતવાદી, ઢોરની જેમ હેય-ઉપાદેયના વિવેક વિના સર્વત્ર સ્વચ્છંદપણે પ્રવર્તે છે. સ્યાદ્વાદી તો એમ માને છે કે—જે વસ્તુ પોતાના સ્વરૂપથી તત્સ્વરૂપ છે, તે જ વસ્તુ પરના સ્વરૂપથી અતત્સ્વરૂપ છે; માટે જ્ઞાન પોતાના સ્વરૂપથી તત્સ્વરૂપ છે, પરંતુ પર જ્ઞેયોના સ્વરૂપથી અતત્સ્વરૂપ છે અર્થાત્ પર જ્ઞેયોના આકારે થવા છતાં તેમનાથી ભિન્ન છે.

આ પ્રમાણે પરરૂપથી અતત્પણાનો ભંગ કહ્યો.

(હવે ત્રીજા ભંગના કળશરૂપે કાવ્ય કહેવામાં આવે છે:—)

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

बाह्यार्थग्रहणस्वभावभरतो विष्वग्विचित्रोल्लस-
ज्ज्ञेयाकारविशीर्णशक्तिरभितस्त्रुट्यन्पशुर्नश्यति ।
एकद्रव्यतया सदाप्युदितया भेदभ्रमं ध्वंसय-
न्नेकं ज्ञानमबाधितानुभवनं पश्यत्यनेकांतवित् ॥ २५० ॥

અર્થ:—પશુ અર્થાત્ સર્વથા એકાંતવાદી અજ્ઞાની, બાહ્ય પદાર્થોને ગ્રહણ કરવાના (જ્ઞાનના) સ્વભાવની અતિશયતાને લીધે, ચારે તરફ (સર્વત્ર) પ્રગટ થતા અનેક પ્રકારના જ્ઞેયાકારોથી જેની શક્તિ વિશીર્ણ થઈ ગઈ છે એવો થઈને (અર્થાત્ અનેક જ્ઞેયોના આકારો જ્ઞાનમાં જણાતાં જ્ઞાનની શક્તિને છિન્નભિન્ન—ખંડખંડરૂપ—થઈ જતી માનીને) સમસ્તપણે તૂટી જતો થકો (અર્થાત્ ખંડખંડરૂપ—અનેકરૂપ—થઈ જતો થકો) નાશ પામે છે; અને અનેકાંતનો જાણનાર તો, સદાય ઉદિત (-પ્રકાશમાન) એકદ્રવ્યપણાને લીધે ભેદના ભ્રમને નષ્ટ કરતો થકો (અર્થાત્ જ્ઞેયોના ભેદે જ્ઞાનમાં સર્વથા ભેદ પડી જાય છે એવા ભ્રમનો નાશ કરતો થકો), જે એક છે (-સર્વથા અનેક નથી) અને જેનું અનુભવન નિર્બાધ છે એવા જ્ઞાનને દેખે છે—અનુભવે છે.

ભાવાર્થ:—જ્ઞાન છે તે જ્ઞેયોના આકારે પરિણમવાથી અનેક દેખાય છે, તેથી સર્વથા એકાંતવાદી તે જ્ઞાનને સર્વથા અનેક—ખંડખંડરૂપ—દેખતો થકો જ્ઞાનમય એવા પોતાનો નાશ કરે છે; અને સ્યાદ્વાદી તો જ્ઞાનને, જ્ઞેયાકાર થવા છતાં, સદા ઉદયમાન દ્રવ્યપણા વડે એક દેખે છે.

આ પ્રમાણે એકપણાનો ભંગ કહ્યો.

(હવે ચોથા ભંગના કળશરૂપે કાવ્ય કહેવામાં આવે છે:—)

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

ज्ञेयाकारकलंकमेचकचिति प्रक्षालनं कल्पय-
न्नेकाकारचिकीर्षया स्फुटमपि ज्ञानं पशुर्नेच्छति ।
वैचित्र्येऽप्यविचित्रतामुपगतं ज्ञानं स्वतः क्षालितं
पर्यायैस्तदनेकतां परिमृशन् पश्यत्यनेकांतवित् ॥ २५१ ॥

અર્થ:—પશુ અર્થાત્ સર્વથા એકાંતવાદી અજ્ઞાની, જ્ઞેયાકારોરૂપી કલંકથી (અનેકાકારરૂપ) મલિન એવા ચેતનમાં પ્રક્ષાલન કલ્પતો થકો (અર્થાત્ ચેતનની

વેગ રોકાયેલો છે એવો થયો થકો (અર્થાત્ સ્વક્ષેત્રમાં વર્તતો થકો); આત્મામાં જ આકારરૂપ થયેલાં જ્ઞેયોમાં નિશ્ચિત વ્યાપારની શક્તિવાળો થઈને, ટકે છે—જીવે છે (—નષ્ટ થતો નથી).

ભાવાર્થ:—એકાંતવાદી ભિન્ન ક્ષેત્રમાં રહેલા જ્ઞેય પદાર્થોને જાણવાના કાર્યમાં પ્રવર્તતાં આત્માને બહાર પડતો જ માનીને, (સ્વક્ષેત્રથી અસ્તિત્વ નહિ માનીને), પોતાને નષ્ટ કરે છે; અને સ્યાદ્વાદી તો, 'પરક્ષેત્રમાં રહેલાં જ્ઞેયોને જાણતાં પોતાના ક્ષેત્રમાં રહેલો આત્મા સ્વક્ષેત્રથી અસ્તિત્વ ધારે છે' એમ માનતો થકો ટકી રહે છે—નાશ પામતો નથી.

આ પ્રમાણે સ્વક્ષેત્રથી અસ્તિત્વનો ભંગ કહ્યો.

(હવે આઠમા ભંગના કળશરૂપે કાવ્ય કહેવામાં આવે છે:—)

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

स्वक्षेत्रस्थितये पृथग्विधपरक्षेत्रस्थितार्थोज्झनात्
तुच्छीभूय पशुः प्रणश्यति चिदाकारान् सहार्थैर्वमन् ।
स्याद्वादी तु वसन् स्वधामनि परक्षेत्रे विदन्नास्तितां
त्यक्तार्थोऽपि न तुच्छतामनुभवत्याकारकर्षी परान् ॥ २५५ ॥

અર્થ:—પશુ અર્થાત્ સર્વથા એકાંતવાદી અજ્ઞાની, સ્વક્ષેત્રમાં રહેવા માટે જુદા જુદા પરક્ષેત્રમાં રહેલા જ્ઞેય પદાર્થોને છોડવાથી, જ્ઞેય પદાર્થોની સાથે ચૈતન્યના આકારોને પણ વમી નાખતો થકો (અર્થાત્ જ્ઞેય પદાર્થોના નિમિત્તે ચૈતન્યમાં જે આકારો થાય છે તેમને પણ છોડી દેતો થકો) તુચ્છ થઈને નાશ પામે છે; અને સ્યાદ્વાદી તો સ્વક્ષેત્રમાં રહેતો, પરક્ષેત્રમાં પોતાનું નાસ્તિત્વ જાણતો થકો, (પરક્ષેત્રમાં રહેલા) જ્ઞેય પદાર્થોને છોડતાં છતાં તે પર પદાર્થોમાંથી ચૈતન્યના આકારોને ખેંચતો હોવાથી (અર્થાત્ જ્ઞેય પદાર્થોના નિમિત્તે થતા ચૈતન્યના આકારોને છોડતો નહિ હોવાથી) તુચ્છતા પામતો નથી.

ભાવાર્થ:—'પરક્ષેત્રમાં રહેલા જ્ઞેય પદાર્થોના આકારે ચૈતન્યના આકારો થાય છે તેમને જો હું પોતાના કરીશ તો સ્વક્ષેત્રમાં જ રહેવાને બદલે પરક્ષેત્રમાં પણ વ્યાપી જઈશ' એમ માનીને અજ્ઞાની એકાંતવાદી પરક્ષેત્રમાં રહેલા જ્ઞેય પદાર્થોની સાથે સાથે ચૈતન્યના આકારોને પણ છોડી દે છે; એ રીતે પોતે ચૈતન્યના આકારો રહિત તુચ્છ થાય છે, નાશ પામે છે. સ્યાદ્વાદી તો સ્વક્ષેત્રમાં રહેતો, પરક્ષેત્રમાં પોતાની નાસ્તિતા

તો થકો, જ્ઞેય પદાર્થોને છોડતાં છતાં ચૈતન્યના આકારોને છોડતો નથી; માટે તે થતો નથી, નાશ પામતો નથી.

આ પ્રમાણે પરક્ષેત્રની અપેક્ષાથી નાસ્તિત્વનો ભંગ કહ્યો.

(હવે નવમા ભંગના કળશરૂપે કાવ્ય કહેવામાં આવે છે:—)

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

पूर्वालंबितबोध्यनाशसमये ज्ञानस्य नाशं विदन्
सीदत्येव न किंचनापि कलयन्नत्यंततुच्छः पशुः ।
अस्तित्वं निजकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदी पुनः
पूर्णस्तिष्ठति बाह्यवस्तुषु मुहुर्भूत्वा विनश्यत्स्वपि ॥ २५६ ॥

અર્થ:—પશુ અર્થાત્ એકાંતવાદી અજ્ઞાની, પૂર્વાલંબિત જ્ઞેય પદાર્થોના નાશ સમયે જ્ઞાનનો પણ નાશ જાણતો થકો, એ રીતે જ્ઞાનને કાંઈ પણ (વસ્તુ) નહિ જાણતો થકો (અર્થાત્ જ્ઞાનવસ્તુનું અસ્તિત્વ જ નહિ માનતો થકો), અત્યંત તુચ્છ થયો થકો નાશ પામે છે; અને સ્યાદ્વાદનો જાણનાર તો આત્માનું નિજ કાળથી અસ્તિત્વ જાણતો થકો, બાહ્ય વસ્તુઓ વારંવાર થઈને નાશ પામતાં છતાં પણ, પોતે પૂર્ણ રહે છે.

ભાવાર્થ:—પહેલાં જે જ્ઞેય પદાર્થો જાણ્યા હતા તે ઉત્તર કાળમાં નાશ પામી ગયા; તેમને દેખી એકાંતવાદી પોતાના જ્ઞાનનો પણ નાશ માની અજ્ઞાની થયો થકો આત્માનો નાશ કરે છે. સ્યાદ્વાદી તો, જ્ઞેય પદાર્થો નષ્ટ થતાં પણ, પોતાનું અસ્તિત્વ પોતાના કાળથી જ માનતો થકો નષ્ટ થતો નથી.

આ પ્રમાણે સ્વકાળ-અપેક્ષાથી અસ્તિત્વનો ભંગ કહ્યો.

(હવે દસમા ભંગના કળશરૂપે કાવ્ય કહેવામાં આવે છે:—)

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

अर्थालंबनकाल एव कलयन् ज्ञानस्य सत्त्वं बहि-
र्ज्ञेयालंबनलालसेन मनसा भ्राम्यन् पशुर्नश्यति ।
नास्तित्वं परकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदी पुन-
स्तिष्ठत्यात्मनिखातनित्यसहजज्ञानैकपुंजीभवन् ॥ २५७ ॥

અર્થઃ—પશુ અર્થાત્ અજ્ઞાની એકાંતવાદી, જ્ઞેય પદાર્થોના આલંબનકાળે જ જ્ઞાનનું અસ્તિત્વ જાણતો થકો, બાહ્ય જ્ઞેયોના આલંબનની લાલસાવાળા ચિત્તે (બહાર) ભમતો થકો નાશ પામે છે; અને સ્યાદ્વાદનો જાણનાર તો પરકાળથી આત્માનું નાસ્તિત્વ જાણતો થકો, આત્મામાં દ્રઢપણે રહેલા નિત્ય સહજ જ્ઞાનના એક પુંજરૂપ વર્તતો થકો ટકે છે—નષ્ટ થતો નથી.

ભાવાર્થઃ—એકાંતી જ્ઞેયોના આલંબનકાળે જ જ્ઞાનનું સત્પણું જાણે છે તેથી જ્ઞેયોના આલંબનમાં મનને જોડી બહાર ભમતો થકો નષ્ટ થાય છે. સ્યાદ્વાદી તો પર જ્ઞેયોના કાળથી પોતાનું નાસ્તિત્વ જાણે છે, પોતાના જ કાળથી પોતાનું અસ્તિત્વ જાણે છે; તેથી જ્ઞેયોથી જુદા એવા જ્ઞાનના પુંજરૂપ વર્તતો થકો નષ્ટ થતો નથી.

આ પ્રમાણે પરકાળ-અપેક્ષાએ નાસ્તિત્વનો ભંગ કહ્યો.

(હવે અગિયારમા ભંગના કળશરૂપે કાવ્ય કહેવામાં આવે છેઃ—)

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

विश्रान्तः परभावभावकलनान्नित्यं बहिर्वस्तुषु
नश्यत्येव पशुः स्वभावमहिमन्येकांतनिश्चेतनः ।
सर्वस्मान्नियतस्वभावभवनज्ञानाद्विभक्तो भवन्
स्याद्वादी तु न नाशमेति सहजस्पष्टीकृतप्रत्ययः ॥ २५८ ॥

અર્થઃ—પશુ અર્થાત્ એકાંતવાદી અજ્ઞાની, પરભાવોના *ભવનને જ જાણતો હોવાથી, (એ રીતે પરભાવોથી જ પોતાનું અસ્તિત્વ માનતો હોવાથી,) સદાય બાહ્ય વસ્તુઓમાં વિશ્રામ કરતો થકો, (પોતાના) સ્વભાવના મહિમામાં અત્યંત નિશ્ચેતન (જડ) વર્તતો થકો, નાશ પામે છે; અને સ્યાદ્વાદી તો (પોતાના) નિયત સ્વભાવના ભવનસ્વરૂપ જ્ઞાનને લીધે સર્વથી (-સર્વ પરભાવોથી) ભિન્ન વર્તતો થકો, જેણે સહજ સ્વભાવનું પ્રતીતિરૂપ જાણપણું સ્પષ્ટ—પ્રત્યક્ષ—અનુભવરૂપ કર્યું છે એવો થયો થકો નાશ પામતો નથી.

ભાવાર્થઃ—એકાંતવાદી પરભાવોથી જ પોતાનું સત્પણું માનતો હોવાથી બાહ્ય વસ્તુઓમાં વિશ્રામ કરતો થકો આત્માનો નાશ કરે છે; અને સ્યાદ્વાદી તો, જ્ઞાનભાવ જ્ઞેયાકાર થવા છતાં જ્ઞાનભાવનું સ્વભાવથી અસ્તિત્વ જાણતો થકો, આત્માનો નાશ કરતો નથી.

* ભવન = અસ્તિત્વ, પરિણમન.

આ પ્રમાણે સ્વ-ભાવની (પોતાના ભાવની) અપેક્ષાથી અસ્તિત્વનો ભંગ કહ્યો.

(હવે બારમા ભંગના કળશરૂપ કાવ્ય કહેવામાં આવે છે:—)

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

अध्यास्यात्मनि सर्वभावभवनं शुद्धस्वभावच्युतः
सर्वत्राप्यनिवारितो गतभयः स्वैरं पशुः क्रीडति ।
स्याद्वादी तु विशुद्ध एव लसति स्वस्य स्वभावं भरा-
दारूढः परभावभावविरहव्यालोकनिष्कंपितः ॥ २५९ ॥

અર્થ:—પશુ અર્થાત્ અજ્ઞાની એકાંતવાદી, સર્વ ભાવોરૂપ ભવનનો આત્મામાં અધ્યાસ કરીને (અર્થાત્ સર્વ જ્ઞેય પદાર્થોના ભાવોરૂપે આત્મા છે એમ માનીને) શુદ્ધ સ્વભાવથી ચ્યુત થયો થકો, કોઈ પરભાવને બાકી રાખ્યા વિના સર્વ પરભાવોમાં સ્વચ્છંદતાથી નિર્ભયપણે (નિઃશંકપણે) ક્રીડા કરે છે; અને સ્યાદ્વાદી તો પોતાના સ્વભાવમાં અત્યંત આરૂઢ થયો થકો, પરભાવોરૂપ ભવનના અભાવની દૃષ્ટિને લીધે (અર્થાત્ આત્મા પરદ્રવ્યોના ભાવોરૂપે નથી—એમ દેખતો હોવાથી) નિષ્કંપ વર્તતો થકો, શુદ્ધ જ વિરાજે છે.

ભાવાર્થ:—એકાંતવાદી સર્વ પરભાવોને પોતારૂપ જાણીને પોતાના શુદ્ધ સ્વભાવથી ચ્યુત થયો થકો સર્વત્ર (સર્વ પરભાવોમાં) સ્વેચ્છાચારીપણે નિઃશંક રીતે વર્તે છે; અને સ્યાદ્વાદી તો, પરભાવોને જાણતાં છતાં, પોતાના શુદ્ધ જ્ઞાનસ્વભાવને સર્વ પરભાવોથી ભિન્ન અનુભવતો થકો શોભે છે.

આ પ્રમાણે પરભાવ-અપેક્ષાથી નાસ્તિત્વનો ભંગ કહ્યો.

(હવે તેરમા ભંગના કળશરૂપ કાવ્ય કહેવામાં આવે છે:—)

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

प्रादुर्भावविराममुद्रितवहद्ज्ञानांशनानात्मना
निर्ज्ञानात्क्षणभंगसंगपतितः प्रायः पशुर्नश्यति ।
स्याद्वादी तु चिदात्मना परिमृशंश्चिद्वस्तु नित्योदितं
टंकोत्कीर्णघनस्वभावमहिम ज्ञानं भवन् जीवति ॥ २६० ॥

અર્થ:—પશુ અર્થાત્ એકાંતવાદી અજ્ઞાની, ઉત્પાદ-વ્યયથી લક્ષિત એવા જે

વસ્તુના (-પરિણમતા) જ્ઞાનના અંશો તે-રૂપ અનેકાત્મકપણા વડે જ (નિર્ણય અર્થાત્ જ્ઞાન કરતો થકો, *ક્ષણભંગના સંગમાં પડેલો, બાહુલ્યપણે નાશ છે; અને સ્યાદ્વાદી તો ચૈતન્યાત્મકપણા વડે ચૈતન્યવસ્તુને નિત્ય-ઉદિત અનુભવતો થકો, ટંકોત્કીર્ણઘનસ્વભાવ (-ટંકોત્કીર્ણ પિંડરૂપ સ્વભાવ) જેનો મહિમા છે એવો જ્ઞાનરૂપ વર્તતો, જીવે છે.

ભાવાર્થઃ—એકાંતવાદી જ્ઞેયોના આકાર અનુસાર જ્ઞાનને ઉપજવું-વિણસવું દેખીને, અનિત્ય પર્યાયો દ્વારા આત્માને સર્વથા અનિત્ય માનતો થકો, પોતાને નષ્ટ કરે છે; અને સ્યાદ્વાદી તો, જોકે જ્ઞાન જ્ઞેયો અનુસાર ઉપજે-વિણસે છે તોપણ, ચૈતન્યભાવનો નિત્ય ઉદય અનુભવતો થકો જીવે છે—નાશ પામતો નથી.

આ પ્રમાણે નિત્યત્વનો ભંગ કહ્યો.

(હવે વીસમા ભંગના કળશરૂપે કાવ્ય કહેવામાં આવે છેઃ—)

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

टङ्कोत्कीर्णविशुद्धबोधविसराकारात्मतत्त्वाशया
वाञ्छत्युच्छलदच्छचित्परिणतेर्भिन्नं पशुः किञ्चन ।
ज्ञानं नित्यमनित्यतापरिगमेऽप्यासादयत्युज्ज्वलं
स्याद्वादी तदनित्यतां परिमृशंश्चिद्वस्तुवृत्तिक्रमात् ॥२६१॥

અર્થઃ—પશુ અર્થાત્ એકાંતવાદી અજ્ઞાની, ટંકોત્કીર્ણ વિશુદ્ધ જ્ઞાનના વિસ્તારરૂપ એક-આકાર (સર્વથા નિત્ય) આત્મતત્ત્વની આશાથી, ઊછળતી નિર્મળ ચૈતન્યપરિણતિથી જુદું કાંઈક (આત્મતત્ત્વને) ઇચ્છે છે (પરંતુ એવું કોઈ આત્મતત્ત્વ છે નહિ); અને સ્યાદ્વાદી તો, ચૈતન્યવસ્તુની વૃત્તિના (-પરિણતિના, પર્યાયના) ક્રમ દ્વારા અનિત્યતાને અનુભવતો થકો, નિત્ય એવા જ્ઞાનને અનિત્યતાથી વ્યાપ્ત છતાં ઉજ્જ્વળ (નિર્મળ) માને છે—અનુભવે છે.

ભાવાર્થઃ—એકાંતવાદી જ્ઞાનને સર્વથા એકાકાર—નિત્ય પ્રાપ્ત કરવાની વાંછાથી, ઊપજતી-વિણસતી ચૈતન્યપરિણતિથી જુદું કાંઈક જ્ઞાનને ઇચ્છે છે; પરંતુ પરિણામ સિવાય જુદો કોઈ પરિણામી તો હોતો નથી. સ્યાદ્વાદી તો એમ માને છે કે—જોકે દ્રવ્યે જ્ઞાન નિત્ય છે તોપણ ક્રમશઃ ઊપજતી-વિણસતી ચૈતન્યપરિણતિના ક્રમને લીધે જ્ઞાન અનિત્ય પણ છે; એવો જ વસ્તુસ્વભાવ છે.

આ પ્રમાણે અનિત્યત્વનો ભંગ કહ્યો.

---

* ક્ષણભંગ = ક્ષણે ક્ષણે થતો નાશ; ક્ષણભંગુરતા; અનિત્યતા.

'પૂર્વોક્ત રીતે અનેકાંત, અજ્ઞાનથી મૂઢ થયેલા જીવોને જ્ઞાનમાત્ર આત્મત[illegible] પ્રસિદ્ધ કરી દે છે—સમજાવી દે છે' એવા અર્થનું કાવ્ય હવે કહેવામાં આવે છે:—

(અનુષ્ટુપ્)

इत्यज्ञानविमूढानां ज्ञानमात्रं प्रसाधयन्
आत्मतत्त्वमनेकांतः स्वयमेवानुभूयते ॥ २६२ ॥

અર્થ:—આ રીતે અનેકાંત અર્થાત્ સ્યાદ્વાદ અજ્ઞાનમૂઢ પ્રાણીઓને જ્ઞાનમાત્ર આત્મતત્ત્વ પ્રસિદ્ધ કરતો સ્વયમેવ અનુભવાય છે.

ભાવાર્થ:—જ્ઞાનમાત્ર આત્મવસ્તુ અનેકાંતમય છે. પરંતુ અનાદિ કાળથી પ્રાણીઓ પોતાની મેળે અથવા તો એકાંતવાદનો ઉપદેશ સાંભળીને જ્ઞાનમાત્ર આત્મતત્ત્વ સંબંધી અનેક પ્રકારે પક્ષપાત કરી જ્ઞાનમાત્ર આત્મતત્ત્વનો નાશ કરે છે. તેમને (અજ્ઞાની જીવોને) સ્યાદ્વાદ જ્ઞાનમાત્ર આત્મતત્ત્વનું અનેકાંતસ્વરૂપપણું પ્રગ[illegible] કરે છે—સમજાવે છે. જો પોતાના આત્મા તરફ દેખી અનુભવ કરી જોવામાં આવે તો (સ્યાદ્વાદના ઉપદેશ અનુસાર) જ્ઞાનમાત્ર આત્મવસ્તુ આપોઆપ અનેક ધર્મોવાળી પ્રત્યક્ષ અનુભવગોચર થાય છે. માટે હે પ્રવીણ પુરુષો! તમે જ્ઞાનને તત્સ્વરૂપ, અત[illegible] સ્વરૂપ, એકસ્વરૂપ, અનેકસ્વરૂપ, પોતાના દ્રવ્ય-ક્ષેત્ર-કાળ-ભાવથી સત્સ્વરૂપ, પરના દ્રવ્ય-ક્ષેત્ર-કાળ-ભાવથી અસત્સ્વરૂપ, નિત્યસ્વરૂપ, અનિત્યસ્વરૂપ ઇત્યાદિ અનેક ધર્મ સ્વરૂપ પ્રત્યક્ષ અનુભવગોચર કરી પ્રતીતિમાં લાવો. એ જ સમ્યગ્જ્ઞાન છે. સર્વથા એકાંત માનવું તે મિથ્યાજ્ઞાન છે.

'પૂર્વોક્ત રીતે વસ્તુનું સ્વરૂપ અનેકાંતમય હોવાથી અનેકાંત અર્થાત્ સ્યાદ્વાદ સિદ્ધ થયો' એવા અર્થનું કાવ્ય હવે કહેવામાં આવે છે:—

(અનુષ્ટુપ્)

एवं तत्त्वव्यवस्थित्या स्वं व्यवस्थापयन् स्वयम् ।
अलंघ्यशासनं जैनमनेकांतो व्यवस्थितः ॥ २६३ ॥

અર્થ:—આ રીતે અનેકાંત—કે જે જિનદેવનું અલંઘ્ય (કોઈથી તોડી ન શકાય એવું) શાસન છે તે—વસ્તુના યથાર્થ સ્વરૂપની વ્યવસ્થિતિ (વ્યવસ્થા) વડે પોતે પોતાને સ્થાપિત કરતો થકો સ્થિત થયો—નિશ્ચિત ઠર્યો—સિદ્ધ થયો.

ભાવાર્થ:—અનેકાંત અર્થાત્ સ્યાદ્વાદ, જેવું વસ્તુનું સ્વરૂપ છે તેવું જ સ્થાપન કરતો થકો, આપોઆપ સિદ્ધ થયો. તે અનેકાંત જ નિર્બાધ જિનમત [illegible]

યથાર્થ વસ્તુસ્થિતિનો કહેનાર છે. કાંઈ કોઈએ અસત્ કલ્પનાથી વચનમાત્ર કર્યો નથી. માટે હે નિપુણ પુરુષો! સારી રીતે વિચાર કરી પ્રત્યક્ષ અનુભવ કરી જુઓ.

(આચાર્યદેવ અનેકાંતને હજુ વિશેષ ચર્ચે છેઃ—)

(પ્રશ્નઃ—) આત્મા અનેકાંતમય હોવા છતાં પણ તેનો જ્ઞાનમાત્રપણે કેમ *વ્યપદેશ કરવામાં આવે છે? (આત્મા અનંત ધર્મોવાળો હોવા છતાં તેને જ્ઞાનમાત્રપણે કેમ કહેવામાં આવે છે? જ્ઞાનમાત્ર કહેવાથી તો અન્ય ધર્મોનો નિષેધ સમજાય છે.)

(ઉત્તરઃ—) લક્ષણની પ્રસિદ્ધિ વડે લક્ષ્યની પ્રસિદ્ધિ કરવા માટે આત્માને જ્ઞાનમાત્રપણે વ્યપદેશ કરવામાં આવે છે. આત્માનું જ્ઞાન લક્ષણ છે, કારણ કે જ્ઞાન આત્માનો અસાધારણ ગુણ છે (-અન્ય દ્રવ્યોમાં જ્ઞાનગુણ નથી). માટે જ્ઞાનની પ્રસિદ્ધિ વડે તેના લક્ષ્યની—આત્માની—પ્રસિદ્ધિ થાય છે.

(પ્રશ્નઃ—) એ લક્ષણની પ્રસિદ્ધિથી શું પ્રયોજન છે? માત્ર લક્ષ્ય જ પ્રસાધ્ય અર્થાત્ પ્રસિદ્ધ કરવાયોગ્ય છે. (માટે લક્ષણને પ્રસિદ્ધ કર્યા વિના માત્ર લક્ષ્યને જ— આત્માને જ—પ્રસિદ્ધ કેમ કરતા નથી?)

(ઉત્તરઃ—) જેને લક્ષણ અપ્રસિદ્ધ હોય તેને (અર્થાત્ જે લક્ષણને જાણતો નથી એવા અજ્ઞાની જનને) લક્ષ્યની પ્રસિદ્ધિ થતી નથી. જેને લક્ષણ પ્રસિદ્ધ થાય તેને જ લક્ષ્યની પ્રસિદ્ધિ થાય છે. (માટે અજ્ઞાનીને પહેલાં લક્ષણ બતાવીએ ત્યારે તે લક્ષ્યને ગ્રહણ કરી શકે છે).

(પ્રશ્નઃ—) કયું તે લક્ષ્ય છે કે જે જ્ઞાનની પ્રસિદ્ધિ વડે તેનાથી (-જ્ઞાનથી) ભિન્ન પ્રસિદ્ધ થાય છે?

(ઉત્તરઃ—) જ્ઞાનથી ભિન્ન લક્ષ્ય નથી, કારણ કે જ્ઞાન અને આત્માને દ્રવ્યપણે અભેદ છે.

(પ્રશ્નઃ—) તો પછી લક્ષણ અને લક્ષ્યનો વિભાગ શા માટે કરવામાં આવ્યો?

(ઉત્તરઃ—) પ્રસિદ્ધત્વ અને [1]પ્રસાધ્યમાનત્વને લીધે લક્ષણ અને લક્ષ્યનો વિભાગ કરવામાં આવ્યો છે. જ્ઞાન પ્રસિદ્ધ છે, કારણ કે જ્ઞાનમાત્રને સ્વસંવેદનથી

---

* વ્યપદેશ = કથન; નામ.

1 પ્રસાધ્યમાન = પ્રસિદ્ધ કરવામાં આવતું હોય તે. (જ્ઞાન પ્રસિદ્ધ છે અને આત્મા પ્રસાધ્યમાન છે)

...રૂપપણું છે (અર્થાત્ જ્ઞાન સર્વ પ્રાણીઓને સ્વસંવેદનરૂપ અનુભવમાં આવે છે); પ્રસિદ્ધ એવા જ્ઞાન વડે પ્રસાધ્યમાન, તદ્-અવિનાભૂત (-જ્ઞાનની સાથે અવિનાભાવી સંબંધવાળા) અનંત ધર્મોના સમુદાયરૂપ મૂર્તિ આત્મા છે. (જ્ઞાન પ્રસિદ્ધ છે; અને ...ન સાથે જેમનો અવિનાભાવી સંબંધ છે એવા અનંત ધર્મોના સમુદાયસ્વરૂપ ...ત્મા તે જ્ઞાન વડે પ્રસાધ્યમાન છે.) માટે જ્ઞાનમાત્રમાં અચલિતપણે સ્થાપેલી દૃષ્ટિ ..., ક્રમરૂપ અને અક્રમરૂપ પ્રવર્તતો, તદ્-અવિનાભૂત (-જ્ઞાનની સાથે અવિનાભાવી સંબંધવાળો) અનંતધર્મસમૂહ જે કાંઈ જેવડો લક્ષિત થાય છે, તે સઘળોય ખરેખર ... આત્મા છે.

આ કારણે જ અહીં આત્માનો જ્ઞાનમાત્રપણે વ્યપદેશ છે.

(પ્રશ્નઃ-) જેમાં ક્રમ અને અક્રમે પ્રવર્તતા અનંત ધર્મો છે એવા આત્માને ...ાનમાત્રપણું કઈ રીતે છે?

(ઉત્તરઃ-) પરસ્પર ભિન્ન એવા અનંત ધર્મોના સમુદાયરૂપે પરિણત એક ...પ્તિમાત્ર ભાવરૂપે પોતે જ હોવાથી (અર્થાત્ પરસ્પર ભિન્ન એવા અનંત ધર્મોના ...દાયરૂપે પરિણમેલી જે એક જાણનક્રિયા તે જાણનક્રિયામાત્ર ભાવરૂપે પોતે જ ...વાથી) આત્માને જ્ઞાનમાત્રપણું છે. માટે જ તેને જ્ઞાનમાત્ર એક ભાવની અંતઃ...તની (-જ્ઞાનમાત્ર એક ભાવની અંદર પડનારી અર્થાત્ જ્ઞાનમાત્ર એક ભાવની ...દર આવી જતી-) અનંત શક્તિઓ ઊછળે છે. (આત્માના જેટલા ધર્મો છે તે ...ધને, લક્ષણભેદે ભેદ હોવા છતાં, પ્રદેશભેદ નથી; આત્માના એક પરિણામમાં ...ય ધર્મોનું પરિણમન રહેલું છે. તેથી આત્માના એક જ્ઞાનમાત્ર ભાવની અંદર ...ંત શક્તિઓ રહેલી છે. માટે જ્ઞાનમાત્ર ભાવમાં—જ્ઞાનમાત્ર ભાવસ્વરૂપ આત્મામાં—...ંત શક્તિઓ ઊછળે છે.) તેમાંની કેટલીક શક્તિઓ નીચે પ્રમાણે છેઃ—આત્મ...ને કારણભૂત એવા ચૈતન્યમાત્ર ભાવનું ધારણ જેનું લક્ષણ અર્થાત્ સ્વરૂપ છે એવી ...વત્વશક્તિ. (આત્મદ્રવ્યને કારણભૂત એવા ચૈતન્યમાત્રભાવરૂપી ભાવપ્રાણનું ધારણ ...ું જેનું લક્ષણ છે એવી જીવત્વ નામની શક્તિ જ્ઞાનમાત્ર ભાવમાં—આત્મામાં—...ળે છે). ૧. અજડત્વસ્વરૂપ ચિતિશક્તિ. (અજડત્વ અર્થાત્ ચેતનત્વ જેનું સ્વરૂપ ...એવી ચિતિશક્તિ) ૨. અનાકાર ઉપયોગમયી દૃશિશક્તિ. (જેમાં જ્ઞેયરૂપ આકાર ...ર્થાત્ વિશેષ નથી એવા દર્શનોપયોગમયી—સત્તામાત્ર પદાર્થમાં ઉપયુક્ત થવામયી—...શક્તિ અર્થાત્ દર્શનક્રિયારૂપ શક્તિ). ૩. સાકાર ઉપયોગમયી જ્ઞાનશક્તિ. (જે જ્ઞેય ...ર્થોના વિશેષોરૂપ આકારોમાં ઉપયુક્ત થાય છે એવી જ્ઞાનોપયોગમયી જ્ઞાનશક્તિ). ૪. ...કુળતા જેનું લક્ષણ અર્થાત્ સ્વરૂપ છે એવી સુખશક્તિ. ૫. સ્વરૂપની (-આત્મ...રૂપની) રચનાના સામર્થ્યરૂપ વીર્યશક્તિ. ૬. જેનો પ્રતાપ અખંડિત છે અર્થાત્

કોઈથી ખંડિત કરી શકાતો નથી એવા સ્વાતંત્ર્યથી (-સ્વાધીનતાથી) શોભાયમાનપણું જેનું લક્ષણ છે એવી પ્રભુત્વશક્તિ. ૭. સર્વ ભાવોમાં વ્યાપક એવા એક ભાવરૂપ વિભુત્વશક્તિ. (જેમકે, જ્ઞાનરૂપી એક ભાવ સર્વ ભાવોમાં વ્યાપે છે). ૮. સમસ્ત વિશ્વના સામાન્ય ભાવને દેખવારૂપે (અર્થાત્ સર્વ પદાર્થોના સમૂહરૂપ લોકાલોકને સત્તામાત્ર ગ્રહવારૂપે) પરિણમેલા એવા આત્મદર્શનમયી સર્વદર્શિત્વશક્તિ. ૯. સમસ્ત વિશ્વના વિશેષ ભાવોને જાણવારૂપે પરિણમેલા એવા આત્મજ્ઞાનમયી સર્વજ્ઞત્વશક્તિ. ૧૦. અમૂર્તિક આત્મપ્રદેશોમાં પ્રકાશમાન લોકાલોકના આકારોથી મેચક (અર્થાત્ અનેક-આકારરૂપ) એવો ઉપયોગ જેનું લક્ષણ છે એવી સ્વચ્છત્વશક્તિ. (જેમ દર્પણની સ્વચ્છત્વશક્તિથી તેના પર્યાયમાં ઘટપટાદિ પ્રકાશે છે, તેમ આત્માની સ્વચ્છત્વશક્તિથી તેના ઉપયોગમાં લોકાલોકના આકારો પ્રકાશે છે). ૧૧. સ્વયં પ્રકાશમાન વિશદ (-સ્પષ્ટ) એવા સ્વસંવેદનમયી (-સ્વાનુભવમયી) પ્રકાશશક્તિ. ૧૨. ક્ષેત્ર અને કાળથી અમર્યાદિત એવા ચિદ્વિલાસસ્વરૂપ (-ચૈતન્યના વિલાસસ્વરૂપ) અસંકુચિતવિકાસત્વશક્તિ. ૧૩. જે અન્યથી કરાતું નથી અને અન્યને કરતું નથી એવા એક દ્રવ્યસ્વરૂપ અકાર્યકારણત્વશક્તિ. (જે અન્યનું કાર્ય નથી અને અન્યનું કારણ નથી એવું જે એક દ્રવ્ય તે-સ્વરૂપ અકાર્યકારણત્વશક્તિ.) ૧૪. પર અને પોતે જેમનું નિમિત્ત છે એવા જ્ઞેયાકારો તથા જ્ઞાનાકારોને ગ્રહણ કરવાના અને ગ્રહણ કરાવવાના સ્વભાવરૂપ પરિણમ્યપરિણામકત્વશક્તિ. (સ્વ-પરના જ્ઞાતા થવાનો તેમ જ સ્વ-પરનું જ્ઞેય થવાનો આત્માનો જે સ્વભાવ તે સ્વભાવરૂપ પરિણમ્યપરિણામકત્વ શક્તિ). ૧૫. જે ઘટતું-વધતું નથી એવા સ્વરૂપમાં નિયતત્વરૂપ (-નિશ્ચિતપણે જેમનું તેમ રહેવારૂપ-) ત્યાગોપાદાનશૂન્યત્વશક્તિ. ૧૬. ષટ્સ્થાનપતિત વૃદ્ધિહાનિરૂપે પરિણમેલો, સ્વરૂપ-પ્રતિષ્ઠત્વના કારણરૂપ (-વસ્તુને સ્વરૂપમાં રહેવાના કારણરૂપ) એવો જે વિશિષ્ટ (-ખાસ) ગુણ તે-સ્વરૂપ અગુરુલઘુત્વશક્તિ. (આ ષટ્સ્થાનપતિત હાનિવૃદ્ધિનું સ્વરૂપ 'ગોમ્મટસાર' ગ્રંથમાંથી જાણવું. અવિભાગ પ્રતિચ્છેદોની સંખ્યારૂપ ષટ્સ્થાનોમાં પડતી—સમાવેશ પામતી—વસ્તુસ્વભાવની વૃદ્ધિહાનિ જેનાથી (-જે ગુણથી) થાય છે અને જે (ગુણ) વસ્તુને સ્વરૂપમાં ટકવાનું કારણ છે એવો કોઈ ગુણ આત્મામાં છે; તેને અગુરુલઘુત્વગુણ કહેવામાં આવે છે. આવી અગુરુલઘુત્વશક્તિ પણ આત્મામાં છે). ૧૭. ક્રમવૃત્તિરૂપ અને અક્રમવૃત્તિરૂપ વર્તન જેનું લક્ષણ છે એવી ઉત્પાદવ્યયધ્રુવત્વશક્તિ. (ક્રમવૃત્તિરૂપ પર્યાય ઉત્પાદવ્યયરૂપ છે અને અક્રમવૃત્તિરૂપ ગુણ ધ્રુવત્વરૂપ છે). ૧૮. દ્રવ્યના સ્વભાવભૂત ધ્રૌવ્ય-વ્યય-ઉત્પાદથી આલિંગિત (-સ્પર્શિત), સદૃશ અને વિસદૃશ જેનું રૂપ છે એવા એક અસ્તિત્વમાત્રમયી પરિણામશક્તિ. ૧૯. કર્મબંધના અભાવથી વ્યક્ત કરાયેલા, સહજ, સ્પર્શાદિશૂન્ય (-સ્પર્શ, રસ, ગંધ અને વર્ણથી રહિત) એવા આત્મપ્રદેશોસ્વરૂપ અમૂર્તત્વશક્તિ. ૨૦. સમસ્ત, કર્મથી કરવામાં આવેલાં, જ્ઞાતૃત્વમાત્રથી જુદાં જે પરિણામો તે

ક્રિયાઓના કર્મના *ઉપરમસ્વરૂપ (તે પરિણામોના કરવાની નિવૃત્તિસ્વરૂપ) અકર્તૃત્વ-શક્તિ. (જે શક્તિથી આત્મા જ્ઞાતાપણા સિવાયનાં, કર્મથી કરવામાં આવેલાં પરિણામોનો કર્તા થતો નથી, એવી અકર્તૃત્વ નામની એક શક્તિ આત્મામાં છે). ૨૧. સમસ્ત, કર્મથી કરવામાં આવેલાં, જ્ઞાતૃત્વમાત્રથી જુદાં પરિણામોના અનુભવના (-ભોગવટાના) ઉપરમસ્વરૂપ અભોક્તૃત્વશક્તિ. ૨૨. સમસ્ત કર્મના ઉપરમથી પ્રવર્તેલી આત્મપ્રદેશોની નિષ્પંદતાસ્વરૂપ (-અકંપતાસ્વરૂપ) નિષ્ક્રિયત્વશક્તિ. (જ્યારે કર્મનો અભાવ થાય ત્યારે પ્રદેશોનું કંપન મટી જાય છે માટે નિષ્ક્રિયત્વશક્તિ પણ આત્મામાં છે). ૨૩. જે અનાદિ સંસારથી માંડીને સંકોચવિસ્તારથી લક્ષિત છે અને જે ચરમ શરીરના પરિમાણથી કાંઈક ઊણા પરિમાણે અવસ્થિત થાય છે એવું લોકાકાશના માપ જેટલા માપવાળું આત્મ-અવયવપણું જેનું લક્ષણ છે એવી નિયતપ્રદેશત્વશક્તિ. (આત્માના લોકપરિમાણ અસંખ્ય પ્રદેશો નિયત જ છે. તે પ્રદેશો સંસાર અવસ્થામાં સંકોચ-વિસ્તાર પામે છે અને મોક્ષ અવસ્થામાં ચરમ શરીર કરતાં કાંઈક ઓછા પરિમાણે સ્થિત રહે છે). ૨૪. સર્વ શરીરોમાં એકસ્વરૂપાત્મક એવી સ્વધર્મવ્યાપકત્વશક્તિ. (શરીરના ધર્મરૂપ ન થતાં પોતાના ધર્મોમાં વ્યાપવારૂપ શક્તિ તે સ્વધર્મવ્યાપકત્વ-શક્તિ). ૨૫. સ્વ-પરના સમાન, અસમાન અને સમાનાસમાન એવા ત્રણ પ્રકારના ભાવોના ધારણસ્વરૂપ સાધારણ-અસાધારણ-સાધારણાસાધારણધર્મત્વશક્તિ. ૨૬. વિલક્ષણ (-પરસ્પર ભિન્ન લક્ષણોવાળા) અનંત સ્વભાવોથી ભાવિત (-ધપેલો) એવો એક ભાવ જેનું લક્ષણ છે એવી અનંતધર્મત્વશક્તિ. ૨૭. તદ્રૂપમયપણું અને અતદ્રૂપ-મયપણું જેનું લક્ષણ છે એવી વિરુદ્ધધર્મત્વશક્તિ. ૨૮. તદ્રૂપ ભવનરૂપ એવી તત્ત્વ-શક્તિ. (તત્સ્વરૂપ હોવારૂપ અથવા તત્સ્વરૂપ પરિણમનરૂપ એવી તત્ત્વશક્તિ આત્મામાં છે. આ શક્તિથી ચેતન ચેતનપણે રહે છે—પરિણમે છે). ૨૯. અતદ્રૂપ ભવનરૂપ એવી અતત્ત્વશક્તિ. (તત્સ્વરૂપ ન હોવારૂપ અથવા તત્સ્વરૂપે નહિ પરિણમવારૂપ અતત્ત્વશક્તિ આત્મામાં છે. આ શક્તિથી ચેતન જડરૂપ થતો નથી). ૩૦. અનેક પર્યાયોમાં વ્યાપક એવા એકદ્રવ્યમયપણારૂપ એકત્વશક્તિ. ૩૧. એક દ્રવ્યથી વ્યાપ્ય (વ્યપાવાયોગ્ય) જે અનેક પર્યાયો તે-મયપણારૂપ અનેકત્વશક્તિ. ૩૨. વિદ્યમાનઅવ-સ્થાવાળાપણારૂપ ભાવશક્તિ (અમુક અવસ્થા જેમાં વિદ્યમાન હોય એવાપણારૂપ ભાવશક્તિ). ૩૩. શૂન્ય (-અવિદ્યમાન) અવસ્થાવાળાપણારૂપ અભાવશક્તિ. (અમુક અવસ્થા જેમાં અવિદ્યમાન હોય એવાપણારૂપ અભાવશક્તિ). ૩૪. ભવતા (-વર્તતા, થતા, પરિણમતા) પર્યાયના વ્યયરૂપ ભાવાભાવશક્તિ. ૩૫. નહિ ભવતા (નહિ વર્તતા) પર્યાયના ઉદયરૂપ અભાવભાવશક્તિ. ૩૬. ભવતા (વર્તતા) પર્યાયના ભવનરૂપ (વર્તવારૂપ, પરિણમવારૂપ) ભાવભાવશક્તિ. ૩૭. નહિ ભવતા (નહિ વર્તતા) પર્યાયના

* ઉપરમ = અટકવું તે; નિવૃત્તિ; અંત; અભાવ.

અભવનરૂપ (નહિ વર્તવારૂપ) અભાવાભાવશક્તિ. ૩૮. (કર્તા, કર્મ આદિ) કારકો અનુસાર જે ક્રિયા તેનાથી રહિત ભવનમાત્રમયી (-હોવામાત્રમયી, થવામાત્રમયી) ભાવશક્તિ. ૩૯. કારકો અનુસાર થવાપણારૂપ (-પરિણમવાપણારૂપ) જે ભાવ તે-મયી ક્રિયાશક્તિ. ૪૦. પ્રાપ્ત કરાતો એવો જે સિદ્ધરૂપ ભાવ તે-મયી કર્મશક્તિ. ૪૧. થવાપણારૂપ એવો જે સિદ્ધરૂપ ભાવ તેના ભાવકપણામયી કર્તૃત્વશક્તિ. ૪૨. ભવતા (-વર્તતા, થતા) ભાવના ભવનના (-થવાના) સાધકતમપણામયી (-ઉત્કૃષ્ટ સાધકપણામયી, ઉગ્ર સાધનપણામયી) કરણશક્તિ. ૪૩. પોતાથી દેવામાં આવતો જે ભાવ તેના ઉપેયપણામય (-તેને મેળવવાના યોગ્યપણામય, તેને લેવાના પાત્રપણામય) સંપ્રદાનશક્તિ. ૪૪. ઉત્પાદવ્યયથી આલિંગિત ભાવનો અપાય (-હાનિ, નાશ) થવાથી હાનિ નહિ પામતા એવા ધ્રુવપણામયી અપાદાનશક્તિ. ૪૫. ભાવ્યમાન (અર્થાત ભાવવામાં આવતા) ભાવના આધારપણામયી અધિકરણશક્તિ. ૪૬. સ્વભાવમાત્ર સ્વ-સ્વામિત્વમયી સંબંધશક્તિ. (પોતાનો ભાવ પોતાનું સ્વ અને પોતે તેનો સ્વામી—એવા સંબંધમયી સંબંધશક્તિ). ૪૭.

'ઇત્યાદિક અનેક શક્તિઓથી યુક્ત આત્મા છે તોપણ તે જ્ઞાનમાત્રપણાને છોડતો નથી'—એવા અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય હવે કહે છે:—

(વસંતતિલકા)

इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरोऽपि
यो ज्ञानमात्रमयतां न जहाति भावः ।
एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं
तद्द्रव्यपर्ययमयं चिदिहास्ति वस्तु ॥ २६४ ॥

અર્થ:—ઇત્યાદિ (-પૂર્વે કહેલી ૪૭ શક્તિઓ વગેરે વગેરે) અનેક નિજ શક્તિઓથી સારી રીતે ભરેલો હોવા છતાં જે ભાવ જ્ઞાનમાત્રમયપણાને છોડતો નથી, એવું તે, પૂર્વોક્ત પ્રકારે ક્રમરૂપ અને અક્રમરૂપ વર્તતા વિવર્તથી (-રૂપાંતરથી, પરિણમનથી) અનેક પ્રકારનું, દ્રવ્યપર્યાયમય ચૈતન્ય (અર્થાત્ એવો તે ચૈતન્યભાવ—આત્મા) આ લોકમાં વસ્તુ છે.

ભાવાર્થ:—કોઈ એમ સમજશે કે આત્માને જ્ઞાનમાત્ર કહ્યો તેથી તે એકસ્વરૂપ જ હશે. પરંતુ એમ નથી. વસ્તુનું સ્વરૂપ દ્રવ્યપર્યાયમય છે. ચૈતન્ય પણ વસ્તુ છે, દ્રવ્યપર્યાયમય છે. તે ચૈતન્ય અર્થાત્ આત્મા અનંત શક્તિઓથી ભરેલો છે અને ક્રમરૂપ તથા અક્રમરૂપ અનેક પ્રકારના પરિણામના વિકારોના સમૂહરૂપ અનેકાકાર થાય

તોપણ જ્ઞાનને—કે જે અસાધારણ ભાવ છે તેને—છોડતો નથી, તેની સર્વ અવસ્થાઓ —પરિણામો—પર્યાયો જ્ઞાનમય જ છે.

'આ અનેકસ્વરૂપ—અનેકાંતમય—વસ્તુને જેઓ જાણે છે, શ્રદ્ધે છે અને નુભવે છે, તેઓ જ્ઞાનસ્વરૂપ થાય છે'—એવા આશયનું, સ્યાદ્વાદનું ફળ બતાવતું વ્ય હવે કહે છે:—

(વસંતતિલકા)

नैकांतसंगतदृशा स्वयमेव वस्तु-
तत्त्वव्यवस्थितिमिति प्रविलोकयन्तः ।
स्याद्वादशुद्धिमधिकामधिगम्य संतो
ज्ञानीभवंति जिननीतिमलंघयन्तः ॥ २६५ ॥

અર્થ:—આવી (અનેકાંતાત્મક) વસ્તુતત્ત્વની વ્યવસ્થિતિને અનેકાંત-સંગત (-અનેકાંત સાથે સુસંગત, અનેકાંત સાથે મેળવાળી) દૃષ્ટિ વડે સ્વયમેવ દેખતા થકા, સ્યાદ્વાદની અત્યંત શુદ્ધિને જાણીને, જિનનીતિને (જિનેશ્વરદેવના માર્ગને) નહિ ઉલ્લંઘતા થકા, સત્પુરુષો જ્ઞાનસ્વરૂપ થાય છે.

ભાવાર્થ:—જે સત્પુરુષો અનેકાંત સાથે સુસંગત દૃષ્ટિ વડે અનેકાંતમય વસ્તુસ્થિતિને દેખે છે, તેઓ એ રીતે સ્યાદ્વાદની શુદ્ધિને પામીને—જાણીને, જિનદેવના માર્ગને—સ્યાદ્વાદન્યાયને—નહિ ઉલ્લંઘતા થકા, જ્ઞાનસ્વરૂપ થાય છે.

(આ રીતે સ્યાદ્વાદ વિષે કહીને, હવે આચાર્યદેવ ઉપાય-ઉપેયભાવ વિષે થોડું કહે છે:—)

હવે આનો (-જ્ઞાનમાત્ર આત્મવસ્તુનો) *ઉપાય-ઉપેયભાવ વિચારવામાં આવે છે (અર્થાત્ આત્મવસ્તુ જ્ઞાનમાત્ર હોવા છતાં તેને ઉપાયપણું અને ઉપેયપણું બન્ને કઈ રીતે ઘટે છે તે વિચારવામાં આવે છે):—

આત્મવસ્તુને જ્ઞાનમાત્રપણું હોવા છતાં પણ તેને ઉપાય-ઉપેયભાવ (ઉપાય-ઉપેયપણું) છે જ; કારણ કે તે એક હોવા છતાં સાધક રૂપે અને સિદ્ધ રૂપે એમ બન્ને રૂપે પરિણમે છે.[1] તેમાં જે સાધક રૂપ છે તે ઉપાય છે અને જે સિદ્ધ રૂપ છે તે ઉપેય

* ઉપેય એટલે પામવાયોગ્ય અને ઉપાય એટલે પામવાયોગ્ય જેનાથી પમાય તે. આત્માનું શુદ્ધ (-સર્વ કર્મ રહિત) સ્વરૂપ અથવા મોક્ષ તે ઉપેય છે અને મોક્ષમાર્ગ તે ઉપાય છે.

1. આત્મા પરિણામી છે અને સાધકપણું તથા સિદ્ધપણું એ બન્ને પરિણામ છે.

છે. માટે, અનાદિ કાળથી મિથ્યાદર્શનજ્ઞાનચારિત્ર વડે (મિથ્યાદર્શન, મિથ્યાજ્ઞાન અને મિથ્યાચારિત્ર વડે) સ્વરૂપથી ચ્યુત હોવાને લીધે સંસારમાં ભ્રમણ કરતાં, સુનિશ્ચળપણે ગ્રહણ કરેલાં વ્યવહારસમ્યગ્દર્શનજ્ઞાનચારિત્રના પાકના પ્રકર્ષની પરંપરા વડે અનુક્રમે સ્વરૂપમાં આરોહણ કરાવવામાં આવતા આત્માને, અંતર્મગ્ન જે નિશ્ચયસમ્યગ્દર્શનજ્ઞાનચારિત્રરૂપ ભેદો તે-પણા વડે પોતે સાધક રૂપે પરિણમતું, તથા પરમ પ્રકર્ષની હદને પામેલા રત્નત્રયની અતિશયતાથી પ્રવર્તેલો જે સકળ કર્મનો ક્ષય તેનાથી પ્રજ્વલિત (દેદીપ્યમાન) થયેલો જે અસ્ખલિત વિમળ સ્વભાવભાવ તે-પણા વડે પોતે સિદ્ધ રૂપે પરિણમતું એવું એક જ જ્ઞાનમાત્ર ઉપાય-ઉપેયભાવ સાધે છે.

(ભાવાર્થ:—આ આત્મા અનાદિ કાળથી મિથ્યાદર્શનજ્ઞાનચારિત્રને લીધે સંસારમાં ભમે છે. તે સુનિશ્ચળપણે ગ્રહણ કરેલાં વ્યવહારસમ્યગ્દર્શનજ્ઞાનચારિત્રની વૃદ્ધિની પરંપરા વડે અનુક્રમે સ્વરૂપનો અનુભવ જ્યારથી કરે ત્યારથી જ્ઞાન સાધક રૂપે પરિણમે છે, કારણ કે જ્ઞાનમાં નિશ્ચયસમ્યગ્દર્શનજ્ઞાનચારિત્રરૂપ ભેદો અંતર્ભૂત છે. નિશ્ચયસમ્યગ્દર્શનજ્ઞાનચારિત્રની શરૂઆતથી માંડીને, સ્વરૂપ-અનુભવની વૃદ્ધિ કરતાં કરતાં જ્યાંસુધી નિશ્ચયસમ્યગ્દર્શનજ્ઞાનચારિત્રની પૂર્ણતા ન થાય, ત્યાંસુધી જ્ઞાનનું સાધક રૂપે પરિણમન છે. જ્યારે નિશ્ચયસમ્યગ્દર્શનજ્ઞાનચારિત્રની પૂર્ણતાથી સમસ્ત કર્મનો નાશ થાય અર્થાત્ સાક્ષાત્ મોક્ષ થાય ત્યારે જ્ઞાન સિદ્ધ રૂપે પરિણમે છે, કારણ કે તેનો અસ્ખલિત નિર્મળ સ્વભાવભાવ પ્રગટ દેદીપ્યમાન થયો છે. આ રીતે સાધક રૂપે અને સિદ્ધ રૂપે—બન્ને રૂપે પરિણમતું એક જ જ્ઞાન આત્મવસ્તુને ઉપાય-ઉપેયપણું સાધે છે).

આ રીતે બન્નેમાં (-ઉપાયમાં તેમ જ ઉપેયમાં-) જ્ઞાનમાત્રનું અનન્યપણું છે અર્થાત્ અન્યપણું નથી; માટે સદાય અસ્ખલિત એક વસ્તુનું (-જ્ઞાનમાત્ર આત્મવસ્તુનું-) નિષ્કંપ ગ્રહણ કરવાથી, મુમુક્ષુઓને કે જેમને અનાદિ સંસારથી ભૂમિકાની પ્રાપ્તિ ન થઈ હોય તેમને પણ, તત્ક્ષણ જ ભૂમિકાની પ્રાપ્તિ થાય છે; પછી તેમાં જ નિત્ય મસ્તી કરતા તે મુમુક્ષુઓ—કે જેઓ પોતાથી જ, ક્રમરૂપ અને અક્રમરૂપ પ્રવર્તતા અનેક અંતની (અનેક ધર્મની) મૂર્તિઓ છે તેઓ—સાધકભાવથી ઉત્પન્ન થતી પરમ પ્રકર્ષની *કોટિરૂપ સિદ્ધિભાવનું ભાજન થાય છે. પરંતુ જેમાં અનેક અંત અર્થાત્ ધર્મ ગર્ભિત છે એવા એક જ્ઞાનમાત્ર ભાવરૂપ આ ભૂમિને જેઓ પ્રાપ્ત કરતા નથી, તેઓ સદા અજ્ઞાની વર્તતા થકા, જ્ઞાનમાત્ર ભાવનું સ્વરૂપથી અભવન અને પરરૂપથી ભવન દેખતા (-શ્રદ્ધતા) થકા, જાણતા થકા અને આચરતા થકા, મિથ્યાદૃષ્ટિ, મિથ્યાજ્ઞાની અને મિથ્યાચારિત્રી વર્તતા થકા, ઉપાય-ઉપેયભાવથી અત્યંત ભ્રષ્ટ વર્તતા થકા સંસારમાં પરિભ્રમણ જ કરે છે.

* કોટિ = અંતિમતા; ઉત્કૃષ્ટતા; ઊંચામાં ઊંચું બિંદુ; ટચ.

હવે આ અર્થનું કળશરૂપ કાવ્ય કહે છે:—

(વસંતતિલકા)

ये ज्ञानमात्रनिजभावमयीमकंपां
भूमिं श्रयंति कथमप्यपनीतमोहाः ।
ते साधकत्वमधिगम्य भवंति सिद्धा
मूढास्त्वमूमनुपलभ्य परिभ्रमंति ॥ २६६ ॥

અર્થ:—જે પુરુષો, કોઈ પણ પ્રકારે જેમનો મોહ દૂર થયો છે એવા થયા થકા, જ્ઞાનમાત્ર નિજભાવમય અકંપ ભૂમિકાનો (અર્થાત્ જ્ઞાનમાત્ર જે પોતાનો ભાવ તે-મય નિશ્ચળ ભૂમિકાનો) આશ્રય કરે છે, તેઓ સાધકપણાને પામીને સિદ્ધ થાય છે; પરંતુ જેઓ મૂઢ (-મોહી, અજ્ઞાની, મિથ્યાદૃષ્ટિ) છે, તેઓ આ ભૂમિકાને નહિ પામીને સંસારમાં પરિભ્રમણ કરે છે.

ભાવાર્થ:—જે ભવ્ય પુરુષો, ગુરુના ઉપદેશથી અથવા સ્વયમેવ કાળલબ્ધિને પામી મિથ્યાત્વથી રહિત થઈને, જ્ઞાનમાત્ર એવા પોતાના સ્વરૂપને પામે છે, તેનો આશ્રય કરે છે, તેઓ સાધક થયા થકા સિદ્ધ થાય છે; પરંતુ જેઓ જ્ઞાનમાત્ર એવા પોતાને પામતા નથી, તેઓ સંસારમાં રખડે છે.

આ ભૂમિકાનો આશ્રય કરનાર જીવ કેવો હોય તે હવે કહે છે:—

(વસંતતિલકા)

स्याद्वादकौशलसुनिश्चलसंयमाभ्यां
यो भावयत्यहरहः स्वमिहोपयुक्तः ।
ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्री-
पात्रीकृतः श्रयति भूमिमिमां स एकः ॥ २६७ ॥

અર્થ:—જે પુરુષ સ્યાદ્વાદમાં પ્રવીણતા તથા (રાગાદિક અશુદ્ધ પરિણતિના ત્યાગરૂપ) સુનિશ્ચળ સંયમ—એ બન્ને વડે પોતામાં ઉપયુક્ત રહેતો થકો (અર્થાત્ પોતાના જ્ઞાનસ્વરૂપ આત્મામાં ઉપયોગને જોડતો થકો) પ્રતિદિન પોતાને ભાવે છે (નિરંતર પોતાના આત્માની ભાવના કરે છે), તે જ એક [illegible]). જ્ઞાનનય અને [illegible]નયની પરસ્પર તીવ્ર મૈત્રીના પાત્રરૂપ થયેલો, [illegible] (નિજભાવમય) [illegible]કાનો આશ્રય કરે છે.

ભાવાર્થ:—જે જ્ઞાનનયને જ ગ્રહીને ક્રિયાનયને છોડે છે, તે પ્રમાદી અને સ્વચ્છંદી પુરુષને આ ભૂમિકાની પ્રાપ્તિ થઈ નથી. જે ક્રિયાનયને જ ગ્રહીને જ્ઞાનનયને જાણતો નથી, તે (વ્રત-સમિતિ-ગુપ્તિરૂપ) શુભ કર્મથી સંતુષ્ટ પુરુષને પણ આ નિષ્કર્મ ભૂમિકાની પ્રાપ્તિ થઈ નથી. જે પુરુષ અનેકાંતમય આત્માને જાણે છે (-અનુભવે છે) તથા સુનિશ્ચળ સંયમમાં વર્તે છે (-રાગાદિક અશુદ્ધ પરિણતિનો ત્યાગ કરે છે) એ રીતે જેણે જ્ઞાનનય અને ક્રિયાનયની પરસ્પર તીવ્ર મૈત્રી સાધી છે, તે જ પુરુષ આ જ્ઞાનમાત્ર નિજભાવમયી ભૂમિકાનો આશ્રય કરનાર છે.

જ્ઞાનનય અને ક્રિયાનયના ગ્રહણ-ત્યાગનું સ્વરૂપ અને ફળ 'પંચાસ્તિકાય' ગ્રંથના અંતમાં કહ્યું છે, ત્યાંથી જાણવું.

આમ જે પુરુષ આ ભૂમિકાનો આશ્રય કરે છે, તે જ અનંત ચતુષ્ટયમય આત્માને પામે છે—એવા અર્થનું કાવ્ય હવે કહે છે:—

(વસંતતિલકા)

चित्पिण्डचण्डिमविलासिविकासहासः
शुद्धप्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः ।
आनन्दसुस्थितसदास्खलितैकरूप-
स्तस्यैव चायमुदयत्यचलार्चिरात्मा ॥ २६८ ॥

અર્થ:—(પૂર્વોક્ત રીતે જે પુરુષ આ ભૂમિકાનો આશ્રય કરે છે) તેને જ, ચૈતન્યપિંડનો નિરર્ગળ વિલસતો જે વિકાસ તે રૂપ જેનું ખીલવું છે (અર્થાત્ ચૈતન્યપુંજનો અત્યંત વિકાસ થવો તે જ જેનું ખીલવું-ખીલી નીકળવું છે), શુદ્ધ પ્રકાશની અતિશયતાને લીધે જે સુપ્રભાત સમાન છે, આનંદમાં સુસ્થિત એવું જેનું સદા અસ્ખલિત એક રૂપ છે અને અચળ જેની જ્યોત છે એવો આ આત્મા ઉદય પામે છે.

ભાવાર્થ:—અહીં 'ચિત્પિંડ' ઇત્યાદિ વિશેષણથી અનંત દર્શનનું પ્રગટ થવું જણાવ્યું છે, 'શુદ્ધપ્રકાશ' ઇત્યાદિ વિશેષણથી અનંત જ્ઞાનનું પ્રગટ થવું જણાવ્યું છે, 'આનંદસુસ્થિત' ઇત્યાદિ વિશેષણથી અનંત સુખનું પ્રગટ થવું જણાવ્યું છે અને 'અચલાર્ચિ' વિશેષણથી અનંત વીર્યનું પ્રગટ થવું જણાવ્યું છે. પૂર્વોક્ત ભૂમિકાનો આશ્રય કરવાથી જ આવા આત્માનો ઉદય થાય છે.

હવે, એ જ આત્મસ્વભાવ અમને પ્રગટ હો એમ ભાવના કરે છે:—

(વસંતતિલકા)

स्याद्वाददीपितलसन्महसि प्रकाशे
शुद्धस्वभावमहिमन्युदिते मयीति ।
किं बंधमोक्षपथपातिभिरन्यभावै-
र्नित्योदयः परमयं स्फुरतु स्वभावः ॥ २६९ ॥

અર્થઃ—સ્યાદ્વાદ વડે પ્રદીપ્ત કરવામાં આવેલું લસલસતું (-ઝગઝગાટ કરતું) જેનું તેજ છે અને જેમાં શુદ્ધસ્વભાવરૂપ મહિમા છે એવો આ પ્રકાશ (જ્ઞાનપ્રકાશ) જ્યાં મારામાં ઉદય પામ્યો છે, ત્યાં બંધ-મોક્ષના માર્ગમાં પડનારા અન્ય ભાવોથી મારે શું પ્રયોજન છે? નિત્ય જેનો ઉદય રહે છે એવો કેવળ આ (અનંત ચતુષ્ટયરૂપ) સ્વભાવ જ મને સ્ફુરાયમાન હો.

ભાવાર્થઃ—સ્યાદ્વાદથી યથાર્થ આત્મજ્ઞાન થયા પછી એનું ફળ પૂર્ણ આત્માનું પ્રગટ થવું તે છે. માટે મોક્ષનો ઇચ્છક પુરુષ એ જ પ્રાર્થના કરે છે કે—મારો પૂર્ણસ્વભાવ આત્મા મને પ્રગટ થાઓ; બંધમોક્ષમાર્ગમાં પડતા અન્ય ભાવોનું મારે શું કામ છે?

'જોકે નયો વડે આત્મા સધાય છે તોપણ જો નયો પર જ દૃષ્ટિ રહે તો નયોમાં તો પરસ્પર વિરોધ પણ છે, માટે હું નયોને અવિરોધ કરીને અર્થાત્ નયોનો વિરોધ મટાડીને આત્માને અનુભવું છું'—એવા અર્થનું કાવ્ય હવે કહે છે:—

(વસંતતિલકા)

चित्रात्मशक्तिसमुदायमयोऽयमात्मा
सद्यः प्रणश्यति नयेक्षणखंड्यमानः ।
तस्मादखंडमनिराकृतखंडमेक-
मेकांतशांतमचलं चिदहं महोऽस्मि ॥ २७० ॥

અર્થઃ—અનેક પ્રકારની નિજ શક્તિઓના સમુદાયમય આ આત્મા નયોની દૃષ્ટિથી ખંડખંડરૂપ કરવામાં આવતાં તત્કાળ નાશ પામે છે; માટે હું એમ અનુભવું છું કે—જેમાંથી ખંડોને *નિરાકૃત કરવામાં આવ્યા નથી છતાં જે અખંડ છે, એક છે, એકાંત શાંત છે (અર્થાત્ જેમાં કર્મના ઉદયનો લેશ પણ નથી એવા અત્યંત શાંત

* નિરાકૃત = બહિષ્કૃત; દૂર; રદબાતલ; નાકબૂલ.

ભાવમય છે) અને અચળ છે (અર્થાત્ કર્મના ઉદયથી ચળાવ્યું ચળતું નથી) ચૈતન્યમાત્ર તેજ હું છું.

ભાવાર્થઃ—આત્મામાં અનેક શક્તિઓ છે અને એક એક શક્તિનો એક એક નય છે; માટે જો નયોની એકાંત દૃષ્ટિથી જોવામાં આવે તો આત્માના ખંડ ખંડ થઈને તેનો નાશ થઈ જાય. આમ હોવાથી સ્યાદ્વાદી, નયોનો વિરોધ ચૈતન્યમાત્ર વસ્તુને અનેકશક્તિસમૂહરૂપ, સામાન્યવિશેષસ્વરૂપ, સર્વશક્તિમય એકજ્ઞાનમાત્ર અનુભવે છે. એવું જ વસ્તુનું સ્વરૂપ છે, એમાં વિરોધ નથી.

હવે, જ્ઞાની અખંડ આત્માનો આવો અનુભવ કરે છે એમ આચાર્યદેવ ગદ્યમાં કહે છેઃ—

(જ્ઞાની શુદ્ધનયનું આલંબન લઈ એમ અનુભવે છે કે—) હું મને અર્થાત્ મારા શુદ્ધાત્મસ્વરૂપને નથી દ્રવ્યથી ખંડતો (-ખંડિત કરતો), નથી ક્ષેત્રથી ખંડતો, નથી કાળથી ખંડતો, નથી ભાવથી ખંડતો; સુવિશુદ્ધ એક જ્ઞાનમાત્ર ભાવ છું.

ભાવાર્થઃ—શુદ્ધનયથી જોવામાં આવે તો શુદ્ધ ચૈતન્યમાત્ર ભાવમાં દ્રવ્ય-ક્ષેત્ર-કાળ-ભાવથી કાંઈ પણ ભેદ દેખાતો નથી. માટે જ્ઞાની અભેદજ્ઞાનસ્વરૂપ અનુભવમાં ભેદ કરતો નથી.

જ્ઞાનમાત્ર ભાવ પોતે જ જ્ઞાન છે, પોતે જ પોતાનું જ્ઞેય છે અને પોતે જ પોતાનો જ્ઞાતા છે—એવા અર્થનું કાવ્ય હવે કહે છેઃ—

(શાલિની)

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव ।
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन्
ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ॥ २७१ ॥

અર્થઃ—જે આ જ્ઞાનમાત્ર ભાવ હું છું તે જ્ઞેયોના જ્ઞાનમાત્ર જ ન જાણવો; (પરંતુ) જ્ઞેયોના આકારે થતા જ્ઞાનના કલ્લોલોરૂપે પરિણમતો તે, જ્ઞાન-જ્ઞેય-જ્ઞાતામય વસ્તુમાત્ર જાણવો (અર્થાત્ પોતે જ જ્ઞાન, પોતે જ જ્ઞેય અને પોતે જ જ્ઞાતા—એમ જ્ઞાન-જ્ઞેય-જ્ઞાતારૂપ ત્રણે ભાવો યુક્ત વસ્તુમાત્ર જાણવો).

ભાવાર્થઃ—જ્ઞાનમાત્ર ભાવ જ્ઞાતૃક્રિયારૂપ હોવાથી જ્ઞાનસ્વરૂપ છે. વળી તે પોતે જ નીચે પ્રમાણે જ્ઞેયરૂપ છે. બાહ્ય જ્ઞેયો જ્ઞાનથી જુદાં છે, જ્ઞાનમાં પેસતાં નથી;

જ્ઞેયોના આકારની ઝળક જ્ઞાનમાં આવતાં જ્ઞાન જ્ઞેયાકારરૂપ દેખાય છે પરંતુ એ જ્ઞાનના જ કલ્લોલો (-તરંગો) છે. તે જ્ઞાનકલ્લોલો જ જ્ઞાન વડે જણાય છે. આ રીતે પોતે જ પોતાથી જણાવાયોગ્ય હોવાથી જ્ઞાનમાત્ર ભાવ જ જ્ઞેયરૂપ છે વળી પોતે જ પોતાનો જાણનાર હોવાથી જ્ઞાનમાત્ર ભાવ જ જ્ઞાતા છે. આ પ્રમાણે જ્ઞાનમાત્ર ભાવ જ્ઞાન, જ્ઞેય અને જ્ઞાતા—એ ત્રણે ભાવોયુક્ત સામાન્યવિશેષસ્વરૂપ વસ્તુ છે. 'આવો જ્ઞાનમાત્ર ભાવ હું છું' એમ અનુભવ કરનાર પુરુષ અનુભવે છે.

આત્મા મેચક, અમેચક ઇત્યાદિ અનેક પ્રકારે દેખાય છે તોપણ યથાર્થ જ્ઞાની નિર્મળ જ્ઞાનને ભૂલતો નથી—એવા અર્થનું કાવ્ય હવે કહે છેઃ—

(પૃથ્વી)

कचिल्लसति मेचकं क्वचिन्मेचकामेचकं
क्वचित्पुनरमेचकं सहजमेव तत्त्वं मम ।
तथापि न विमोहयत्यमलमेधसां तन्मनः
परस्परसुसंहतप्रकटशक्तिचक्रं स्फुरत् ॥ २७२ ॥

અર્થઃ—(જ્ઞાની કહે છેઃ) મારા તત્ત્વનો એવો સ્વભાવ જ છે કે કોઈ વાર તો તે (આત્મતત્ત્વ) મેચક (-અનેકાકાર, અશુદ્ધ) દેખાય છે, કોઈ વાર મેચક-અમેચક (બન્નેરૂપ) દેખાય છે અને વળી કોઈ વાર અમેચક (-એકાકાર, શુદ્ધ) દેખાય છે; તોપણ પરસ્પર સુસંહત (-સુમિલિત, સુગ્રથિત, સારી રીતે ગુંથાયેલી) પ્રગટ શક્તિઓના સમૂહરૂપે સ્ફુરાયમાન તે આત્મતત્ત્વ નિર્મળ બુદ્ધિવાળાઓના મનને વિમોહિત કરતું નથી (-ભ્રમિત કરતું નથી, મુંઝવતું નથી).

ભાવાર્થઃ—આત્મતત્ત્વ અનેક શક્તિઓવાળું હોવાથી કોઈ અવસ્થામાં કર્મના ઉદયના નિમિત્તથી અનેકાકાર અનુભવાય છે, કોઈ અવસ્થામાં શુદ્ધ એકાકાર અનુભવાય છે અને કોઈ અવસ્થામાં શુદ્ધાશુદ્ધ અનુભવાય છે; તોપણ યથાર્થ જ્ઞાની સ્યાદ્વાદના બળથી ભ્રમિત થતો નથી, જેવું છે તેવું જ માને છે, જ્ઞાનમાત્રથી ચ્યુત થતો નથી.

આત્માનો અનેકાંતસ્વરૂપ (-અનેક ધર્મસ્વરૂપ) વૈભવ અદ્ભુત (આશ્ચર્યકારક) છે—એવા અર્થનું કાવ્ય હવે કહે છેઃ—

(પૃથ્વી)

इतो गतमनेकतां दधदितः सदाप्येकता-
मितः क्षणविभंगुरं ध्रुवमितः सदैवोदयात् ।

इतः परमविस्तृतं धृतमितः प्रदेशैर्निजै-
रहो सहजमात्मनस्तदिदमद्भुतं वैभवम् ॥ २७३ ॥

અર્થ:—અહો! આત્માનો તે આ સહજ અદ્ભુત વૈભવ છે કે—એક તરફથી જોતાં તે અનેકતાને પામેલો છે અને એક તરફથી જોતાં સદાય એકતાને ધારણ કરે છે; એક તરફથી જોતાં ક્ષણભંગુર છે અને એક તરફથી જોતાં સદાય તેનો ઉદય ધ્રુવ છે, એક તરફથી જોતાં પરમ વિસ્તૃત છે અને એક તરફથી જોતાં પોતાના પ્રદેશોથી જ ધારણ કરી રખાયેલો છે.

ભાવાર્થ:—પર્યાયદૃષ્ટિથી જોતાં આત્મા અનેકરૂપ દેખાય છે અને દ્રવ્યદ્રષ્ટિ જોતાં એકરૂપ દેખાય છે; ક્રમભાવી પર્યાયદૃષ્ટિથી જોતાં ક્ષણભંગુર દેખાય છે અને સહભાવી ગુણદૃષ્ટિથી જોતાં ધ્રુવ દેખાય છે; જ્ઞાનની અપેક્ષાવાળી સર્વગત દૃષ્ટિથી જોતાં પરમ વિસ્તારને પામેલો દેખાય છે અને પ્રદેશોની અપેક્ષાવાળી દૃષ્ટિથી જોતાં પોતાના પ્રદેશોમાં જ વ્યાપેલો દેખાય છે. આવો દ્રવ્યપર્યાયાત્મક અનંતધર્મવાળો વસ્તુનો સ્વભાવ છે. તે (સ્વભાવ) અજ્ઞાનીઓના જ્ઞાનમાં આશ્ચર્ય ઉપજાવે છે કે આ તો અસંભવિત જેવી વાત છે! જ્ઞાનીઓને જોકે વસ્તુસ્વભાવમાં આશ્ચર્ય નથી તોપણ તેમને પૂર્વે કદી નહિ થયેલો એવો અદ્ભુત પરમ આનંદ થાય છે, અને તેથી આશ્ચર્ય પણ થાય છે.

ફરી આ જ અર્થનું કાવ્ય કહે છે:—

(પૃથ્વી)

कषायकलिरेकतः स्खलति शान्तिरस्त्येकतो
भवोपहतिरेकतः स्पृशति मुक्तिरप्येकतः ।
जगत्त्रितयमेकतः स्फुरति चिच्चकास्त्येकतः
स्वभावमहिमात्मनो विजयतेऽद्भुतादद्भुतः ॥ २७४ ॥

અર્થ:—એક તરફથી જોતાં કષાયોનો કલેશ દેખાય છે અને એક તરફથી જોતાં શાંતિ (કષાયોના અભાવરૂપ શાંત ભાવ) છે; એક તરફથી જોતાં ભવની (સાંસારિક) પીડા દેખાય છે અને એક તરફથી જોતાં (સંસારના અભાવરૂપ) મુક્તિ પણ સ્પર્શે છે; એક તરફથી જોતાં ત્રણ લોક સ્ફુરાયમાન છે (પ્રકાશે છે, દેખાય છે) અને એક તરફથી જોતાં કેવળ એક ચૈતન્ય જ શોભે છે. (આવો) આત્માનો અદ્ભુતથી પણ અદ્ભુત સ્વભાવમહિમા જયવંત વર્તે છે (કોઈથી બાધિત થતો નથી).

ભાવાર્થ:—અહીં પણ ૨૭૩મા કાવ્યના ભાવાર્થ પ્રમાણે જાણવું. આત્માનો અનેકાંતમય સ્વભાવ સાંભળીને અન્યવાદીને ભારે આશ્ચર્ય થાય છે. તેને આ વાતમાં વિરોધ ભાસે છે. તે આવા અનેકાંતમય સ્વભાવની વાતને પોતાના ચિત્તમાં સમાવી શકતો નથી. જો કદાચિત્ તેને શ્રદ્ધા થાય તો પણ પ્રથમ અવસ્થામાં તેને ઘણું અદ્ભુતતા લાગે છે કે 'અહો આ જિનવચનો મહા ઉપકારી છે, વસ્તુના યથાર્થ સ્વરૂપને બતાવનારાં છે; મેં અનાદિ કાળ આવા યથાર્થ સ્વરૂપના જ્ઞાન વિના ખોયો!'—આમ આશ્ચર્યપૂર્વક શ્રદ્ધાન કરે છે.

હવે ટીકાકાર આચાર્યદેવ આ સર્વવિશુદ્ધજ્ઞાન અધિકાર પૂર્ણ કરતાં તેના અંતમંગળને અર્થે આ ચિત્ચમત્કારને જ સર્વોત્કૃષ્ટ કહે છે:—

(માલિની)

जयति सहजतेजःपुंजमज्जत्त्रिलोकी-
स्खलदखिलविकल्पोऽप्येक एव स्वरूपः।
स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतत्त्वोपलंभः
प्रसभनियमितार्चिश्चिच्चमत्कार एषः ॥ २७५ ॥

અર્થ:—સહજ (-પોતાના સ્વભાવરૂપ) તેજઃપુંજમાં ત્રણ લોકના પદાર્થો મગ્ન થતા હોવાથી જેમાં અનેક ભેદો થતા દેખાય છે તોપણ જેનું એક જ સ્વરૂપ છે (અર્થાત્ કેવળજ્ઞાનમાં સર્વ પદાર્થો ઝળકતા હોવાથી જે અનેક જ્ઞેયાકારરૂપ દેખાય છે તોપણ ચૈતન્યરૂપ જ્ઞાનાકારની દૃષ્ટિમાં જે એકસ્વરૂપ જ છે), જેમાં નિજ રસના વિસ્તારથી પૂર્ણ અચ્છિન્ન તત્ત્વ-ઉપલબ્ધિ છે (અર્થાત્ પ્રતિપક્ષી કર્મનો અભાવ થયો હોવાથી જેમાં સ્વરૂપ-અનુભવનનો અભાવ થતો નથી) અને અત્યંત નિયમિત જેની જ્યોતિ છે (અર્થાત્ અનંત વીર્યથી જે નિષ્કંપ રહે છે) એવો આ (પ્રત્યક્ષ અનુભવગોચર) ચૈતન્યચમત્કાર જયવંત વર્તે છે (-કોઈથી બાધિત ન કરી શકાય એમ સર્વોત્કૃષ્ટપણે વર્તે છે).

(અહીં 'ચૈતન્યચમત્કાર જયવંત વર્તે છે' એમ કહેવામાં જે ચૈતન્યચમત્કારનું સર્વોત્કૃષ્ટપણે વર્તવું બતાવ્યું, તે જ મંગળ છે.)

હવેના કાવ્યમાં ટીકાકાર આચાર્યદેવ અંતમંગળને અર્થે આ ... આપે છે અને સાથે સાથે પોતાનું નામ પણ પ્રગટ કરે છે:—

(માલિની)

अविचलितचिदात्मन्यात्मनात्मानमात्म-
न्यनवरतनिमग्नं धारयद्ध्वस्तमोहम् ।
उदितममृतचंद्रज्योतिरेतत्समंता-
ज्ज्वलतु विमलपूर्णं निःसपत्नस्वभावम् ॥ २७६ ॥

અર્થઃ—જે અચળ-ચેતનાસ્વરૂપ આત્મામાં આત્માને પોતાથી જ અનવરતપણે (-નિરંતર) નિમગ્ન રાખે છે (અર્થાત્ પ્રાપ્ત કરેલા સ્વભાવને કદી છોડતી નથી), જેણે મોહનો (અજ્ઞાન-અંધકારનો) નાશ કર્યો છે, જેનો સ્વભાવ નિઃસપત્ન (અર્થાત્ પ્રતિપક્ષી કર્મો વિનાનો) છે, જે નિર્મળ છે અને જે પૂર્ણ છે એવી આ ઉદય પામેલી અમૃતચંદ્રજ્યોતિ (-અમૃતમય ચંદ્રમા સમાન જ્યોતિ, જ્ઞાન, આત્મા) સર્વ તરફથી જાજ્વલ્યમાન રહો.

ભાવાર્થઃ—જેનું મરણ નથી તથા જેનાથી અન્યનું મરણ નથી તે અમૃત છે; વળી જે અત્યંત સ્વાદિષ્ટ (-મીઠું) હોય તેને લોકો રૂઢિથી અમૃત કહે છે. અહીં જ્ઞાનને—આત્માને—અમૃતચંદ્રજ્યોતિ (અર્થાત્ અમૃતમય ચંદ્રમા સમાન જ્યોતિ) કહેલ છે, તે લુપ્તોપમા અલંકારથી કહ્યું જાણવું; કારણ કે 'अमृतचंद्रवत् ज्योतिः'નો સમાસ કરતાં 'वत्'નો લોપ થઈ 'अमृतचंद्रज्योतिः' થાય છે.

('वत्' શબ્દ ન મૂકતાં અમૃતચંદ્રરૂપ જ્યોતિ એવો અર્થ કરીએ તો ભેદરૂપક અલંકાર થાય છે. 'અમૃતચંદ્રજ્યોતિ' એવું જ આત્માનું નામ કહીએ તો અભેદરૂપક અલંકાર થાય છે.)

આત્માને અમૃતમય ચંદ્રમા સમાન કહ્યો હોવા છતાં, અહીં કહેલાં વિશેષણો વડે આત્માને ચંદ્રમા સાથે વ્યતિરેક પણ છે; કારણ કે—'ध्वस्तमोह' વિશેષણ અજ્ઞાન-અંધકારનું દૂર થવું જણાવે છે, 'विमलपूर्ण' વિશેષણ લાંછનરહિતપણું તથા પૂર્ણપણું બતાવે છે, 'निःसपत्नस्वभाव' વિશેષણ રાહુબિંબથી તથા વાદળાં આદિથી આચ્છાદિત ન થવાનું જણાવે છે, 'समंतात् ज्वलतु' કહ્યું છે તે સર્વ ક્ષેત્રે તથા સર્વ કાળે પ્રકાશ કરવાનું જણાવે છે; ચંદ્રમા આવો નથી.

આ કાવ્યમાં ટીકાકાર આચાર્યદેવે 'અમૃતચંદ્ર' એવું પોતાનું નામ પણ જણાવ્યું છે. સમાસ પલટીને અર્થ કરતાં 'અમૃતચંદ્ર'ના અને 'અમૃતચંદ્રજ્યોતિ'ના અનેક અર્થો થાય છે તે યથાસંભવ જાણવા.

સર્વવિશુદ્ધજ્ઞાનરૂપ સદા ચિદાનંદ કરતા ન ભોગતા ન પરદ્રવ્યભાવકો;
મૂરત અમૂરત જે આનદ્રવ્ય લોકમાંહિ તેભી જ્ઞાનરૂપ નાહીં ન્યારે ન અભાવકો;
યહૈ જાનિ જ્ઞાની જીવ આપકું ભજૈ સદીવ જ્ઞાનરૂપ સુખતૂપ આન ન લગાવકો,
કર્મ કર્મફલરૂપ ચેતનાકૂ દૂરિ ટારિ જ્ઞાનચેતના અભ્યાસ કરે શુદ્ધ ભાવકો.

આમ આ સમયસારગ્રંથની (શ્રીમદ્ અમૃતચંદ્રસૂરિવિરચિત) આત્મખ્યાતિ નામની ટીકાની પંડિત જયચંદ્રજીકૃત ભાષાવચનિકામાં નવમો સર્વવિશુદ્ધજ્ઞાન અધિકાર પૂર્ણ થયો.

* * *

હવે શ્રીમાન્ અમૃતચંદ્ર આચાર્યદેવ બે કાવ્યો કહીને આ સમયસારગ્રંથની આત્મખ્યાતિ નામની ટીકા પૂર્ણ કરે છે.

'અજ્ઞાનદશામાં આત્મા સ્વરૂપને ભૂલીને રાગદ્વેષમાં વર્તતો હતો, પરદ્રવ્યની ક્રિયાનો કર્તા થતો હતો, ક્રિયાના ફળનો ભોક્તા થતો હતો,—ઇત્યાદિ ભાવો કરતો હતો; પરંતુ હવે જ્ઞાનદશામાં તે ભાવો કાંઈ જ નથી એમ અનુભવાય છે.'—આવા અર્થનું કાવ્ય પ્રથમ કહે છેઃ—

(શાર્દૂલવિક્રીડિત)

यस्माद्द्वैतमभूत्पुरा स्वपरयोर्भूतं यतोऽत्रान्तरं
रागद्वेषपरिग्रहे सति यतो जातं क्रियाकारकैः ।
भुंजाना च यतोऽनुभूतिरखिलं खिन्ना क्रियायाः फलं
तद्विज्ञानघनौघमग्नमधुना किंचिन्न किंचित्किल ॥ २७७ ॥

અર્થઃ—જેનાથી (અર્થાત્ જે પરસંયોગરૂપ બંધપર્યાયજનિત અજ્ઞાનથી) પ્રથમ પોતાનું અને પરનું દ્વૈત થયું (અર્થાત્ પોતાના અને પરના એકપણારૂપ અધ્યાસ ન થયો), દ્વૈતપણું થતાં જેનાથી સ્વરૂપમાં અંતર પડ્યું (અર્થાત્ બંધપર્યાય જ પોતારૂપ જણાયો), સ્વરૂપમાં અંતર પડતાં જેનાથી રાગદ્વેષનું ગ્રહણ થયું, રાગદ્વેષનું ગ્રહણ થતાં જેનાથી ક્રિયાના કારકો ઉત્પન્ન થયા (અર્થાત્ ક્રિયાનો અને કર્તા-કર્મ આદિ કારકોનો ભેદ પડ્યો), કારકો ઉત્પન્ન થતાં જેનાથી અનુભૂતિ ક્રિયાના સમસ્ત ફળને ભોગવતી થકી ખિન્ન થઈ (-ખેદ પામી), તે અજ્ઞાન હવે વિજ્ઞાનઘનના સમૂહમાં મગ્ન થયું (અર્થાત્ જ્ઞાનરૂપે પરિણમ્યું) તેથી હવે તે બધું ખરેખર કાંઈ જ નથી.

ભાવાર્થ:—પરસંયોગથી જ્ઞાન જ અજ્ઞાનરૂપે પરિણમ્યું હતું, અજ્ઞાન કં જુદી વસ્તુ નહોતી; માટે હવે જ્યાં તે જ્ઞાનરૂપે પરિણમ્યું ત્યાં તે (અજ્ઞાન) કાંઈ ન રહ્યું. અજ્ઞાનના નિમિત્તે રાગ, દ્વેષ, ક્રિયાનું કર્તાપણું, ક્રિયાના ફળનું (-સુખદુઃખનું ભોક્તાપણું ઇત્યાદિ ભાવો થતા હતા તે પણ વિલય પામ્યા; એક જ્ઞાન જ રહી ગયું માટે હવે આત્મા સ્વ-પરના ત્રણકાળવર્તી ભાવોને જ્ઞાતા-દ્રષ્ટા થઈને દેખ્યા જ કરે.

'પૂર્વોક્ત રીતે જ્ઞાનદશામાં પરની ક્રિયા પોતાની નહિ ભાસતી હોવાથી આ સમયસારની વ્યાખ્યા કરવાની ક્રિયા પણ મારી નથી, શબ્દોની છે'—એવા અર્થનું; સમયસારની વ્યાખ્યા કરવાના અભિમાનરૂપ કષાયના ત્યાગને સૂચવનારું કાવ્ય હવે કહે છે:—

(ઉપજાતિ)

स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वै-
र्व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः ।
स्वरूपगुप्तस्य न किंचिदस्ति
कर्तव्यमेवामृतचंद्रसूरेः ॥ २७८ ॥

અર્થ:—પોતાની શક્તિથી જેમણે વસ્તુનું તત્ત્વ (-યથાર્થ સ્વરૂપ) સારી રીતે કહ્યું છે એવા શબ્દોએ આ સમયની વ્યાખ્યા (-આત્મવસ્તુનું વ્યાખ્યાન અથવા સમયપ્રાભૃતશાસ્ત્રની ટીકા) કરી છે; સ્વરૂપગુપ્ત (-અમૂર્તિક જ્ઞાનમાત્ર સ્વરૂપમાં ગુપ્ત) અમૃતચંદ્રસૂરિનું (તેમાં) કાંઈ જ કર્તવ્ય નથી.

ભાવાર્થ:—શબ્દો છે તે તો પુદ્‌ગલ છે. તેઓ પુરુષના નિમિત્તથી વર્ણ-પદ-વાક્યરૂપે પરિણમે છે; તેથી તેમનામાં વસ્તુના સ્વરૂપને કહેવાની શક્તિ સ્વયમેવ છે, કારણ કે શબ્દનો અને અર્થનો વાચ્યવાચક સંબંધ છે. આ રીતે દ્રવ્યશ્રુતની રચના શબ્દોએ કરી છે એ વાત જ યથાર્થ છે. આત્મા તો અમૂર્તિક છે, જ્ઞાનસ્વરૂપ છે, તેથી તે મૂર્તિક પુદ્‌ગલની રચના કેમ કરી શકે? માટે જ આચાર્યદેવે કહ્યું છે કે 'આ સમયપ્રાભૃતની ટીકા શબ્દોએ કરી છે, હું તો સ્વરૂપમાં લીન છું, મારું કર્તવ્ય તેમાં (-ટીકા કરવામાં) કાંઈ જ નથી.' આ કથન આચાર્યદેવની નિર્માનતા પણ બતાવે છે. હવે જો નિમિત્તનૈમિત્તિક વ્યવહારથી કહીએ તો એમ પણ કહેવાય છે જ કે અમુક કાર્ય અમુક પુરુષે કર્યું. આ ન્યાયે આ આત્મખ્યાતિ નામની ટીકા પણ અમૃતચંદ્રાચાર્યકૃત છે જ. તેથી તેને વાંચનારા તથા સાંભળનારાઓએ તેમનો ઉપકાર માનવો પણ યુક્ત છે; કારણ કે તેને વાંચવા તથા સાંભળવાથી પારમાર્થિક આત્માનું સ્વરૂપ

જણાય છે, તેનું શ્રદ્ધાન તથા આચરણ થાય છે, મિથ્યા જ્ઞાન, શ્રદ્ધાન તથા આચરણ દૂર થાય છે અને પરંપરાએ મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે. મુમુક્ષુઓએ આનો નિરંતર અભ્યાસ કરવાયોગ્ય છે.

આમ આ સમયસારગ્રંથની **આત્મખ્યાતિ નામની ટીકા** સમાપ્ત થઈ.

*

(હવે પં૦ જયચંદ્રજી ભાષાટીકા પૂર્ણ કરે છેઃ—)

કુંદકુંદમુનિ કિયો ગાથાબંધ પ્રાકૃત હૈ પ્રાભૃતસમય શુદ્ધ આતમ દિખાવનૂં,
સુધાચંદ્રસૂરિ કરી સંસ્કૃત ટીકાવર આત્મખ્યાતિ નામ યથાતથ્ય ભાવનૂં;
દેશકી વચનિકામેં લિખિ જયચંદ્ર પઢૈ સંક્ષેપ અર્થ અલ્પબુદ્ધિકૂં પાવનૂં,
પઢો સુનો મન લાય શુદ્ધ આતમા લખાય જ્ઞાનરૂપ ગહૌ ચિદાનંદ દરસાવનૂં. ૧.

સમયસાર અધિકારકા, વર્ણન કર્ણ સુનંત;
દ્રવ્ય-ભાવ-નોકર્મ તજિ, આતમતત્ત્વ લખંત. ૨.

આ પ્રમાણે આ સમયપ્રાભૃત (અથવા સમયસાર) નામના ગ્રંથની આત્મખ્યાતિ નામની સંસ્કૃત ટીકાની દેશભાષામય વચનિકા લખી છે. તેમાં સંસ્કૃત ટીકાનો અર્થ લખ્યો છે અને અતિ સંક્ષિપ્ત ભાવાર્થ લખ્યો છે, વિસ્તાર કર્યો નથી. સંસ્કૃત ટીકામાં ન્યાયથી સિદ્ધ થયેલા પ્રયોગો છે. તેમનો વિસ્તાર કરવામાં આવે તો અનુમાન-પ્રમાણના પાંચ અંગોપૂર્વક—પ્રતિજ્ઞા, હેતુ, ઉદાહરણ, ઉપનય અને નિગમનપૂર્વક—સ્પષ્ટતાથી વ્યાખ્યાન લખતાં ગ્રંથ બહુ વધી જાય; તેથી આયુ, બુદ્ધિ, બળ અને સ્થિરતાની અલ્પતાને લીધે, જેટલું બની શક્યું તેટલું, સંક્ષેપથી પ્રયોજનમાત્ર લખ્યું છે. તે વાંચીને ભવ્ય જીવો પદાર્થને સમજજો. કોઈ અર્થમાં હીનાધિકતા હોય તો બુદ્ધિમાનો મૂળ ગ્રંથમાંથી જેમ હોય તેમ યથાર્થ સમજી લેજો. આ ગ્રંથના ગુરુસંપ્રદાયનો (-ગુરુપરંપરાગત ઉપદેશનો) વ્યુચ્છેદ થઈ ગયો છે, માટે જેટલો બની શકે તેટલો (-યથાશક્તિ) અભ્યાસ થઈ શકે છે. તોપણ જેઓ સ્યાદ્વાદમય જિનમતની આજ્ઞા માને છે, તેમને વિપરીત શ્રદ્ધાન થતું નથી. ક્યાંક અર્થનું અન્યથા સમજવું પણ થઈ જાય તો વિશેષ બુદ્ધિમાનનું નિમિત્ત મળ્યે યથાર્થ થઈ જાય છે. જિનમતના શ્રદ્ધાવાળાઓ હઠાગ્રહી હોતા નથી.

હવે અંતમંગળને અર્થે પંચ પરમેષ્ઠીને નમસ્કાર કરી ગ્રંથ સમાપ્ત કરીએ છીએઃ—

મંગલ શ્રી અરહંત ઘાતિયા કર્મ નિવારે,
મંગલ સિદ્ધ મહંત કર્મ આઠોં પરજારે;
આચારજ ઉવઝાય મુની મંગલમય સારે,
દીક્ષા શિક્ષા દેય ભવ્યજીવનિકૂં તારે;
અઠવીસ મૂલગુણ ધાર જે સર્વસાધુ અણગાર હૈં,
મૈં નમૂં પંચગુરુચરણકૂં મંગલ હેતુ કરાર હૈં. ૧.

જૈપુર નગરમાંહિ તેરાપંથ શૈલી બડી
બડે બડે ગુની જહાં પઢૈ ગ્રંથ સાર હૈ,
જયચંદ નામ મૈં હૂં તિનિમેં અભ્યાસ કિછૂ
કિયો બુદ્ધિસારુ ધર્મરાગતેં વિચારે હૈ;
સમયસાર ગ્રંથ તાકી દેશકે વચનરૂપ
ભાષા કરિ પઢો સુનૂં કરો નિરધાર હૈ,
આપાપર ભેદ જાનિ હેય ત્યાગિ ઉપાદેય
ગહો શુદ્ધ આતમકૂં, યહૈ બાત સાર હૈ. ૨.

સંવત્સર વિક્રમ તણૂં, અષ્ટાદશ શત ઔર;
ચૌસઠિ કાતિક વદિ દશૌ, પૂરણ ગ્રંથ સુઠૌર. ૩.

આમ શ્રીમદ્‌ભગવત્કુંદકુંદાચાર્યકૃત સમયપ્રાભૃત નામના પ્રાકૃતગાથાબદ્ધ ગ્રંથની શ્રીમદ્ અમૃતચંદ્રાચાર્યવિરચિત આત્મખ્યાતિ નામની સંસ્કૃત ટીકા અનુસાર પંડિત જયચંદ્રજીકૃત સંક્ષેપભાવાર્થમાત્ર-દેશભાષામય વચનિકા સંપૂર્ણ થઈ.



श्रीसमयसारनी वर्णानुक्रम गाथासूची 

 # कलशकाव्योनी वर्णानुक्रम सूची 



શુદ્ધિપત્રક



પૃષ્ઠ	લીટી	અશુદ્ધ	શુદ્ધ
૨	૩૧	પરમેશ્વર	પરમેશ્વર, પરબ્રહ્મ,
૫	૨૧	કુંદાકુંદાચાર્ય	કુંદકુંદાચાર્ય
૧૧	૧૪	(પોતામાં)...ભૂત	એકછત્ર રાજ્યથી વશ કરનાર મોટું મોહરૂપી ભૂત જેની પાસે
૧૪	૧૦	કંચન	નિષ્ક (સુવર્ણ)
૧૬	૯	નિષ્ણાત...લાયક છે)	નિષ્ણાત નથી
૧૮	૫	(અહીં...છે તેથી	જગત મ્લેચ્છભાષાના સ્થાને હોવાથી, અને વ્યવહારનય પણ મ્લેચ્છભાષાના સ્થાને હોવાને લીધે
૨૦	૧૦	કરે છે (અને...કરે છે).	કરે છે; શુદ્ધનય એક જ ભૂતાર્થ હોવાથી વિદ્યમાન, સત્ય, ભૂત અર્થને પ્રગટ કરે છે.
૨૪	૧૧	કલ્પન.	કલ્પના
૨૫	૧૯	આત્મા	આત્મા એક
૨૮	૨૯	सततविविक्त	सततविविक्तं
૩૨	૨૨	આત્માનો, અનાદિ	અનાદિ કાળથી બંધાયેલા આત્માનો,
૪૬	૨૨	द्दि	ग्हि
૪૭	૧	अहमेतस्यास्ति	अहमेतस्यास्मि अस्ति
૪૭	૧૦	अहम्	अहम् अस्मि
૫૦	૧૭	અન્ય વસ્તુની	અનેક પ્રકારના વર્ણવાળા *આશ્રયની
૫૨	૨૨	तीथष्वराः	तीर्थेश्वराः
૭૨	૬	परमट्टयाइणो	परमट्टयाई
૭૭	૬	४६	४१
૮૬	૧૫	(માલિની)	(શાલિની)
૮૮	૪	કારણે	કારણ
૯૦	૧૯	તાદાત્મ્યસંબંધ	તાદાત્મ્યલક્ષણ સંબંધ

* આશ્રય=જેમાં સ્ફટિકમણિ મૂકેલો હોય તે વસ્તુ.

પૃષ્ઠ	લીટી	અશુદ્ધ	શુદ્ધ
૯૫	૪	શરીરના આકાર વગરે	શરીર આદિ
૯૮	૧૦	પુદ્‌ગલ (કર્મ) પૂર્વક	પુદ્‌ગલકર્મપૂર્વક
૧૦૩	૧૩	कत्तृ	कर्तृ
૧૧૨	૩૦	कत्तृ	कर्तृ
૧૩૬	૧૧	વિરતિથી (પરિણતિથી)	રતિથી
૧૩૭	૧૧	વિરતિથી	રતિથી (લીનતાથી)
૧૩૯	૭	ચૈતન્યધાતુ	શુદ્ધ ચૈતન્યધાતુ
૧૫૧	૧૯	અથવા	અને
૧૬૬	૧૯	भयति	भवंति
૧૬૭	૨૩	જોકે	જોકે ચારિત્રમોહના ઉદયે
૧૮૨	૧૪	અંતરંગ તથા બાહ્ય (અક્ષરસ્વરૂપ) ઉત્પન્ન થતા	અંતર્જલ્પરૂપ તથા બહિર્જલ્પરૂપ
૧૮૩	૧૫	જ્ઞાન	સમ્યગ્જ્ઞાન
૧૮૩	૨૦	જ્ઞાનનું	સમ્યગ્જ્ઞાનનું
૧૮૩	૨૫	પક્ષોના	નયપક્ષોના
૧૮૪	૭	જ્ઞાન	સમ્યગ્જ્ઞાન
૧૯૧	૧૩	પરંતુ તે તો...... ... ...નિશ્ચયપક્ષ	પરંતુ તે (પક્ષ) પ્રતિપક્ષ સહિત છે. તે પ્રતિપક્ષ (અર્થાત્ વ્યવહારપક્ષનો નિષેધ કરનાર નિશ્ચયપક્ષ)
૧૯૧	૧૫	અજ્ઞાનસ્વરૂપ	અજ્ઞાનમય
૧૯૭	૧૬	કેવળ જુદી જ જાતનો.	ચૈતન્યજાતિમાત્ર.
૧૯૯	૧૫	તે (જ્ઞાની) મોક્ષસ્વરૂપ જ છે અને	તે
૧૯૯	૧૭	તે (અજ્ઞાની) બંધસ્વરૂપ જ છે અને	તે
૨૦૧	૨૧	ચારિત્ર છે.	ચારિત્ર છે. તેથી એ રીતે સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર એ ત્રણે એક જ્ઞાનનું જ ભવન (-પરિણમન) છે.
૨૦૯	૬	વિરોધ નથી.	વિરોધ નથી. (જેમ મિથ્યાજ્ઞાનને અને સમ્યગ્જ્ઞાનને પરસ્પર વિરોધ છે તેમ કર્મ-સામાન્યને અને જ્ઞાનને વિરોધ નથી).

શુદ્ધિપત્રક

પૃષ્ઠ	લીટી	અશુદ્ધ	શુદ્ધ
૨૧૧	૨	જ્ઞાનજ્યોતિ છે.	જ્ઞાનજ્યોતિ છે. (જ્યાંસુધી [illegible] છદ્મસ્થ છે ત્યાંસુધી જ્ઞાનજ્યોતિ કે[illegible] સાથે શુદ્ધનયના બળથી પરોક્ષ [illegible] છે, કેવળજ્ઞાન થતાં સાક્ષાત્ થાય છે).
૨૧૫	૪	(કારણ કે...શકે નહિ);	કારણ કે...શકે નહિ;
૨૨૦	૨	પરિણમન	પરિણમન જ
૨૨૩	૧૬	સંતી	સંતા
૨૨૩	૧૭	૧૭૪	*૧૭.
૨૨૩	૧૯	૧૭.	*૧૭૪
૨૨૫	૧	જે રીતે	ઉપભોગ્ય થાય છે અને જે રીતે
૨૨૭	૨૩	હેતુના	હેતુના હેતુના
૨૨૭	૨૩	કારણના	કારણનું જે કારણ તેના
૨૪૦	૧૯	અગ્રાણમગ્રણા	અગ્રાણમગ્રણાં
૨૪૨	૨૩	તેત્તિ	તેત્તિ
૨૬૭	૭	બીજાઓને	¹બીજાઓને
૨૬૮	૭	ભાવો	²ભાવો
૨૭૭	૧૬	જાય છે;	જાય છે, અને બીજાં [illegible] સુધીમાં [illegible]
૨૯૫	૨૨	જ્ઞાયકસ્વભાવમયપણાને	જ્ઞાયકભાવમયપણાને
૩૧૧	૧૮	કારણ-નૈનિમિત્તભૂત	કારણને—નિમિત્તભૂત
૩૫૭	૨૬	બન્નને	બન્નેને
૩૬૫	૨૪	સા ભાવ	સો ભાવ
૩૭૦	૨૩	પ્રતિસરણ	*પ્રતિસરણ
૩૭૩	૧૪	શુદ્ધનયથી	અશુદ્ધનિશ્ચયનયથી
૩૯૮	૧૮	મતિને	મુનિને
૪૧૮	૧૭	થવાનું માનીને	ધર્મને
૪૧૮	૧૯	'પરદ્રવ્યોને...જાય છે'	'પરદ્રવ્યો સાથે પોતાને [illegible]'

* ગાથા પ્રમાણે [illegible], હરિગીત તથા અન્ય[illegible]

પાઠાન્તર : અતિક્રમો ન કર.

પૃષ્ઠ	લીટી	અશુદ્ધ	શુદ્ધ
૪૧૬	૯	કરી શકતાં નથી.	શકતાં નથી અને જ્ઞાન પ્રવૃત્તિમાં કરતો નથી.
૪૨૬	૬	અલગ કલ્પના...પુરુષો	તેઓ જ્ઞાનને અલગ કાર્ય માની સર્વ લોકોની ભાવનાથી આકુળ બુદ્ધિવાળા થયા
૪૨૬	૧૪	'જ્ઞાન...અંગ છે'	'જ્ઞાનને યજ્ઞોનો અને યજ્ઞમાં અંગ છે'
૪૩૬	૨૭	રાગદ્રષ	રાગદ્વેષ
૫૦૪	૧૪	સ્વંધર્મ	સ્વધર્મ
૫૧૮	૧૧	સંમુચિત	સમુચિત



અગાઉથી થયેલા ગ્રાહકોનાં નામ

નામ	પ્રત
રાજકોટ	
ઝવેરી નાનાલાલ કાળિદાસ.	૨૦૦
વકીલ રામજીભાઈ માણેકચંદ	૨૦૦
લાખાણી દામોદર ચત્રભુજ	૫૦
લાખાણી મુળજી ચત્રભુજ	૫૦
વકીલ ભગવાનજી અનોપચંદ	૪૦
વકીલ સાકરચંદ દેવજીભાઈ	૧૫
સંઘવી લક્ષ્મીચંદ ડાહ્યાભાઈ	૧૦
પારેખ લીલાધર ડાહ્યાભાઈ	૧૦
પારેખ પ્રભુલાલ દેવકરણ	૮
દેસાઈ ચંદુલાલ વસનજી	૫
પરચુરણ	૫૦
મુંબઈ	
શાહ જેઠાલાલ સંઘજી બોટાદવાળા	૨૪૦
બેન હરોરબેન મુલન્ડવાળા	૧૨
બેન જેકુંવરબેન ત્રિભોવન જામનગરવાળા	૧૨
શેઠ ચુનીલાલ હીરાચંદ જામનગરવાળા	૬
ટી. જી. શાહ વઢવાણવાળા	૫
શેઠ વનમાળીદાસ ગુલાબચંદ ચુડાવાળા	૫
પરચુરણ	૨૪
માંગરોળ	
પરચુરણ	૫
વઢવાણ શહેર	
શાહ મુંઝાભાઈ વેલશી	૨૫
બેન સમજુબેન	૨૦
ાસળિયા નાગરદાસ વેલશી	૨૦

નામ	પ્રત
શાહ ડાહ્યાભાઈ જેઠાભાઈ	૧૦
શાહ ચુનીલાલ લક્ષ્મીચંદ	૫
શાહ હરખચંદ ઉજમશી	૫
વોરા પ્રેમચંદ ધરમશી	૫
પરચુરણ	૧૧
લીંબડી	
પરચુરણ	૬
રાયપુર	
શાહ હિંમતલાલ માણેકલાલ	૭
કરાંચી	
સુડગર મગનલાલ ત્રિભોવન વઢવાણવાળા	[illegible]
પરચુરણ	૧
જમશેદપુર	
શેઠ નરભેરામ હંસરાજ અમરેલીવાળા	૧
સુરત	
પરચુરણ	
પાસેજ	
શેઠ કુંવરજી જાદવજી ઉમરાળાવાળા	૫
અમદાવાદ	
શાહ ભોગીલાલ પે.પટલાલ	૧૦
શેઠ પેમાભાઈ મહાસુખરામ	૫
શેઠ છોટાલાલ મગુચંદ	૫
પરચુરણ	૨

નામ	પ્રત
કલોલ	
શાહ સોમચંદ અમથાલાલ	૧૧
સોનગઢ	
શાહ ખુશાલચંદ મોતીચંદ ઉમરાળાવાળા	૫૪
બેન ગુલાબબેન	૫૦
મોદી નાગરદાસ દેવચંદ	૧૦
મોદી હરગોવિંદદાસ દેવચંદ	૫
પરચુરણ	૧૫
અગાસ	
શ્રી અગાસ શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર આશ્રમ	૫
પરચુરણ	૩
ભાવનગર	
ઝવેરીઆ ભગવાનલાલ કેવળદાસ	૨૫
કામદાર પુરુષોત્તમદાસ શિવલાલ	૧૦
[illegible] લક્ષ્મીચંદ	૭
[illegible] હરિલાલ [illegible]	૫
પરચુરણ	૭
[illegible]	
બેન [illegible] હા. [illegible] ગુલાબચંદ	૫૦
[illegible]	
[illegible]	૧૦
પરચુરણ	૨
[illegible]	
[illegible]	૨૫
[illegible]	[illegible]
[illegible]	૬
પરચુરણ	[illegible]
[illegible]	
[illegible]	[illegible]

નામ	પ્રત
બોટાદ	
ગાંધી રાયચંદ રતનશી	૨૫
ગાંધી ચત્રભુજ રતનશી	૧૫
પરચુરણ	૪
જામનગર	
વકીલ વીરજીભાઈ તારાચંદ	૭૬
શેઠ નરભેરામ ઝવેરચંદ	૫૧
કોઠારી હેમચંદ દયારામ	૨૫
પરચુરણ	૧૨
અમરેલી	
ખારા નાનચંદ ભગવાનજી	૪૪
દેસાઈ પ્રાણલાલ રામજી	૨૫
ઝાટકિયા અમૃતલાલ માણેકલાલ	૧૨
પરચુરણ	૩
કુંડલા	
શેઠ જગજીવન બાવચંદ	૬
લાઠી	
શ્રી લાઠીના મુમુક્ષુ ભાઈઓ	૧૦
પરચુરણ	૧
ગોંડળ	
પરેખ ચંદુલાલ બેચરદાસ વિદ્યાર્થી	૧૦
કામદાર વ્રજલાલ ગુલાબચંદ	૮
ખત્રી વનમાળી કરમનજી	૫
પરચુરણ	૧૧
ઉના	
શાહ [illegible]	૧
અન્ય સ્થાનોનાં પરચુરણ	[illegible]

નામ	પ્રત
કલોલ	
શાહ સોમચંદ અમથાલાલ	૧૧
સોનગઢ	
શાહ ખુશાલચંદ મોતીચંદ ઉમરાળાવાળા	૫૪
બેન ગુલાબબેન	૫૦
મોદી નાગરદાસ દેવચંદ	૧૦
મોદી હરગોવિંદદાસ દેવચંદ	૫
પરચુરણ	૧૫
અગાસ	
શ્રી અગાસ શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર આશ્રમ	૫
પરચુરણ	૩
ભાવનગર	
સુતરીઆ ભગવાનલાલ કેવળદાસ	૨૫
કામદાર પુરુષોત્તમદાસ શિવલાલ	૧૦
શાહ [illegible] લક્ષ્મીચંદ	૭
[illegible] હરિલાલ જીવરાજભાઈ	૫
પરચુરણ	૧૭
[illegible]	
બેન [illegible] રામજી હા. [illegible] ગુલાબચંદ	૫૦
[illegible]	
[illegible]	૧૦
પરચુરણ	૨
[illegible]	
[illegible]	૨૫
[illegible]	૨૦
[illegible]	૬
પરચુરણ	૬
[illegible]	
બેન [illegible]	૨૦

નામ	પ્રત
બોટાદ	
ગાંધી રાયચંદ રતનશી	૨૫
ગાંધી ચત્રભુજ રતનશી	૧૫
પરચુરણ	૪
જામનગર	
વકીલ વીરજીભાઈ તારાચંદ	૭૧
શેઠ નરભેરામ ઝવેરચંદ	૫૧
કોઠારી હેમચંદ દયારામ	૨૫
પરચુરણ	૧૨
અમરેલી	
ખારા નાનચંદ ભગવાનજી	૪૪
દેસાઈ પ્રાણલાલ રામજી	૨૫
ઝાટકિયા અમૃતલાલ માણેકલાલ	૧૨
પરચુરણ	૩
કુંડલા	
શેઠ જમજીવન ભાઈચંદ	૬
લાઠી	
શ્રી લાઠીના મુમુક્ષુ ભાઈઓ	૧૦
પરચુરણ	૧
[illegible]	
પટેલ મંગુલાલ બેચરદાસ વિદ્યાર્થી	૧૦
કામદાર વજરાજ ગુલાબચંદ	૮
ખવી વનમાળી કરમનજી	૫
પરચુરણ	૧૧
ઉના	
શાહ [illegible] ભુદરચંદ [illegible]	૧
અન્ય ગામોમાં પરચુરણ	૧૪